दैवत-संहितान्तर्गत

मरुद्देवताका मंत्र-संग्रह।

हिन्दी अनुवाद।

(टीका, टिप्पणी और स्पष्टीकरण के साथ)

लेखक

पं० श्रीपाद दामोदर सातवलेकर
स्वाध्याय-मण्डल, औंध (जि० सातारा)

शके १८६५, संवत् २०००, सन १९४३

संपादक

पं० श्रीपाद दामोदर सातवलेकर

सहसंपादक

पं० दयानन्द गणेश धारेश्वर, B. A.

मूल्य ६) रु०

वीर मरुतोंका काव्य।

वीररसपूर्ण काव्यके मनन से उपलब्ध बोध।
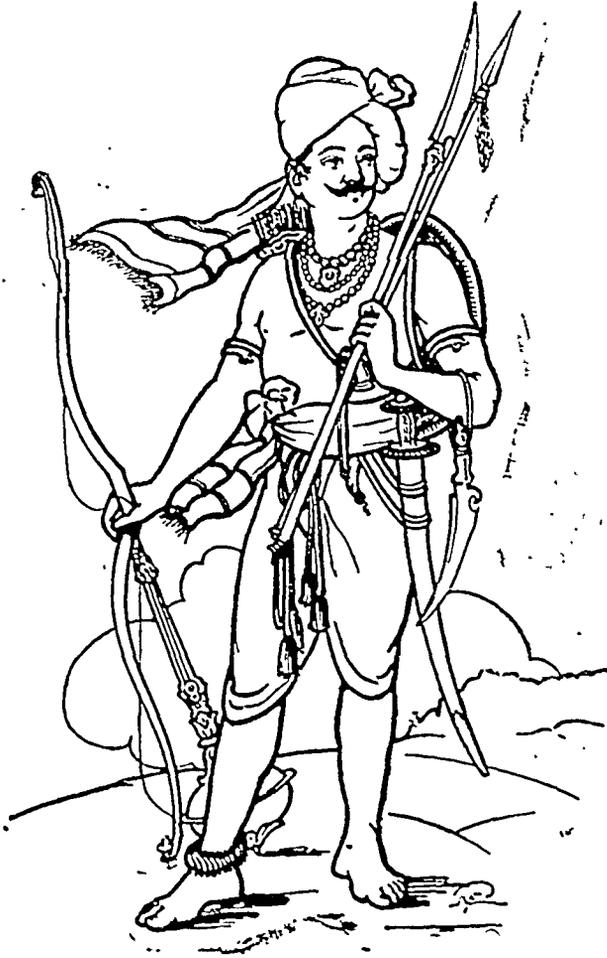
हम पहले ही मरुत्-देवता के मन्त्रों का अन्वय, अर्थ और टिप्पणी यहाँपर दे चुके हैं। पदों के अर्थका विचार, सुभाषितों का निर्देश एवं पुनरुक्त मन्त्रों का समन्वय भी ध्यानपूर्वक हो चुका है। अब हमें संक्षेप में देखना है कि उन सब का ध्यानपूर्वक अध्ययन कर लेनेसे हमें कौनसा बोध मिल सकता है। इस मरुत्-काव्य में अन्य काव्योंकी अपेक्षा जो एक अनूठी विभिन्नता दीख पडती है, वह यों है कि इस काव्य में-

महिलाओंका वर्णन नहीं पाया जाता है।

किसी भी वीर-गाथा में नारियों का उल्लेख एक न एक ढंग से अवश्य ही उपलब्ध होता है। पंचमहाकाव्य या अन्य काव्यों का निरीक्षण करनेपर ज्ञात होता है कि उन में वीरों के वर्णन के साथ ही साथ उनकी प्रेयसियों का बखान अवश्य ही किया है। स्त्रियों का वर्णन न किया हो ऐसा शायद एक भी वीर-काव्य नहीं पाया जाता है। यदि इस नियम का कोई अपवाद भी हो, तो उससे इस नियमकी ही सिद्धता होती है, ऐसा कहना पडेगा। लगभग २७ ऋषियोंने इस मरुद्देवता-विषयक काव्य का सृजन किया है ऐसा जान पडता है (देखो पृष्ठ १९४); और अगर इस संख्या में सप्तर्षियों का भी अन्तर्भाव किया जाय तो समूचे ऋषियों की संख्या ३४ हो जाती है। यह बडे ही आश्चर्य की बात है कि इतने इन ३४ ऋषियों के निर्मित काव्य में एक भी जगह मरुतों के स्त्रैणत्व का निर्देश नहीं किया है। ऐसा तो नहीं कहा जा सकता कि ऋषि स्त्रैणत्व का वर्णन ही न करते थे, क्योंकि इन्हीं ऋषियों ने इन्द्रका वर्णन करते समय किन्हीं अंशोंमें उस पर स्त्रैणत्वका आरोप किया है। जिन ऋषियों ने इन्द्र का स्त्रैणत्व बतलाने में आनाकानी नहीं की, वे ही मरुतों का वर्णन करनेमें उसका लेश मात्र भी उल्लेख नहीं करते हैं। इससे यह स्पष्ट होता है कि मरुतों के अनुशासनपूर्ण बर्ताव में स्त्रैणत्व के लिए बिलकुल जगह नहीं थी। ध्यान में रहे कि मरुत् इन्द्र के सैनिक हैं और ये अपने सैनिकीय जीवन में स्त्रैणत्व से कोसों दूर रहते थे। आज हम योरप के तथा आस्ट्रेलिया सदृश सभ्य गिने जानेवाले राष्ट्रों के सैनिकों का अवलोकन करते हैं, तो पता चलता है कि यदि वे नगरों में घूमने-फिरने लगें और कहीं महिलाओं पर उनकी निगाह पड जाए तो असभ्य एवं उच्छृंखलतापूर्ण बर्ताव करने में हिचकिचाते नहीं। यह बात सबको ज्ञात है, अतः इस मरुत्-

में अधिक लिखना उचित नहीं जँचता । हाँ, इतना तो निस्सन्देह कहा जा सकता है कि इन सभ्य पाश्चात्यों को अपने सैनिकों के महिला-विषयक संयम के बारे में अभिमानपूर्वक कहना दूभर ही है ।

लेकिन मरुतों के वैदिक काव्य में स्त्रैणत्व के वर्णन का पूर्णतया अभाव है । यह तो विशुद्ध वीरकाव्य है । ऐसा कहे बिना नहीं रहा जाता कि हम भारतीयों के लिए यह बडे ही गौरव एवं आत्मसंमान की बात है । यूं कहने में कोई आपत्ति नहीं प्रतीत होती है कि, जो संयमपूर्ण जीवन बिताना सुसभ्य योरपीय सैनिकों के लिए असंभव तथा दूभर हुआ, वही इन मरुतों के लिए एक साधारणसी बात थी ।

इस समूचे काव्यमें नारियोंके सम्बन्धमें सिर्फ १६ उल्लेख पाये जाते हैं, जिनका यहाँपर विचार करना उचित जान पडता है ।

नारीके तुल्य तलवार ।

गुहा चरन्ती मनुषो न योषा । (ऋ० १।१६७।३)

' वीरों की तलवार (परदेमें रहनेवाली) मानव-स्त्री के तुल्य लुक छिपकर मियान में रहती है । ' यहाँ निर्देश है कि कुछ मानव-नारियाँ घर में गुप्त रूप से निवास करती थीं । बेशक, यह वर्णन तो परदा-प्रथा के समकक्ष दीख पडता है । तलवार तो हमेशा मियान में पडी रहती है, लेकिन केवल लडाई के मौकेपर ही बाहर आ जाती है, ठीक उसी प्रकार घरों में अदृश्य एवं गुप्त रूप से रहनेवाली महिलाएं धार्मिक अवसरों पर ही सभासमाजों में चली आती थीं; यही इस उपमा का आशय दिखाई देता है । प्रतीत होता है कि उस काल में ऐसी प्रथा प्रचलित रही हो कि किन्हीं खास अवसरों पर जैसे धर्मकृत्य या सम्मेलन आदि के समय स्त्रियों को उपस्थित होने में कुछ भी रुकावट नहीं थी, परन्तु अन्यथा देवियाँ घरों के भीतर ही काल-यापन करती थीं ।

उपर्युक्त वर्णन तो सती साध्वी महिला के लिए लागू पडता है और इसके अतिरिक्त अन्य प्रकार की स्त्री को ' साधारण स्त्री ' कहा गया है । जिसने सतीत्व से मुँह मोड लिया हो वह ' साधारण स्त्री ' कहलाती थी ।

साधारण स्त्री ।

साधारण्या इव मरुतः सं मिमिक्षुः ।
(ऋ० १।१६७।४)

' वायुगण चाहे जिस भूमि पर जल की वर्षा करते छूटते हैं, जिस प्रकार साधारण कोटि का पुरुष साधारण स्त्री से यथेच्छ बर्ताव करता है । ' इस उपमा में साधारण स्त्री का उल्लेख आया है । व्यभिचारकर्म में प्रवृत्त पुरुष किसी भी साधारण स्त्री से समागम करता है; उसी तरह मेघ चाहे जिस तरह की भूमि हो, उसपर वर्षा करता है । परन्तु जो सदाचरणी मानव है, वह अपनी कुलशीलसंपन्न नारी से ही नियमित ढंगसे व्यवहार करता है । इस वर्णनके बूतेपर स्त्रियों एवं पुरुषों के दो तरह के विभेद हमारे सामने उठ खडे होते हैं—

१. एक विभाग में उन स्त्रियों का वर्णन है, जो हमेशा घर के अन्दर अन्तःपुर में निवास करती हैं और एकाध मौके पर धार्मिक समारंभों में ही समाजों में प्रकट होती हैं । ऐसी स्त्रियों से सदाचरणी पति धर्मानुकूल व्यवहार प्रचलित रखते हैं ।

२. दूसरी श्रेणी में साधारण स्त्रियों का अन्तर्भाव हुआ करता है, जो कि हमेशा बाहर घूमा करतीं तथा पुरुषों से अनियमित बर्ताव रख लेतीं ।

वेदने प्रथम विभाग में आनेवाली (**गुहा चरन्ती योषा**) अन्तःपुर में निवास करनेवाली महिलाओं की प्रशंसा की है और अन्य साधारण स्त्रियों की निन्दा की है । पहिले प्रकार की सती साध्वी महिलाएँ जब सभासमाजों में आ दाखिल होती हों, तब (**मा ते कशप्लकौ दृशन्** । ऋ. ८।३३।१९) उन की टाँगें तथा पिंडलियाँ दृष्टिगोचर न रहने पायँ, ऐसी आज्ञा वेदने दी है । वेद में ऐसे भी आदेश पाये जाते हैं कि जनता के मध्य संचार करते समय नारियों को सतर्क रहना चाहिये कि कहीं उन का अंगोपांग दीख न पडे इसलिये अपना समूचा शरीर भलीभाँति वस्त्रों से ढँकना चाहिये ।

उत्तम माताओंके खिलाडी पुत्र ।

शिशूलाः न क्रीळाः सुमातरः (ऋ. १०।७८।६)

' उत्तम श्रेणी के माताओं के पुत्र खिलाडी होते हैं । '

ये उत्तम माताएँ अर्थात् ही ऊपर बतलायी हुई साध्वी महिलाओं में पाई जाती हैं। इन्हें 'सुमाता' कहा है। दूसरी जो साधारण महिलाएँ होती हैं, वे सुमाता नहीं बन सकतीं। इस से स्पष्ट है कि, उत्तम सन्तान होने के लिये संयमशील वर्ताव की आवश्यकता है।

महिलाओं के समान वीर अलंकृत तथा विभूषित होते हैं।

मरुतों के वर्णन में अनेक बार ऐसा वर्णन आया है कि, ये वीर सैनिक अपने आपको स्त्रियों के समान विभूषित करते हैं-(प्र ये शुम्भन्ते जनयो न। ऋ. १।८५।१) 'स्त्रियों की नाईं ये वीर अपने शरीरों की सजावट खूब कर लेते हैं।' हम देखते हैं कि आधुनिक युगमें योरपीय प्रणालीके अनुसार सुसज्ज होनेवाले सैनिक भी महिलाओं की तरह ही खूब बनावसिंगार करते हैं। प्रत्येक आभूषण हर किस्मका हथियार, हरएक तरह का कपडा साफ सुथरे, खूब झाडपोंछ कर रखे हुए, व्यवस्थित तथा चमकीले बनाकर ही खूब अच्छी तरह दीख पडे इस ढंग से धारण कर लेने चाहिए। इस अनुशासनका पालन वर्तमानकालीन सेना में स्पष्ट दिखाई देता है। महिलाएँ जिस प्रकार आईने में बारंबार अपनी आकृति देखकर वेशभूषा कर लेती हैं और सतर्कतापूर्वक साजसिंगार कर चुकनेपर ही खूब बनठनकर बाहर चली जाती हैं, ठीक वैसे ही ये वीर सिपाई यथेष्ट अलंकृत हो खूब ठाठ-बाट या सजधजसे जगमगानेवाले हथियारों को तथा आभूषणों को धारण कर यात्रा करने निकल पडते हैं।

यहाँपर, आधुनिक योरपीय सैनिकों के वर्णन में तथा वेद में दर्शाये ढंग से मरुतों के वर्णन में विलक्षण समानता दिखाई देती है जो कि सचमुच प्रेक्षणीय है। मरुतोंके इस सिंगारके संबंधमें और भी उल्लेख पाये जाते हैं जिनमें से कुछ एक उद्धृत किये जाते हैं, सो देखिए—

> यक्षदृशः न शुभयन्त मर्याः।
> (ऋ. ७।५६।१६) (३६०)
>
> गोमातरः यत् शुभयन्ते अञ्जिभिः।
> (ऋ. १।८५।३) (१९५)

'यज्ञ-समारंभ देखने के लिये आये हुए लोग जिस प्रकार अलंकृत होकर बढ़िया वेशभूषा से सुसज्ज बनकर आया करते हैं, उसी प्रकार मातृभूमि को माता माननेवाले वीर अपने गणवेश से सजे हुए रहते हैं।' मरुत् जो वेशभूषा करते हैं तथा अपनी जो शोभा बढाते हैं, वह सारी उनके अपने गणवेशपर ही निर्भर है। मरुतों का गणवेश उन सब के लिये समान (अर्थात् युनिफॉर्म के तौरपर बनाया हुआ) रहता है। उन के जो शस्त्रास्त्र एवं वीरभूषण हैं, उन से ही उनकी वेशभूषा एवं सजावट सिद्ध हो जाती है। ये वीर मरुत् चाहे जैसी भूषा नहीं कर सकते, अपितु उन का जो गणवेश निर्धारित हो चुका हो उसी से यह अलंकृति करनी पडती है। इस वर्णन से स्पष्ट है कि, आधुनिक सैनिकों के तुल्य ही इन्हें अपना गणवेश साफसुथरा एवं जगमगानेवाला बनाकर रखना पडता था। इसी वर्णन को और भी देखिए—

> स्वायुधासः इष्मिणः सुनिष्काः।
> उत स्वयं तन्वः शुम्भमानाः॥
> (ऋ. ७।५६।११) (३५५)
>
> सस्वः चित् हि तन्वः शुम्भमानाः।
> (ऋ. ७।५९।७) (३८९)
>
> स्वक्षत्रेभिः तन्वः शुम्भमानाः।
> (ऋ. १।१६५।५) (४८४)

'उत्कृष्ट हथियार धारण करनेहारे, श्रेष्ठ मालाएँ पहननेवाले तथा वेगपूर्वक आगे बढनेवाले ये वीर खुद ही अपने शरीरोंको सुशोभित करते हैं। यद्यपि ये गुप्त जगह रहते हैं, तथापि अपनी शरीरभूषा बराबर अक्षुण्ण बनाये रखते हैं। अपने अन्दर विद्यमान क्षात्रतेजसे शरीरशोभा को ये वृद्धिंगत करते हैं।'

इस प्रकार इन सूक्तों में हम इन वीरों के निजी बाह्य शारीरिक भूषा तथा अलंकृति के संबंधमें उल्लेख पाते हैं।

> पिशा इव सुपिशः। (ऋ. ३।६४।८) (१६५)
> अनु श्रियः धिरे। (ऋ. १।१६६।१०) (२३७)
> सुचन्द्रं सुपेशसं वर्णं दधिरे।
> (ऋ. २।३४।१३) (२६१)
> महान्तः वि राजथ। (ऋ. ५।५५।२) (२६६)
> रूपाणि चित्रा ददृशे। (ऋ. ५।५२।११) (२२७)

'ये वीर बडे ही शोभायमान दिखाई देते हैं, बडी भारी शोभा इन में है, चौंधियानेवाली सुन्दर कांति धारण

करते हैं। ये बहुत सुहाते हैं, बडे सुन्दर दीख पडते हैं।' इस भाँति इन का वर्णन किया है। इन वर्णनों से इन वीरों की चारुता पर स्पष्ट आलोकरेखा पडती है। इस से एक बात स्पष्ट होती है कि ये वीर मरुत् भद्देपन से कोसों दूर रहा करते थे, सदैव अपने सुन्दर गणवेश से विभूषित हो व्यवस्थित ढंग से रहा करते थे, अतएव उनका प्रभाव चतुर्दिक् फैल जाता था।

उपर्युक्त वर्णन से स्पष्ट दिखाई देता है कि, आधुनिक सैनिकों के समान ही वीर मरुतों का रहन-सहन था। इस सम्बन्ध में और भी कौनसी जानकारी प्राप्त होती है, सो देख लेना चाहिये।

एक ही घर में रहनेवाले वीर।

सभी मरुतों के निवास के लिए एक ही घर बनाया जाता था, या एक बडे विशाल घर में ये समूचे वीर रहा करते थे। इस सम्बन्ध के उल्लेख देखिए—

समोकसः इषुं दधिरे। (ऋ. १।६४।१०) (११७)
ऊरुक्षयाः सगणा मानुषासः।
(अथर्व. ७।७७।३) (४४७)
यः उरु सदः कृतम्। (ऋ. १।८५।६) (१२८)
उरु सदः चक्रिरे। (ऋ. १।८५।७) (१२९)
समानस्मात्सदसः। (ऋ. ५।८७।४) (३२१)

'एक घर में रहनेवाले ये वीर बाण धारण करते हैं। इन के लिए बहुत बडा विस्तृत मकान तैयार किया जाता था।' उसी प्रकार—

सनीळाः मर्याः स्वश्वाः नरः।
(ऋ. ७।५६।१) (३४५)
सवयसः सनीळाः समान्याः। (ऋ. १।१६५।१)
(इन्द्रः ३२५०)

'(स-नीळाः) एक घर में रहनेवाले (मर्याः) ये मरने के लिए तैयार वीर अच्छे घोडोंपर बैठते हैं। वे सभी समान सम्मान के योग्य हैं और समान अवस्थावाले हैं।' यह समूचा वर्णन आधुनिक सैनिकों के वर्णन से मेल खाता है। आज दिन भी सैनिक एक मकान में (एक बैरक में) रहते हैं, सब की अवस्था भी लगभग एकसी रहती है, सब एक ही श्रेणी के होने के कारण अविषम रूप से सम्मान के योग्य समझे जाते हैं, उन में ऊँच-नीच के भाव नहीं के बराबर होते हैं, क्योंकि उन की समानता सर्वमान्य होती है।

संघ बनाकर रहनेवाले वीर।

ये वीर मरुत् सांघिक जीवन बिताने के आदी थे। सात सात की कतार में चलते हुए, चढाई करते समय सब मिलकर एक कतार में शत्रुदलपर टूट पडनेवाले थे। इस के उल्लेख देखिए—

मारुताय शर्धाय हव्या भरध्वम्।
(ऋ. ८।२०।९) (९०)
मारुतं शर्धं अभि प्र गायत। (ऋ. १।३७।१) (६)
मारुतं शर्धः उत् शंस। (ऋ. ५।५२।८) (२२४)
वन्दस्व मारुतं गणम्। (ऋ. १।३८।१) (३५)
मारुतं गणं नमस्य। (ऋ. ५।५२।१३) (२२९)
सप्तयः मरुतः। (ऋ. ८।२०।२३) (१०४)
गणश्रियः मरुतः। (ऋ. १।६४।९) (११६)

'मरुतों के संघ के लिए अन्न का संग्रह करो, मरुतों के संघका वर्णन करो, मरुतों के समुदाय के लिए अभिवादन करो, सात सात की पंक्ति बनाकर ये चलते हैं और समुदाय में ये सुहाते हैं।' उसी प्रकार—

मारुतं गणं सश्चत। (ऋ. १।६४।१२) (११९)
वृष-व्रातासः पृषतीः अयुग्ध्वम्।
(ऋ. १।८५।४) (१२६)
स हि गणः युवा। (ऋ. १।८७।४) (१४८)
वृषा गणः अविता। (ऋ. १।८७।४) (१४८)
व्रातं व्रातं अनुक्रामेम। (ऋ. ५।५३।११) (२४४)

'मरुतों के समुदाय को प्राप्त करो। यह संघ (वृष-व्रातासः) बलिष्ठों का है। वह अपने रथ को धब्बेवाली घोडियाँ या हरिनियाँ जोतता है। यह युवकों का समुदाय है जो हमारी रक्षा करता है। इस समुदाय के साथ अनुक्रम से हम चलते रहें।'

उपर्युक्त मंत्रांशोंमें दर्शाया है कि ये वीर सांघिक जीवन बितानेवाले और सामुदायिक ढंगपर कार्य करनेवाले हैं। संघ बनाकर रहना, तुल्य वेश धारण करना, सात सातकी कतार में चलना, सब के सब युवक होना या समान अवस्थावाले होना अर्थात् इनमें छोटे बालक एवं वृद्ध मनुष्यों का अभाव तथा समूची जनता की रक्षा करने का

गुरुतर कार्यभार कंधे पर ले लेना, यह सारा का सारा वर्णन वर्तमानकालीन सैनिकों के वर्णन के तुल्य ही है ।

(१) **शर्ध**, (२) **व्रात** और (३) **गण**, इस प्रकार इनके समुदाय के तीन प्रकार हैं । गण में ८०० या ९०० सैनिकों की संख्या का अन्तर्भाव होता होगा, ऐसा पृष्ठ ९६ पर दर्शाने की चेष्टा की है । पाठक इधर उसे देख लें । उसी प्रकार पृष्ठ १६४-१६६ पर एक चित्रद्वारा यह बतलाने का प्रयत्न किया है कि इन गणों में मरुत् किस ढंग से खडे रहा करते थे । पाठक उस समूचे वर्णनको अवश्य देख लें । हमारा अनुमान है कि शर्ध और व्रात में संख्या कुछ अंश तक अपेक्षा कृत न्यून हो । कुछ भी हो, अधिक निश्चित प्रमाण मिलने तक इस संबंधमें निश्चयपूर्वक कुछ नहीं कहा जा सकता है ।

इससे एक बात सुनिश्चित ठहरी कि मरुत् संघ बनाकर रहा करते थे । इतना जान लेने से यह सहज ही में ज्ञात हो सकता है कि वे एक ही घर में रहा करते थे और एक पंक्ति में सात सात वीर खडे हुआ करते थे ।

सभी सदृश वीर ।

अज्येष्ठासो अकनिष्ठास एते ।
सं भ्रातरो वावृधुः सौभगाय । (ऋ. ५।६०।५)
ते अज्येष्ठा अकनिष्ठास उद्भिदो-
ऽमध्यमासो महसा विवावृधुः । (ऋ. ५।५९।६)

' ये सभी वीर मरुत् साम्यवादी हैं क्योंकि इनमें कोई भी (अज्येष्ठास:) उच्चपद पर बैठनेवाला नहीं तथा (अ-कनिष्ठासः) न कोई निम्नश्रेणी में गिना जाता है और (अमध्यमासः) कोई मँझले दर्जेका भी नहीं पाया जाता है । ये सब (भ्रातर:) आपस में भ्रातृवत् बर्ताव करते हैं, ये साम्यावस्था का उपभोग लेनेवाले बन्धुगण हैं । ये सभी इकट्ठे होकर (सौभगाय सं वावृधुः) अपने उत्तम भाग्य के लिए अविरोध-भाव से भली भाँति चेष्टा करते हैं । '

मतलब यही है कि, ये सभी वीर समान योग्यतावाले हैं । समान आयुवाले, समान डीलडौलवाले तथा एक ही अभ्युदय के कार्य के लिए आत्मसमर्पण करनेवाले ये वीर हैं । पाठक अवश्य देख लें कि, यह समूचा वर्णन आधुनिक सैनिकों के वर्णन से कितना अभिन्न है । सब का गणवेश समान, सब का रहनसहन समान, सबके हथियार समान, रहने के लिये सब को एक ही घर, एक ही उद्देश्य की पूर्ति के लिये सब वीरों का एक कार्य में सतर्कतापूर्वक जुट जाना, इस भाँति यह मरुतोंका वर्णन अर्थात् ही आधुनिक सैनिकों के वर्णन से आश्चर्यजनक साम्य रखता है । दोनोंमें किसी तरह की विभिन्नता दृष्टिगोचर नहीं होती है । अपितु अनूठी समता दिखाई देती है ।

मरुतों का गणवेश (या युनिफार्म) ।

मरुत् देवराष्ट्र के सैनिक हैं । देखना चाहिए कि, इनका गणवेश किस तरह का हुआ करता था ।

सरपर शिरस्त्राण ।

ये वीर अपने मस्तकपर शिरस्त्राण या साफा रख लेते थे । शिरस्त्राण लोहे का बनाया हुआ तथा सुनहली बेल-बुटी से सुशोभित रहता और अगर साफा पहना जाता तो वह रेशमी होता तथा पीठपर उस का कुछ अंश छूटा रहता था । इस विषय में देखिए—

शीर्षन् हिरण्ययीः शिप्राः व्यञ्जत ।
(ऋ. ८।७।२५) (७०)
हिरण्यशिप्राः याथ । (ऋ. २।३४।३) (२०१)
शीर्षसु नृम्णा । (ऋ. ५।५७।६) (२८९)
शीर्षसु वितता हिरण्ययीः शिप्राः ।
(ऋ. ५।५४।११) (२६०)

'सरपर रखा हुआ शिरस्त्राण सुनहली बेलबूटीसे सुशोभित हुआ करता और रेशमी साफे भी पहने जाते थे ।' इस से ज्ञात होता है कि, उन के गणवेश में शिरोभूषण किस ढंग का रहा करता था ।

सबका सदृश गणवेश ।

ये अञ्जिभिः अजायन्त । (ऋ. १।३७।२) (७)
एषां अञ्जि समानं रुक्मासः विभ्राजन्ते ।
(ऋ. ८।२०।११) (९२)
वपुषे चित्रैः अञ्जिभिः व्यञ्जते ।
(ऋ. १।१६४।४) (१११)
गोमातरः अञ्जिभिः शुभयन्ते ।
(ऋ. १।८५।३) (१२५)
वक्षःसु रुक्मा अंसेषु एताः रभसासः अञ्जयः ।
(ऋ. १।१६६।१०) (१६७)

ते क्षोणीभिः अरुणेभिः अञ्जिभिः ववृधुः ।
(ऋ. २।३४।१३) (२११)
अञ्जिभिः सचेत । (ऋ. ५।५२।१५) (२३१)
ये अञ्जिषु रुक्मेषु खादिषु स्रक्षु श्रायाः ।
(ऋ. ५।५३।४) (२३७)

' ये वीर अपने अपने वीरभूषणोंके साथ प्रकट होते हैं। इनके गणवेश सब के लिए सदृश बनाये दीख पडते हैं और इनके गले में सुवर्णहार सुहाते हैं। भाँति भाँति के आभूषणोंसे वे अपने शरीरों को सुशोभित करते हैं। भूमि को माता समझनेवाले ये वीर अपने गणवेशों से स्वयं सुशोभित होते हैं। इनके वक्षःस्थल पर मालाएं तथा कंधों पर गणवेश दिखाई देते हैं। वे केसरिया वर्ण के गणवेशों से युक्त होकर अपनी शक्ति बढाते हैं। वे सदा गणवेशों से युक्त होते हैं और वे वस्त्रालंकार, स्वर्णमुद्राओं के हार, वलयकटक एवं मालाएं पहनते हैं। '

उपर्युक्त अवतरणों से उनके गणवेश की कल्पना आ सकती है। 'अञ्जि' पदसे गणवेशका बोध होता है। उनके कपडे केसरिया वर्ण के तथा तनिक रक्तिम आभावाले होते थे। ' अरुणेभिः क्षोणीभिः ' इन पदों से स्पष्ट सूचना मिलती है कि उनका पहनावा अरुण-केसरिया वर्णवाला हुआ करता था। वे वक्षःस्थलों पर स्वर्णमुद्रा सदृश अलंकारों के गहने पहनते जो उनके केसरिया कपडों पर खूब सुहाने लगते थे। हाथोंमें तथा पैरोंमें वलयसदृश आभूषण सुहाते थे। शायद ये विशेष कार्यवाही करनेके निमित्त मिले हुए वीरत्वदर्शक आभूषण हों। इनके अतिरिक्त ये पुष्पमालाएं भी धारण कर लेते। इनके इस गणवेश के बारे में निम्न मन्त्र देखनेयोग्य हैं।

शुभ्रखादयः ... एजथ । (ऋ. ८।२०।४) (८५)
रुक्मवक्षसः । (ऋ. ८।२०।२१) (२००)
(ऋ. २।३४।२)
वक्षःसु शुभे रुक्मान् अधियेतिरे ।
(ऋ. १।६४।४) (१११)
वक्षःसु विरुक्मतः दधिरे ।
(ऋ. १।८५।३) (१२५)
रुक्मैः आ विद्युतः असृक्षत ।
(ऋ. ५।५२।६) (२२२)

पत्सु खादयः वक्षःसु रुक्माः ।
(ऋ. ५।५४।११) (२६०)
रुक्मवक्षसः वयः दधिरे । (ऋ. ५।५५।१) (२६५)
रुक्मवक्षसः अश्वान् आ युञ्जते ।
(ऋ. २।३४।८) (२०६)

' इनके वक्षःस्थल पर स्वर्णमुद्राओं के हार रहते हैं; पैरों पर नूपुर और उरोभाग में मालाएं रहती हैं जो कि जगमगाती हैं। ये आभूषण बिलकुल स्वच्छ एवं शुभ्र होते हैं और बिजली के तुल्य चमकते हैं। गले में हार धारण करनेहारे ये वीर अपने रथों में घोडे जोतते हैं। '

इस वर्णन से इनके गणवेश की कल्पना की जा सकती है। शरीरपर केसरिया रंग के कपडे, वक्षःस्थलपर स्वर्णमुद्राहार, हाथपैरों में वीरत्वनिदर्शक वलयकटक या कँगन सभी साफ सुथरे, चमकीले एवं दामिनी के तुल्य जगमगानेवाले रहा करते। ये सातसातकी पंक्ति बनाकर खडे रहा करते और दोनों ओर दो पार्श्वरक्षक अवस्थित रहते। इस भाँति सात कतारोंका सृजन हो जाता और जब बडी सजधज एवं ठाटबाट से ये वीर सज्ज हो जाते तो (गणश्रियः) संघ के कारण ये बहुत सुहाने लगते। उनकी शोभा आधुनिक सुसज्ज सेनाके समकक्ष हो जाती है।

हथियार ।

भाले ।

ये ऋष्टिभिः अजायन्त । (ऋ० १।३७।२) (७)
बाहुषु अधि ऋष्टयः दविद्युतति ।
(ऋ. ८।२०।११) (९२)
अंसेषु ऋष्टयः नि मिमृक्षुः । (ऋ. १।६४।४) (१११)
भ्राजदृष्टयः उज्जिघ्नते । (ऋ. १।६४।११) (११८)
भ्राजदृष्टयः स्वयं महित्वं पनयन्त ।
(ऋ. १।८७।३) (१४७)
भ्राजदृष्टयः दळ्हानि चित् अचुच्यवुः
(ऋ. १।१६८।४) (१८६)
भ्राजदृष्टयः मरुतः आगन्तन ।
(ऋ. २।३४।५) (२०३)
भ्राजदृष्टयः वयः दधिरे । (ऋ. ५।५५।१) (२६५)
ये ऋष्टिभिः विभ्राजन्ते । (ऋ. १।८५।४) (१२६)

ऋष्टिमद्भिः रथेभिः आयात।
(ऋ. १।८८।१) (१५१)
सुधिता घृताची हिरण्यनिर्णिक्
ऋष्टिः येषु सं मिम्यक्ष। (ऋ. १।१६७।३) (१७४)
ऋष्टिविद्युतः मरुतः। (ऋ. १।१६८।५) (१८७)
ये ऋष्टिविद्युतः नमस्य। (ऋ. ५।५२।१३) (२२९)
युधा आ ऋष्टीः असृक्षत। (ऋ. ५।५२।६) (२२२)
वः अंसेषु ऋष्टयः, गभस्त्योः अग्निभ्राजसः विद्युतः।
(ऋ. ५।५४।११) (२६०)

'ये वीर अपने भाले लेकर प्रकट होते हैं। इनकी भुजाओंपर तथा कंधोंपर भाले द्योतमान हो उठे हैं। तेजःपुञ्ज हथियारों से युक्त होकर ये वीर अपने महत्त्व को बढाते हैं। चमकनेवाले हथियार लेकर ये वीर रथपरसे आते हैं। इन के हथियार बढिया, सुदृढ, सुतीक्ष्ण, सोने के तुल्य चमकनेवाले होते हैं। चमकीले भालों से युक्त ये वीर स्थिर शत्रुको भी विकम्पित कर देते हैं। कंधोंपर भाले रखे हुए हैं और इनके हाथों में तलवार रहती है।'

ऋष्टि का अर्थ है भाला, कुल्हाडी, परशु या तत्सम मुष्टि में पकडनेयोग्य हथियार। जब सैनिक भाले लेकर खडे होते हैं तब कंधों पर अपने भालों को रख लेते हैं। उस समय का वर्णन इन मंत्रों में है।

कुठार या परशु।

ये वाशीभिः अजायन्त। (ऋ. १।३७।२) (७)
हिरण्यवाशीभिः अग्निं स्तुषे। (ऋ. ८।७।३२) (७७)
ते वाशीमन्तः। (ऋ. १।८७।५) (१५०)
वः तनूषु अधि वाशीः। (ऋ. १।८८।३३) (१५३)
ये वाशीषु धन्वसु आयाः। (ऋ. ५।५३।४) (२३७)

'वाशी का अर्थ है कुल्हाडी या परशु। यह मरुतों का एक शस्त्र है। परशुसहित ये वीर प्रकट होते हैं। इन कुल्हाडियों पर सुनहली पच्चीकारी की जाती थी। ये वीर हमेशा अपने पास कुठार रख लेते हैं। समीप तीक्ष्ण कुठार एवं बढिया धनुष्य रखते हैं।

इन वर्णनों से पाठकों को इन के कुठारों की कल्पना आजायगी। इनके हथियारोंमें भाले, कुठार एवं धनुष्यों का अन्तर्भाव हुआ करता था। साथ ही तलवार भी रहा करती थी।

तलवार, वज्र।

वज्रहस्तैः अग्निं स्तुषे। (ऋ. ८।७।३२) (७७)
विद्युद्धस्ताः। (ऋ. ८।७।२५) (७०)
हस्तेषु कृतिः च सं दधे। (ऋ. १।१६८।३) (१८५)
स्वधितिवान्। (ऋ. १।८८।२) (१५२)

'ये वीर हाथ में तलवार या वज्र धारण करनेवाले हैं। बिजली के तुल्य हथियार इन के हाथ में पाया जाता है। तेज धारवाली, तुरन्त काट देनेवाली तलवार ये वीर धारण करते हैं।'

'कृति' का अर्थ है, तीक्ष्ण धारवाली तलवार। वज्र भी एक हथियार है जो पहिये के आकारवाला होता हुआ तेज दन्दानेदार बनता है। पर कई स्थानोंपर अत्यन्त सुतीक्ष्ण तलवार को भी वज्र कहा है।

हथियार।

ऋभुक्षणः! हव्यं वनत। (ऋ. ८।७।९) (५४)
ऋभुक्षणः! प्रचेतसः स्थ। (ऋ. ८।७।१२) (५७)
ऋभुक्षणः! सुदीतिभिः वीळुपविभिः आगत।
(ऋ. ८।२०।२) (८३)
गभस्त्योः इषुं दधिरे। (ऋ. १।६४।१०) (११७)
हिरण्यचक्रान् अयोदंष्ट्रान् पश्यन्।
(ऋ. १।८८।५) (१५५)
वः क्रिविर्दती दिद्युत् रदति।
(ऋ. १।१६६।६) (१६३)
वः अंसेषु तविषाणि आहिता।
(ऋ. १।१६६।९) (१६६)
पविषु अधि क्षुराः। (ऋ. १।१६६।१०) (१६७)
वः ऋञ्जती शरुः। (ऋ. १।१७२।२) (१९३)
चक्रिया अवसे आववर्तत्। (ऋ. २।३४।१४) (२१२)
धन्वना अनु यन्ति। (ऋ. ५।५३।६) (२३९)
विद्युता सं दधति। (ऋ. ५।५४।२) (२५१)
वः हस्तेषु कशाः। (ऋ. १।३७।३) (८)

'ये शस्त्रधारी वीर हैं। बढिया, तीक्ष्ण धारावाले शस्त्र लेकर तुम इधर आओ। तुम हाथ में बाण धारण करते हो। तुम्हारे हथियार सुवर्णविभूषित फौलाद की बनी दंष्ट्रातुल्य विभागों से अलंकृत हैं। तुम्हारा दन्दानेदार बिजली की

तरह तेजस्वी शस्त्र शत्रुके टुकडे कर रहा है । तुम्हारे कंधों पर हथियार लटक रहे हैं । तुम्हारे हथियार तीक्ष्ण धाराओं से युक्त हैं । तुम्हारा हथियार वेगपूर्वक शत्रुदल पर जा गिरता है । तुम्हारे पहिये जैसे दिखाई देनेवाले आयुध से तुम जनता की रक्षा करते हो । धनुर्धारी बन कर तुम यात्रा करते हो । तुम्हारा संघ तेजस्वी वज्रों से सुसज्ज होता है। तुम्हारे हाथों में चावूक है । '

इन मंत्रांशों में मरुतों के अनेक हथियारों का निर्देश देखने मिलता है । दन्दानेदार वज्र और पहिये, बाण, शर, धनुष्य, तलवार, छोटेमोटे लंबी या छोटी मूठवाले हथियारों का उल्लेख है । इस से मरुतों के हथियारों एवं उन के गणवेश की अच्छी कल्पना की जा सकती है ।

सुदृढ मजबूत हथियार ।

वः आयुधा स्थिरा । (ऋ. १।३९।२) (३७)
वः रथेषु स्थिरा धन्वानि आयुधा ।
(ऋ. ८।२०।१२) (९३)

' मरुतों के हथियार बडे ही सुदृढ हुआ करते और उन के रथों पर स्थिर याने न हिलनेवाले धनुष्य बहुतसे रखे जाते थे । ' यहाँपर चल तथा स्थिर दो प्रकार के धनुष्य हुआ करते ऐसा जान पडता है । ध्वजस्तंभों से बाँधे धनुष्य स्थिर और वीरोंने अपने साथ रखे हुए धनुष्य चल कहे जा सकते हैं । स्थिर धनुष्योंपर दूरतक फेंकनेके लिए बडे बाण एवं धडाके से टूट गिरनेवाले गोलक भी लगाये जाते । चल धनुष्यों से प्रायः सभी परिचित होंगे । ऐसा जान पडता है कि, केवल महारथी या अतिमहारथी ही स्थिर धनुष्यों को काम में ला सकते थे ।
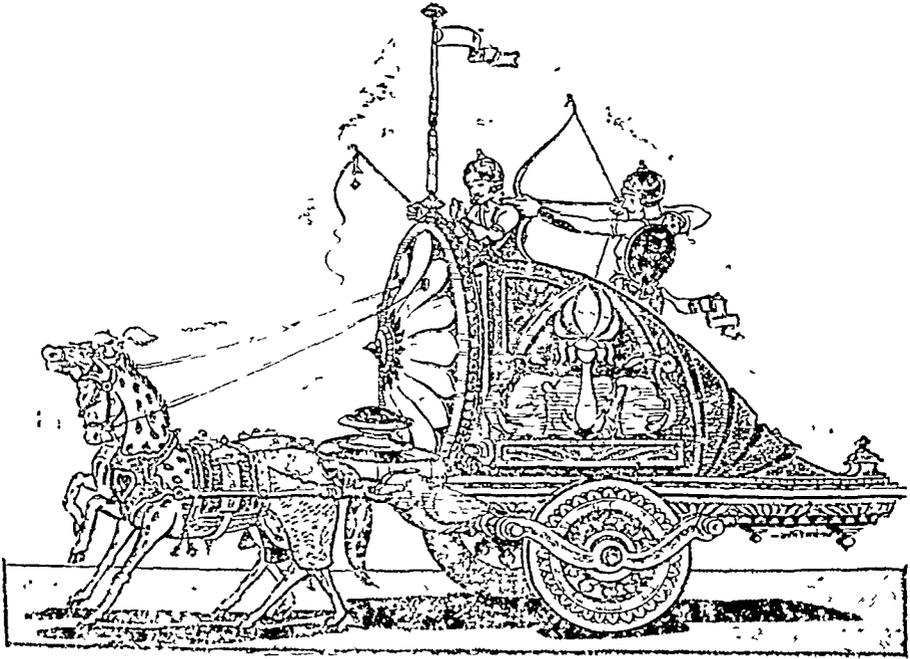
मरुतों का घोडे जोता हुआ रथ ।

मरुतों का रथ ।

मरुतां रथे शुभं शर्धः अभि प्रगायत ।
(ऋ. १।३७।१) (६)

' मरुतों का बल रथों में सुहानेवाला है । ' वह सचमुच वर्णन करनेयोग्य है । ये वीर रथों में बैठकर अपना बल प्रकट करते हैं ।

एषां रथाः स्थिराः सुसंस्कृताः ।
(ऋ. १।३८।१२) (३१)

मरुतः वृषणश्वेन वृषप्सुना वृषनाभिना रथेन आगत। (ऋ. ८।२०।१०) (९१)
बन्धुरेषु रथेषु वः आ तस्थौ।
(ऋ. १।६४।९) (११६)

विद्युन्मद्भिः स्वर्कैः ऋष्टिमद्भिः अश्वपर्णैः रथेभिः आ यात। (ऋ. १।८८।१) (१५१)

वः रथेषु विश्वानि भद्रा। (ऋ. १।१६६।९) (१६६)
वः अक्षः चक्रा समया वि ववृते। ,, ,, ,,
मरुतः रथेषु अश्वान् आ युंजते।
(ऋ. २।३४।८) (२०६)

रथेषु तस्थुषः एतान् कथा ययुः।
(ऋ. ५।५३।२) (२३५)

युष्माकं रथान् अनु दधे। (ऋ. ५।५३।५) (२३८)
शुभं यातां रथाः अनु अवृत्सत।
(ऋ. ५।५५।१-९) (२६५-२७३)

इन वीरों के रथ बडे ही सुदृढ हुआ करते हैं। इनके रथों के घोडे बलिष्ठ और उनके पहिये मजबूत ढंगके बनाये होते हैं। इनके रथों में बैठने की जगहें कई होती हैं। इनके रथों में तेजस्वी तथा बढिया हथियार रखे जाते हैं और घोडे भी जोते जाते हैं। इनके रथों में सब कुछ अच्छा ही होता है। इनके रथों का धुरा एवं उसके पहिये ठीक समय पर घूमते रहते हैं। ऐसे रथों में बैठनेवाले इन वीरों के समीप भला कौन जा सकता है? हम तुम्हारे रथों के पीछे चले आते हैं। भलाई करने के लिए जानेवाले तुम्हारे रथों को देखकर जनता उनके पश्चात् चलने लगती है।'

इस वर्णन से मरुतों के रथ की कल्पना की जा सकती है। बैठने के लिए मरुतों के रथों में कई स्थान रहते हैं, जिन पर रथारोही वीर बैठ जाते हैं। मरुतों के रथ बडे सुदृढ ढंग से तैयार किए जाते हैं अर्थात् उनका छोटासा हिस्सा भी त्रुटिमय नहीं रहता है चाहे पहिया, धुरा या अन्य कोई कीलपुर्जा हो। युद्धभूमि में भीषण संघर्ष तथा मार काट में वे टिक सकें इस हेतु को ध्यान में रखकर वे अत्यन्त स्थायी स्वरूप के बनाये जाते हैं। इन रथों में घोडे तथा कभी कभी हरिनियाँ भी जोती जाती थीं। देखिए ये उल्लेख-

मरुतों का चक्ररहित और हरिणयुक्त रथ।
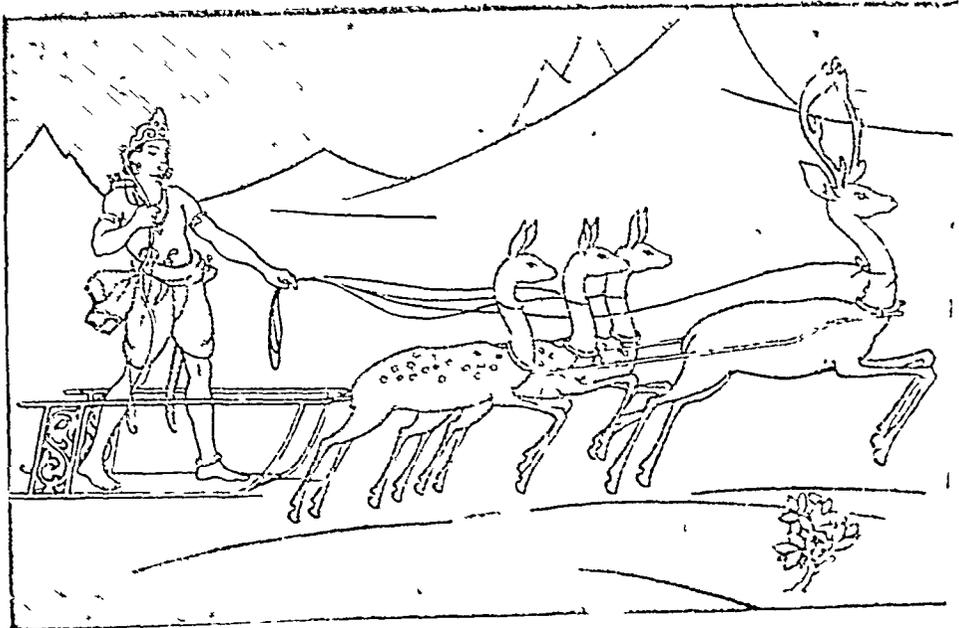
हरिणों से खींचे जानेवाले रथ ।

मरुतोंके रथ हरिनियों एवं बारहसींगोंसे खींचे जाते थे ऐसा वर्णन निम्न मंत्रांशोंमें है। पाठक उनका विचार करें।

ये पृषतीभिः अजायन्त । (ऋ. १।३७।२) (७)
रथेषु पृषतीः अयुग्ध्वं । (ऋ. १।३९।६) (४१)
एषां रथे पृषतीः । (ऋ. १।८५।५) (७३)
रथेषु पृषतीः प्र अयुग्ध्वम् । (ऋ. ८।७।२८) (१२७)
रथेषु पृषतीः आ अयुग्ध्वम् ।
(ऋ. १।८५।४) (१२६)
पृषतीभिः पृक्षं याथ । (ऋ. २।३४।३) (२०१)
संमिश्लाः पृषतीः अयुक्षत । (ऋ. ३।२६।४) (२१४)
रोहितः प्रष्टीः वहति । (ऋ. १।३९।६) (४१)
प्रष्टीः रोहितः वहति । (ऋ. ८।७।२८) (७३)

' रथ में धब्बेवाली हरनियाँ जोती हुई हैं और उनके आगे एक बारह सींगा रखा हुआ है । यह एक इस भाँति हरिणयुक्त मरुतों का रथ है जो पहियों से रहित होता है । देखो—

सुषोमे शर्यणावति आर्जीके पस्त्यावति ।
ययुः निचक्रया नरः । (ऋ. ८।७।२९) (७४)

' चक्ररहित रथपर से बढ़िया सोम जहाँपर होता हो, ऐसे स्थानपर शर्यणा नदी के समीप ऋजीक के प्रदेश में मरुत् जाते हैं । '

जिस स्थानपर बढ़िया सोम मिलता है वह समुद्र की सतहसे १६००० फीट ऊँचाईपर रहता है । यहाँ का सोम अत्युत्कृष्ट माना जाता है । चूँकि यहाँ ' सु-सोम ' कहा है इसलिये ऐसे स्थानों का विचार करने की कोई आवश्यकता नहीं रहती है जहाँपर बढ़िया दर्जे का सोम मिलता हो । इतने अत्युच्च भूविभाग में ये मरुत् पहियों से रहित रथपर से संचार करते हैं । कोई आश्चर्य की बात नहीं अगर वह स्थान बर्फ से पूर्णतया ढका हो । ऐसे हिमाच्छादित भूभागों में चक्रहीन वाहनों को कृष्णसारमृग या हरिनियाँ खींचती हैं और आज दिन भी यह दृश्य देखा जा सकता है । रूस के उत्तर में जहाँपर खूब बर्फ जमी रहती है इस तरह की गाड़ियाँ, जिन्हें आंग्ल भाषा में (Sledge) ' स्लेज ' कहते हैं, आज भी प्रचलित हैं जिन्हें बारह सींगे या हरिनियाँ खींचती हैं ।

इस से प्रतीत होता है कि, मरुत् बर्फीले स्थानों में रहते हों । मरुतों के रथों में घोड़ों तथा घोड़ियों को भी जोतते थे । शायद, बर्फ का अभाव जहाँपर हो ऐसे स्थानों में पहुँचनेपर इस ढंग के रथोंका उपयोग किया जाता हो और हिमाच्छादित, निविड हिमस्तरों की जहाँ प्रचुरता हो ऐसे प्रदेशों में ऊपर बतलाये हुए हरिणोंद्वारा खींचे जानेवाले रथों का उपयोग होता हो ।

अश्वरहित रथ ।

इस के सिवा मरुतों के समीप ऐसा भी रथ विद्यमान था जो बिना घोड़ों के चलता था, अतः चाबूक की आवश्यकता नहीं हुआ करती थी । देखिये, वह मन्त्र यूं है—

अनेनो वो मरुतो यामो अस्त्वनश्वश्चिद् यमजत्यरथीः । अनवसो अनभीशू रजस्तूर्वि रोदसी पथ्या याति साधन् ॥
(ऋ. ६।६६।७) (३४०)

' हे वीर मरुतो ! यह तुम्हारा रथ (अन्-एनः) बिलकुल निर्दोष है और (अन्-अश्वः) इस में घोड़े जोते नहीं हैं तिसपर भी वह (अजति) चलता है, संचार करता है तथा उसे (अ-रथीः) रथ में बैठनेवाला वीर न हो तो भी अर्थात् एक साधारण सा मनुष्य भी चला सकता है । (अन्-अवसः) इसे किसी पृष्ठ-रक्षक की आवश्यकता नहीं रहती है, (अन् अभीशुः) यह लगाम, कशा आदि से रहित है, ऐसा यह रथ (रजस्तूः) बड़े वेग से गर्द उड़ाता हुआ (रोदसी पथ्या) आकाश एवं पृथ्वी के मध्य विद्यमान मार्गों से (साधन् याति) अपना अभीष्ट सिद्ध करता हुआ चला जाता है ।

यह मरुतों का रथ आधुनिक ' मोटर ' के तुल्य कोई वाहन हो ऐसा दीख पड़ता है जो घोड़े, लगाम तथा पृष्ठ-रक्षक के अभाव में भी धूल उड़ाता हुआ वेगपूर्वक आगे बढ़ता है । अश्वों के न रहने से साथ लगाम रखने की कोई आवश्यकता नहीं है और खींचनेवाले न रहनेपर भी भीतर रखे हुए यांत्रिक साधनों से धूलिमय नभ करता हुआ यह रथ तेज़ दौड़ता है । धूल उड़ाते जाने का मत-

लब यही है कि, उस का वेग बडा ही प्रचंड है। क्योंकि तीव्र वेग के न होनेपर धूलि का उडाया जाना संभव नहीं है।

(रजस्तुः) का दूसरा अर्थ योंभी हो सकता है कि अंतरिक्षमें से त्वरापूर्वक जानेवाला। ऐसा अर्थ कर लेने से, (रजस्-तुः रोदसी पथ्या याति) द्युलोक एवं भूलोक के मध्य अन्तरिक्ष की राहसे यह रथ चला जाता है, ऐसा अर्थ हो सकता है। ऐसी दशामें इस रथ को आकाशयान, 'एअरोप्लेन' मानना आवश्यक है। अगर इसे हम कविकल्पना मानें, तो भी विमानों की सूचना स्पष्टतया विद्यमान है, इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है। इस मन्त्र में निर्दिष्ट यह रथ भले ही विमान हो, या मोटर हो, पर स्पष्ट तो यही है कि बिना अश्वों की सहायता के यह बडी शीघ्रता से गतिमान हुआ करता है।

कई मंत्रों में 'बाज पंछी की तरह वीर मरुत आते हैं' ऐसा वर्णन किया है। यह निर्देश भी मरुतों के आकाशसंचार को और अधिक स्पष्ट करता है।

अब तक के वर्णन से पाठकों को स्पष्ट विदित हुआ ही होगा कि मरुतों के समीप चार प्रकार के वाहन थे; [१] अश्वसंचालित रथ, [२] हरिणियों तथा कृष्णसार मृग से खींचा हुआ, घनीभूत हिम के स्तरपर से घसीटते जानेवाला रथ, [३] बिना अश्वोंके परन्तु बडे वेगसे चतुर्दिक् धूलि उडाते हुए जानेवाले रथ और [४] आसमानमें उडते जानेवाले वायुयान।

शत्रु पर किया जानेवाला आक्रमण।

मरुत् शत्रुसेना पर हमले करने में बडे ही प्रवीण थे और उनकी इस भाँति चढाई के बारेमें किया हुआ विविध वर्णन देखनेयोग्य है। बानगी के तौर पर देख लीजिए-

वः यामः चित्रः । (ऋ. १।१६६।४; १।१७२।१)
(१६१;१९५)

वः चित्रं याम चेकिते। (ऋ. २।३४।१०)(२०८)

'तुम्हारा हमला बडा ही अचम्भे में डालनेवाला होता है।' जिससे जनता आश्चर्यचकित हो दाँतोंतले उँगली दबाये बैठी रहे, ऐसे आक्रमण का सूत्रपात ये वीर मरुत् करते हैं। उसी प्रकार-

वः उग्राय यामाय मन्यवे मानुषः नि दध्रे।
(ऋ. १।३७।७) (१२)

येषां यामेषु पृथिवी भिया रेजते।
(ऋ. १।३७।८) (१३)

वः यामेषु भूमिः रेजते। (ऋ. ८।२०।५) (८६)

वः यामाय गिरिः नि येमे। (ऋ. ८।७।५) (५०)

वः यामाय मानुषा अबीभयन्त।
(ऋ. १।३९।६) (४२)

'तुम्हारी चढाईके मौकेपर मानव कहीं न कहीं किसी के सहारे रहने लगते हैं। तुम्हारे हमले से पृथ्वीतक काँपने लगती है। तुम्हारे आक्रमण से पहाडतक चुपचाप हो जाते हैं ताकि वे न गिर पडें। तुम जब धावा पुकारते हो तब मानव भयभीत हो उठते हैं।'

इन वीरों का ऐसा प्रबल आक्रमण हुआ करता है। इस विद्युदाक्रमण के सम्मुख बलिष्ठ शत्रु भी तूफान में तिनके के समान कहीं के कहीं उड जाते हैं और अ-पदस्थ हो जाते हैं। देखिए न-

दीर्घं पृथुं यामभिः प्रच्यावयन्ति।
(ऋ. १।३७।११) (१६)

यत् यामं अचिध्वं पर्वता नि अहासत।
(ऋ. ८।७।२) (४७)

यत् यामं अचिध्वं इन्दुभिः मन्दध्वे।
(ऋ. ८।७।१४) (५९)

'तुम्हारी चढाइयों के फलस्वरूप बडे तथा सुदृढ शत्रु को भी तुम पदभ्रष्ट करते हो और पहाड भी विकम्पित हो उठते हैं। जब तुम आक्रमणार्थ बाहर निकल पडते हो तो पहले सोमपान करके हर्षित होते हो और पश्चात् शत्रु पर टूट पडते हो।'

इससे विदित होता है कि एक बार यदि मरुतों का आक्रमण हो जाए तो शत्रु का संपूर्ण विनाश होना ही चाहिए, दुश्मन पूरी तरह मटियामेट होगा इतना प्रभावशाली वह होता है।

मरुत् मानव ही थे।

पहले मरुत् मर्त्य, मानवकोटि के थे, परन्तु उन्होंने अपनी शूरता से भाँति भाँति के कर्म कर दिखाये, अतः

वे अमरपन को पाने में सफल हो गये। देखिए—

यूयं मर्तासः स्यातन; वः स्तोता अमृतः स्यात्। (ऋ. १।३८।४) (२४)

रुद्रस्य मर्याः दिवः जज्ञिरे। (ऋ. १।६४।२)(१०९)

'तुम मर्त्य हो लेकिन तुम्हारा स्तोता अमर होता है। तुम रुद्र के याने वीरभद्र के मानव हो, मरणधर्मा हो, पर तुम कार्य इस तरह करते कि मानों तुम्हारा जन्म स्वर्गमें-द्युलोक में हुआ हो।' उसी प्रकार—

मरुतः सगणाः मानुषासः। (अथर्व. ७।७७।६) (४४७)

मरुतः विश्वकृष्टयः। (ऋ. ३।२६।५) (२१५)

सभी गणों के साथ समवेत ये मरुत् मानव ही हैं और सभी कृषिकर्म करनेवाले काश्तकार हैं। ये गृहस्थाश्रमी भी हैं। देखिए—

गृहमेधास आ गत मरुतः। (ऋ. ७।५९।१०) (३९२)

'ये मरुत् गृहस्थाश्रम में प्रवेश करनेवाले हैं, वे हमारी ओर आ जायँ।' निस्सन्देह, ये विवाहित हैं अतएव इन्हें पत्नीयुक्त कहा गया है।

युवानः निमिश्लां पज्रां युवतीं शुभे अस्थापयन्त। (ऋ १।१६७।६) (१७७)

स्थिरा चित् वृषमनाः अहंयुः सुभागाः जनीः वहते। (ऋ. १।१६७।७) (१७८)

तुम युवक वीर नित्य सहवास में रहनेवाली, पत्नीपद पर आरूढ युवती को शुभयज्ञकर्म में साथ ले चलते हो और उसे अच्छे कर्म में लगाते हो। तुम्हारी पत्नी अच्छी भाग्यशालिनी है और वह अच्छी सन्तान से युक्त है।'

इससे स्पष्ट है कि ये विवाहित हैं।

मरुतों की विद्याविलासिता।

वीर मरुत् ज्ञानी और कवि थे ऐसा वर्णन उपलब्ध होता है। देखिए—

ज्ञानी।

प्रचेतसः मरुतः नः आ गन्त। (ऋ. १।३९।९) (४४)

प्रचेतसः नानदति। (ऋ. १।६४।८) (११५)

ते ऋष्वासः दिवः जज्ञिरे। (ऋ. १।६४।२) (१०९)

'वीर मरुतो! तुम विद्वान् हो, तुम हमारे निकट चले आओ, तुम उच्चकोटि के ज्ञानी हो।' विद्वान् होने के कारण ये मरुत् दूरदर्शी भी हैं।

दूरदर्शी।

दूरेदृशः परिस्तुभः। (ऋ. १।१६६।११) (१६८)

'ये वीर दूरदर्शिता से संपन्न होने के कारण पूर्णतया सराहनीय हैं।' विद्वत्ता तथा दूरदर्शिता से अलंकृत होने के कारण ये अच्छी प्रभावशाली वक्तृता देने की क्षमता रखनेवाले हैं।

धुवाँधार वक्तृता देनेवाले।

सुजिह्वाः आसभिः स्वरितारः। (ऋ. १।१६६।११) (१६८)

'उन वीर मरुतों की वाणी बडी अच्छी है अतः उनके मुँहसे मधुर एवं धुरंधर वक्तृता धाराप्रवाहरूप से निकलती है। इन मरुतों में कवित्वशक्ति पाई जाती है।

कवि।

ये ऋष्टिविद्युतः कवयः सन्ति वेधसः। (ऋ. ५।५२।१३) (२२९)

नरो मरुतः सत्यश्रुतः कवयो युवानः। (ऋ. ५।५७।८) (२९१)

मरुतः कवयो युवानः। (ऋ. ५।५८।३) (२९४) (ऋ. ५।५८।८) (२९९)

स्वतवसः कवयः...मरुतः। (ऋ. ७।५।११) (३९३)

कवयो य इन्वथ। (अथर्व. ४।२७।३) (४४२)

ऋतज्ञाः (२०१) **वेधसः** (२५५) **विचेतसः** (२६२)

'ये मरुत् ज्ञानी, कवि एवं अपनी सत्यनिष्ठाके लिये विख्यात हैं। ये युवक तथा बलिष्ठ हैं। बुद्धिमत्ता भी इन में कूटकूटकर भरी होती है, उदाहरणार्थ—

बुद्धिमानी।

यूयं सुचेतुना सुमतिं पिपर्तन। (ऋ. १।१६६।६) (१६३)

धियं धियं देवयाः दधिध्वे। (ऋ. १।१६८।१) (१८३)

धः सुमतिः ओ सु जिगातु ।
(ऋ. २।३४।१५) (२१३)

सूरयः मे प्रवोचन्त । (ऋ. ५।५२।१६) (२३२)

'ये अपनी अच्छी बुद्धिमत्ता के कारण जनता में सुबुद्धिका प्रचार एवं वृद्धि करते हैं, इन में हरएक में दिव्य-भावयुक्त बुद्धि निवास करती है। ये अच्छे विद्वान्, उच्च-कोटिके वक्ता और सुबुद्धि देनेवाले भी हैं।' बुद्धिमानीके साथ इन में साहसिकता भी पर्याप्त मात्रामें विद्यमान है।

साहसीपन।

धृष्णुया पान्ति। (ऋ. ५।५२।२) (२१८)

'ये अपने धैर्ययुक्त घर्षणसामर्थ्य से सब का संरक्षण करते हैं।' ये बडे सामर्थ्यवान् हैं–

सामर्थ्यवत्ता।

शाकिनः मे शतं दद्धुः। (ऋ. ५।५२।१७) (२३३)

'इन सामर्थ्यशाली वीरोंने मुझे सौ गायों का दान दिया।' इस प्रकार इन की शक्तिमत्ता का वर्णन है। ये बडे उत्साही वीर हैं।

उत्साह तथा उमंग से लबालब भरे।

समन्यवः! मापस्थात। (ऋ. ८।२०।१) (८२)

समन्यवः मरुतः! गावः मिथः रिहते।
(ऋ. ८।२०।२१) (१०२)

समन्यवः! पृक्षं याथ। (ऋ. २।३४।३) (२०१)

समन्यवः! मरुतः नः सवनानि आगन्तन।
(ऋ. २।३४।६) (२०४)

'(स–मन्यवः) हे उत्साही वीरो! तुम हम से दूर न रहो। तुम्हारी गौएँ प्यारसे एक दूसरेको चाट रही हैं। तुम अन्न का संग्रह करने जाओ। 'स–मन्यवः' का मतलब है उत्साही, क्रोधपूर्ण, जोशीला याने जो दूसरों के किए अपमान को बरदाश्त नहीं कर सकते ऐसे वीर। इन वीरोंमें उग्रता भरी पडी है।

उग्र वीर।

उग्रासः तनूषु नकिः येतिरे।
(ऋ. ८।२०।१२) (९३)

उग्राः मरुतः! तं रक्षत।
(ऋ. १।१६६।८) (१६५)

'ये उग्रस्वरूपवाले वीर अपने शरीरों की कुछ भी पर्वाह नहीं करते। हे उग्र प्रकृति के वीरो! तुम उस की रक्षा करो। ये वीर बडे उद्योगी भी हैं।

उद्यम में निरत।

शिमीवतां शुष्मं विद्म हि। (ऋ. ८।२०।३) (८४)

'इन उद्योग में लगे वीरों का बल हमें विदित है।' परिश्रमी जीवन बिताने के कारण इन का बल बढा-चढा होता है। निरलस उद्यम करने से जो बल बढता है वह मरुतों में पाया जाता है। ये बडे कुशल भी हैं।

कुशल वीर।

ये वेधसः नमस्य। (ऋ. ५।५२।१४) (२२९)

वेधसः! वः शर्धः अभ्राजि (ऋ. ५।५४।६) (२५५)

सुमायाः मरुतः नः आ यांतु।
(ऋ. १।१६७।२) (१७३)

मायिनः तविषीः अयुग्ध्वम्।
(ऋ. १।६४।७) (११४)

'ये वीर ज्ञानी हैं, इसलिये इन्हें प्रणाम करो। हे ज्ञानी वीरो! तुम्हारा संघ बहुत सुहाता है। ये अच्छे कुशल मरुत् हमारी ओर आजायँ। ये कारीगर अपनी शक्तियों से युक्त हैं।' इस प्रकार उनकी कुशलताका वर्णन किया हुआ है। ये बडे कथाप्रिय भी हैं अर्थात् कहानियाँ सुनना इन्हें बहुत भाता है।

कथाप्रिय।

[हे] कधप्रियः! वः सखित्वे कः ओहते।
(ऋ. ८।५।३१) (७६)

'हे प्यार से कहानी सुननेवाले वीरो! कौनसा मित्र भला तुम्हें प्रिय है।' कथाप्रिय पद का आशय है भाँति भाँति की वीरों की कथाएं या वीरगाथाएं सुन लेना जिन्हें अच्छा लगता हो। इस कथाप्रियता में ही इन की शूरता का आदिस्रोत रखा हुआ है। बीमारों के उपचार करने में भी ये प्रवीण हैं।

रोगियों की सेवा करने में प्रवीणता।

मारुतस्य भेषजस्य आ वहत।

(ऋ. ८।२०।२३) (१०४)

यत् सिन्धौ भेषजं, यत् असिक्न्यां, यत् समुद्रेषु यत्पर्वतेषु विश्वं पश्यन्तो बिभृथा तनूष्वा। नः आतुरस्य रपः क्षमा चिन्हुतं पुनः इष्कर्त।

(ऋ. ८।२०।२६) (१०७)

' पवनमें जो औषधिगुण है उसे यहाँ ले आओ। सिन्धु, समुद्र, पर्वत, असिक्नी नामक स्थलों में जो कुछ दवाई मिल जाए उसे तुम देख लो तथा प्राप्त करो। वह समूचा निरख कर अपने समीप संग्रह कर रखो। हममें जो बीमार पडा हो उस के देह में जो त्रुटि हो उसे इन औषधों से दूर करो और कुछ टूटाफूटा हो तो उसकी मरम्मत कर दो।

खिलाडी।

इन वीरों में खिलाडीपन की कुछ भी न्यूनता नहीं है। इस संबंध में कुछ प्रमाण देखिए—

क्रीळं मारुतं शर्धं अभि प्रगायत।

(ऋ. १।३७।१) (६)

यत् शर्धं क्रीळं प्र शंस। (ऋ. १।३७।५) (१०)

ते क्रीळयः स्वयं महित्वं पनयन्त।

(ऋ. १।८७।३) (१४७)

क्रीळा विदथेषु उपक्रीळन्ति।

(ऋ. १।१६६।२) (१५९)

' क्रीडा में व्यक्त होनेवाला मरुतों का सामर्थ्य सचमुच वर्णनीय है। वे क्रीडासक्त मनोवृत्तिवाले हैं इससे उनकी महनीयता प्रकट होती है। युद्ध में भी ये इस तरह जूझते हैं कि मानों ये खेल ही रहे हों। वीर हमेशा खिलाडी बने रहते हैं। इनके खिलाडीपनमें भी वीरता एवं शौर्यका ही आविर्भाव हुआ करता है। '

नृत्यप्रियता।

नृतवः मरुतः! मर्तः वः भ्रातृत्वं आ अयति।

(ऋ. ८।२०।२२) (१०३)

' मरुत् नृत्य में बडे कुशल हैं। मानव तक इनसे इसी कारण मित्रता प्रस्थापित करना चाहते हैं।' साधारण मनुष्य भी ऐसे उच्च कोटि के वीरों के संपर्क में सिर्फ उनकी नृत्यचातुरी के कारण आना चाहता है। इससे ज्ञात होता है कि इनकी कुशलता में आकर्षणशक्ति कितनी बडी होगी।

गानेबजाने में प्रावीण्य।

ऐसा दीख पडता है कि ये वीर बाजा बजाने में भी कुशल थे, देखिए—

हिरण्यये रथे कोशे वाणः अज्यते।

(ऋ. ८।२०।८) (८९)

वाणं धमन्तः रण्यानि चक्रिरे।

(ऋ. १।८५-१०) (१३२)

' सोने से मढे हुए रथ में बैठकर ये वाण नामक बाजा बजाने लगते हैं और चेतोहारी गायन का प्रारंभ करते हैं। इस भाँति वीर मरुत् गायनवादन-पटुता के कारण बडाही खुशहाल जीवन बिताते हैं और दुःख या उदासीनता इनके पास फटकने नहीं पाती।

ऊपर वीर मरुतोंमें विद्यमान सद्गुणोंका दिग्दर्शन किया जा चुका है। आशा है कि पाठकवृन्द के सम्मुख मरुतोंका व्यक्तिमत्व स्पष्टतया व्यक्त हुआ होगा। पाठकों से प्रार्थना है कि वे स्वयं भी इस संबंध में अधिक सोच लें।

प्रबल शत्रु को जडमूल से उखाड फेंक देनेवाले वीर।

ये वीर मरुत् इतने प्रभावशाली हैं कि स्थिरीभूत शत्रु को भी अपनी जगह परसे समूल उखाड देते हैं। देखिए—

(हे) नरः! यत् स्थिरं पराहत।

(ऋ. १।३९।३) (३८)

गुरु वर्तयथा। (ऋ. १।३९।३) (३८)

स्थिरा चित् नमयिष्णवः। (ऋ. ८।२०।१) (८२)

यत् एजथ, छिपानि वि पापतन्।

(ऋ. ८।२०।४) (८५)

अच्युता चित् ओजसा प्रच्यवयन्तः।

(ऋ. १।८५।४) (१२६)

एषां अज्मेषु भूमिः रेजते। (ऋ. १।८७।३) (१४७)

' हे नेता वीरो! तुम स्थिर दुश्मन को भी दूर हटाते

हो, बड़े प्रबल शत्रु को भी हिला देते हो, स्थिर शत्रु को भी झुकाते हो। जब तुम चढाई करते हो, तब टापूतक गिर पडते हैं। अविचलित शत्रु को अपनी शक्ति से विकंपित करा देते हो। इनके आक्रमण के समय जमीन तक हिल उठती है।'

इस प्रकार ये वीर अपने प्रभाव से समूचे शत्रु को तहसनहस कर डालते हैं।

भव्य आकृतिवाले वीर।

मरुतों की आकृति बडी भव्य हुआ करती थी, इस विषय के वर्णन देखिये।

ये शुभ्राः घोरवर्पसः सुक्षत्रासो रिशादसः।
ऋ. ८।१०३।१४ (अग्निः २४४७)
सत्वानः घोरवर्पसः। (१०९) ऋ. १।६४।२
मृगाः न भीमाः। (१९९) ऋ. २।३४।१

'ये वीर गौरवर्णवाले एवं भव्य शरीरों से युक्त हैं। वे अच्छे क्षत्रिय हैं और शत्रु का पूर्ण विनाश करनेवाले हैं। वे बलिष्ठ तथा बृहदाकार शरीरवाले हैं। सिंह की न्याईं वे भीषण दिखाई देते हैं।'

पीछे कहा जा चुका है कि, ये सभी युवकदशा में विद्यमान हैं। यह बात सबको विदित है कि, सेनाओं में युवक ही भर्ती किये जाते हैं।

रक्तिमामय गौरवर्ण।

मरुतों के वर्णन से जान पडता है कि, ये गोरे बदनवाले पर तनिक लालिमामय आभासे युक्त थे। देखिये—

शुभ्राः। (७०), ऋ. ८।७।२५; (७३), ८।७।२८; (५९), ८।७।१४; (१२५), १।८५।३; (१७५), १।१६७।४
अरुणप्सवः। (५२) ८।७।७

स्पष्ट हुआ कि, मरुत् गौरकाय थे, एवं लालिमापूर्ण छवि उन के शरीरों से फूट निकलती थी।

अपने तेज से चमकनेहारे वीर।

ये सदा अपने तेज से द्योतमान हो उठते थे, ऐसा वर्णन उपलब्ध है।

ये स्वभानवः अजायन्त। (७), ऋ. १।३७।२
स्वभानवः धन्वसु श्रायाः। (२३७), ऋ. ५।५३।४

स्वभानवे वार्चं प्र अनज। (२५०), ५।५४।१
त्वेषं मारुतं गणं वन्दस्व। (३५) १।३८।१५
ते भानुभिः वि तस्थिरे। (५३), ८।७।८
चित्रभानवः तविषीः अयुग्ध्वम्।
(११४) ऋ. १।६४।७
चित्रभानवः अवसा आगच्छन्ति।
(१३३) ऋ. १।८५।११
अहिभानवः मरुतः। (१९५) १।१७२।१
अग्निश्रियः मरुतः। (२१५) ३।२६।५

'ये वीर मरुत् अपने निजी तेज से प्रकट होते हैं। वे धनुष्यों का आश्रय लेकर पराक्रम कर दिखलाते हैं। उन तेजस्वी वीरों का वर्णन करो। समूचे मरुतों का संघ तेजस्वी है। वे अपने तेज से विशेष ढंग से चमकते हैं। उन का तेज अनोखे ढंग से चमकता है। वे अग्नितुल्य तेजस्वी हैं और उन का तेज कभी न्यून नहीं होता।'

यह सारा वर्णन उन की तेजस्विता को ठीक तरह बतलाता है।

अन्न उत्पन्न करनेहारे वीर।

पहले कहा जा चुका है कि, [मरुतः विश्व-कृष्टयः। (२१५) ऋ. ३।२६।५] मरुत् सभी किसान हैं। अतः स्पष्ट है कि धान्य का उत्पादन करना उन के अनेकविध कार्यों में अन्तर्भूत था। निम्न मंत्रांश देखनेयोग्य हैं—

वयः धातारः। (८०) ऋ. ८।७।३५
पिप्युषीं इषं धुक्षन्त। (४८) ऋ. ८।७।३
ते इषं अभि जायन्त। (१८४) ऋ. १।१६८।२
नमसः इत् वृधासः। (१९४) ऋ. १।१७१।२
वयोवृधः परिज्रयः। ऋ. ५।५४।२

'मरुत् अन्न का धारण करते हैं, पुष्टिकारक अन्न का उत्पादन करते हैं। ये अन्न का उत्पादन करने के लिए ही उत्पन्न हुए हैं। ये अन्न की वृद्धि करनेवाले होते हुए वीर मरुत् चारों ओर घूमते रहते हैं।'

ऐसे वर्णन पाये जाते हैं, जिन से वीर-मरुतों का अन्नोत्पादन निर्दिष्ट होता है, अतः स्पष्ट है, ये सभी (कृष्टयः) याने कृषिकर्म में निरत काश्तकार हैं।

गायोंका पालन करते हैं।

कृषक होने के कारण मरुत् खेती करते हैं, धान्य की उपज बढाते हैं, अन्नदान करते हैं, तथा गोपालन भी करते हैं। इस सम्बन्ध में देखिए-

वः गावः क्व न रण्यन्ति ? (२२) ऋ. १।३८।२

'तुम्हारी गौएँ भला किधर नहीं रँभाती हैं ?' अर्थात् मरुतों की गौएँ हर जगह घूमती हैं और सहर्ष रँभाती हैं। उसी प्रकार-

इन्धन्वभिः रप्शदूधभिः धेनुभिः आगन्तन।
(२०३) ऋ. २।३४।५

धेनुं ऊधनि पिप्यत। (२०४) ऋ. २।३४।६

पृश्न्याः ऊधः दुहुः। (२०८) ऋ. २।३४।१०

'तेजस्वी एवं प्रशंसनीय बडे बडे थनों से युक्त गौओं के साथ हमारे समीप आओ। गौके थन को दूधभरा कर डालो। उन्होंने गौके थन का दोहन किया।' ऐसे वर्णन मरुत्सूक्तों में पाये जाते हैं। ये वीर गायको मातृवत् पूज्य समझते हैं। देखिए—

गां मातरं घोचन्त। (२३२) ऋ. ५।५२।१६

'गौ हमारी माता है,' ऐसा वे कह चुके। गौ का दोहन कर के वे दूध पीते हैं और पुष्ट होते हैं।

पृश्निमातरः! वः स्तोता अमृतः स्यात्।
(२४) ऋ. १।३८।४

पृश्निमातरः इषं धुक्षन्त। (४८) ऋ. ८।७।३

पृश्निमातरः उदीरते (६२) ऋ. ८।७।१७

पृश्निमातरः श्रियः दधिरे। (१२४) ऋ. १।८५।२

गोमातरः अञ्जिभिः शुभयन्ते। (१२५) ऋ. १।८५।३

'गोमातरः' तथा 'पृश्निमातरः' दोनों पदों का अर्थ गौ को माता माननेहारे और भूमि को माता समझनेवाले ऐसा हो सकता है। यहाँ दोनों अर्थ लिए जा सकते हैं। कारण, ये वीर गोभक्त तो थे ही, लेकिन मातृभूमि की उपासना भी बडी लगन से किया करते थे। मातृभूमि की सेवा करनेके लिए ये हमेशा अपना प्राण निछावर करने को तैयार रहा करते थे। इनके वर्णन पढने से साफ साफ प्रतीत होता है कि, शत्रु को दूर हटाकर मातृभूमि को सुखी एवं संपन्न करने के लिए ही इनकी समूची शूरता, वीरता तथा धैर्य का उपयोग हुआ करता।

चूँकि ये कृषक, खेती करनेवाले एवं अन्न की उपज बढानेहारे थे, इसलिये गौ की रक्षा करना इन के लिए अनिवार्य था, क्योंकि गौओं की उन्नति होने से कृषिकार्य के लिए आवश्यक, उपयुक्त बैलों की सृष्टि हुआ करती है।

मरुतों के घोडे।

मरुतोंके समीप बढिया, भली भाँति सिखाये हुए अच्छे घोडे थे। हमने देख लिया कि, वे गायों को रख लेते थे और गो-पालनविद्या में निष्णात थे। अब उन के अश्वों का विचार कर लेना चाहिए।

वः अश्वाः स्थिराः सुसंस्कृताः। (३२) ऋ. १।३८।१२

हिरण्यपाणिभिः अश्वैः उपागन्तन।
(७२) ऋ. ८।७।२७

वृषणश्वेन रथेन आ गत। (९१) ऋ. ८।२०।१०

आरुणीषु तविषीः अयुग्ध्वम्। (११४) ऋ. १।६४।७

वः रघुष्यदः सप्तयः आ वहन्तु। ऋ. १।८५।६

सः गणः पृषदश्वः। (१५१) ऋ. १।८८।१

ते अरुणेभिः पिशंगैः रथतूर्भिः अश्वैः आ यान्ति।
(१५२) ऋ. १।८८।२

अत्यान् इव अश्वान् उक्षन्ते
आशुभिः आजिषु तुरयन्ते। (२०१) ऋ. २।३४।३

'तुम्हारे घोडे सुदृढ तथा सुसंस्कृत हैं। जिन घोडों के पैरों में सुवर्णजटित अलंकार डाले गये हों, ऐसे घोडों पर बैठकर इधर आओ। जिस में बलिष्ठ घोडे लगाये हों, ऐसे रथ से इधर आओ। लाल रंगवाली घोडियों में जो बलिष्ठ घोडियाँ हों, उन्हें ही रथ में जोतो। शीघ्र गतिवाले घोडे तुम्हें इधर ले आएँ। इस मरुत्संघके समीप धब्बेवाले घोडे हैं। रक्तिम आभावाले तथा भूरे रंगवाले घोडों से रथ शीघ्र चलाकर तुम इधर आओ। घुडदौड में घोडे जैसे बलिष्ठ बनाये जाते हैं, वैसे ही तुम अपने घोडों को पुष्ट रखो। त्वरित जानेवाले घोडों से ये वीर लडाई में जल्दबाजी करते हैं, बहुत शीघ्र युद्ध में जाते हैं।'

इन वचनों में मरुतों के घोडों का पर्याप्त वर्णन है। ये घोडे लाल रंगवाले, भूरे, धब्बेवाले और बहुत बलवान होते हुए घुडदौड के घोडों के समान खूब चपल होते हैं।

वे ठीक ठीक सिखाये हुए अतः सभी अच्छे गुणों से युक्त होते हैं। युद्धों में इन घोडों की चपलता दृष्टिगोचर हुआ करती है। इन वर्णनों से मरुतों के घोडों के सम्बन्ध में अनुमान करना कठिन नहीं है। और भी देखिए-

पृषदश्वासः आ ववक्षिरे। (२०२) ऋ. २।३४।४
पृषदश्वासः विदथेषु गन्तारः। (२१६) ऋ. ३।२६।६
अश्वयुजः परिज्रयः। (२९१) ऋ. ५।५४।२
वः अश्वाः न श्रथयन्त। (२५९) ऋ. ५।५४।१०
सुयमेभिः आशुभिः अश्वैः ईयन्ते।
(२६५) ऋ. ५।५५।१
मरुतः रथेषु अश्वान् आ युञ्जते। (२०६) ऋ.२।३४।८

'धब्बेवाले घोडे जोतकर ये वीर यज्ञों में या युद्धों में चले जाते हैं। घोडे तैयार रख ये चहूँ ओर घूमते हैं। तुम्हारे घोडे थक नहीं जाते। स्वाधीन रहनेवाले एवं त्वरापूर्वक जानेवाले घोडों से वे यात्रा करते हैं। मरुत् वीर रथों में घोडे जोत लिया करते हैं।' उसी प्रकार-

वः अभीशवः स्थिराः। (३२) ऋ. १।३८।१२

'तुम्हारे लगाम स्थिर याने न टूटनेवाले होते हैं।' इन वचनोंसे पाठकवृन्द भली भाँति कल्पना कर सकते हैं कि, वीर मरुतों के घोडे किस ढंग के हुआ करते थे।

इन वीरों का बल।

मरुतों के सूक्तों में मरुतों के बल का उल्लेख अनेक बार पाया जाता है। कुछ मंत्रांश देखिए-

मारुतं बलं अभि प्र गायत। (६) ऋ. १।३७।१
मारुतं शर्धं उप ब्रुवे। (१९८) ऋ. २।३०।११
युष्माकं तविषी पनीयसी। (३७) ऋ. १।३९।२
वः बलं जनान् अचुच्यवीतन। गिरीन् अचुच्यवीतन। (१७) ऋ. १।३७।१२
उग्रबाहवः तनूषु नकिः येतिरे।
(९३) ऋ. ८।२०।१२

'मरुतों के बल का वर्णन करो; उन का सामर्थ्य सराहनीय है; उन का बल सारे शत्रुओंको हिला देता है; पहाडों को भी विकंपित करा देता है; उन का बाहुबल बडा भारी है और लडते समय वे अपने शरीरों की तनिक भी पर्वाह नहीं करते हैं।'

इस भाँति ये वीर बलिष्ठ और अपनी शरीररक्षा की तनिक भी पर्वाह न करते हुए लडनेवाले थे, अतएव बडा ही प्रभावोत्पादक युद्ध प्रवर्तित कर लेते थे। भय तो उन्हें कभी प्रतीत ही नहीं हुआ करता। निर्भयताके वे मूर्तिमान अवतार ही थे। निम्न मंत्रांश मरुतों के, मन को स्तिमित करनेवाले तथा दिलपर गहरा प्रभाव डालनेवाले, सामर्थ्य का स्पष्ट निर्देश करते हैं-

मरुतां उग्रं शुष्मं विद्म हि। (८४) ऋ. ८।२०।३
अमवन्तः महि श्रियं वहन्ति।
(८८) ऋ. ८।२०।७
शूराः शवसा अहिमन्यवः।
(११६) ऋ. १।६४।९
अनन्तशुष्माः तविषीभिः संमिश्लाः।
(११७) ऋ. १।६४।१०
ते स्वतवसः अवर्धन्त। (१२९) ऋ. १।८५।७
वः तानि सना पौंस्या। (१५७) ऋ. १।१३९।८
वीरस्य प्रथमानि पौंस्या विदुः।
(१६४) ऋ. १।१६६।७
नर्येषु बाहुषु भूरीणि भद्रा।
(१६७) ऋ. १।१६६।१०
वः शवसः अन्तं अन्ति आरात्ताच्चित्
नहि नु आपुः। (१८०) ऋ. १।१६७।९
तुविजाता दृळ्हानि अचुच्यवुः।
(१८६) ऋ. १।१६८।४
धृष्णु-ओजसः गाः अपावृण्वत।
(१९९) ऋ. २।३४।१
ओजसा अद्रिं भिन्दन्ति। (२२५) ऋ. ५।५२।९
वः वीर्यं दीर्घं ततान। (२५४) ऋ. ५।५४।५

"मरुतोंके उग्र सामर्थ्यसे हम परिचित हैं; ये सामर्थ्यशाली होनेके कारण बडा भारी यश पाते हैं; ये शूर हैं और अपने अन्दर विद्यमान सामर्थ्य से ये हतोत्साह कभी नहीं बनते हैं; इनके सामर्थ्यों की कोई सीमा या अन्त नहीं, तथा इनकी शक्तियाँ भी बहुतसी हैं; अपने सामर्थ्य से ये बढते हैं; ये तो इनके हमेशा के पौरुषपूर्ण कार्यकलाप हैं; वीरों के ये प्रारंभिक पौरुष हैं। इन वीरों के बाहुओं में बहुत से हितकारक सामर्थ्य छिपे पडे हैं; तुम्हारे बल का

अन्त समझ लेना, चाहे दूर से हो या समीप से, असंभव ही है; बल के लिए विख्यात ये वीर प्रबल दुश्मनों को भी विचलित कर देते हैं, डगडग हिला देते हैं; अपनी शक्तिसे ही तो इन्होंने शत्रुओं के बंधन से गौओं को छुडा दिया और ओजस्विता के कारण पहाडों को भी तोड डालते हैं; तुम्हारा सामर्थ्य बहुत दूर तक फैला है। "

इन मंत्रभागोंमें इन वीर मरुतों के प्रभावोत्पादक बल एवं सामर्थ्यका बखान किया हुआ पाठकों को दिखाई देगा, जो कि सचमुच मननीय है।

मरुतों की संरक्षणशक्ति।

वीर मरुत् बलवान एवं चतुर होते हुए जनताका संरक्षण करने का भार अपने ऊपर ले लेनेमें तत्परता दर्शाते हैं। इस संबंध में आगे दिये हुये वाक्य देखने योग्य हैं-

(हे) मरुतः! असामिभिः ऊतिभिः नः आगन्त।
(४४) ऋ. १।३९।९
ऊतये युष्मान् नक्तं दिवा हवामहे।
(५१) ऋ. ८।७।६
वृत्रतूर्ये इन्द्रं अनु आवन्। (६९) ऋ. ८।७।२४
सः वः ऊतिषु सुभगः आस। (९६) ऋ. ८।२०।१५
ऊमासः रायः पोषं अरासत।
(१६०) ऋ. १।१६६।२
यं अभिह्रुतेः अघात् आवत, यं जनं तनयस्य पुष्टिषु पाथन, तं शतभुजिभिः पूर्भिः रक्षत। (१६५) ऋ. १।१६६।८
मरुतः अवोभिः आ यान्तु।
(१७३) ऋ. १।१६७।२
वः ऊती चित्रः। (१९५) ऋ. १।१७२।१
नः रिषः रक्षत। (२०७) ऋ. २।३४।९
त्वेषं अवः ईमहे। (२१५) ३।२६।५
ते यामन् त्मना आ पान्ति (२१८) ५।५२।२
ये मानुषा युगा रिषः आ पान्ति। (२२०) ५।५२।४
(हे) सद्य ऊतयः! द्रविणं यामि। (२६४) ५।५४।१५
यं त्रायध्वे सः सुवीरः असति। (२४८) ५।५३।१५

" हे वीर मरुतो! अपनी समूची संरक्षणशक्तियों से युक्त होकर तुम हमारे पास आओ; हमारे संरक्षण हों, इसलिए हम तुम्हें रातदिन बुलाते हैं; वृत्र का वध करते समय इन्द्र को तुमने मदद दी; वह तुम्हारी संरक्षण-छत्र-छाया में सौभाग्यशाली हो गया; संरक्षण करनेहारे इन वीरोंने धन की पुष्टि कर डाली; जिसे, तुमने विनाश और पाप से बचाया था और जिसे तुमने इस हेतु से बचाया था कि वह अपने पुत्रपौत्रों का संरक्षण भली भाँति कर ले, उसे तुम सैंकडों उपभोगसाधनों से परिपूर्ण गढों से सुरक्षित रख लेते; अपने संरक्षक साधनों से युक्त होकर मरुत् हमारे निकट आ जायँ; तुम्हारा संरक्षण बडा अनूठा है; हिंसकों से हमें बचाओ, हमें तुम्हारे तेजस्वी संरक्षण की आवश्यता है; वे हमला करते समय स्वयं ही रक्षा का प्रबंध कर लेते हैं; वे वीर सभी मानवी युगों में हिंसकों से बचाते हैं, हे तुरन्त बचानेवाले वीरों! मैं द्रव्य पाना चाहता हूँ; जिस की तुम रक्षा करते हो, वह उत्कृष्ट वीर बनता है। "

इस से स्पष्ट होता है कि, इन्द्र को भी मरुतों की मदद मिल चुकी थी और उसी तरह अन्य लोग भी मरुतों की सहायता से लाभ उठाते आये हैं। ध्यान में रहे कि, ये वीर अपनी शक्तियोंसे और संरक्षण की आयोजनाओंसे अविषमभाव से सब को सहायता देते हैं। कभी दुर्ग में रहते हुए तो कभी रथारूढ होकर यात्रा करते हुए स्वयं घटनास्थलपर उपस्थित रहकर ये रक्षार्थियोंको संरक्षण देते हैं। इन सूक्तों में निर्देश मिलता है कि, कइयोंको मरुतों की मदद मिल चुकी थी, जो कि इस दृष्टिकोण से देखनेयोग्य है। यहाँपर प्रमुख बात यही है कि, रक्षार्थी चाहे नरेश हो या साधारण मानव पर सभी समान रूपसे मरुतों की सहायता से लाभान्वित हो चुके हैं।

मरुतों की सेना।

मरुत् तो खुद ही सैनिक हैं। वे सातसात की पंक्ति बनाकर चला करते हैं और इनकी ऐसी कतारें ७ रहा करती हैं। सब मिलाकर ४९ सैनिकों का एक छोटा विभाग बन जाता। हर कतार में दोनों पार्श्वभागों के लिए दो पार्श्वरक्षक नियुक्त होते थे। सात पंक्तियों के १४ पार्श्वरक्षक रहते। सैनिक ४९ और १४ पार्श्वरक्षक मिलाकर ६३ मरुत् एक छोटे से संघ में पाये जाते। ६३ मरुतोंके

इस संघ को ' शर्ध ' नाम दिया गया है। (६३ × ७) = ४४१ सैनिकों का अथवा ७ शर्धोंका एक ' व्रात ' और (६३ × १४) = ८८२ सैनिकों या १४ शर्धों का या दो व्रातों का एक ' गण ' हुआ करता। इस प्रकार इन सैनिकों की यह संघसंख्या है, जो ऐसी बनी हुई है कि, इस में क्या न्यून या अधिक है, सो अन्य प्रमाणों से ही निर्धारित करना ठीक होगा। इस दृष्टि से मंत्रोंमें पाये जानेवाले इन शब्दों का मर्म जानना चाहिये। अस्तु, मरुतों की सेना के बारे में निम्नलिखित वचन देखिये-

रथानां शर्धं प्रयन्ति। (२४३) ऋ. ५।५३।१०

' तुम्हारे सत्य के लिये लडनेवाले सैनिकों को प्राप्त करें; तुम्हारे शर्ध और गणविभागों के पीछे हम खुद ही चलते हैं; वे वीर रथों के विभाग को पहुंचते हैं। '

इस स्थानपर सिपाहियों के विभाग को सूचित करनेवाले ' शर्ध तथा गण ' दो पद पाये जाते हैं। इन सैनिकों का प्रभाव किस ढंग का बना रहता है, सो देख लीजिए-

वः अमाय यातवे द्यौः उत्तरा जिहीते।
(८७) ऋ. ८।२०।६
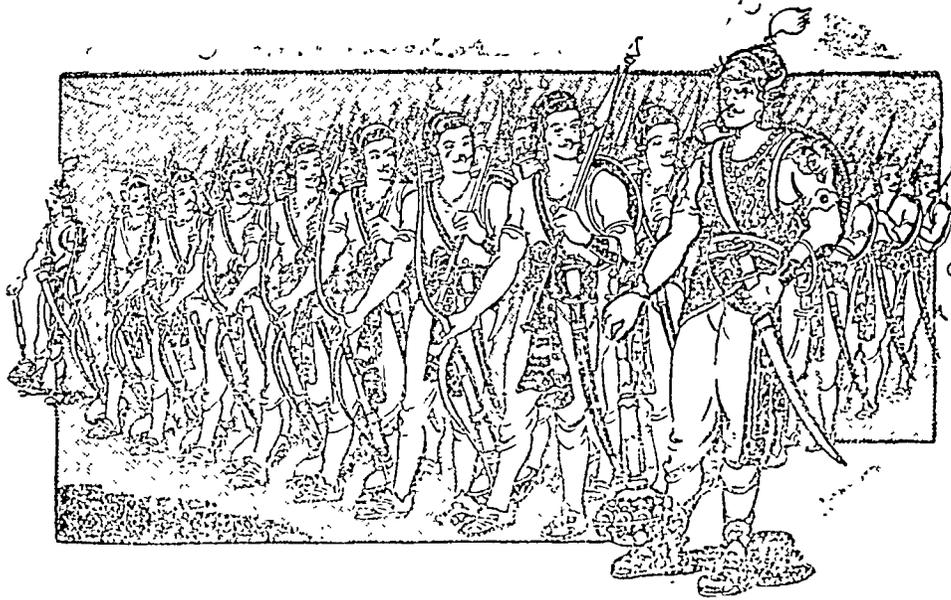
मरुतों का एक संघ।

पृश्निः मरुतां त्वेषं अनीकं असूत।
(१९१) ऋ. १।१६८।९

' मातृभूमिने मरुतों के इस तेजस्वी सैन्य को उत्पन्न किया ' अर्थात् यह सेना मातृभूमि के लिये ही अस्तित्व में आती है और इस सेनाका भली भाँति संगठन हो चुकने पर मातृभूमि तथा उस के सभी पुत्रों याने समूची जनता का संरक्षण करने का गुरुतर कार्यभार इस के हाथोंमें सौंप दिया जाता है। देखिए-

वः ऋतस्य शर्धान् जिन्वत। (६६) ऋ. ८।७।२१
वः शर्धंशर्धं गणंगणं अनुक्रामेम
(२४४) ऋ. ५।५३।११

' तुम्हारे सैनिक आगे बढ चलें, इस हेतु आकाश ऊँचा ऊँचा हो जाता है। ' इस तरह खुद आकाश ही इस सेना को आगे निकल जाने के लिये मुक्त मार्ग बना देता है। मरुत् सेनाका प्रभाव इतना सर्वंकष और प्रमाथी है। जिस किसी दिशा में यह सेना चली जाए, उधर इसे रुकावट नहीं महसूस करनी पडती है और प्रगति के लिये मार्ग खुला दीख पडता है। यह सब कुछ प्रभावशाली शौर्य का ही नतीजा है।

विजयी वीर।

ये वीर सर्वत्र विजयी बनते हैं, तथा इनका प्रभाव भी बडा ही प्रचंड है। इस विजय के कारण इनकी सेना में

एक तरह की अनोखी शोभा फैलती है-

अनीकेषु अधि श्रियः । (९३) ऋ. ८।२०।१२

' इन के सैनिकों के मोर्चेपर विशेष शोभा या विजयश्री रहती ही है ' अर्थात् इनकी सेनामें इतना प्रभाव विद्यमान रहता है कि, निश्चय से विजयश्री मिलेगी, ऐसा कहा जा सकता है ।

धारावराः गाः अपावृण्वत । (१९९) ऋ. २।३४।१

' युद्ध के मोर्चेपर-अग्रभाग पर-अवस्थित हो श्रेष्ठ ठहरे हुए वीर शत्रु के कारागृह से गौओंको छुडा देते हैं। ' ये वीर—

ग्रामजितः अस्वरन् । (२५७) ऋ. ५।५४।८

' शत्रु से गाँव जीत लेनेपर बडी भारी गर्जना करते हैं। ' यह निस्सन्देह विजय पाने की गर्जना या दहाड है।

(हे) जीरदानवः ! युष्माकं रथान् अनुदधे।
(२३८) ऋ. ५।५३।५

जीरदानवः ! पृथिवी मरुद्भ्यः प्रवत्वती ।
(२५७) ऋ. ५।५४।८

जीरदानवः ! आ ववक्षिरे । (२०२) ऋ. २।३४।४

' शीघ्र विजय पानेहारे वीरो ! तुम्हारे रथों के पीछे मैं चलता हूँ, मैं तुम्हारा अनुसरण करता हूँ, पृथिवी मरुतों के लिए सरल और सीधा मार्ग बना देती है । '

चाहे जिधर ये मरुत् चले जायँ, उन्हें कहीं भी विघ्न-बाधा या अडचनरोके नहीं रखती । इन के मार्ग पर के सभी ऊबडखाबड स्थान, बीहड पहाड या टीले दूर हुआ करते और ये वीर इच्छित स्थानतक इतनी आसानी से जा पहुँचते हैं कि, मानों ये सभी सीधी राहपर से जा रहे थे।

शत्रुओं का विध्वंस ।

इन मरुतों का एक प्रमुख कार्य अर्थात् ही शत्रुओं का विनाश करना है और इन के वर्णनपरक सूक्तों में इस का बखान हर जगह किया है । इस सम्बन्ध के मंत्रांश अब देखिए-

रिशादसः ! वः शत्रुः न विविदे ।
(३९) ऋ. १।३९।४

रिशादसः । (११२) ऋ. १।६४।५

' ये शत्रु को समूल विध्वस्त करनेहारे वीर सैनिक हैं, अतः इन्हें ' शत्रुभक्षक = (रिश-अदस्)' कहा है। ये शत्रु को मानों खा जाते हैं, अतः कोई शत्रु शेष नहीं रहने पाता । ये कहीं भी गमन करें, पर शायद ही इन्हें किसी एकाध जगह दुश्मन मिले ।

विश्वं अभिमातिनं अपबाधन्ते ।
(१२५) ऋ. १।८५।३

तं तपुषा चक्रिया अभिवर्तयत, अशसः वधः आ हन्तन । (२०७) ऋ. २।३४।९

' ये वीर समूचे दुश्मनों को मार भगाते हैं, हे वीरो ! तुम दुश्मन को परिताप देनेहारे पहियेदार हथियार से घेर लो और पेटू शत्रु का विध्वंस करो । '

इस भाँति, पूरी तरह शत्रु को मटियामेट कर देने की जो क्षमता वीर मरुतों में है, उस का जिक्र वेदके सूक्तों में पाया जाता है ।

दुश्मनों को रुलानेवाले वीर ।

मरुतों को रुद्र भी कहा है, जिसका आशय है, (रोदयति इति) रुलानेवाला याने दुरात्मा एवं दुर्जन शत्रुओं को रुलानेवाला । चूँकि ये शूर तथा शत्रुदल का संपूर्ण विध्वंस करनेवाले हैं, इसलिए यह नाम बिलकुल सार्थक जान पडता है। देखिए—

(हे) रुद्राः ! तविषी तना अस्तु ।
(३९) ऋ. १।३९।४

इस के अतिरिक्त (४२) ऋ. १।३९।७, (५७) ऋ. ८।७।१२ (८३) ऋ. ८।२०।२, (१५९) ऋ. १।१६६।२, (२०७) ऋ. २।३४।९ इन में तथा इसी भाँति के अनेक मंत्रों में मरुतों को ' रुद्र ' नाम से पुकारा है । बेशक, यह शब्द उन की प्रचंड वीरता को व्यक्त करता है ।

मरुतों की सहनशक्ति ।

ध्यान में रहे कि, दो प्रकार का सामर्थ्य वीरों में पाया जाता है । जब वीर सैनिक शत्रुदल पर आक्रमण का सूत्रपात कर दें, तो उस तीव्र हमले को बरदाश्त न कर सकने के कारण शत्रुसेना विनष्ट हो जाए। इसे ' असह्य ' सामर्थ्य कहना चाहिए और दूसरा भी एक सामर्थ्य इस किस्म का होता है कि, दुश्मन चाहे कितना ही प्रबल

हमला चढाना शुरू करें, लेकिन अपनी जगह अटल एवं अडिग रूप से रहना और अपना स्थान किसी तरह न छोड देना, सम्भव होता है। यह सामर्थ्य ' **सह या सह-मान** ' पदों से सूचित किया जाता है। यह भी मरुतों में पूर्णरूपेण विद्यमान है। देखिए–

मुष्टिहा इव सहाः सन्ति। (२०१) ऋ. ८।२०।२०

' मुष्टियुद्ध खेलनेवाले वीर की तरह ये सभी वीर सहनशक्ति से युक्त हैं।' यह सुतरां आवश्यक है कि, वीरों में सहिष्णुता पर्याप्त मात्रा में रहे, क्योंकि उन्हें विभिन्न तथा प्रतिकूल दशाओं में भी अविचल रूप से डटे रहकर कार्य करना पडता है। शीतोष्ण सहिष्णुता याने कडाके का जाडा और झुलसानेवाली धूप बरदाश्त करना पडता, वैसे ही शत्रु के तीव्रतम आघातों की पर्वाह न करते हुए डटे रहने की भी जरूरत होती है। इस तरह कई ढंग से सहनशक्ति काम में लाई जा सकती है।

ये वीर पर्वतों में घूमा करते।

पहाडों में संचार करने, बीहड जंगलों में घूमने आदि कार्यों से और व्यायाम से शरीर सुदृढ तथा कष्टसहिष्णु बनता है। इसीलिए वीर सैनिक पार्वतीय भूविभागों में चलते फिरते हैं, इस विषय में निम्न निर्देश देखिए–

पर्वतेषु वि राजथ। (४६) ऋ. ८।७।१
वनिनं हवसा गृणीमसि। (११९) ऋ. १।६४।१२

' वीर मरुत् पहाडों में जाते हैं और वहाँ सुहाते हैं, वनों में गये हुए मरुद्गणों का वर्णन करता हूँ।' ऐसे इन के वर्णन देखने पर यह स्पष्ट होता है कि, ये वीर पर्वतों तथा सघन वनों में संचार किया करते थे। वीरों को और विशेषतया सैनिकों को इस प्रकार का पर्वतसंचार करना बहुत हितकारक तथा आवश्यक होता है। क्योंकि ऐसा करने से कष्टसहिष्णुता बढ जाती है।

स्वयंशासक वीर।

ये वीर स्वयं ही अपना शासन करनेवाले हैं। इन पर अन्य किसी का शासन प्रस्थापित नहीं हुआ था। इस बात का निर्देश करनेवाले मंत्रांश नीचे दिये हैं।

अराजिनः वृष्णि पौंस्यं चक्राणाः
वृत्रं पर्वशः वि ययुः। (६८) ऋ. ८।७।२३

' वे अराजक वीर बडा भारी पौरुष करते हुए वृत्र के टुकडे टुकडे कर चुके।' मरुतों के लिए यहाँ पर 'अ-राजिनः' पद आया है। जिन में राजा का अभाव हो, वे ' अ-राजिनः ' कहलाते हैं। आज भी भारत में राज-विहीन जातियाँ पाई जाती हैं, जिन में एक प्रमुख शासक नहीं रहता, अपितु समूची जाति ही अपने शासन का प्रबन्ध आप कर लेती है, जिसे महाराष्ट्र में ' दैव ' कहते हैं। अर्थात् सारी जाति ही जाति का शासन करती है। जिन गिरोहों में ऐसा प्रबन्ध नहीं रहता उन में कोई न कोई एक नियन्ता या शासक के पद पर अधिष्ठित रहता है और ऐसे मानवसमूहों को ' राजिक ' याने राजा से युक्त कहते हैं। जिन मानवसमुदायों में राजसंस्था का अभाव हो, वे स्वयंशासित हुआ करते, इसीलिए इन्हें 'स्व-राजः' ऐसा भी कहते हैं।

ये आश्वश्वाः अमवत् वहन्ते
उत ईशिरे अमृतस्य स्वराजः॥
(२९२) ऋ. ५।५८।१

अस्य स्वराजः मरुतः पिबन्ति॥
(३९८) ऋ. ८।९४।४

' ये खुद ही अपना शासन करनेवाले मरुत् जल्द जानेवाले घोडों पर बैठकर जाते हैं और अमृतत्व के अधि-पति हैं, ये स्वयंशासक मरुत् इस सोम के रसका आस्वाद लेते हैं।' यहाँ पर ' स्वराज ' पद का अर्थ है, स्वयंशासक या अपने निजी प्रकाश से द्योतमान। ये स्वयं ही अपने ऊपर शासन चला लेते थे, इस विषय में दूसरे वचन देखिए–

स हि स्वसृत् युवा गणः।
तविषीभिः आवृतः अया ईशानः॥
(१४८) ऋ. १।८७।४

ईशानकृतः। (११२) ऋ. १।६४।५

' वह युवक मरुतोंका संघ अपनी निजी प्रेरणासे चलने-वाला और विविध शक्तियों से युक्त है, इसीलिये वह समूह (ईशानः) स्वयं अपना ईश है, अर्थात् खुद ही शासक बना हुआ है; वे वीर शासकों का सृजन करनेवाले हैं।' यह बडे ही महत्त्व की बात है कि, जो विविध सामर्थ्यों से युक्त तथा स्वयंप्रेरक होता है, वह स्वयं ही अपना प्रभु

बनता है और शासकों का सृजन करता है; मतलब यही कि, उस पर अन्य कोई प्रभुत्व नहीं रख सकता, क्योंकि उसमें इतनी क्षमता विद्यमान है कि राजा का निर्माण कर ले। ये वीर अपना नियंत्रण स्वयं ही कर लेते हैं।

स्वयतासः प्र अभ्रजन् (१६१) ऋ. १।१६६।४

' ये खुद ही अपना नियमन करते हैं और दुश्मनोंपर वेगपूर्वक हमला चढाते हैं। '

इस भाँति यह सिद्ध हुआ कि, मरुत् गणदेव हैं याने इन में गणशासन प्रचलित है और कोई एक व्यक्ति इन का शासन नहीं करता है, लेकिन ये सभी मिलकर इन्द्र को सहायता पहुंचाते हैं। वैदिक साहित्यमें मरुतोंके सिवा अन्य कई गणदेव पाये जाते हैं, उदाहरणार्थ, वसु, रुद्र, आदित्य आदि जिन का विचार उस उस देवताके प्रसंग में किया जायगा। यहाँपर तो हमें सिर्फ मरुतों का ही विचार करना है।

मरुत्-गण का महत्त्व।

वैदिक वाङ्मय में मरुद्गण का महत्त्व बताने के लिये खूब बढा चढा वर्णन किया है। देखिए-

ते महिमानं आशत। (१२४) ऋ. १।८५।२
ते स्वयं महित्वं पनयन्त। (१४७) ऋ. १।८७।३
ये मह्ना महान्तः। (१६८) ऋ. १।१६६।११
एषां मरुतां सत्यः महिमा अस्ति।
(२७८) ऋ. १।१६७।७
महान्तः विराजथ। (२६६) ऋ. ५।५२।२

' वे वीर मरुत् बडप्पन को प्राप्त होते हैं; वे स्वयं ही अपने कार्य से बडप्पन पाते हैं; वे अपने निजी बडप्पनसे महान हो चुके हैं, इन मरुतों का बडप्पन सत्य है; बडे होकर वे प्रकाशमान हुए हैं। '

ध्यान में रहे कि वैदिक सूक्तों में इनके महत्त्व की जो मान्यता मिल चुकी है, वह केवल इनके शूरतापूर्ण विविध पराक्रमी कार्यकलाप के कारण ही है।

अच्छे कार्य करते हैं।

यह विशेष प्रेक्षणीय बात है कि, ये वीर मरुत् हमेशा शुभ कार्य करने के लिए बडे सतर्क रहा करते; देखिए—

यत् ह शुभे युञ्जते। (१४७) ऋ. १।८७।३
शुभे वर्ं कं आयान्ति। (१५२) ऋ. १।८८।२
शुभे संमिश्लाः। (२१४) ऋ. ३।२६।४
शुभे त्मना प्रयुञ्जत। (२२४) ऋ. ५।५२।८
शुभं यातां रथा अन्ववृत्सत। (२५७) ऋ. ५।५४।८

' ये वीर शुभ कार्य करने के लिए सज्ज होते हैं; ये वीर शुभ कृत्य तथा श्रेष्ठ कल्याण करने के लिए ही आते हैं; शुभ कार्य पूरा करने के लिए ये इकट्ठे हुए हैं; ये खुद ही अच्छे कार्य के लिए जुट जाते हैं; शुभ कार्यसमाप्ति के लिए जब ये जाते हैं, तब इनके रथ पीछे चल पडते हैं। '

शुभ कार्यसे तात्पर्य है, जनताका कल्याण हो ऐसा कार्य जिसे कर्तव्य समझ कर ये वीर करने लगते हैं, देखिए—

तृणस्कन्दस्य विशः परिवृङ्क्त, नः ऊर्ध्वान् कर्त।
(१९७) ऋ. १।१७२।३

' तिनके की नाई यूंही विनष्ट होनेवाले प्रजाजनों की रक्षा चारों ओरसे कीजिये और हमारी प्रगति कीजिए। ' साधारणतया बात तो ऐसी है कि, जनता तिनके के समान बिखरी हुई होने से आसानी से विनष्ट हो सकती है, पर जिस तरह बिखरे तिनकों को एक जगह बाँध लेनेसे एक रस्सा बनता है, जो हाथी को भी जकडता है; वैसे ही प्रजा में भी ऐसी शक्ति है, परन्तु अगर वह बिखर जाए, तो विनष्ट होती है। इन प्रजाजनों का विनाश न हो, इसलिए उन्हें पूर्णतया वेष्टित कर एकता के सूत्र में पिरोने से उनकी प्रगति करना सुगम होता है और यही शुभ कार्य है। उसी प्रकार-

नृषाचः मरुतः। (११६) ऋ. १।६४।९

' मानवों के साथ रहकर उनकी सहायता करनेवाले वीर मरुत् हैं। ' शूर वीरों का यही श्रेष्ठ कर्तव्य है कि वे मानवों के निकटतम संपर्क में रहें और उन्हें प्रगति का मार्ग दर्शायें। चूँकि ये वीर मरुत् अपना कर्तव्य पूर्ण करते हैं, इसीलिए इनके महत्त्व का वर्णन वेद में हुआ है।

शत्रुदल से युद्ध।

मरुत (मर्-उत्) मरनेतक, मौतके मुँह में समाये जानेतक उठकर शत्रुसेना से जूझते हैं अथवा (मा-रुद्=मरुत्) रोने चिल्लाने के बजाय प्रतिकार करने में अपनी सारी शक्ति लगा देते हैं। इसी कारण से ये महान्

शूरता के लिए विख्यात हो चुके हैं। इन का युद्ध-कौशल बडा ही विस्मयजनक है। निम्ननिर्देश देखिए—

अग्निगावः पर्वता इव मज्मना प्रच्यावयन्ति ।
(११०) ऋ. १।६४।३

युवानः मज्मना प्रच्यावयन्ति ।
(११०) ऋ. १।६४।३

'आगे बढनेवाले ये वीर अपनी जगह पहाड की नाईं स्थिर रहकर अपने सामर्थ्य से दुश्मन को हिला देते हैं।' ये वीर—

पर्वतान् प्र वेपयन्ति । (४०) ऋ. १।३९।५

'पहाड की तरह सुस्थिर एवं अडिग शत्रुको भी थरथर कंपायमान बना देते हैं।' इन का पराक्रम इतना प्रचंड है और उसी प्रकार--

(हे) तविषीयवः ! यत् यामं अचिध्वं
पर्वताः नि अहासत । (४७) ऋ. ८।७।२

'हे बलिष्ठ वीरो ! जब तुम हमले चढाते हो, तब पहाड के तुल्य स्थिर प्रतीत होनेवाले प्रबल शत्रुओं को भी डगडग हिला देते हो।'

वृष्णि पौंस्यं चक्राणा पर्वतान् वि ययुः ।
(८८) ऋ. ८।७।२३

'बडा भारी पौरुष करनेहारे तुम वीर सैनिक पहाडों को भी तोडकर आगे निकल जाते हो।'

अयासः स्वसृतः ध्रुवच्युतः दुध्रकृतः भ्राजदृष्टयः आपथ्यः न पर्वतान् हिरण्ययेभिः पविभिः उज्जिघ्नन्ते ॥ (११८) १।६४।११

'हमला करनेवाले, अपनी आयोजना के अनुसार प्रगति करनेवाले, स्थायी दुश्मनों को भी उखाड फेंकनेवाले, जिनके आगे जाना दूसरों के लिए असंभव है ऐसे, तेजःपुञ्ज हथियार धारण करनेवाले, राहपर पडा हुआ तिनका जिस तरह हटाया जाता है, वैसे ही पर्वतों को, सुवर्णविभूषित रथ के पहियों से या चक्राकारवाले हथियारों से उडा देते हैं।' इन का पराक्रम ऐसा ही विलक्षण है।

(हे) धूतयः ! मानं परावतः इत्था प्र अस्यथ ।
(३६) ऋ. १।३९।१

'हे शत्रुदल को विकंपित करनेवाले वीरो ! तुम अपना हथियार बहुत दूर से भी इधर फेंक देते हो। इस तरह तुम्हारा अस्त्र फेंक देने का सामर्थ्य है।'

(हे) धूतयः ! परिमन्यवे इषुं न द्विषं सृजत ।
(४५) ऋ. १।३९।१०

'हे शत्रुदलको हिला देनेवाले वीरो ! चारों ओरसे घेरनेवाले शत्रु पर जिस तरह बाण छोडे जाते हैं, वैसे ही तुम तुम्हारे शत्रुको ही दूसरे शत्रुपर छोड दो। अर्थात् तुम्हारा एक दुश्मन उस दूसरे शत्रुसे लडने लगेगा, जिस के फल-स्वरूप दोनों आपसमें जूझकर हतबल हो जायँगे और उनके क्षीण होनेपर तुम्हारी विजय आसानी से होगी।' शत्रुको शत्रुसे भिडन्त करने का यह उपाय सचमुच बहुत विचारणीय है। युद्धका यह एक बडा ही महत्त्वपूर्ण दाँव-पेच है।

एषां यामेषु पृथिवी भिया रेजते ।
(१३) ऋ. १।३७।८

'इन वीरोंके आक्रमण के समय समूची पृथ्वी मारे डर के काँप उठती है।' इन का हमला इतना तीव्र हुआ करता है।

शूरा इव युयुधयः न जग्मयः, श्रवस्यवः न पृतनासु येतिरे। राजानः इव त्वेषसंदृशः नरः, मरुद्भ्यः विश्वा भुवना भयन्ते ॥
(१३०) ऋ. १।८५।८

'शूरों के समान और युद्धोत्सुक रणबाँकुरे सिपाहियों के तुल्य शत्रुसेना पर टूट पडनेवाले तथा यश की इच्छा करनेवाले वीरों के जैसे ये वीर मरुत् समरभूमि में बडी भारी शूरता दिखाते हैं। नरेशों के तुल्य तेजभरे दिखाई देनेवाले ये वीर हैं, इसीलिए सारे भुवन इन वीर मरुतों से भयभीत हो उठते हैं।'

इस भाँति इन वीरोंकी युद्धचेष्टाओं के वर्णन वेदमंत्रों में पाये जाते हैं, जो कि सभी ध्यानपूर्वक देखनेयोग्य हैं।

मरुत् वीरों का दातृत्व ।

वीर मरुत् बडे ही उदार प्रकृतिवाले हैं, तथा खुब खुले दिल से दान देने के कारण 'सु-दानवः' पद से इन्हें सम्बोधित किया है, जिस का कि अर्थ है 'बडे अच्छे दानी।' मरुतों के सूक्तों में यह विशेषण इन्हें कई बार दिया गया है।

सुदानवः। (५) ऋ. १।१५।२; (४५) ऋ. १।३९।१०; (५७) ऋ. ८।७।१२; (६४) ऋ. ८।७।१९ आदि। इस तरह यह पद मरुतों के लिए अनेक वार सूक्तों में प्रयुक्त हुआ है। उसी प्रकार—

एषां दाना मह्ना। (९५) ८।२०।१४

वः दात्रं महत् दीर्घम्। (१६९) ऋ. १।१६६।१२

'इन वीरों का दान बहुत बडा है और देन देने का व्रत बडा प्रचंड है।' इन के दातृत्व का वर्णन मरुत्-सूक्तों में इस तरह पाया जाता है। वीर पुरुष हमेशा उदारचेता बने रहते हैं। जिस अनुपात में शूरता अधिक, उतने अनुपात में उदारता भी ज्यादह पाई जाती है। यह स्पष्ट है कि, मरुतों की शूरता उच्च कोटिकी थी और दातृत्व भी बहुत बढाचढा था।

मानवों का हित करनेहारे वीर।

'नर्य' पद, (नराणां हिते रतः) मानवों के हित करने में तत्पर, इस अर्थ में वेद में अनेक वार पाया जाता हैं। मरुतों के लिए भी इस पद का प्रयोग किया है। देखो (१६२) ऋ. १।१६६।५ और उसी प्रकार—

नर्येषु बाहुषु भूरीणि भद्रा। (१६७) ऋ. १।१६६।१०

'मानवों के हितार्थ कार्यनिमग्न इन वीरों की भुजाओं में बहुतसे हितकारक सामर्थ्य विद्यमान हैं।' ये वीर मानवों को सुख देते हैं, इस संबंध में यह मंत्र-भाग देखिए—

(हे) मयोभुवः! शिवाभिः नः मयः भूत। (१०५) ऋ. ८।२०।२४

'सब को सुख देनेवाले हे मरुतो! अपनी कल्याण-कारक शक्तियों से हमें सुख देनेवाले बनो।'

अस्मे इत् वः सुम्नं अस्तु। (२४२) ऋ. ५।५३।९

'हम सभी को तुम्हारा सुख प्राप्त होवे।' मरुत् समूची मानवजाति को सुख देते हैं और वह हमें उन से मिल जाय। सुख देना मरुतोंका धर्म ही है और वे हमेशा उस कार्य को निभाते ही रहेंगे; परन्तु ठीक समयपर उनके साथ रह कर वह उन से प्राप्त करना चाहिए। ये सदैव सत्कर्म करते रहते हैं।

सुदंससः प्र शुम्भन्ते। (१२३) ऋ. १।८५।१

'ये शुभ कार्य करनेवाले वीर अपने शुभ कार्योंसे ही सुहाते हैं।' मानवों के हित जिनसे हों, वे ही शुभ कार्य हैं।

कुलीन वीर।

वीर मरुत् उत्कृष्ट परिवार में जन्म लेते हैं, इसलिये वेदने उन्हें 'सुजाताः' उपाधि से विभूषित किया है।

सुजातासः नः भुजे नु। (८९) ऋ. ८।२०।८

सुजाताः मरुतः तुविद्युम्नासः अद्रिं धनयन्ते। (१५३) ऋ. १।८८।३

सुजाताः मरुतः! वः तत् महित्वनम्। (१६९) ऋ. १।१६६।१२

'उत्कृष्ट परिवार में उत्पन्न ये वीर बहुत बडे हैं। वे स्वयं तेजस्वी होने के कारण पर्वत को भी धन्य करते हैं। ये कुलीन वीर अपनी शक्ति से महत्त्व को प्राप्त होते हैं।' इस प्रकार इनकी कुलीनताका बखान वेदने किया है।

ऋण चुकानेवाले।

ध्यानमें रहे, ये वीर ऋण करते नहीं रहते, अपितु तुरन्त उसे चुकाते हैं। इनकी मनोवृत्ति ऐसी है कि किसी के भी ऋणी न रहें, इसलिए उऋण होनेकी चेष्टा करते हैं। देखिए—

ऋण-यावा गणः अविता। (१४८) ऋ. १।८७।४

'ऋण को चुकानेवाला यह वीरों का संघ सब का संरक्षण करनेवाला है।' यहाँपर बतलाया है कि ऋण चुकाना महत्त्वपूर्ण गुण है, जो इनके वीरत्व के लिए बडाही भूषणास्पद है। निस्सन्देह, ऋण चुकाना नागरिक लोगोंके लिए बडा भारी गुण है।

निर्दोष वीर।

अबतक का मरुतोंका वर्णन देखा जाय, तो स्पष्ट प्रतीत होता है कि वे पूर्ण रूपसे दोषरहित हैं। किसी भी प्रकार की त्रुटि या न्यूनता उन में नहीं पाई जाती है। इस संबंध में निम्नलिखित वेदमन्त्र देखिए—

अनवद्यैः गणैः। (३) ऋ. १।६।८

स हि गणः अनेद्यः। (१४८) ऋ. १।८७।४

ते अरेपसः। (१०९) ऋ. १।६४।२

अरेपसः स्तुहि। (२३६) ऋ. ५।५३।३

'मरुतों का यह संघ नितान्त निर्दोष एवं अनिन्दनीय

है। पाप से कोसों दूर तथा अपवादरहित हैं। ऐसे निरागस वीरों की सराहना करो।'

जो दोषों से बिलकुल अछूते हों, उन की ही स्तुति करनी चाहिए। यूंही किसी की खुशामद या चापलूसी करना ठीक नहीं। जैसे ये वीर निर्दोष आचरणवाले होते हैं, वैसे ही वे निर्मल या साफसुथरे भी रहा करते। उदाहरणार्थ—

अरेणवः दृळ्हानि अचुच्यवुः।
(१८६) ऋ. १।१६८।४

'ये साफसुथरे वीर सुदृढ विरोधियों को भी पदच्युत कर देते हैं।' यहाँपर 'अ-रेणवः' पदका अर्थ है वे, जिन के शरीरपर धूल न हो; देहपर, कपडोंपर, हथियारोंपर धूलिकण नहीं दिखाई पडे। ऐसे वीर जो अत्यन्त सफाई तथा अलबेलापन अक्षुण्ण बनाये रहते हैं। उसी तरह-

ते परुष्ण्यां शुन्ध्युवः ऊर्णा वसत।
(२२५) ऋ. ५।५२।९

'वे वीर परुष्णी नदी में नहा धोकर साफसुथरे बनकर ऊनी कपडे पहन लेते हैं।' इस ऊनी वस्त्रप्रावरण के प्रमाण से स्पष्ट होता है कि ये वीर शीत कटिबन्ध में निवास करते थे। परुष्णी नदी शीतप्रधान भूविभाग में बहती है, सो स्पष्ट ही है। पहले रथों का बखान करते हुए हम बतला चुके कि हरिणोंद्वारा खींचे जानेवाले तथा पहियों से रहित वाहनों का उपयोग वीर मरुत् कर लिया करते थे। ऐसे वाहन बर्फीले भूभागोंपर ही अधिक उपयुक्त हुआ करते, अतः यह भी एक प्रमाण है कि ये वीर शीत-कटिबन्ध के निवासी थे।

मरुतों का संपर्क।

चूँकि मरुतोंमें इतने विविध सद्गुण विद्यमान हैं, अतः उनके सहवास में रहने से सभी लाभ उठा सकते हैं, यह दर्शाने के लिये निम्न वचन उद्धृत किये जाते हैं।

सः आपित्वं सदा निध्रुवि अस्ति।
(१०३) ऋ. ८।२०।२२

यस्य क्षये पाथ स सुगोपातमो जनः।
(१३५) ऋ. १।८६।१

स मर्त्यः सुभगः अस्तु, यस्य प्रयांसि पर्षथ।
(१४१) ऋ. १।८६।७

'इन वीरों की मित्रता स्थिर स्वरूप की है, इनकी मित्रता चिरंतन स्वरूप की है। जिस के घर में ये सोमरस का पान करते हैं, वह पुरुष अत्यन्त सुरक्षित रहता है; जिसके घर जाकर ये वीर अन्नग्रहण करते हैं, वह सचमुच भाग्यवान बने।'

यः वा नूनं असति, सः वः ऊतिषु सुभगः आस।
(९६) ऋ. ८।२०।१५

'जो इन वीरों का ही बनकर रहता है, वह इनके संरक्षणों से अकुतोभय होकर भाग्यशाली बन जाता है।' उसी तरह-

युष्माकं युजा आधृषे तविषी तना अस्तु।
(३९) ऋ. १।३९।४

'जो तुम्हारे साथ रहता है, उस का बल दुश्मनों की धज्जियाँ उडाने के लिये बढता ही रहता है।'

यस्य वा हव्या वीतये आगथ, सः द्युम्नैः
वाजसातिभिः वः सुम्ना अभि नशत्।
(५७) ऋ. ८।२०।१६

'हे वीरो! जिस के घर में तुम हविष्यान्न या प्रसादका सेवन करने के लिये जाते हो, वह रत्नों से और अन्नों से तुम्हारे दान किये हुए विविध सुखों का उपभोग करता है।'

इस प्रकार, मरुतों के अनुयायी होने से लाभान्वित बन जाने की सूचना वेदने दी है।

मरुतों का धन।

ध्यान में रहे कि मरुत् विजयी वीर हैं, जिन के शब्द-संग्रह में पराभव के लिये स्थान नहीं है और बडे भारी उदार होते हुए अनुपम दानशूरता व्यक्त करते हैं, अतः ऐसा अनुमान करने में कोई आपत्ति नहीं कि असीम धनवैभव उन के निकट हो। देखना चाहिए कि मरुत्सूक्तों में उनकी धनिकता के बारे में क्या कहा है-

मरुत्-मंत्रसंग्रह (२) १।६।६ में 'विदद्वसु' ऐसा गुणबोधक पद इन वीरों के लिए प्रयुक्त हुआ है। इस पद का अर्थ धन की योग्यता भली भाँति जाननेवाला यानि धन पाना और उसकी योग्यता पहचानना भी स्पष्टतया सूचित होता है। मरुतों में यह गुण विद्यमान है, सो उनके धन-संग्रह करने तथा धन का वितरण करने से स्पष्ट होता है।

धन किस भाँति का हो, इस संबंधमें निम्न मन्त्र बडा अच्छा बोध देता है।

(हे) मरुतः! मदच्युतं पुरुक्षुं विश्वधायसं रयिं आ इयर्त। (५८) ऋ. ८।७।१३

'हे वीर मरुतों! शत्रु के घमंड को हटानेवाले, हमें पर्याप्त प्रतीत होनेवाले, सब का धारणपोषण करनेहारे धन का दान करो।' यहाँ पर ठीक तौर से बताया है कि धन किस तरह का हो। जिस धन से शत्रु का घमंड या वृथाभिमान उतर जाए, इस ढंग की शूरता हममें बढानेवाला पर हम में घमंड न पैदा करनेवाला धन हमें चाहिए। सभी तरह की धारणशक्ति को वृद्धिंगत करनेवाला, हमारी आवश्यकताओं की पूर्ति भली भाँति करनेवाला धनवैभव प्राप्त हो। अर्थात् ही जिस धनको पाने से गर्व, अभिमान बढकर भाँति भाँति के प्रमाद हों, जो अपर्याप्त होता है, तथा जिस से अपनी शक्ति क्षीण होती रहे, ऐसा धन हम से कोसों दूर रहे। हर कोई धन के इन गुणों को सोचकर देखे। ऐसे उत्कृष्ट धनको मरुत् हमेशा साथ रख लेते हैं।

रयिभिः विश्ववेदसः। (११७) ऋ. १।६४।१०

ऐसे धन मरुतों के निकट पर्याप्त मात्रा में रहते हैं, इसीलिए कहा है कि 'मरुत् सर्वधनसम्पन्न हैं।' धन के गुणों एवं अवगुणोंको बतलानेवाला एक और मंत्र देखिए-

(हे) मरुतः! अस्मासु स्थिरं वीरवन्तं ऋतीषाहं शतिनं सहस्रिणं शूशुवांसं रयिं धत्त।
(१२२) ऋ. १।६४।१५

'हे वीर मरुतो! हमें यह धन दो, जो स्थायी स्वरूप का हो, वीरों से युक्त हो, शत्रु का पराभव करने के सामर्थ्य से पूर्ण तथा सैकडों और हजारों तरह का यश देनेवाला हो।' धन का स्वरूप कैसे रहे, सो यहाँपर बताया है। धन तो किसी तरह मिल गया, लेकिन तुरन्त खर्च होने से चला गया, ऐसा क्षणभंगुर न हो, वह पुश्तदरपुश्त विद्यमान हो और चिरकालतक उस का उपभोग लिया जा सके। वह वीरतापूर्ण भाव बढानेवाला हो, नकि कायरताके विचार। धन कमाने के बाद उस की रक्षा करने का सामर्थ्य भी बढता रहे और धन की मात्रा बढने से अधिक वीर संतान उत्पन्न हो। नहीं तो ऐसी अनवस्था होगी कि इधर धनवैभव बढता है, पर निपुत्रिक या सन्तानहीन हो जाने का डर है। विरोधियों का प्रतिकार करने की क्षमता भी बढती रहे और यशस्विता भी प्रतिपल वर्धिष्णु हो। जिस धन से ये सभी अभीष्ट बातें प्राप्त हों, वही धन हमें मिल जाए। यह धन सहस्रविध हुआ करता है, जिस की आवश्यकता सब को प्रतीत होती है। धन का तात्पर्य सिर्फ रुपया, आना, पाई से नहीं अपितु जिससे मानव धन्य हो जाए, वही सच्चा धन है। उसी तरह-

सर्ववीरं अपत्यसाचं श्रुत्यं रयिं दिवेदिवे नशामहै। (१९८) २।३०।११

'सभी वीरों से, पुत्रपौत्रों से अन्वित, यश देनेवाला धन प्रतिदिन हमें मिल जाए।' बहुधा देखा जाता है कि धन अधिक प्राप्त होने पर शूरता घट जाती है और सन्तान पैदा करने की शक्ति भी न्यून हो जाती है। यह दोष रहनसहन त्रुटिमय होने से हुआ करता है। ऐसा दोष न हो और धन पानेके साथ ही उसकी रक्षा करनेका बल भी तथा सुसन्तान उत्पन्न करने का सामर्थ्य भी वर्धिष्णु होता रहे, इस भाँति सामर्थ्यशाली धन का संग्रह किया जाय। और भी देखिए-

यत् राधः ईमहे तत् विश्वायु सौभगं अस्मभ्यं धत्तन। (२४६) ऋ. ५।५३।१३

'जिस धन की कामना हम करते हैं, वह दीर्घ जीवन देनेवाला एवं बढिया सौभाग्य बढानेवाला हो।' उसी तरह-

यूयं स्पार्हवीरं रयिं रक्षत। (२६३) ऋ. ५।५४।१४

'तुम स्पृहणीय वीरों से युक्त धनका संरक्षण करो।'

अनवभ्रराधसः। (१६४) ऋ. १।१६६।७

अनवभ्रराधसः आ ववक्षिरे।
(२०२) ऋ. २।३४।४

'(अन्-अव-भ्र-राधसः) जिन का धन कोई छीन नहीं सकता, जो धन पतन की ओर नहीं ले जाता, वह धन प्राप्त हो।' धन जरूर समीप रहे, लेकिन वह इस तरह प्रगतिका पोषक रहे। धनके आधिक्यसे अपने प्रगतिपथपर रोडे नहीं उठ खडे होने चाहिए। धन के बारे में जो यह चेतावनी दी गयी है, वह सभी को ध्यानपूर्वक सोचनेयोग्य है और चूँकि ऐसा स्पृहणीय धन वीर मरुतों के निकट रहता है, इसलिए वैदिक सूक्तों में मरुतों का महत्त्व बतलाया है।

मरुतों का स्वभाववर्णन।

उपर्युक्त वर्णन से इतना स्पष्ट हुआ है कि ये वीर सैनिक मरुत् एक घरमें- (Barrack) बैरक में निवास करते थे; महिलाओं की तरह विभूषित तथा अलंकृत हो, बडी सजधज से बाहर निकल पडते; अपने वस्त्रों, हथियारों तथा आयुधों को साफसुथरे एवं चमकीले रखते; संघ बना कर यात्रा करते और सांघिक या सामूहिक हमले चढाया करते। शत्रुदल पर सामूहिक चढाई करने के कारण इन वीरों के सम्मुख डटकर लडना शत्रु के लिए असंभव तथा दूभर हुआ करता। इसलिए शत्रुसेना जरूर नतमस्तक हो, टिकना असंभव होनेसे, आत्मसमर्पण करती या हट जाती। सभी मरुत् साम्यवाद को पूर्ण रूप से कार्यरूप में परिणत करते थे, अर्थात् किसी तरह की विषमता उन में नहीं पायी जाती थी। सभी युवावस्था में रहते थे और इनका स्वरूप उग्र तथा प्रेक्षकों के दिल में तनिक भीतियुक्त आदर का सृजन करनेवाला था। इन का डीलडौल भव्य था।

मस्तकों पर शिरस्त्राण रखे होते या कभी रेशमी साफे बाँधा करते। सब का पहनावा तुल्यरूप दीख पडता था। भाला, बरछी, कुठार, धनुष्यबाण, पर्शु, वज्र, खड्ग एवं चक्र आदि आयुध इन के निकट रहते। ये सारे शस्त्रास्त्र बडे ही सुदृढ एवं कार्यक्षम रहते। इन के रथों तथा वाहनों को कभी घोडे खींचते, तो कभी बारहसींगे या कृष्णसार-मृग खींच लेते। बर्फीले प्रदेशों में चक्रहीन रथों का और कभी बिना घोडोंके यंत्रसंचालित एवं बडे वेगसे गर्द उडाते जानेवाले वाहनों का भी उपयोग किया जाता था। शायद वे पंछी की मदद से आकाशमार्ग से जानेवाले वायुयान-सदृश रथों को काम में लाते। इन के वाहन इस प्रकार चार तरह के हुआ करते थे।

ये बडे ही विलक्षण वेग से शत्रुपर धावा करते और उन के इस अचम्भे में डालनेवाले वेग से शत्रु तो हक्का-बक्का रह जाता, पर अन्य संसार भी क्षणमात्र थर्रा उठता। यही कारण था कि इनके प्रबल आक्रमणों के या विद्युद्-युद्ध (Blitz) के सम्मुख क्या मजाल कि कोई शत्रु टिक सके। इन का आघात इतना प्रखर हुआ करता कि चिरकाल से अपना आसन स्थिर किये हुए शत्रु को भी ये विचलित तथा धराशायी बना देते।

मरुत् मानवकोटि के ही थे, परन्तु अनूठा पराक्रम दर्शाने से इन्हें देवत्व का अधिकार प्राप्त हुआ था। वेद में ऋभुओं के बारे में भी ऐसे ही लेकिन ज्यादह स्पष्ट उल्लेख पाये जाते हैं, अर्थात् प्रारम्भ में ऋभु शिल्पविद्यानिष्णात कारीगर मानव थे, परन्तु आगे चलकर उन्हें देवों के राष्ट्र में नागरिकत्व के पूर्ण अधिकार प्राप्त हुए थे।

ऐसा दिखाई देता है कि मरुतों के बारे में भी बहुत कुछ ऐसी ही घटना हुई हो। देवों के संघ में जान पडता है कि विशेष अधिकार सब को समान रूप से नहीं प्राप्त हुआ करते; जैसे 'अश्विनौ' वैद्यकीय व्यवसाय में लगे रहते और वे दोनों सभी मानवों के घर जाकर चिकित्सा कर लेते, इसलिए उन्हें यज्ञमें हविर्भाग नहीं मिला करता था। लेकिन कुछ काल के उपरान्त च्यवन ऋषि को बुढापे के चँगुल से छुडाकर फिर युवा बनाने से उस के प्रयत्नों के फलस्वरूप अश्विनौ को वह अधिकार प्राप्त हुआ। पाठकों को अश्विनौ की प्रस्तावना में यह देखने मिलेगा। ठीक उसी प्रकार ऐसा प्रतीत होता है कि मरुत् मर्त्य, मानव या सभी काश्तकार थे, लेकिन जब उन्होंने वीरतापूर्ण कार्यकलाप कर दिखाये, तब अथवा विशेषतया इन्द्रके सैन्य में सम्मिलित होनेपर वे देवपदपर अधिष्ठित हुए।

मरुतों में विद्वत्ता, चतुराई, दूरदर्शिता, बुद्धिमत्ता एवं साहसिकता कूट कूट कर भरी थी और वे उद्यमी, उत्साही तथा पुरुषार्थी थे। वे वीरगाथाओं को दिलचस्पी से सुन लेते थे और साहसी कथाओंके सुननेमें तल्लीन हुआ करते।

बीमारों की चिकित्सा प्रथमोपचारप्रणाली से करने में वे प्रवीण थे और इस संबंध में उन्हें कुछ औषधियों का ज्ञान था।

विविध क्रीडाओं में ये कुशल थे, तथा नृत्यविद्यासे भी भली भाँति परिचित थे। बाजे बजाते हुए, तराने गाते हुए और राहपरसे चलते हुए भी बाद्य बजाते, तथा गीत गाते हुए निकल पडते।

ये मरुत् अति भव्य आकृतिवाले तथा गौरवर्ण से युक्त एवं तनिक रक्तिम आभासे विभूषित थे। अपने अन्दर विद्यमान सामर्थ्य से इनका तेज बढा हुआ था। ये कृषि-कार्यमें मंजा होकर फल, धान्य एवं विविध खाद्य चीजोंकी

उपज बढाते थे। ये गोपालन के व्यवसाय को बडी अच्छी तरह निभा लेते थे, क्योंकि गोदुग्ध इनका बडा प्यारा पेय था। सोमरस में गायका दूध, गोदुग्ध का बना दही और सत्तू का आटा मिलाकर पी जाते थे। गाय तथा भूमि को मातृतुल्य आदर की निगाह से देख लिया करते और मौका आनेपर मातृवत् गौ एवं मातृभूमि के लिए भीषण समर भी छेड दिया करते, जिन के फलस्वरूप इनकी ये माताएँ शत्रु के चँगुल से मुक्त हो जातीं।

मरुतों के घोडे बहुधा धब्बेवाले हुआ करते और सुदृढ होते हुए पहाडों पर चढने में बडे कुशल होते थे। ये वीर अपने अश्वों को मजबूत बनाकर अच्छी तरह सिखाया करते थे। मरुत् वीर अश्वविद्या में तथा गोपालन-कलामें बडे ही निपुण थे। ये जानते थे कि किन उपायों से गाय अधिक दूध देने लगती है, अतः इनके निकट दुधारु गायों की कोई न्यूनता नहीं थी। ये वीर जिधर चले जाते, उधर अपने साथ ही आवश्यकतानुसार गायों के झुंड ले जाया करते। युद्धभूमि में भी इन के साथ गोयूथ विद्यमान होते, क्योंकि इन्हें ताजा गोदुग्ध पीनेके लिये अति आवश्यक था, ताकि इन वीरों की थकावट दूर हो बल एवं उत्साह बढ जाए।

ध्यानमें रहे कि वीर मरुतोंका बल बडा ही प्रचंड था, जिसका उपयोग वे केवल जनताके संरक्षणार्थ ही कर लिया करते थे। इसी कारण से मरुतों का सैन्य अत्यन्त प्रभावशाली माना जाता था और इस सैन्यका विभजन शर्ध, व्रात तथा गण नामक संघों में किया जाता था, जिन में क्रमशः ६३; ४४१ तथा ८४४ सैनिक संघटित किये जाते थे।

युद्ध में ठीक शत्रु के मुँह बाँयें खडे रहकर अपने जीवित की कुछ भी पर्वाह न करके दुश्मनपर टूट पडना मरुतों के बायें हाथका खेल था। अतः इनके भीषण वेगवान धावे के सम्मुख शत्रु की दशा बडी दयनीय हुआ करती। मरुत् अगर शत्रुओं पर हमले चढाते, तो शत्रु जान बचाकर भाग निकलते। पर यदि शत्रु ही स्वयं मरुतों पर आक्रमण करने का साहस कर लें, तो वीर मरुत् इन आक्रमणों को विफल बनाकर हटाते। इस भाँति मरुतों में द्विविध शक्ति विद्यमान थी।

ये वीर वनों एवं पर्वतों पर यथेच्छ विहार कर लेते, क्योंकि समूचे भूमंडल पर इनके लिए अगम्य या बीहड स्थान था ही नहीं। इनके दिल में किसी विशिष्ट स्थान में जाने की लालसा उठ खडी हुई कि तुरन्त ये उधर जा पहुंचते; कारण सिर्फ यही था कि इन्हें रोकनेवाला तो कोई था ही नहीं। इनका भय इस तरह चतुर्दिक् फैला हुआ था।

ये गणशासक थे। इनका सारा संघ ही इन पर शासन चला लेता था और इन में श्रेष्ठ, मध्यम अथवा कनिष्ठ इस तरह भेदभाव नहीं था। जो कोई इनके संघ में प्रवेश कर लेता, वह समान अधिकारों को पानेवाला सदस्य माना जाता था।

सभी मरुत् वीर समूची जनता का कल्याण करने का शुभ कार्य भली भाँति निभाते थे और इन्द्र के साथ रहकर वृत्रवधसदृश महासमर में इन्द्र को सहायता पहुंचाते। कभी कभी रुद्रदेव के अनुशासन में रहकर लडाई छेड देते, अतः इन्हें 'रुद्र के अनुयायी' नाम से विख्याति मिल चुकी थी।

सारे ही वीर मरुत् कुलीन याने अच्छे प्रतिष्ठित परिवार में उत्पन्न थे। ध्यान में रखना कि किसी भी हीन कुल में उत्पन्न साधारण व्यक्ति को इस संघ में स्थान ही नहीं मिलता था। ये सचाई के लिए लडनेवाले थे और कभी किसीसे ऋण लिया हो, तो ठीक समयपर उसे चुकाते थे, इस कारण उनका साख अच्छा बना रहता।

इन का वर्ताव दोषरहित हुआ करता, रहनसहन सुतरां साफसुथरा था। समूचा पहनावा अत्यन्त जगमगानेवाला था, इस कारण दर्शकोंपर इन का रोब-दाब बडाही अच्छा पडता था। मरुत् धन का उत्पादन करनेवाले एवं धनकी योग्यता समझनेवाले थे, अतः अतीव उदारचेता और दान देने में कभी पीछे नहीं रहा करते।

यद्यपि वीर मरुत् मर्त्य, मानवश्रेणी के थे, तो भी इन का चरित्र इतना दिव्य तथा उच्च कोटिका होता था कि जो कोई इनके काव्य का सृजन करता, वह अमर हो पाता। यह सारा इनका स्वरूप-वर्णन है और जो पाठक मरुतोंके सूक्तों का पठन ध्यानपूर्वक करेंगे, उन्हें यह बखान स्थान स्थानपर पढने मिलेगा। पाठक विभिन्न मरुत्-सूक्तोंमें उसे

१७४. ठीक तरह हाथमें पकडी हुई, सुन्दर आभावाली, सुवर्ण के समान चमकनेवाली तलवार, मेघ में विद्यमान विजली की तरह हमेशा इन वीरों के निकट सुहाती है; अन्तःपुर में रहनेवाली साध्वी नारी जैसे गुप्त रूपसे भीतर ही सदैव संचार करती है, पर यज्ञ के अवसर पर समाज में व्यक्त होती है, वैसे ही उनकी तलवार भी हमेशा अपने मियान में गुप्त पडी रहती है, पर लडाई के मौकेपर वाहर आकर चमकने लगती है।

१९२. हाँ, मातृभूमिने ही अपने संरक्षणार्थ, बडे भारी समर का सूत्रपात करने के लिए इन वेगशाली वीरों का यह बडा भारी सैन्य उत्पन्न किया है। एक ही समय मिलजुलकर हमला चढानेवाले इन वीरोंने बहुत बडा सामर्थ्य प्रकट कर डाला है और इन समूचे वीरोंने इसी सामर्थ्य में अपने अन्न की धारकशक्ति का अनुभव ले लिया है।

१९९. युद्ध के मोर्चेपर श्रेष्ठ ठहरे हुए, शत्रु का पूर्ण पराभव करनेवाले सामर्थ्य से युक्त, सिंहके समान भीषण दिखाई देनेवाले, अपने प्रचंड बल से सब की निगाह में पूजनीय बने हुए, अग्नितुल्य तेजस्वी, वेगवान, प्रभावोत्पादक सामर्थ्य से युक्त, ये वीर शत्रुओं के बन्दीगृह से अपनी गायों को छुडाते हैं।

२१८. ये साहसी वीर शाश्वत बलसे युक्त हैं और ये शत्रु पर चढाई करते समय हमेशा ही विजयशील सामर्थ्य से युक्त होकर समूची जनता का संरक्षण करते हैं।

२६५. विशेष रूपसे सराहनीय कर्म करनेहारे, तेजस्वी हथियार धारण करनेवाले, वक्षःस्थल पर माला पहननेवाले ये वीर बहुत बडा बल धारण करते हैं। अच्छी तरह स्वाधीन रहकर गमन करनेवाले ये वीर घोडोंपर बैठकर इधर आते हैं। उनके रथ लोकहितार्थ जाते हुए उन्हीं को इष्ट स्थान तक पहुंचाते हैं।

२७८. ये अपने सामर्थ्य से शत्रु का पूर्ण विनाश करते हैं और अपने आक्रमणों से पर्वततुल्य बृहदाकार दुर्गोंको भी मटियामेट कर डालते हैं।

२८५. भूमि को माता माननेवाले हे वीरो! तुम्हारे निकट कुठार, भाले, धनुष्य, तूणीर, घोडे, रथ, हथियार सभी बढिया दर्जेके साधन हैं। तुम उत्कृष्ट ज्ञानी हो और तुम हमेशा अच्छे कार्य ही करते हो।

२९१. हे नेता वीरो! तुम बहुत धनाढ्य, अमर, सत्यनिष्ठ, यशस्वी, कवि, ज्ञानी, युवक तथा प्रशंसनीय हो; तुम हमारी मदद करो।

३८६. हे वीरो! तुम जिसकी रक्षा करते हो और लडाई में जिसे तुम बचा लेते हो, उसका विनाश कभी नहीं होता है। यह जो तुम्हारी अपूर्व ढंग की रक्षा करने की बुद्धि है, वह हमें मिल जाए। तुम जल्द हमारे पास आओ।

४१७. ये वीर, वायु जैसे तिनके को उडा देता है उसी प्रकार शत्रुओं को उडा देते हैं और वेगवान होते हुए अग्निज्वालातुल्य तेजःपुञ्ज दीख पडते हैं; ये योद्धा अपने कवच पहनकर तथा युद्धों में जाकर बहुत ही प्रशंसनीय कार्य करते हैं; पिता के आशीर्वाद-तुल्य इनके दान अत्यन्त साहाय्यकारी होते हैं।

४२८. रथों को धब्बेवाले घोडे जोतनेहारे, भूमि को माता माननेहारे, लोककल्याण के लिए हलचल करनेवाले, युद्धों में सहर्ष जानेवाले, अग्नितुल्य द्योतमान, विचारशील, सूर्यवत् तेजस्वी ये वीर अपने सभी दैवी सामर्थ्यों के साथ हमारे निकट आ जायँ।

४३४. हे उग्र स्वरूपवाले वीरो! तुम ऐसे भीषण संग्राम में डटकर खडे हुए हो, आगे बढो, शत्रुओं का वध करो, दुश्मनों का पूर्ण पराभव करो। ये सराहनीय वीर हमारे शत्रुओं का वध कर डालें; इनका दूत भी शत्रुपर चढ जाए और उन का विनाश कर डाले।

४३५. हे वीरो! यह जो शत्रुकी सेना बडे वेगसे हमें चुनौती देती हुई हमपर टूट पडने आती है, उस सेना को धूम्रास्त्र से अँधेरा बनाकर इस ढंगसे विद्ध कर डालो कि समूची शत्रु-सेना भ्रान्त हो जाए और सभी सैनिक एक दूसरेको न पहचानते हुए बिलकुल सहमेसहमे रह जाँय।

४५०. हे शत्रु को रुलानेवाले वीरो! तुम जब शत्रुपर हमला करने के लिये धब्बेवाली हरिणियाँ अपने रथों में जोत लेते हो और रथपर चढ जाते हो, उस समय मारे डरके सारे जंगल हिल जाते हैं तथा समूची पृथ्वी एवं अटल पर्वत भी थरथर काँपने लगते हैं।

४५३. हे रणबाँकुरे योद्धा लोगो! तुम में कोई भी श्रेष्ठ या कनिष्ठ नहीं है, तुम सभी एक दूसरे से भाईचारे का बर्ताव रखते हो और अपनी उन्नति के लिये एक

हो प्रयत्न करते हो; रुद्र तुम्हारा पिता है और भूमि तुम्हारी माता है जो तुम्हें प्रकाशका मार्ग दिखलाती है।

इस प्रकार इस वीर-काव्य में विद्यमान ओजस्वी विचार यहाँ बानगी के तौरपर दिये हैं। यहाँपर इस काव्य का बिलकुल शब्दशः अर्थ दिया है, तथा साधारणतया स्पष्ट दिखाई पडनेवाला भावार्थ भी दिया है। शब्दशः अनुवाद अभ्यासक लोगों के लिए अत्यंत आवश्यक है और भावार्थ भी उन्हीं के लिये उपयुक्त है। जो विशेष अध्ययन करना चाहते हों उनके लिए टिप्पणी सहायक प्रतीत होगी पर जो वेदमंत्रों का विशेष गहन अध्ययन करना नहीं चाहते या जिन के समीप इतना अध्ययन करने के लिये समय नहीं उन के लिये सरल अनुवाद आवश्यक है। ऐसे सरल अनुवाद में आगेपीछे के सन्दर्भके अनुसार अधिक लिखना पडता है और यथाशक्ति कवि के मन का आशय पाठकोंके दिल में पैठ जाय इस हेतु कुछ अधिक बातें सन्दर्भ के अनुसार लिखनी पडती हैं। हमने जानबूझकर यहाँ स्वतंत्र और लगातार लिखा हुआ अनुवाद नहीं दिया और इस प्रथम संस्करण में शब्दशः अनुवाद टिप्पणियों तथा अन्य साधनों के साथ स्वाध्यायशील पाठकों के लिये प्रस्तुत कर रखा है। द्वितीय संस्करण के अवसरपर संभव हुआ तो वैसा सीधा अनुवाद दिया जायगा।

वेद का अध्ययन।

आजकल सब लोगों की यह धारणा बनी हुई है कि, वैदिक संहिताओंके अध्ययन का अर्थ सिर्फ मन्त्र कंठस्थ कर लेने हैं और यह धारणा सहस्रों वर्षों से चली आ रही है। इस का नतीजा यूं हुआ है कि संहिताओं के अर्थ की ओर अधिक लोगों का ध्यान आकर्षित नहीं होता है। यद्यपि बहुत अर्से से विद्वान ब्राह्मण इन संहिताओं को कंठस्थ करते आये हैं पर अर्थ के बारेमें अधिकों का औदासीन्य ही दृष्टिगोचर होता है। वर्तमान काल में ऋग्वेद (शाकल), यजुर्वेद (तैत्तिरीय, वाजसनेयी एवं काण्व), सामवेद (कौथुमी) और अथर्ववेद (शौनक) संहिताओंका अध्ययन प्रचलित है। अर्थात्, कुछ ब्राह्मण इन का पठन करते हैं लेकिन ऋग्वेद की सांख्यायन एवं बाष्कल संहिता, यजुर्वेदकी मैत्रायणी, काठक, कापिष्ठल, कठ संहिता, सामवेद की राणायणी एवं जैमिनीय संहिता तथा अथर्ववेदकी पिप्पलाद इन संहिताओंका अध्ययन लुप्तप्राय ही है। अच्छा, जिन संहिताओं का पठन प्रचलित है ऐसा ऊपर कहा गया है उन का अध्ययन भी बहुत से विद्वान करते हैं, ऐसी बात नहीं। समूचे भारतवर्ष में ऐसे अच्छे वेदपाठी चार या पाँच सौसे अधिक नहीं हैं और उच्चकोटि के घनपाठी तो पूरे सौ भी मिलना कठिन ही है। मतलब यही कि, आजदिन वेदाध्ययन का लोप यहाँतक हुआ है।

इस से स्पष्ट होगा कि, आधुनिक युग में वेदपठन का भविष्य या वर्तमानदशा तनिक भी उज्वल नहीं है, क्योंकि वेदाध्ययन लुप्त होता जा रहा है। जनता में भी वेदपाठी ब्राह्मण के लिये तनिक आदर रहा हो तो भी वह नहीं के बराबर है क्योंकि उस ज्ञान का व्यवहार में तनिक भी उपयोग नहीं है, ऐसी ही सार्वत्रिक धारणा प्रचलित है।

अगर प्राचीन कालसे सार्थ वेदाध्ययनकी प्रथा जारी रह जाती तो बहुत कुछ संभव था कि, व्यवहार में उस का उपयोग स्पष्ट हुआ होता और आज जो यह गलतफहमी सर्वसाधारण में पायी जाती है कि, वेदाध्ययन सुतरां निरुपयोगी है, निर्मूल ठहरती या उत्पन्न ही नहीं होती। इस प्रतिपादन को स्पष्ट करने के लिये हम मरुद्देवता के मन्त्रों का उदाहरण लेंगे। यदि मरुतों के सूक्तों का अर्थसहित अध्ययन करने की प्रणाली प्राचीन काल से अस्तित्व में रहती तो संभव था कि उन में सूचित ढंग से सैनिकों की सांघिक शिक्षा का प्रबंध करने की कल्पना किसी न किसी को सूझती और शायद भारतीय नरेशों के सैन्यों में सातसात की पंक्ति करना, सब का मिलकर समान गति से कूच करना, सब का पहनावा तुल्य होना और आठसौ नऊसौ सिपाहियों का समूह बनाकर हमले चढाना आदि महत्वपूर्ण प्रथाओं का प्रचलन शुरु होता।

पर क्या कहें ? हिन्दुधर्म एवं हिन्दुत्व की रक्षा के लिये अस्तित्व में आये हुए विजयनगर के साम्राज्य में या तदुपरान्त कई शताब्दियों के पश्चात् प्रस्थापित हुए मराठों के अथवा पेशवाओं के शासनकाल में मरुतोंकी सी सैनिक शिक्षा-प्रणाली कार्यरूप में परिणत नहीं हो सकी। विजयनगरके राज्य में वेदोंपर भाष्य लिखनेवाले सायण माधव सदृश बडे आचार्य हुए जिन के वेदभाष्य प्रकट होनेपर भी वेदाध्ययन केवल यज्ञोंतक ही सीमित रहा। उस समय

श्री वेदप्रदर्शित एवं अनूठे ढंग से सांघिक सामर्थ्य बढानेहारा मरुतों का यह सैनिकीय शिक्षा का अनुशासन प्रत्यक्ष व्यवहारमें नहीं आ सका, अथवा यूं कहें कि तब किसी के ध्यान में यह बात नहीं आयी कि वैदिक सिद्धांतों को व्यावहारिक स्वरूप दिया जा सकता है, तो यह प्रतिपादन सचाई से दूर नहीं होगा ।

हाँ, श्री छत्रपति शिवाजी महाराज के काल से लेकर अन्तिम स्वतंत्र सातारा-नरेशतक या प्रथम पेशवा से ले १८१८ तक के मराठी साम्राज्य के काल में वेदाध्ययन के लिए लक्षावधि रुपयोंका व्यय हुआ, वेद कंठस्थ रखनेवाले ब्राह्मणोंको खूब दक्षिणा मिली पर अन्तमें क्या हुआ? अचम्भे की बात इतनी ही है कि, किसी को भी यह कल्पना नहीं सूझी कि, अर्थसहित वेदाध्ययन करनेवालों के लिये कुछ न कुछ प्रबंध करना चाहिये, या वैदिक साहित्य में लाभदायक एवं उपादेय कुछ हो तो ढूँढ लेना चाहिए और तुरन्त उसे व्यावहारिक स्वरूप दिया जाय । उस काल में वेद के बारे में बस यही धारणा प्रचलित थी कि, मन्त्र कंठाग्र रहें और यज्ञ के मौकेपर उन का उच्चार किया जाय; बहुत हुआ तो मन्त्र-जागर के अवसरपर मन्त्रपठन करना उचित है ।

ऐसी धारणा से प्रभावित होने के कारण, श्रीमत्सायणाचार्य के कालमें भी वेदभाष्य लिखा तो गया था तथापि उस वेदमें वर्णित सिद्धान्त व्यवहारमें नहीं आ सके; इतना नहीं किंतु अगर कोई उस काल में यह बतलानेका साहस करता कि वेदमंत्रों में निर्दिष्ट सिद्धांतों को कार्यरूप में परिणत करना चाहिये तो भी किसीका ध्यान उधर आकृष्ट नहीं होता, यहाँ तक उन दिनों केवल मात्र वेदपठन का अत्यधिक प्रचार था और उसे सार्वत्रिक मान्यता मिल चुकी थी । ऐसी दशा का भारी दुष्परिणाम यही हुआ कि भारतीय नरेशों के सैन्य प्रभावशाली बनने के बजाय अकिंचित्कर एवं निरुपयोगी हुए ।

भारत में युरोपीय राष्ट्रों के लोगोंका पदार्पण हुआ जो अपने साथ निजी संघ-सैनिक-प्रणाली ले आये और वह भारत के असंगठित सैनिकों की अपेक्षा ज्यादह प्रभावशाली प्रतीत होनेके कारण श्री महादजी शिंदेने फ्रेंच सेनापति को अपने यहाँ रखकर उसे अपने सिपाहियोंमें प्रचलित करनेकी चेष्टा की, तो भी अन्य महाराष्ट्र सरदार इस शिक्षा में पिछडे रहे । इसका परिणाम यही हुआ कि अन्त तक सिंधिया को फ्रेंचों की पराधीनता सहनी पडी । यह बात सब को ज्ञात थी कि सिंदे की सेना अधिक प्रभावोत्पादक हुई थी लेकिन उस प्रणाली का प्रचार किसीने नहीं किया था । अगर लोगों को परंपरागत रूप से यह बात विदित होती कि वेद के मरुत्सूक्तों में यह संघ-सैनिक-प्रणाली वर्णित है तथा यह पूर्णतया भारतीय है तो शायद अनुभव से इसका अधिक प्रचार हो जाता जिस के परिणामस्वरूप योरपीयनों से लडते समय जो समस्या व्यस्त अनुपात में हल हुई वही बहुधा सम परिमाण में छूट गयी होती ।

सहस्रों वर्षों से मरुद्देवता के मंत्रों को कंठ कहनेवाले ब्राह्मण भारत में चले आ रहे थे और उन्होंने शब्दों के उलट पुलट प्रयोग मुखोद्गत कर लिए पर मरुतोंकी सैनिकप्रणाली के सिद्धान्त अज्ञातदशा में रखकर केवल मंत्रों का उच्चारण किया । लेकिन एकने भी इस संघ-सैनिक-शिक्षण सिद्धांत की ओर लेशमात्र भी ध्यान नहीं दिया । केवल मंत्रों को जबानी याद कर लेने से तथा ऊँची आवाज में पढलेनेमात्र से अपूर्व पुण्य की प्राप्ति होगी, ऐसे विश्वास के सहारे ये हजारों वर्षों तक संतुष्ट रहे । इस असावधानी का परिणाम यही हुआ कि भारतीयोंका क्षात्रबल न्यूनातिन्यून होने लगा । अगर यह संघ-सैनिक-शिक्षा भारतीयों को प्राप्त होती तो प्रति पीढी में प्राप्त होनेवाले अनुभवके सहारे उस में खूब उन्नति हो जाती । पर उन्नति के स्थान पर भारतीयों के अव्यवस्थित एवं असंगठित सैन्य को योरपीयनों के सिखाये हुए संघशासित सैन्य के सम्मुख टिकना असंभव हुआ, जिस से अंततोगत्वा भारतवर्ष पराधीनता के दलदल में फँस गया । अर्थज्ञानपूर्वक अगर वेद का अध्ययन प्रचलित रहता और यदि किसी के ध्यान में यह बात पैठ जाती कि वेद के ज्ञान से व्यावहारिक जीवन में लाभ उठाया जा सकता है तो उपर्युक्त बात सहजही में किसी का ध्यान आकर्षित कर लेती और ऐसा हो जाने पर संगठित सैन्य का सृजन भारत में हो जाता ।

मरुतों के मंत्रों का और इन्द्र देवता के मंत्रों का ज्ञानपूर्वक पठन करनेवाले को सैनिकों का संघशासन कैसे किया जाय, सेना का संघ में विभजन किस ढंगसे हो सकता है,

तथा सभी सैनिकों का तुल्य वेष कैसे हो, सब का प्रबंध किस तरह किया जा सकता और उनकी सामुदायिक शक्तियों का सांघिक उपयोग किस प्रकार करना ठीक है आदि महत्त्वपूर्ण बातों की कुछ न कुछ जानकारी अवश्य हो जाती। परन्तु दुर्भाग्य से, सहस्रों वर्षों से वेद केवल मुखोद्गत एवं जबानी याद कर लेनेकी वस्तु बन गयी और वेदनिर्दिष्ट सैनिक-विद्या सुतरां अपनी होनेपर भी हमारे लिए वह एक परकीयसी हुई तथा यदि हमें वह सीखनी हो तो दूसरों की कृपा से ही वह साध्य हो सकती है। कारण इतना ही है कि सजीव एवं स्फूर्तिमय वैदिक युगसे लेकर आज तक जो सहस्र सहस्र वर्षों की लंबी चौडी खाई हमारे एवं वेदकाल के बीच पडी हुई है उसके परिणामस्वरूप हमारे वे पुराने संस्कार लुप्तप्राय से हो गये हैं और परंपरागत ज्ञानसंचय से हम सर्वथैव वंचित हो गये हैं। आज हमारी यह वास्तविक हालत है।

पाठक देखें और सोचें कि वेद का वास्तविक अर्थ हमें ज्ञात नहीं हुआ इसलिये राष्ट्रिय दृष्टिसे हमारी कितनी बडी हानि हुई है तथा अब भी अपने ज्ञानभाण्डारमें इस वैदिक ज्ञान की वृद्धि करने का प्रयत्न करें।

वैदिक ज्ञानके विचार से वर्तमानकालमें भी एक अत्यन्त उत्तम 'जीवन का तत्त्वज्ञान' प्राप्त हो सकता है। मरुत् सूक्त में प्रदर्शित सैनिकीय शिक्षा उस विशाल तत्त्वज्ञानका एक अंशमात्र है और क्षात्र तत्त्वज्ञान में उसका स्थान बडा ऊँचा है।

हाँ, यह बात सच है कि कंठस्थ कर लेने से ही वेदसंहिताएँ अब तक सुरक्षित रहीं और इसका सारा श्रेय वेदपाठ में समूचा जीवन बितानेहारे लोगों को मिलनाही चाहिए। यह सब बिलकुल ठीक है, क्योंकि अगर, वेदपाठ करने में महान् पुण्य है ऐसा विश्वास न बताया जाता तो शायद ही कोई वेद पढने में प्रवृत्त होता और वेद सदा के लिए उपेक्षित रहते। परन्तु यदि कहीं वेद के जीवित तत्त्वज्ञान को अर्थज्ञानपूर्वक व्यवहारमें लानेमें सफलता मिलती तो अपने क्षत्रिय वीर समूचे विश्व में विजयी हो जाते और भारतीय संस्कृतिपर जो आघात हुए वे न होते। अतः स्पष्ट कहना चाहिए कि वेद के अर्थ की ओर भारतीयों ने जो ध्यान नहीं दिया उससे उन्हें महान् हानि एवं क्षति के सम्मुखीन होना पडा। भारतीयों के जीवन का सारा तत्त्वज्ञान ग्रन्थों में बंद पडा रहा और भारतवासी उस भारी बोझ को ढोते हुए भी तनिक अंश में भी उस तत्त्वज्ञान से लाभ नहीं उठा सके। क्या यह हानि अल्पसी है? कदापि नहीं। अस्तु।

जो प्राचीनकाल एवं मध्ययुग में हो चुका उसकी ज्यादह छानबीन करनेसे कोई विशेष लाभ नहीं हो सकता क्योंकि जो घटनाएँ हो चुकीं वे अन्यथा नहीं हो सकतीं। हाँ, अब भविष्य में तथा वर्तमानकालमें भी जीवित ज्ञान ज्योतिकी ओर हमारा ध्यान अधिकाधिक आकर्षित होना चाहिए।

वेदमंत्रों में जीवित संस्कृति का तत्त्वज्ञान है और वह केवल कंठस्थ करने के लिए ही सीमित रहे सो ठीक नहीं; वास्तव में इस वैदिक तत्त्वज्ञान की सुदृढ नींवपर अपनी समाज-रचना एवं राष्ट्र निर्माणका विशाल मन्दिर उठ खडा हो जाए तो चाहिए तथा इस प्रकार अपने वैदिक तत्त्वज्ञान के आधार से सामाजिक पुनर्घटना एवं राष्ट्रीय व्यवहार का संचलन होने लगे तो सचमुच आधुनिक युग की अनेक जटिल समस्याएँ बडी सुगमता से हल हो सकती हैं ऐसा हमारा दृढ विश्वास है। आज संसार में बलवाद, समाजसत्तावाद, साम्यवाद, लोकतंत्रशासनवाद, साम्राज्यवाद आदि विविध वादोंकी धूम मच रही है। मानवजाति इतने वादों के मध्य अपना कोई निर्णय नहीं कर पाती, जिस से समूचा मानवसमाज बडा दुःखी हो उठा है। अब भारतीय जनता देख ले कि, क्या इन सभी पूर्वोक्त परस्पर कलहायमान वादों की अपेक्षा, आध्यात्मिक 'समत्ववाद' जो कि वेदों की बहुमूल्य देन है, यदि संसार के सामने रखा जाए तो इस तत्त्वज्ञानके सहारे संसारके सभी उलझन में डालने वाले पेचीदे सवालों को आसानी से हल नहीं किया जा सकता है? अवश्य हो सकता है, ऐसा दृढ विश्वास है।

चूँकि बहुत प्राचीन काल से यह निर्धारितसा हो चुका था कि वेद तो सिर्फ कंठाग्र करने के लिए ही हैं अतः यह वैदिक तत्त्वज्ञान बहुत ही पिछडा हुआ है। अब भारतीयों का यह प्रमुख कर्तव्य है कि इस अमोलिक तत्त्वज्ञान को समूचे विश्व के सम्मुख अधिक बलपूर्वक रखें और आगे बढना शुरु कर दें कि इस तत्त्वज्ञानके बलबूतेपर ही संसार के सभी विकट प्रश्न हल किये जा सकते हैं।

वैश्वानर यज्ञ।

हाँ, यह बिलकुल सत्य है कि वेद यज्ञके लिए हैं परन्तु " **यह यज्ञ मानव-जीवनरूपी विश्वव्यापक महायज्ञ है।** " यह यज्ञ इस वैश्वानर के लिए करना है। यह प्रारंभ में प्रचलित बडा भारी व्यापक अर्थ लुप्त हो गया और पश्चात् केवल अतिसीमित एवं अतिसंकुचित अर्थ जनतामें रूढ हो गया, जब कि ये समूचे मन्त्र इन यज्ञों में ऊँची आवाजमें पढे जाने लगे। आज न जाने कितनी शताब्दियों से बस यही कार्यक्रम प्रचलित है। आज के दिन मौलिक तथा ऊच्चे व्यापक अर्थ की अक्षम्य उपेक्षा हो रही है, कोई भी उधर तनिक भी ध्यान नहीं देता है। इस महान् त्रुटि के कारण वैदिक तत्त्वज्ञान बहुत पीछे रह गया है। अब हमें उचित है कि वेदमंत्रों के अर्थ देखकर वैश्वानर यज्ञ के स्वरूप में वैदिक तत्त्वज्ञान की झाँकी प्राप्त करें और उसे मानवजाति के विचारार्थ धर दें। यह कार्य बडा ही प्रचंड है सही, लेकिन यदि करने के लिए कटिबद्ध हो उठें तो अवश्य उसमें सफलता मिलेगी इसमें क्या संशय?

पुराणों का समालोचन।

इस ग्रन्थ में हम मरुतों के मन्त्रों का अर्थ पाठकों के लिए दे चुके हैं। यह अच्छा होता अगर हम साथ ही साथ अनेक पुराण-ग्रन्थोंमें उपलब्ध मरुतों की कथाओंको भी इस पुस्तक में स्थान दे देते क्योंकि तब यह दर्शाना सुगम होता कि मूल वैदिक सिद्धान्तों को पुराणों के रचयिताओंने किस स्वरूप में परिवर्तित किया। पर इन दिनों मुद्रणार्थ कागज आदि साधन अति दुर्लभ होने के कारण ग्रन्थ का स्वरूप बढाना असम्भव हुआ। इतना ही आज हम कह सकते हैं कि द्वितीय संस्करण के मौकेपर यह सारी जानकारी दे दी जायगी। सभी भविष्यकालीन विचार उस समयकी जागतिक परिस्थिति पर ही निर्भर हैं।

मरुद्देवता और युद्धशास्त्र।

मरुद्देवता के मन्त्रों में मरुतों के बखान करने के बहाने से युद्धशास्त्र, युद्धसाधन, युद्धके दाँव-पेच आदि का उल्लेख किया है। ऐसी बातों का स्पष्टीकरण भारतीय युद्धशास्त्र-विषयक ग्रन्थों की दृष्टि से करना चाहिए और यह अधिक विस्तृत अध्ययन की आवश्यकता रखता है। आज हमें युद्धशास्त्र पर बहुतसा साहित्य उपलब्ध है और महाभारत आदि ग्रन्थों में स्थानस्थान पर विभिन्न निर्देश हैं। यदि इन सभी निर्देशों का सम्पूर्णरूपसे विचार किया जाय, तो बहुत कुछ बोध मिल सकता है, पर यह सब भविष्य-कालीन स्थिति पर ही अवलम्बित है।

निसर्ग में मरुतों का स्थान।

सभी वैदिक देवता निसर्ग में अवस्थित हैं और उसी तरह मरुतों का भी प्राकृतिक विश्वमें स्थान है, जो '**वर्षा-कालीन वायुप्रवाह**' से स्पष्ट होता है। वर्षा होते समय आँधी एवं वेगवान् पवन का बहना शुरु होता है। आकाश मेघों से व्याप्त होता है, बिजली की कडक सुनाई देती है और प्रचण्ड तूफान का अवतरण होता है। ये प्रबल झंझावात ही ' मरुत् ' हैं, जो इनका बाह्य प्रकृति में दृश्यमान रूप है।

जिस समय प्रबल आँधी चलने लगती है, वेगवान झंझावात बहते हैं, तब बडेबडे पेड जडमूल से उखडकर टूट पडते हैं, वृक्षवनस्पति काँपने लगते हैं, कभी कभी तो बिजली के गिरने से विनष्ट भी होते हैं। इस समय की स्थिति का वर्णन महायुद्ध के वर्णन से बहुत कुछ साम्य रखता है। भीषण महासमर में भी कह नहीं सकते कि कौन जीवित रहेगा या कौन मौत के मुँह में समा जायेगा। विश्व में तूफानी वायुमण्डल तथा आँधी के जोरसे जो खलबली मचती है उस में और प्रबल दुश्मनों से होनेवाली वीरों की भिडन्त में साम्य अवश्य ही दिखाई पडता है।

वैदिक कवियोंने मरुतों का वर्णन मानवी स्वरूप में ही किया है। मरुतों के सूक्त पढ लेनेसे साफसाफ दिखाई देता है कि कुछ मंत्रों में झंझावात का बखान किया है और कई मंत्रों में स्पष्ट रूप से मानवी वीरोंका वर्णन किया है तो अन्य कुछ मंत्रों में दोनों एक दूसरे से हिल मिल गये हैं।

देवताओंके वर्णनको '**आधिदैविक**', मानवोंके वर्णनको '**आधिभौतिक**' और आत्मशक्ति के वर्णनको '**आध्यात्मिक**' कहते हैं। जो पिंडमें है वही ब्रह्माण्डमें पाया जाता है, यह सिद्धान्त इस वर्णनके मूलमें है। इसी कारण किसी एक क्षेत्र में जो वर्णन किया हुआ हो, वही दूसरे क्षेत्र में

परिवर्तित कर दिखलाया जा सकता है। मरुत् अधिदैवत में '**वर्षाकालीन वायुप्रवाह,**' अधिभूत में '**वीर क्षत्रिय**' और अध्यात्म में '**प्राण**' हैं। इस दृष्टिकोण से एक क्षेत्र का वर्णन दूसरे क्षेत्र के लिए भी लागू हो सकता है। इस संबंध को देख लेने से ज्ञात होगा कि मरुतों के वर्णन में वीरों का बखान किस तरह समाया हुआ है।

पाठकों को स्पष्ट प्रतीत होगा कि 'मरुत्' मर्त्य, मानव, मनुष्य-श्रेणी के हैं ऐसा समझ कर उनका वर्णन इन मंत्रों में किया है। इस निश्चित वर्णन में वैदिक देवताओं का आविष्करण विशेष सत्त्वरूप से होता है। ठीक वैसे ही मानवजातिमें मरुत् देवता सैनिक क्षत्रियों के रूप में प्रकट होती है। इन्द्र देवता नरेश एवं सरदार के स्वरूप में और ब्राह्मणों में अग्नि, ब्रह्मणस्पति आदि देवता व्यक्त स्वरूप धारण करते हैं। अतः उन उन देवताओं के वर्णन के अवसर पर उस उस वर्ण के लोगों के कर्तव्य विशेषतया वर्णित किये जाते हैं। इसी रीतिसे मरुतों के वर्णन में सैनिकों की हैसियत से कार्य करनेवाले क्षत्रियों के कर्तव्य-कर्मों का उल्लेख किया है और इन सूक्तों में क्षत्रियधर्म का स्पष्टीकरण हुआ है जिसका कि विचार पाठकों को अवश्य करना चाहिए। अस्तु।

अधिक विचार करने के लिए मरुद्देवता का मंत्रसंग्रह पाठकों के सम्मुख रखा है। आशा है कि इस तरह सोच-विचार करके निष्पन्न होनेवाले मानवी क्षात्रधर्म की जानकारी प्राप्त करने का प्रयत्न होगा।

स्वाध्याय-मंडल,
औंध, जि. (सातारा)
दिनांक १५।८।४३

निवेदक
श्री० दा० सातवलेकर

प्रस्तावनाकी अनुक्रमणिका।

वीर मरुतों का काव्य।	३
वीर काव्य के मनन से उपलब्ध बोध।	,,
महिलाओं का वर्णन नहीं पाया जाता है।	,,
नारी के तुल्य तलवार।	४
साधारण स्त्री।	,,
उत्तम माताओं के खिलाडी पुत्र।	,,
महिलाओं के समान वीर अलंकृत तथा विभूषित होते हैं।	५
एक ही घर में रहनेवाले वीर।	६
संघ बनाकर रहनेवाले वीर।	,,
सभी सदृश वीर।	७
मरुतों का गणवेश।	,,
सरपर शिरस्त्राण।	,,
सब का सदृश गणवेश।	,,
मरुतों के हथियार, कुठार, परशु, तलवार, वज्र।	८-९
सुदृढ मजबूत हथियार।	१०
मरुतों का रथ।	,,
चक्रहीन रथ का चित्र।	११
हरिणों से खींचे जानेवाले रथ।	१२
अश्वरहित रथ।	,,
शत्रु पर किया जानेवाला आक्रमण।	१३
मरुत् मानव ही थे।	,,
मरुतों की विद्याविलासिता।	१४
ज्ञानी, दूरदर्शी, वक्ता, कवि, बुद्धिमानी, साहसीपन, सामर्थ्य, उत्साह, उग्र वीर, उद्यमी, कुशल वीर, कथाप्रिय, रुग्णोपचारप्रवीण, खिलाडी, नृत्यप्रियता, वादनपटुत्व।	१४-१६
शत्रु को जडमूल से उखाडनेवाले वीर।	१६
भव्य आकृतिवाले वीर।	१७
रक्तिमामय गौरवर्ण।	,,
अपने तेजसे चमकनेहारे वीर।	,,
अन्न उत्पन्न करनेहारे वीर।	,,
गायोंका पालन करते हैं।	१८
मरुतोंके घोडे।	,,
इन वीरों का बल।	,,
मरुतों की संरक्षणशक्ति।	२०
मरुतों की सेना।	,,
विजयी वीर।	२१
शत्रुओं का विध्वंस।	२२
दुश्मनोंको रुलानेवाले वीर।	,,
मरुतों की सहनशक्ति।	,,
मरुतों का पर्वतसंचार।	२३
स्वयंशासक वीर।	,,
मरुत्-गणका महत्त्व।	२४
अच्छे कार्य करते हैं।	,,
शत्रुदलसे युद्ध।	,,
मरुत् वीरोंका दातृत्व।	२५
मानवों का हित करनेहारे वीर। कुलीन वीर।	२६
ऋण चुकानेहारे। निर्दोष वीर	,,
मरुतों का सम्पर्क। मरुतोंका धन।	२७
मरुतोंका स्वभाव-वर्णन।	२९
मरुतोंके सूक्तोंमें वीरकाव्य।	३१
वेदका अध्ययन।	३३
वैश्वानर यज्ञ। पुराणोंका समालोचन। मरुद्देवता और युद्धशास्त्र। निसर्गमें मरुतोंका स्थान।	३६

दैवत-संहितान्तर्गत

मरुद्देवता का मन्त्रसंग्रह ।

अनुक्रमणिका ।

मरुद्देवता		पृष्ठ
१ विश्वामित्रपुत्र मधुच्छंदा ऋषि	(मंत्र १-४)	१-२
२ कण्वपुत्र मेधातिथि ऋषि	(मं० ५)	३
३ घोरपुत्र कण्व ऋषि	,, (मं० ६-४५)	,,
४ कण्वपुत्र पुनर्वत्स	,, (मं० ४६-८१)	१६
५ कण्वपुत्र सोभरि	,, (मं० ८२-१०७)	२७
६ गोतमपुत्र नोधा	,, (१०८-१२२)	३७
७ रहूगणपुत्र गोतम	,, (१२३-१५६)	४४
८ दिवोदासपुत्र परुच्छेप	,, (१५७)	५९
९ मित्रावरुणपुत्र अगस्त्य	,, (१५८-१९७)	,,
१० शुनकपुत्र गृत्समद	,, (१९८-२१३)	७८
११ गाथीपुत्र विश्वामित्र	,, (२१४-२१६)	८६
१२ अत्रिपुत्र श्यावाश्व	,, (२१७-३१७)	८७
१३ अत्रिपुत्र एवयामरुत्	,, (३१८-३२६)	१२४
१४ बृहस्पतिपुत्र शंयुः	,, (३२७-३३३)	१२८
१५ बृहस्पतिपुत्र भरद्वाज	,, (३३४-३४५)	१३०
१६ मित्रावरुणपुत्र वसिष्ठ	,, (३४५-३९४)	१३४
१७ अङ्गिरसपुत्र पूतदक्ष	,, (३९५-४०६)	१५१
बिंदु	,, ,, ,,	,,
१८ भृगुपुत्र स्यूमरश्मि	,, (४०७-४२२)	१५४
वाजसनेयी यजुर्वेदमंत्र	,, (४२३-४२८)	१६१
प्रजापतिः	,, (४२३; ४२८)	
गाथीपुत्र विश्वामित्र	,, (४२४)	
सप्तर्षयः	,, (४२५-४२७)	
१९ अत्रिपुत्र श्यावाश्व	,, (४२९)	१६७
२० ब्रह्मा	,, (४३०-४३३)	,,
२१ अथर्वा	,, (४३४-४३६)	१६९
२२ शन्तातिः	,, (४३७-४३९)	१७०
२३ मृगार	,, (४४०-४४६)	१७१
२४ अङ्गिरा	,, (४४७)	१७२
२५ अत्रिपुत्र वसुश्रुत	,, (४४८)	१७२
,, श्यावाश्व	,, (४४९-४५६)	,,
अथर्वा	,, (४५७-४६४)	१७७
अग्निर्मरुतश्च ।		
कण्वपुत्र मेधातिथि	,, (४६५-४७३)	१७९
कण्वपुत्र सोभरि	,, (४७४)	१८२
इन्द्रो मरुतश्च ।		
विश्वामित्रपुत्र मधुच्छन्दा	,, (४७५-४७६)	,,
मरुत्वानिन्द्रः ।		
कण्वपुत्र मेधातिथि	,, (४७७-४७९)	१८३
मित्रावरुणपुत्र अगस्त्य	,, (४८०-४९७)	१८४
इन्द्रामरुतौ ।		
अंगिरसपुत्र तिरश्ची	,, (४९८)	१९३
मरुत्पुत्र द्युतान	,, ,,	,,
मरुतों के मंत्रों के ऋषि और उनकी मंत्रसंख्या		१९४
मरुतों का संदर्भ		
ऋग्वेदवचन		१९४
सामवेद "		१९७
अथर्ववेद "		,,
वाजसनेयी यजुर्वेद वचन		१९८
काठक संहिता	,,	१९९
ब्राह्मण-ग्रंथ-वचन		२००
आरण्यक ,, ,,		२०२
उपनिषद्वचन		,,
मरुतों के मंत्रों में सुभाषित		२०३
मधुछंदाः, मेधातिथिः, कण्वः		,,

	पृष्ठ		पृष्ठ
पुनर्वत्स	२०६	श्यावाश्व	२१६
सोभरि	२०८	एवयामरुत्, शंयुः	२२३
नोधा	२०९	भरद्वाज	२२४
गौतमः	२१०	वसिष्ठ	२२५
अगस्त्यः	२१३	बिन्दु, पूतदक्ष, स्यूमरश्मि	२२७
गृत्समदः	२१५	मरुद्देवता-मन्त्रों में स्त्रीविषयक उल्लेख	२२९
विश्वामित्र	२१६	मरुद्देवता-पुनरुक्त-मंत्राः	२३०

दैवत–संहितान्तर्गत

मरुत् देवता का मन्त्रसंग्रह।

[अर्थ, भावार्थ और टिप्पणी के साथ]

विश्वामित्रपुत्र मधुच्छन्दा ऋषि। (ऋ० १।६।४,६,८,९)

(१) आत्। अह। स्वधाम्। अनु। पुनः। गर्भऽत्वम्। आऽईरिरे।
दधानाः। नाम। यज्ञियम्॥ ४॥

अन्वयः– १ आत् अह यज्ञियं नाम दधानाः (मरुतः) स्व-धां अनु पुनः गर्भत्वं एरिरे।

अर्थ– १ (आत् अह) सचमुचही (यज्ञियं नाम) पूजनीय नाम तथा यश (दधानाः) धारण करनेवाले वीर मरुत् (स्व-धां अनु) अन्नकी इच्छासे (पुनः) बार बार (गर्भत्वं एरिरे) गर्भवासिताको प्राप्त होते हैं।

भावार्थ– १ यथेष्ट अन्न मिले इस लालसासे पूजनीय नामोंसे युक्त यशस्वी मरुत् फिर बार बार गर्भवास स्वीकारने के लिए तैयार हुए।

टिप्पणी– [१] मेघपक्षमें– भूमंडल पर जो जल विद्यमान है, वह भापके रूपमें ऊपर उठ जाता है और वह वायु-मंडल की सहायता से मेघों में एकत्रित हुआ पाया जाता है। अब अन्नका उत्पादन हो इस हेतु मेघमाला में जलरूपी शिशुका गर्भ रहता है। वीरपक्ष में– बखान करनेयोग्य यश पानेवाले वीर पुरुष, जनता के लिए यथेष्ट अन्न मिल जाए, इसलिए भाँति भाँति के कार्य निष्पन्न कर देते हैं और मृत्यु के उपरांत पुनः गर्भवास में रहकर उसी तरह कार्य करनेकी इच्छा करते हैं। अध्यात्ममें मरुत् 'प्राण' हैं, अधिभूतमें 'वीर सैनिक' हैं और अधिदैवतमें 'वायु' हैं। मरुतोंके इस काव्यमें प्रमुखतया वीरोंका ही वर्णन यत्रतत्र पाया जाता है और कई मंत्रोंमें 'वायु' तथा 'प्राण' का भी बखान किया गया है। हाँ, प्राणविषयक निर्देश बहुतही कम हैं। (१) स्वधा (स्व-धा = स्वं दधाति पुष्णातीति स्वधा)= जो अपना धारण तथा पोषण करता हो वह। अन्न, उदक, अपनी धारणशक्ति, आत्मशक्ति, निजसामर्थ्य, प्रणाली, नियम, सुख, आनंद, स्वस्थान। स्वधां अनु=अन्न पानेके लिए, अपनी धारकशक्तिकी वृद्धि करनेके लिए। (२) यज्ञियं नाम= पूज्य नाम, वर्णन करनेयोग्य यश। वा० यजु० १७।८०–८५ तक मरुतोंके ४९ नाम दिये हैं। हरएक नाम मरुतोंका एकएक गुण बतलाता है और इस तरह वर्णनीय नाम धारण करनेवाले ये मरुत् हैं। ये नाम मरुतों की कर्तव्यचातुरी को स्पष्ट करनेवाली विभिन्न उपाधियाँ हैं। देखिए मन्त्र १४९। (३) पुनः गर्भत्वं एरिरे= बारबार गर्भवासमें रहते हैं याने फिरसे शरीर धारण करके वेही सराहनीय कार्यकलाप सुचारु रूपसे निभाते रहते हैं। देखिए अध्यात्ममें 'प्राण' बारबार संचार करके जीवजंतुओंको जीवन प्रदान करता है। अधिभूतमें यद्यपि वीर सैनिक क्षतविक्षत हो धराशायी हो जाते हैं तो भी फिर गर्भवासका स्वीकार कर विश्वकल्याण के लिए अपने जीवनका बलिदान करनेमें झिझकते नहीं। अधिदैवत में 'वायुप्रवाह' गैसरूपी तथा बाष्पीभूत जलको गर्भवत् ढंगसे मेघमंडलमें धर देते हैं, जिससे वर्षाके रूपमें जन्म ले, समूचे संसार की प्यास बुझाने में उनका अर्पण हुआ करता है। इस भाँति मरुत् हर जगह विश्वके हितके लिए अपना बलिदान करते हैं और बारबार जन्म लेकर वही अपना पुराना विश्वकल्याण का गुरुतर कार्यभार निभाने का कार्य प्रचालित रखते हैं। (४) मरुत्= (मा-रुद्) जो लोग रोते नहीं बैठते, ऐसे उत्साह तथा उमंगसे भरे वीर, (मा-रुत्) जो व्यर्थकी डींग नहीं मारते हैं, पर कर्तव्य कर्म सतर्कतापूर्वक करते हैं ऐसे वीर, (मर्-उत्) मरनेतक उठकर कार्य करनेवाले वीर योद्धा।

(२) देवऽयन्तः । यथा । मतिम् । अच्छ । विदत्ऽवसुम् । गिरः ।
महाम् । अनूषत । श्रुतम् ॥ ६ ॥
(३) अनवद्यैः । अभिद्युऽभिः । मखः । सहस्वत् । अर्चति । गणैः । इन्द्रस्य । काम्यैः ॥८॥
(४) अतः । परिऽज्मन् । आ । गहि । दिवः । वा । रोचनात् । अधि ।
सम् । अस्मिन् । ऋञ्जते । गिरः ॥ ९ ॥

अन्वयः— २ देवयन्तः गिरः महां विदत्-वसुं श्रुतं यथा मतिं, अच्छ अनूषत ।
३ मखः अन्-अवद्यैः अभि-द्युभिः काम्यैः गणैः इन्द्रस्य सहस्वद् अर्चति ।
४ (हे) परिज्मन् ! अतः वा दिवः रोचनात् अधि आ गहि, अस्मिन् गिरः समृञ्जते ।

अर्थ- २ (देवयन्तः) देवत्व पाने की लालसावाले उपासकों की (गिरः) वाणियाँ, (महां) बडे तथा (विदत्-वसुं) धन की योग्यता जाननेवाले (श्रुतं) विख्यात वीरों की (यथा) जैसे (मतिं) बुद्धिपूर्वक स्तुति करनी चाहिए, (अच्छ अनूषत) उसी प्रकार सराहना करती आई हैं ।

३ (मखः) यह यज्ञ (अन्-अवद्यैः) निर्दोष, (अभि-द्युभिः) तेजस्वी तथा (काम्यैः) वाञ्छनीय ऐसे (गणैः) मरुत्समुदायों से युक्त (इन्द्रस्य सहस्-वत्) इन्द्र के शत्रुओं को परास्त करने में क्षमता रखनेवाले बल की (अर्चति) पूजा करता है ।

४ हे (परि-ज्मन्!) सभी जगह गमन करनेवाले मरुत् गण! (अतः) यहाँ से (वा) अथवा (दिवः) द्युलोकसे या (रोचनात् अधि) किसी दूसरे प्रकाशमान अंतरिक्षवर्ती स्थानमेंसे (आ गहि) यहींपर आओ, क्योंकि [अस्मिन्] इस यज्ञमें [गिरः] हमारी वाणियाँ तुम्हारी ही [समृञ्जते] इच्छा कर रही हैं ।

भावार्थ— २ जो उपासक देवत्व पाना चाहते हैं, वे वीरों के समुदाय की सराहना करते हैं; क्योंकि यह संघ जानता है कि, जनता के उच्चतम निवास के लिए आवश्यक धनकी योग्यता कैसी है । अतएव वह इस तरहके धनको पाकर सबको उचित प्रमाण में प्रदान करता है (और यही बात अगले मन्त्र में दर्शायी है ।)

३ यज्ञ की सहायता से दोषरहित, तेजस्वी तथा सब के प्रिय वीरों के संघों में रहकर, शत्रु का नाश करनेवाले इन्द्र के महान् प्रभावी सामर्थ्य की ही महिमा गायी जाती है ।

४ चूँकि मरुत्संघों में पर्याप्त मात्रामें शूरता तथा वीरता विद्यमान् है, अतः उसके प्रभावसे (परि-ज्मन्) समूचे विश्व को व्याप्त कर लेते हैं । वीरों को चाहिए कि वे इन गुणों को स्वयं धारण करें । ऐसे वीरों का सत्कार करने के लिए सभी कवियों की वाणियाँ उत्सुक रहा करती हैं ।

टिप्पणी— [२] (१) ' देवयन्तः ' देवत्व हमें मिल जाय इसलिए निर्धारपूर्वक उपासना करनेवाले उपासक । (२) ये भक्तगण धनकी महत्ताको जाननेवाले बडे यशस्वी मरुत् नामधारी वीरों की ही प्रशंसा करते हैं । कारण इतनाही है कि, इस भाँति वर्णन करने से उनके गुण धीरेधीरे उपासकों में बढने लगेंगे । उपासक इस बातसे परिचित हैं । मनोविज्ञान का एक सिद्धान्त है कि, जिन विचारोंको हम मन में स्थान देंगे वे ही आगे चलकर हम में दृढमूल हो बैठते हैं और यही देवतास्तोत्र में है । उपासक जिसकी जैसी स्तुति करेगा वैसे ही वह बन जायेगा । ' विदत्-वसु ' पद यहाँपर है । ' वसु ' अर्थात् (वासयति इति) मानवों का निवास सुखदायक होने के लिए जो कुछ भी सहायक हो वह वसु है । अब ये वीर इस धनकी योग्यता और महत्ता से परिचित हैं, क्योंकि यह मानवों के सुखमय निवास बनाने में बडा भारी सहायक है । अन्य सभी वीर इन्हीं वीरोंका अनुकरण करें । [३] (१) मखः= (मख् गतौ)= पूज्य, कर्मण्य, आनंदी, यज्ञ, प्रशंसनीय कर्म । [४] (१)परि-ज्मा = सर्वत्र अभिगमन करनेवाला, सर्वव्यापक । (२) समृञ्ज्- (ऋञ्जतिः प्रसाधनकर्मा । निरुक्त. ६।२१) सुशोभित करना, सजावट करना, सुव्यवस्थित करना ।

कण्वपुत्र मेधातिथि ऋषि (ऋ० १।१५।२)

(५) मरुतः । पिबत । ऋतुना । पोत्रात् । यज्ञम् । पुनीतन ।
यूयम् । हि । स्थ । सुऽदानवः ॥ २ ॥

घोरपुत्र कण्व ऋषि (ऋ. १।३७।१-१५)

(६) क्रीळम् । वः । शर्धः । मारुतम् । अनर्वाणम् । रथेऽशुभम् ।
कण्वाः । अभि । प्र । गायत ॥ १ ॥

(७) ये । पृषतीभिः । ऋष्टिऽभिः । साकम् । वाशीभिः । अञ्जिभिः ।
अजायन्त । स्वऽभानवः ॥ २ ॥

अन्वयः- ५ (हे) मरुतः ! ऋतुना पोत्रात् पिबत, यज्ञं पुनीतन, (हे) सु-दानवः ! हि यूयं स्थ।
६ (हे) कण्वाः ! वः मारुतं क्रीळं अन्-अर्वाणं रथे-शुभं शर्धं अभि प्र गायत ।
७ ये स्व-भानवः पृषतीभिः ऋष्टिभिः वाशीभिः अञ्जिभिः साकं अजायन्त ।

अर्थ- ५ हे [मरुतः !] वीर मरुतो ! [ऋतुना] उचित अवसरपर [पोत्रात्] पवित्रता करनेवाले याजक के वर्तन से [पिबत] सोमरस का सेवन करो और इस [यज्ञं पुनीतन] यज्ञ को पवित्र करो हे [सु-दानवः !] उच्च कोटिका दान करनेवाले मरुतो ! [यूयं स्थ] तुम पवित्रता संपादन करनेवाले ही हो।
६ हे [कण्वाः !] काव्यगायन करनेवाले ! [वः] तुम्हारे निजी कल्याणके लिए [मारुतं] मरुतों के समूहसे उत्पन्न हुआ, [क्रीळं] क्रीडनमय भावसे युक्त [अन्-अर्वाणं] भाइयोंमें पाये जानेवाली कलहप्रिय मनोवृत्ति से कोसों दूर याने जिसमें पारस्परिक मनोमालिन्य नहीं है, ऐसा [रथे-शुभं] रथमें सुहानेवाले अर्थात् रथी वीर को शोभादायक जो [शर्धं] बल है, उसी का [अभि प्र गायत] वर्णन करो।
७ [ये स्व-भानवः] जो अपने निजी तेज से युक्त हैं, वे मरुत् [पृषतीभिः] धव्वों से अलंकृत हिरनियों या घोडियों के साथ [ऋष्टिभिः] भालोंसहित [वाशीभिः] कुठार एवं [अञ्जिभिः] वीरों के आभूषण या गणवेश के [साकं अजायन्त] संग प्रकट हुए।

भावार्थ- ५ [१] मौसम के अनुकूल जो सोमरससदृश पेय है, वह पवित्र वर्तन में ही लेना चाहिए। [२] जो कर्म करना हो वह यथासंभव पवित्र करनेकी चेष्टा करनी चाहिए। उपेक्षा या उदासीनता नहीं करनी चाहिए।
६ अपनी प्रगति हो इसलिए उपासक मरुतों के स्तोत्र का पठन करें; क्योंकि इन मरुतों में सांघिक बल, खिलाडीपन, पारस्परिक मित्रता, भ्रातृप्रेम तथा रथी बनने के लिए उचित बल विद्यमान है।
७ मरुतों के रथ में जो घोडियाँ या हिरनियाँ जोडी जाती हैं वे धब्बेवाली होती हैं। मरुतों के निकट भाले, कुठार, वीरभूषण या गणवेश पाये जाते हैं। कहने का अभिप्राय इतना ही है कि, मरुत् जिस प्रकार सुसज्ज दीख पडते हैं वैसे ही अन्य सभी वीर सदैव शस्त्रास्त्रों से लैस रहें।

टिप्पणी [५] पोत्रं= पवित्रता करनेवाला याजक, पवित्र वर्तन। [६] (१) मरुत् संघ बनाकर रहते हैं, अतः वे बलिष्ठ हैं। (२) खिलाडीपन में जो उदार भाव पाये जाते हैं वे मरुतों में हैं। (३) 'अर्वा' शब्द तै. सं. में 'भ्रातृव्य' अर्थ में आया है। 'अर्वा वै भ्रातृव्यः' [तै. सं. ६।३।८।४] भ्रातृद्वेष, भाइयोंके मध्य प्रेमभाव न रहना आदि बातों से पारस्परिक बल घटने लगता है। 'अर्व्- हिंसायां' अतः 'हिंसा करना' भी एक अर्थ है। 'अनर्वा' अर्थात् अहिंसक भाव और इससे पैदा होनेवाला बल जिसे 'अनर्व' नाम दिया जा सकता है। 'अर्वा' का अर्थ घोडा या हीन [Mean] है, अतः 'अनर्वा' हीन भावसे शून्य जो बल। (४) रथी, महारथी होनेवाले लोगोंके लिए ऐसे बल की अतीव आवश्यकता है। मरुतों में ठीक यही बल विद्यमान है। जो इस बलका बखान करने लगता है, उसमें यह

(८) इहऽइव । शृण्वे । एषाम् । कशाः । हस्तेषु । यत् । वदान् ।
नि । यामन् । चित्रम् । ऋञ्जते ॥ ३ ॥
(९) प्र । वः । शर्धाय । घृष्वये । त्वेषऽद्युम्नाय । शुष्मिणे । देवत्तम् । ब्रह्म । गायत ॥४॥
(१०) प्र । शंस । गोषु । अघ्न्यम् । क्रीळम् । यत् । शर्धः । मारुतम् ।
जम्भे । रसस्य । ववृधे ॥ ५ ॥

अन्वयः— ८ एषां हस्तेषु कशाः यत् वदान् इह इव शृण्वे, यामन् चित्रं नि ऋञ्जते ।
९ वः शर्धाय, घृष्वये, त्वेष-द्युम्नाय शुष्मिणे, देवत्तं ब्रह्म प्र गायत ।
१० यत् गोषु, क्रीळं मारुतं, रसस्य जम्भे ववृधे (तत्) अ-घ्न्यं शर्धः प्र शंस ।

अर्थ- ८ [एषां हस्तेषु] इन मरुतों के हाथों में विद्यमान [कशाः] कोडे [यत्] जब [वदान्] शब्द करने लगते हैं, तब उन ध्वनियों को मैं [इह इव] इसी जगह पर खडा रह कर [शृण्वे] सुन लेता हूँ। वह ध्वनि [यामन्] युद्धभूमि में [चित्रं] विलक्षण ढंग से [नि-ऋञ्जते] शूरता प्रकट करती है।

९ [वः शर्धाय] तुम्हारा बल बढाने के लिये, [घृष्वये] शत्रुदल का विनाश करने के हेतु और [त्वेष-द्युम्नाय] तेज से प्रकाशमान [शुष्मिणे] सामर्थ्य पाने के लिए [देवत्तं ब्रह्म] देवता-विषयक ज्ञान को बतलानेवाले काव्य का [प्र गायत] तुम यथेष्ट गायन करो।

१० (यत्) जो बल (गोषु) गौओं में पाया जाता है, जो (क्रीळं मारुतं) खिलाडीपन से परिपूर्ण मरुत् संघों में विद्यमान है, जो (रसस्य जम्भे) गोरस के यथेष्ट सेवनसे (ववृधे) बढ जाता है, उस (अ-घ्न्यं शर्धः) अविनाशनीय बल की (प्र शंस) स्तुति करो।

भावार्थ- ८ शूर मरुत् अपने हाथों में रखे हुए कोडों से जब आवाज निकालने लगते हैं तब उस शब्द को सुनकर रणक्षेत्र में लडनेवाले वीरों में जोशीले भाव उठ खडे होते हैं।

९ अपना बल [शर्धः] बढाना चाहिए। शत्रुदल को तहसनहस करने के लिए उन से [घृष्विः] संघर्ष करने को पर्याप्त बल या शक्ति रहे, ताकि शत्रुओं पर टूट पडने पर अपने को मुँह की खाना न पडे और तेज का उजियारा फैलानेवाली सामर्थ्य प्राप्त हो, इसलिए [त्वेष-द्युम्नाय शुष्मिणे] जिसमें देवता की जानकारी व्यक्त की गयी हो, ऐसे स्तोत्र का [देवत्तं ब्रह्म] पठन एवं गायन करना उचित है, क्योंकि इस भाँति करने से तुम में यह शक्ति पैदा होगी। जो विचार बारबार मन में दुहराये जाते हैं वे कुछ समय के उपरान्त हम से अभिन्न हो जाते हैं।

१० गोरस के रूप में गौओं में बल तथा सामर्थ्य इकट्ठा किया जाता है. वीरों की क्रीडासक्त वृत्ति में वह बल प्रकट हो जाता है, जो हरएक में बढानेयोग्य है। गोरस का पर्याप्त सेवन करने से वह शक्ति अपने शरीर में बढ सकती है और इसकी सराहना करनी उचित है।

धीरे धीरे बढने लगता है, अतः वर्णन करनेवाला भी बलिष्ठ बनता है। 'अनर्वाणं' का अर्थ कइयोंके मतानुसार घोडोंसे शून्य, जिनके पास घोडे नहीं हैं ऐसा करना चाहिए, पर अन्य अनेक स्थानों पर मरुतों को 'अरुणाश्वः' 'पृषदश्वः' 'अश्वयुजः' आदि विशेषण दिये गये हैं, अतः यही अनुमान ठीक है कि, मरुतोंके निकट घोडे विद्यमान थे। इसलिए 'अन्-अर्वा' का अर्थ 'हीन भावों से रहित, एक दूसरे से द्वेष न करनेवाला' यों करना उचित जँचता है। पाठक इस पर अधिक विचार करें। (५) कण्व= मंत्र ४२ पर की टिप्पणी देखिए। [७] (१) ऋष्टिः= [ऋष् हिंसायां] खड्ग या भाला। (२) वाशी [वाश् शब्दे] चिल्लाहट करनेवाला, तीक्ष्ण छोरवाला शस्त्र, परशु, कुल्हाडी। (३) अञ्जि= [अञ्ज् व्यक्ति-म्रक्षण-कान्ति-गतिषु]= रंग लगाना, कुंकुम का लेप करके शोभामय बनाना, सुन्दर बनना, बोलना। अञ्जि= रंग, भूषण, वेशभूषा, गणवेश, चमकीला। [९] (१) शर्धः= संघका बल, धैर्य, निर्भयताकी सामर्थ्य, (२) घृष्विः [घृष्=संघर्षे]= शत्रुओंसे मुठभेड करनेवाला। (३) शुष्मिन्= सामर्थ्ययुक्त, धीरजसे परिपूर्ण, प्रभावशाली।

(११) कः । वः । वर्षिष्ठः । आ । नरः । दिवः । च । ग्मः । च । धूतयः ।
यत् । सीम् । अन्तम् । न । धूनुथ ॥ ६ ॥

(१२) नि । वः । यामाय । मानुषः । दध्रे । उग्राय । मन्यवे । जिहीत । पर्वतः । गिरिः ॥७॥

(१३) येषाम् । अज्मेषु । पृथिवी । जुजुर्वान्ऽइव । विश्पतिः । भिया । यामेषु । रेजते ॥८॥

अन्वयः- ११ (हे) नरः ! दिवः च ग्मः च धूतयः वः आ वर्षिष्ठः कः ? यत् सीं अन्तं न धूनुथ ?

१२ वः उग्राय मन्यवे यामाय मानुषः नि दध्रे पर्वतः गिरिः जिहीत ।

१३ येषां यामेषु अज्मेषु पृथिवी, जुजुर्वान्इव विश्पतिः भिया रेजते ।

अर्थ- ११ हे (नरः !) नेतृत्वगुण से सम्पन्न वीर मरुतो ! (दिवः) द्युलोक को एवं (ग्मः च) भूलोक को भी (धूतयः) तुम कंपित करनेवाले हो, ऐसे (वः) तुम में (आ) सब प्रकार से (वर्षिष्ठः) उच्च कोटि का भला (कः) कौन है ? (यत्) जो (सीं) सदैव (अन्तं न) पेडों के अग्रभाग को हिलाने के समान शत्रुदल को विचलित कर देता है, या तुम सभी (धूनुथ) विकंपित कर डालते हो।

१२ (वः उग्राय) तुम्हारे भयावह (मन्यवे) क्रोधयुक्त या आवेश एवं उत्साह से लवालव भरे हुए (यामाय) आक्रमण से डरकर (मानुषः) मानव तो किसी न किसी (निदध्रे) के सहारे ही रहता है, क्योंकि (पर्वतः) पहाड या (गिरिः) टीले को भी तुम (जिहीत) विकंपित बना देते हो ।

१३ (येषां) जिन के (यामेषु) आक्रमणोंके अवसरपर और (अज्मेषु) चढाई करने के प्रसंग पर (पृथिवी) यह भूमि (जुजुर्वान्इव विश्पतिः) मानों क्षीण नृपति की नाईं (भिया रेजते) भय के मारे विकंपित तथा विचलित हो उठती है ।

भावार्थ- ११ वीर मरुत् राष्ट्र के नेता हैं और वे शत्रुसंघको जडमूल से विचलित एवं कंपायमान कर देते हैं । ठीक उसी तरह जैसे आँधी या तूफान पृथ्वी या द्युलोक में विद्यमान पेडसदृश वस्तुजात को हिलाता है, अथवा वायु के झकोरे वृक्षों के ऊपर के हिस्से को चलायमान कर देते हैं । इन वायुप्रवाहों की न्याईं वीर मरुत् शत्रुओं को अपदस्थ कर डालते हैं। यहाँ पर प्रश्न उठाया है कि, क्या ये सभी मरुत् समान हैं अथवा इनमें कोई प्रमुख नेताके पद पर अधिष्ठित हो विराजमान है ? (आगे चलकर ३०५ तथा ४५३ संख्या के मंत्रों में बतलाया है कि, इन मरुतों में कोई भी श्रेष्ठ, मध्यम एवं निम्न श्रेणी का नहीं, अपितु सभी ' भाई ' हैं । पाठक उन मंत्रों के ऊपर इस अवसर पर एक सरसरी निगाह डाल लें ।)

१२ वीर मरुतों के भीषण आक्रमण के फलस्वरूप मानव के तो हाथपाँव फूल जाते हैं और वे कहीं न कहीं आश्रय पाने की चेष्टा में निरत रहते हैं, पर बडे बडे पर्वत भी आन्दोलित एवं स्पंदित हो उठते हैं । वीरों की शत्रुदल पर चढाइयाँ इसी भाँति प्रभावोत्पादक हों ।

१३ वीर मरुत् जब शत्रुदल पर धावा करते हैं और बडे वेग से विद्युत्-युद्धप्रणाली से कार्य करते हैं, उस समय, आगे क्या होगा क्या नहीं, इस चिंता से तथा डर से आसन्नमरण नरेश की नाईं, यह समूची भूमि दहल उठती है । (इसी भाँति वीर सैनिकों को शत्रुदल पर आक्रमण का सूत्रपात करना चाहिए ।)

टिप्पणी- [१०] (१) अघ्न्यं= (अ-घ्न्यं) जिसका हनन नहीं करना चाहिए, जिसका नाश कभी न करना चाहिए। [११] (१) नृ= नेता, अग्रगामी; (२) धूति (धू कम्पने)= हिलानेवाला । [१२] (१) याम= आक्रमण, धावा मारना, शत्रु पर चढाई करना । [१३] (१) अज्म= आक्रमण, धावा ।

(१४) स्थिरम् । हि । जानम् । एषाम् । वयः । मातुः । निःऽएतवे ।
यत् । सीम् । अनु । द्विता । शवः ॥ ९ ॥
(१५) उत् । ऊँ इति । त्ये । सूनवः । गिरः । काष्ठाः । अज्मेषु । अत्नत ।
वाश्राः । अभिऽज्ञु । यातवे ॥१०॥
(१६) त्यम् । चित् । घ । दीर्घम् । पृथुम् । मिहः । नपातम् । अमृध्रम् ।
प्र । च्यवयन्ति । यामऽभिः ॥ ११ ॥

अन्वयः— १४ एषां जानं स्थिरं हि, मातुः वयः निःएतवे यत् शवः सीं द्विता अनु ।
१५ त्ये गिरः सूनवः अज्मेषुः काष्ठाः वाश्राः अभि-ज्ञु यातवे उत् ऊ अत्नत ।
१६ त्यं चिद् घ दीर्घं पृथुं अ-मृध्रं मिहः न-पातं यामभिः प्र च्यवयन्ति ।

अर्थ- १४ [एषां] इन वीर मरुतों की [जानं] जन्मभूमि [स्थिरं हि] सचमुच दृढीभूत एवं अटल है। [मातुः] माता से जैसे [वयः] पंछी [निः- एतवे] बाहर जाने के लिए चेष्टा करते हैं, उसी तरह ये अपनी मातृभूमि से दूरवर्ती देशों में विजय पाने के लिए निकल जाते हैं, [यत्] तब इनका [शवः] बल [सीं] सदैव [द्विता अनु] दोनों ओर विभक्त रहता है।

१५ [त्ये] उन [गिरः सूनवः] वाणी के पुत्र, वक्ता मरुतोंने [अज्मेषु] अपने शत्रुओं पर किये जानेवाले आक्रमणों में अपने हलचलों की [काष्ठाः] सीमाएँ या परिधियाँ बढाई हैं, जैसे कि, [वाश्राः] गौओं को [अभि- ज्ञु] सभी जगह घुटने तक के पानी में से [यातवे] निकल जाना सुगम हो, इसलिए जैसे जल को [उत् उ अत्नत] दूर तक फैलाया जाय।

१६ (त्यं चित् घ) उस प्रसिद्ध, (दीर्घं) बहुतही लंबे, (पृथुं) फैले हुए (अ-मृध्रं) तथा जिसका कोई नाश नहीं कर सकता, ऐसे (मिहः न-पातं) जल की वृष्टि न करनेवाले मेघ को भी ये वीर मरुत् (यामभिः) अपनी गतियों से (प्र च्यवयंति) हिला देते हैं।

भावार्थ- १४ वीर मरुत् भूमि के पुत्र हैं। उनकी यह भूमि माता स्थिर है और इसी अटल मातृभूमि से ये वीर अतीव वेगशाली उत्पन्न हुए हैं। जिस भाँति पंछी अपनी माता से दूर निकलने के लिए छटपटाते हैं ठीक वैसे ही ये वीर अपनी मातृभूमि से सुदूरवर्ती स्थानों में जाकर असीम पराक्रम दर्शाने के लिए उत्सुक हैं और चले भी जाते हैं। ऐसे मौके पर इनका सारा ध्यान अपनी जन्मदात्री भूमि की ओर लगा रहता है, वैसे ही शत्रुओं से जूझते समय युद्ध पर भी इनका ध्यान केन्द्रित रहता है। इस प्रकार इनकी शक्ति दो भागोंमें विभक्त हो जाती है।

१५ ये मरुत् [गिरः सूनवः] वाणी के पुत्र हैं, वक्ता हैं। या 'गोमातरः' नाम मरुतों का ही है। 'गो' अर्थात् 'वाणी, गौ, भूमि' का सूचक शब्द है। मातृभाषा, मातृभूमि तथा गौमाता के सुख के लिए अथक प्रयत्न करनेवाले ये मरुत् विख्यात हैं। अपने शत्रुदल को तितरबितर करने के लिए उन्होंने जिस भूमि पर हलचलें प्रवर्तित की, उस भूमि की सीमाएँ बहुत चौडी कर रखी हैं; अर्थात् अपने आक्रमण के क्षेत्र को अति विस्तृत करते हैं। अतः जैसे अगर गौओं को घुटने तक के जलसंचय में से जाना पडे, तो कुछ कष्टदायक नहीं प्रतीत होता है, वैसे उन्होंने भूमि पर पाये जानेवाले ऊबडखाबड स्थलों को न्यून कर दिया, भूमि समतल बना डाली, पानी इकट्ठा हो जाय, तो भी गौओं के लिए वह घुटनों से ऊपर न चढ जाए ऐसी सतर्कता दर्शायी। गौओं के लिए मरुतों ने भूमिपर इतना अच्छा प्रबन्ध कर डाला। उसी प्रकार शत्रु पर चढाई करने के लिए भी यातायात की सभी सुविधाएँ उपस्थित कर दीं, ताकि विरोधी दल पर धावा करते समय अत्यधिक कठिनाइयों का सामना न करना पडे।

१६ जिन मेघोंसे वर्षा नहीं होती हो ऐसे बडे बडे बादलोंको भी मरुत् (वायुप्रवाह) अपने प्रचण्ड वेगसे विकंपित कर डालते हैं। [वीरोंको भी यही उचित है कि, वे दान न देनेवाले कृपण शत्रुओंको जड मूलसे हिलाकर पदभ्रष्ट कर दें।]

(१७) मरुतः । यत् । ह । वः । बलम् । जनान् । अचुच्यवीतन । गिरीन् । अचुच्यवीतन ॥ १२ ॥

(१८) यत् । ह । यान्ति । मरुतः । सम् । ह । ब्रुवते । अध्वन् । आ ।
शृणोति । कः । चित् । एषाम् ॥ १३ ॥

(१९) प्र । यात । शीभम् । आशुऽभिः । सन्ति । कण्वेषु । वः । दुवः ।
तत्रो इति । सु । मादयाध्वै ॥ १४ ॥

(२०) अस्ति । हि । स्म । मदाय । वः । स्मसि । स्म । वयम् । एषाम् ।
विश्वम् । चित् । आयुः । जीवसे ॥ १५ ॥

अन्वयः- १७ मरुतः यद् ह वः बलं जनान् अचुच्यवीतन गिरीन् अचुच्यवीतन ।
१८ यत् ह मरुतः यान्ति अध्वन् आ सं ब्रुवते ह, एषां कः चित् शृणोति ?
१९ आशुभिः शीभं प्र यात, कण्वेषु वः दुवः सन्ति, तत्रो सु मादयाध्वै ।
२० वः मदाय अस्ति हि स्म, विश्वं चित् आयुः जीवसे, एषां वयं स्मसि स्म ।

अर्थ- १७ हे (मरुतः !) वीर मरुतो ! (यत् ह) जो सचमुच (वः बलं) तुम्हारा बल (जनान् अचुच्यवीतन) लोगों को हिला देता है, विकंपित या स्थानभ्रष्ट कर डालता है, वही (गिरीन्) पर्वतों को भी (अचुच्यवीतन) विचलित बना डालता है ।

१८ (यत् ह) जिस समय सचमुच ही (मरुतः यान्ति) वीर मरुत् संचार करने लगते हैं, यात्रा का सूत्रपात करते हैं, तब वे (अध्वन्) सडक के बीचमेंही (आ सं ब्रुवते ह) सब मिल कर परस्पर वार्तालाप करना शुरु कर देते हैं । (एषां) इनका शब्द (कः चित्) भला कोई न कोई क्या (शृणोति) सुन लेता है ?

१९ (आशुभिः) तीव्र गतियोंद्वारा और (शीभं) वेगपूर्वक (प्र यात) चलो, (कण्वेषु) कण्वोंके मध्य, याजकों के यज्ञों में (वः) तुम्हारे (दुवः सन्ति) सत्कार होनेवाले हैं । (तत्रो) उधर तुम (सु मादयाध्वै) भली भाँति तृप्त बनो ।

२० (वः) तुम्हारी (मदाय) तृप्ति के लिए यह हमारा अर्पण (अस्ति हि स्म) तैयार है । (विश्वं चित् आयुः) समूचे जीवन भर सुखपूर्वक (जीवसे) दिन बिताने के लिए (वयं) हम (एषां स्मसि स्म) इनके ही अनुयायी बनकर रहनेवाले हैं ।

भावार्थ- १७ मरुतों में इतना बल विद्यमान है कि, उसकी वजह से शत्रु के सैनिक तथा पार्वतीय दुर्ग या गढ भी दहल उठते हैं । वीर सदा इस भाँति बल बढाने में सचेष्ट हों ।

१८ जिस समय वीर मरुत् सैनिक अभिगमन करते हैं, तबवे इकट्ठे हो सात (सात वीरों की पंक्ति बनाकर सडक परसे) चलने लगते हैं । इस प्रकार आगे बढते समय वे जो कुछ भी बातचीत करते हैं उसे सुन लेना बाहर के व्यक्ति को असंभव है; क्योंकि वह भाषण धीमी आवाज में प्रचलित रहता है ।

१९ ' आशुभिः शीभं प्रयात ' (Quick march) अत्यन्त वेगसे शीघ्रतापूर्वक चलो । सैनिक शीघ्रतया चलना प्रारंभ करें, इसलिए यह ' सैनिकीय आज्ञा ' है । मरुत् यथासंभव शीघ्र यज्ञभूमि में पहुँच जायँ, क्योंकि उधर उनके सत्कार एवं आवभगत के लिए आयोजनाएँ प्रस्तुत कर रखी हैं । मरुत् उस आदरसत्कार का स्वीकार करें और तृप्त हों ।

२० वीर मरुतों को हर्षित तथा प्रसन्न करने के लिए हम खानेपीने की वस्तुएँ दे रहे हैं । जब तक हमारे जीवन की अवधि प्रचलित होगी, तब तक यह हमारा निर्धार हो चुका है कि हम मरुतों के ही अनुयायी बनकर रहेंगे ।

(२१) कत् । ह । नूनम् । कधऽप्रियः । पिता । पुत्रम् । न । हस्तयोः ।
दधिध्वे । वृक्तऽबर्हिषः ॥ १ ॥

(२२) क्व । नूनम् । कत् । वः । अर्थम् । गन्त । दिवः । न । पृथिव्याः ।
क्व । वः । गावः । न । रण्यन्ति ॥ २ ॥

(२३) क्व । वः । सुम्ना । नव्यांसि । मरुतः । क्व । सुविता ।
क्वोऽइति । विश्वानि । सौभगा ॥ ३ ॥

(२४) यत् । यूयं । पृश्निऽमातरः । मर्तासः । स्यातन । स्तोता । वः । अमृतः । स्यात् ॥ ४ ॥

अन्वयः- २१ कध-प्रियः वृक्त-बर्हिषः, पिता पुत्रं न, हस्तयोः कत् ह नूनं दधिध्वे ?

२२ नूनं क्व ? वः कत् अर्थं ? दिवो गन्त, न पृथिव्याः, वः गावः क्व न रण्यन्ति ?

२३ (हे) मरुतः ! वः नव्यांसि सुम्ना क्व ? सुविता क्व ? विश्वानि सौभगा क्वो ?

२४ (हे) पृश्नि-मातरः ! यूयं यद् मर्तासः स्यातन, वः स्तोता अ-मृतः स्यात् ।

अर्थ— २१ (कध-प्रियः) स्तुतिको बहुत चाहनेवाले (वृक्त-बर्हिषः) तथा आसनपर बैठनेवाले मरुतो ! (पिता) बाप (पुत्रं न) पुत्रको जैसे (हस्तयोः) अपने हाथों से उठा लेता है, उसी प्रकार तुम भी हमें (कत् ह नूनं) सचमुच कब भला अपने करकमलों से (दधिध्वे) धारण करोगे ?

२२ (नूनं क्व) सचमुच तुम भला किधर जाओगे ? (वः कत्) तुम किस (अर्थं) उद्देश्यको लक्ष्य में रख जानेवाले हो ? (दिवः गन्त) तुम भले ही द्युलोक से प्रस्थान करो, लेकिन (न पृथिव्याः) इस भूलोकसे तुम कृपा करके न चले जाओ; भूमंडलपर ही अविरत निवास करो। (वः गावः) तुम्हारी गौएँ (क्व) भला कहाँ ? (न रण्यन्ति) नहीं रँभाती हैं ?

२३ हे (मरुतः !) वीर मरुद्गण ! (वः) तुम्हारी (नव्यांसि) नयी नयी (सुम्ना क्व ?) संरक्षणकी आयोजनाएँ कहाँ हैं ? तुम्हारे (सुविता क्व ? उच्च कोटिके वैभव तथा सुखके साधन ऐश्वर्य किधर हैं ? और (विश्वानि) सभी प्रकार के (सौभगा क्वो ?) सौभाग्य कहाँ हैं ?

२४ हे (पृश्नि-मातरः !) मातृभूमि के सुपुत्र वीरो ! (यूयं) तुम (यद्) यद्यपि (मर्तासः) मर्त्य या मरणशील (स्यातन) हो, तो भी (वः) तुम्हारा (स्तोता) काव्यगायन करनेवाला बेशक (अमृतः स्यात्) अमर होगा ।

भावार्थ— २१ जिस भाँति पिता का आधार पाने से पुत्र निर्भय होकर रहता है, ठीक उसी प्रकार भला कब हमें इन वीरोंका सहारा मिलेगा ? एक बार यदि यह निश्चित हो जाए कि, हमें उनका आश्रय मिलेगा, तो हम अकुतोभय हो सुखपूर्वक कालक्रमणा करने लगेंगे और हमारी जीवनयात्रा निश्चिंत हो जायेगी ।

२२ वीर मरुत् कहाँ जा रहे हैं ? किस दिशा में वे गमन कर रहे हैं ? किस अभिप्राय से वे अभियान कर रहे हैं ? हमारी यह तीव्र लालसा है कि, वे द्युलोक से इधर पधारने की कृपा करें और इसी अवनीतलपर सदा के लिए निवास करें । कारण यही है कि उनकी छत्रछाया में हमारी रक्षा में कोई त्रुटि न रहने पायेगी, अतः वे इधर से अन्य किसी जगह न चले जाएँ । मरुतों की गौएँ सभी स्थानों में विद्यमान हैं और वे अत्यानन्दवश रँभाती हैं ।

२३ वीर मरुत् संरक्षणकार्य का बीडा उठाते हैं, अतः जनता की रक्षा भली भाँति हुआ करती है और वह श्रेष्ठ वैभव एवं सुख पाने में सफलता प्राप्त करती है । वीरों के लिए यह अतीव उचित कार्य है कि, वे जनता की यथोचित रक्षा कर उसे वैभवशाली तथा सुखी करें ।

२४ शूर वीर मरुत् (पृश्नि-मातरः, गो-मातरः) मातृभूमि, मातृभाषा तथा गोमाताकी सेवा करनेवाले हैं और यद्यपि ये स्वयं मर्त्य हैं, तो भी इनके अनुयायी अमरपन पाने में सफलता पायेंगे ।

(२५) मा । वः । मृगः । न । यवसे । जरिता । भूत् । अजोष्यः ।
पथा । यमस्य । गात् । उप ॥ ५ ॥

(२६) मो इति । सु । नः । पराऽपरा । निःऽऋतिः । दुःऽहना । वधीत् ।
पदीष्ट । तृष्णया । सह ॥ ६ ॥

अन्वयः- २५ मृगः यवसे न, वः जरिता अ-जोष्यः मा भूत्. यमस्य पथा (मा) उप गात् ।
२६ परा-परा दुर्-हना निर्-ऋतिः नः मो सु वधीत्, तृष्णया सह पदीष्ट।

अर्थ- २५ (मृगः) हिरन (यवसे न) जैसे तृण को असेवनीय नहीं समझता है, ठीक उसी प्रकार (वः जरिता) तुम्हारी स्तुति एवं सराहना करनेवाला तुम्हें (अ-जोष्यः) अ-सेव्य या अप्रिय (मा भूत्) न होने पाय और वैसे ही वह (यमस्य पथा) यमलोक की राहपर (मा उप गात्) न चले, अर्थात् उसकी मौत न होने पाय या दूर हट जाय।

२६ (परा-परा) अत्यधिक मात्रा में बलिष्ठ तथा (दुर्-हना) विनाश करने में बहुतही बीहड ऐसी (निर्-ऋतिः) बुरी दशा या दुर्दशा (नः) हमारा (मो सु वधीत्) विनाश न करे, (तृष्णया सह) प्यास के मारे उसी का (पदीष्ट) विनाश हो जाय।

भावार्थ— २५ जैसे हिरन जौ के खेत को सेवनीय मानता है, उसी तरह तुम्हारा बखान करनेवाला कवि तुम्हें सदैव प्रिय लगे और वह मृत्यु के दायरे से कोसों दूर रहे। वह यमलोक को पहुँचानेवाली सडक पर संचार न करे, याने वह अमर बने।

२६ विपदा, बुरी हालत एवं भाग्यचक्र के उलट फेर के फलस्वरूप होनेवाली परिस्थिति सुतरां बलवत्तर होती है और उसे हटाना तो कोई सुगम कार्य बिलकुल नहीं, ऐसी आपदा के कारण हमारा नाश न होने पाय; परन्तु सुख की प्यास या क्षुधा बढ जाए, जिससे वही विपत्ति विनष्ट होवे।

टिप्पणी- [२४] 'यूयं मर्तासः स्यातन, वः स्तोता अमृतः स्यात्' में विरोधाभास अलंकारकी झलक देखने मिलती है। मर्त्य की उपासना करने में निरत पुरुष भी अमर बन सकता है। 'ऋभु' देवताओं के बारे में भी इसी भाँति वर्णन उपलब्ध है। 'मर्तासः सन्तो अमृतत्वमानशुः।' (ऋ. १।११०।४) ऋभु-देव पहले मर्त्य थे, पर आगे चलकर उन्हें अमरपन मिला। इससे तो यही प्रतीत होता है कि, मर्त्यों में भी अमर बनने की क्षमता रहती है। इस मंत्र पर सायणाचार्यजीने इस भाँति भाष्य किया है- "एवं कर्माणि कृत्वा मर्तासो मनुष्या अपि सन्तोऽमृतत्वं देवत्वं आनशुः आनशिरे। कृतैः कर्मभिर्लेभिरे।" ऋभु प्रारम्भमें मनुष्य ही थे, पर उन्होंने विशेष तथा अत्यधिक महत्त्वपूर्ण कार्यकलाप निभाये, इसलिए वे देवपदपर अधिरूढ हो गये। ध्यानमें रखना चाहिए कि अगर सभी मानव इसी भाँति उच्च कोटिके कार्य करने लगेंगे, तो वे निस्सन्देह देवपद प्राप्त कर सकेंगे। [२५] अजोष्य= (जुष् प्रीतिसेवनयोः) जोष्य= प्रीतिपूर्वक सेवन करनेयोग्य, अजोष्य= सेवन करने के लिए अनुपयुक्त। [२६] क्या व्यक्ति, क्या राष्ट्र सभी को विपत्ति से मुठभेड करना अनिवार्य है। मानवजाति में जब तृष्णा अत्यधिक रूप से बढ जाती है, तब ऐसे संकटों के बादल मँडराने लगते हैं, आपत्ति की घनघोर घटा छा जाती है। तृष्णा यदि लगातार बढती चली जाय, तो वही उनका विनाश करती है और स्वयं भी नष्ट हो जाती है। 'निर्ऋतिः तृष्णया सह पदीष्ट' विपदा तृष्णा के साथ विनष्ट हो जाय, ऐसा जो यहाँ कहा है, उसका अभिप्राय केवल इतनाही है। क्योंकि देखिए न, विपदा की जड में तृष्णा पाई जाती है, अतएव अगर तृष्णाके साथ ही साथ विपत्तिकी काली घटा दूर होवे, तो अवश्यमेव सुख की प्राप्ति होगी इसमें तनिक भी सन्देह नहीं।

(२७) सत्यम् । त्वेषाः । अमऽवन्तः । धन्वन् । चित् । आ । रुद्रियासः
मिहम् । कृण्वन्ति । अवाताम् ॥ ७ ॥

(२८) वाश्राऽइव । विऽद्युत् । मिमाति । वत्सम् । न । माता । सिसक्ति ।
यत् । एषाम् । वृष्टिः । असर्जि ॥ ८ ॥

(२९) दिवा । चित् । तमः । कृण्वन्ति । पर्जन्येन । उदऽवाहेन ।
यत् । पृथिवीम् । विऽउन्दन्ति ॥ ९ ॥

अन्वयः- २७ धन्वन् चित्, त्वेषाः अम-वन्तः रुद्रियासः, अ-वातां मिहं आ कृण्वन्ति, सत्यम् ।
२८ यत् एषां वृष्टिः असर्जि, वाश्राइव, विद्युत् मिमाति, माता वत्सं न, सिसक्ति ।
२९ यत् पृथिवीं व्युन्दन्ति उद-वाहेन पर्जन्येन दिवा चित् तमः कृण्वन्ति ।

अर्थ- २७ (धन्वन् चित्) मरुभूमिमें भी (त्वेषाः) तेजयुक्त और (अम वन्तः) बलिष्ठ (रुद्रियासः) महान् वीर मरुत् (अ-वातां) वायुरहित (मिहं आ कृण्वन्ति) वर्षाको चहुं ओर कर डालते हैं, (सत्यं) यह सच बात है ।

२८ (यत्) जब (एषां) इन मरुतों की सहायता से (वृष्टिः असर्जि) वर्षा का सृजन होता है, तब (वाश्राइव) रँभानेवाली गौ के समान (विद्युत्) बिजली (मिमाति) बडा भारी शब्द करती है और (माता) माता (वत्सं न) जिस प्रकार बालक को अपने समीप रखती है, वैसे ही बिजली मेघों के समीप (सिषक्ति) रहती है ।

२९ वे वीर मरुत् (यत्) जब (पृथिवीं) भूमि को (व्युन्दन्ति गीली या आर्द्र कर डालते हैं, उस समय (उद-वाहेन पर्जन्येन) जल से भरे हुए मेघों से सूर्य को ढककर (दिवा चित्) दिन की वेला में भी (तमः कृण्वन्ति) अँधियारी फैलाते हैं ।

भावार्थ— २७ मरुस्थल में वर्षा प्रायः नहीं होती है, परन्तु यदि मरुत् वैसा चाहें, तो वैसे ऊसर स्थान में भी वे धुवाँधार बारिश कर सकते हैं । अभिप्राय यही है कि, बारिश होना या न होना मरुतों— वायुप्रवाहों— के अधीन है । यदि अनुकूल वायुप्रवाह बहने लग जायँ, तो वर्षा होने में देरी न लगेगी ।

२८ जिस समय बडी भारी आँधी के पश्चात् वर्षा का प्रारम्भ होता है, उस समय बिजली की गर्जना सुनाई देती है और मेघवृन्दों में दामिनी की दमक दिखाई देती है । (यहाँ पर ऐसी कल्पना की है कि, बिजली मानों गाय है) वह जिस तरह अपने बछडे के लिए रँभाती है और अपने वत्स को समीप रखना चाहती है, उसी तरह बिजली मेघ का आलिंगन करती है ।

२९ जिस वक्त मरुत् बारिश करने की तैयारीमें लगे रहते हैं, तब समूचा आकाश बादलोंसे आच्छादित हो जाता है, सूर्य का दर्शन नहीं होता है, अँधेरा फैल जाता है और तदुपरान्त वर्षा के फलस्वरूप भूमंडल गीला या पानी से तर हो जाता है ।

टिप्पणी [२७] रुद्र= (रुद्-र) = रुलानेवाला जो वीर होता है, वह शत्रुदलको रुलाता है, अतः वीरको रुद्र कहना उचित है । महारुद्र महावीर ही है । (रुत्-र) शब्द करनेवाला, वक्ता या उपदेशक । रुद्रिय= शत्रुदलको रुलानेवाले वीर से उत्पन्न वीर पुत्र, वीरों के अनुयायी । [२८] मिमाति= (मा=मापन करना, तुलना करना सीमित करना, शान्त रहना, तैयार करना, बनाना, दर्शाना, शब्द करना, गर्जना करना)=आवाज करती है । [२९] उदवाह= (उद-वाह) पानीको ढोनेवाला, मेघ ।

(३०) अर्ध । स्वनात् । मरुताम् । विश्वम् । आ । सद्म । पार्थिवम् । अरेजन्त । प्र । मानुषाः ॥ १० ॥

(३१) मरुतः । वीळुपाणिऽभिः । चित्राः । रोधस्वतीः । अनु ।
याति । ईम् । अखिद्रयामऽभिः ॥ ११ ॥

(३२) स्थिराः । वः । सन्तु । नेमयः । रथाः । अश्वासः । एषाम् ।
सुऽसंस्कृताः । अभीशवः ॥ १२ ॥

अन्वयः- ३० मरुतां स्वनात् अधः पार्थिवं विश्वं सद्म आ (अरेजत)· मानुषाः प्र अरेजन्त ।
३१ (हे) मरुतः ! वीळु-पाणिभिः चित्राः रोधस्वतीः अनु अ-खिद्र-यामभिः यात ईं ।
३२ एषां वः रथाः, नेमयः, अश्वासः, अभीशवः, स्थिराः सु संस्कृताः सन्तु ।

अर्थ- ३० (मरुतां स्वनात् अधः) मरुतों की दहाड या गर्जना के फलस्वरूप निम्न भागमें अवस्थित (पार्थिवं) पृथ्वी में पाये जानेवाला (विश्वं सद्म) समूचा स्थान (आ अरेजत) विचलित, विकंपित एवं स्पन्दमान हो उठता है और (मानुषाः प्र अरेजन्त) मानव भी काँप उठते हैं ।

३१ हे (मरुतः !) वीर मरुतो ! (वीळु-पाणिभिः) बलयुक्त बाहुओं से युक्त तुम (चित्राः रोधस्वतीः अनु) सुंदर नदियों के तटोंपरसे (अ-खिद्र-यामभिः) विना किसी थकावट के (यात ईं) गमन करो ।

३२ (एषां वः रथाः) ये तुम्हारे रथ (नेमयः) रथ के आर तथा (अश्वासः) घोडे एवं (अभीशवः) लगाम सभी (स्थिराः) दृढ तथा अटल और (सु-संस्कृताः) ठीक प्रकार परिष्कृत हों ।

भावार्थ- ३० तीव्र आँधी, बिजली की दहाड तथा चमकने से समूची पृथ्वी मानों विचलित हो उठती है और मनुष्य भी सहम जाते हैं, तनिक भयभीत से हो जाते हैं ।

३१ इन वीरों के बाहुओं में बहुत भारी शक्ति है और इस बाहुबल से चतुर्दिक् ख्याति पाते हुए ये वीर नदियों के नयनमनोरम तट की राह से थकान की तनिक भी अनुभूति पाये विना आगे बढते जायँ ।

३२ वीरों के रथ, पहिए, आर, अश्व एवं लगाम सभी बलयुक्त एवं सुसंस्कृत रहें । अश्व भी भली भाँति शिक्षित हों तथा रथ जैसी चीजें भी सुहानेवाली एवं परिष्कृत हों ।

टिप्पणी [३१] अ-खिद्र-यामन्=(खिद् दैन्ये, खिद्रं दैन्यं, खिदं याति इति खिद्रयामा, दैन्यमयः । तदभावः) खिन्न न होते हुए, अथक ढंगसे, (अ-खिद्र-याम)खिन्नतारहित आक्रमण । यहाँ पर वायु एवं वीर दोनों अर्थ सूचित हैं । (१) वायु के प्रवाह अपनी शक्तिसे गर्जना करते हुए नदीतट परसे आगे बढते हैं । यह पहला तथा अधिदैवत अर्थ है । (२) वीर पुरुष अपनेमें विद्यमान सामर्थ्यके जरिये विजयी बनकर नदियों के किनारे संचार करने लगते हैं, अर्थात् शत्रुओं के प्रदेश में विद्यमान नदियों पर अपना प्रभुत्व प्रस्थापित करते हैं । इसी भाँति आगे समझ लेना चाहिए । ध्यानमें रहे कि तीन पक्ष इस प्रकार हैं- (१) अध्यात्म= व्यक्ति के शरीर में विद्यमान शक्तियाँ अर्थात् आत्मा बुद्धि, मन, इन्द्रिय, प्राण तथा शरीर । (२) अधिभूत= प्राणिसमष्टि, मानवसमाज, प्राणिसमुदाय से सम्बन्ध रखनेवाला । (३) अधिदैवत= अग्नि, वायु, विद्युत्, चन्द्रसूर्य, द्यौ आदि देवताओं के बारे में ।

(३३) अच्छ॑ । व॒द॒ । तना॑ । गि॒रा । ज॒रायै॑ । ब्रह्म॑णः । पति॑म् ।
अ॒ग्निम् । मि॒त्रम् । न । द॒र्श॒तम् ॥ १३ ॥

(३४) मि॒मी॒हि । श्लोक॑म् । आ॒स्ये॑ । प॒र्जन्य॑ःऽइव । त॒त॒नः ।
गाय॑ । गा॒य॒त्रम् । उ॒क्थ्य॑म् ॥१४॥

(३५) वन्द॑स्व । मारु॑तम् । ग॒णम् । त्वे॒षम् । प॒न॒स्युम् । अ॒र्किण॑म् ।
अ॒स्मे इति॑ । वृ॒द्धाः । अ॒स॒न् । इ॒ह ॥ १५ ॥

अन्वयः- ३३ ब्रह्मणः पतिं अग्निं, दर्शतं मित्रं न, जरायै तना गिरा अच्छ वद ।
३४ आस्ये श्लोकं मिमीहि, पर्जन्यः इव ततनः, गायत्रं उक्थ्यं गाय ।
३५ त्वेषं पनस्युं अर्किणं मारुतं गणं वन्दस्व, इह अस्मे वृद्धाः असन् ।

अर्थ- ३३ (ब्रह्मणः पतिं) ज्ञान के अधिपति (अग्निं) अग्नि को अर्थात् नेता को (दर्शतं मित्रं न) देखनेयोग्य मित्र के समान (जरायै) स्तुति करने के लिए (तना) सातत्ययुक्त (गिरा) वाणी से (अच्छ वद) प्रमुखतया सराहते जाओ।

३४ तुम्हारे (आस्ये) मुँह के अन्दर ही (श्लोकं मिमीहि) श्लोक को भली भाँति नापजोखकर तैयार करो और (पर्जन्यः इव) मेघ के समान (ततनः) विस्तारित करो । वैसे ही (गायत्रं) गायत्री छन्द में रचे हुये (उक्थ्यं) काव्य का (गाय) गायन करो।

३५ (त्वेषं) तेजयुक्त (पनस्युं) स्तुत्य अथवा सराहनीय तथा (अर्किणं) पूजनीय ऐसे (मारुतं गणं) वीर मरुतों के दल या समुदायका (वन्दस्व) अभिवादन करो । (इह) यहाँपर (अस्मे) हमारे समीपही ये (वृद्धाः असन्) वृद्ध रहें ।

भावार्थ- ३३ अग्नि [' मरुत्सखा ' (ऋ. ८।१०३।१४) मरुतोंका मित्र है, तथा] ज्ञानका स्वामी है । इसलिए इस की महिमा की सराहना करनी चाहिए ।

३४ मन ही मन अक्षरसंख्या गिनकर श्लोक तैयार कर रखे और वह कंठस्थ या मुखस्थ हो। यह आवश्यक है कि, ऐसे श्लोक में किसी न किसी वीर पुरुष की महनीयता का बखान किया हो । जैसे वर्षा का प्रारम्भ होने पर वह लगातार हुआ करती है और सर्वत्र शांति का वायुमण्डल फैला देती है, उसी प्रकार इस श्लोक का स्पष्टीकरण या व्याख्यान अथवा प्रवचन बिना तनिक भी रुके करो और अर्थ की व्यापकता या गहराई सब को बतलाकर उन के चित्त में शांतता उत्पन्न होवे, ऐसी चेष्टा करो । गायत्री छन्द में जो श्लोक बनायें जायँ, उन का गायन विभिन्न स्वरों में करो।

३५ तेजसे अत्यधिक मात्रा में परिपूर्ण, प्रशंसा के योग्य तथा आदरसत्कार के अधिकारी जो वीर हों, उनको ही प्रणाम करना, उनके सम्मुख ही सीस झुकाना अतीव उचित है । अतः तुम ऐसाही करो, तथा तुम इस भाँति सतर्क एवं सचेष्ट रहो कि, अपने संघमें एवं समाज में ज्ञानवृद्ध, वीर्यवृद्ध, धनवृद्ध तथा कर्मवृद्ध महान् पुरुष पर्याप्त मात्रा में रहने पायँ ।

टिप्पणी- [३३] श्री सायणाचार्यजीने यहाँ ब्रह्मणस्पति ' पद का अर्थ ' मरुत् ' किया है । (१) जरा= (जॄ स्तुतौ) स्तुति करना; (जॄ वयोहानौ) बुढापा ।

(ऋ. १।३९।१-१०)

(३६) प्र । यत् । इत्था । पराऽवतः । शोचिः । न । मानम् । अस्यथ ।
कस्य । क्रत्वा । मरुतः । कस्य । वर्पसा । कम् । याथ । कम् । ह । धूतयः ॥ १ ॥

(३७) स्थिरा । वः । सन्तु । आयुधा । पराऽनुदे । वीळु । उत । प्रतिऽस्कभे ।
युष्माकम् । अस्तु । तविषी । पनीयसी । मा । मर्त्यस्य । मायिनः ॥ २ ॥

अन्वयः- ३६ (हे) धूतयः मरुतः ! यत् मानं परावतः इत्था शोचिः न प्र अस्यथ, कस्य क्रत्वा, कस्य वर्पसा, कं याथ, कं ह ? ३७ वः आयुधा परा-नुदे स्थिरा, उत प्रतिष्कभे वीळु सन्तु, युष्माकं तविषी पनीयसी अस्तु, मायिनः मर्त्यस्य मा।

अर्थ- ३६ हे (धूतयः मरुतः !) शत्रुदल को विकंपित तथा विचलित करनेवाले वीर मरुतो ! (यत्) जब तुम अपना (मानं) बल (परावतः इत्था) अत्यन्त सुदूर स्थान से इस भाँति (शोचिः न) बिजली के समान (प्र अस्यस्थ) यहाँ पर फेंकते हो, तब यह (कस्य क्रत्वा) भला किस कार्य तथा उद्देश्य को लक्ष्य में रख, (कस्य वर्पसा) किस की आयोजना से अथवा (कं याथ) किसकी तरफ तुम चल रहे हो या (कं ह) तुम्हें किस के निकट पहुँच जाना है, अतः तुम ऐसा कर रहे हो ?

३७ (वः आयुधा) तुम्हारे हथियार (परा-नुदे) शत्रुदल को हटाने के लिए (स्थिरा) अटल तथा सुदृढ रहें, (उत) और (प्रतिष्कभे) उनकी राह में रुकावटें खडी करने के लिए प्रतिबंध करने के लिए (वीळु सन्तु) अत्यधिक बलयुक्त एवं शक्तिसंपन्न भी हों। (युष्माकं तविषी) तुम्हारी शक्ति या सामर्थ्य (पनीयसी अस्तु) अतीव प्रशंसार्ह और सराहनीय हो; (मायिनः) कपटी (मर्त्यस्य) लोगों का बल (मा) न बढे।

भावार्थ- ३६ (अधिदैवत) वायुके प्रवाह जब बहुत वेगसे संचार करना शुरु करते हैं, तब मनमें यह प्रश्न उठे बिना नहीं रहता है कि, भला ये कहाँ और किसके समीप चले जाना चाहते हैं, तथा उनके गन्तव्य स्थानमें क्या रखा होगा, कौनसी उन्हें कार्यरूपमें परिणत करनी होगी? नहीं तो उनके ऐसे वेगसे बहने रहनेका अन्य प्रयोजन क्या हो सकता है ? (अधिभूतमें) जिस समय वीर पुरुष शत्रुदल को मटियामेट करनेके लिए उनपर धावा करना प्रारम्भ करते हैं, तब वे शूर मानव अपना सारा बल उसी कार्य पर पूर्णरूपेण केन्द्रित करते हैं। ऐसे अवसर पर यह अत्यन्त आवश्यक है कि, वे सर्वप्रथम यह पूरी तरह निश्चित कर लें कि, किस हेतु की पूर्ति के लिए यह चढाई करनी है, कितनी सफलता मिलनी चाहिए, किस स्थल पर पहुँचना है और बीच में किस की सहायता लेनी पडेगी। पश्चात् वह निर्धारित योजना फलीभूत हो जाए, इस ढंग से कार्यवाही प्रारम्भ कर दें। वीरों के लिए यह उचित है कि, वे निश्चयात्मक हेतु से प्रभावित हो, विशिष्ट कार्य को सफलतापूर्वक निष्पन्न करने के लिए ही अपना आंदोलन प्रवर्तित करें, व्यर्थ ही खटाटोप या गीदड भभकी न करें, क्योंकि उतावलापन एवं अविचारिता से सदैव हानि उठानी पडती है।

३७ वीर पुरुष अपने हथियारों एवं शस्त्रास्त्रों को बलयुक्त, तीक्ष्ण तथा शत्रुओंके शस्त्रोंसे भी अपेक्षाकृत अधिक कार्यक्षम बना दें। वे सदाके लिए सतर्क एवं सचेष्ट रहें कि, वे शत्रुदलसे मुठभेड या भिडंत करते समय यथेष्ट मात्रामें प्रभावशाली ठहरें। (ध्यान में रखना चाहिए कि, कदापि विरोधी तथा शत्रुसंघके हथियार अपने हथियारों से बढकर प्रबल तथा प्रभावशाली न होने पायें) और कपटाचरणमें न झिझकनेवाले शत्रुओंका बल कभी न वृद्धिंगत हो।

टिप्पणी- [३६] (१) धूति= (धू कम्पने) = हिलानेवाला, कंपित करनेवाला। (२) मानं= (मननीयं) मनन करने के लिए उचित, प्रमाणबद्ध, बल। (३) वर्पस्= (वृ-रूप) आकार, रूप; आयोजना, युक्ति, कपटयोजना, कपटपूर्ण प्रयोग। [३७] (१) परा-नुदे = (परा-नुद्) शत्रुको दूर हटाना। (२) प्रतिष्कभ् = (प्रति-स्कभ्) = विरुद्ध खडे हो जाना, उल्टी दिशामें शक्तिको प्रचलित करना, शत्रुके खिलाफ अपना बल किसी निर्धारित आयोजनासे प्रयुक्त करना, शत्रुको

(३८) परा । ह । यत् । स्थिरम् । हथ । नरः । वर्तयथ । गुरु ।
वि । याथन । वनिनः । पृथिव्याः । वि । आशाः । पर्वतानाम् ॥ ३ ॥
(३९) नहि । वः । शत्रुः । विविदे । अधि । द्यवि । न । भूम्याम् । रिशादसः ।
युष्माकम् । अस्तु । तविषी । तना । युजा । रुद्रासः । नु । चित् । आऽधृषे ॥ ४ ॥
(४०) प्र । वेपयन्ति । पर्वतान् । वि । विञ्चन्ति । वनस्पतीन् ।
प्रो इति । आरत । मरुतः । दुर्मदाःऽइव । देवासः । सर्वया । विशा ॥ ५ ॥

अन्वयः- ३८ (हे) नरः! यत् स्थिरं परा हत, गुरु वर्तयथ, पृथिव्याः वनिनः वि याथन, पर्वतानां आशाः वि (याथन) ह। ३९ (हे) रिश-अदसः! अधि द्यवि वः शत्रुः नहि विविदे, भूम्यां न, (हे) रुद्रासः! युष्माकं युजा आधृषे तविषी नु चित् तना अस्तु। ४० (हे) देवासः मरुतः! दुर्मदाःइव, पर्वतान् प्र वेपयन्ति, वनस्पतीन् वि विञ्चन्ति, सर्वया विशा प्रो आरत।

अर्थ- ३८ हे (नरः!) नेता वीरो! (यत्) जब तुम (स्थिरं) स्थिर रूप से अवस्थित शत्रु को (परा हत) अत्यधिक मात्रा में विनष्ट करते हो, (गुरु) बलिष्ठ शत्रु को भी (वर्तयथ) हिला देते हो, विकंपित कर डालते हो और (पृथिव्याः वनिनः) भूमंडलपर विद्यमान अरण्यों के वृक्षों को भी (वि याथन) जडमूल से उखाड फेंक देते हो, तब (पर्वतानां आशाः) पर्वतों के चतुर्दिक् (वि [याथन] ह तुम सुगमता से निकल जाते हो।

३९ हे (रिश--अदसः!) शत्रु को नष्ट करनेवाले वीरो! (अधि द्यवि) द्युलोक में तो (वः शत्रुः) तुम्हारा शत्रु (नहि विविदे) अस्तित्व में ही नहीं पाया जाता है और (भूम्यां न) भूमंडलपर भी नहीं विद्यमान है; हे (रुद्रासः!) शत्रु को रुलानेवाले वीरो! (युष्माकं युजा) तुम्हारे साथ रहते हुए (आधृषे) शत्रुओं को तहसनहस करने के लिए मेरी (तविषी) शक्ति (नु चित् तना अस्तु) शीघ्रही विस्तारशील तथा बढनेवाली हो जाए।

४० हे (देवासः मरुतः!) वीर मरुतो! (दुर्मदाः इव) बल के कारण मतवाले हुए लोगों के समान तुम्हारे वीर (पर्वतान् प्र वेपयन्ति) पर्वतों को भी प्रचलित कर देते हैं, हिला देते हैं और (वनस्पतीन् वि विञ्चन्ति) पेडों को उखाडकर दूर फेंक देते हैं, इसलिए तुम (सर्वया विशा) समूची जनता के साथ मिलजुलकर (प्रो आरत) प्रगति करते चलो।

भावार्थ- ३८ वीर पुरुष सदैव स्थिर एवं प्रबल शत्रुको भी विचलित करनेकी क्षमता रखते हैं, वनोंमेंसे सडकों का निर्माण करते हैं और पर्वतोंके मध्यसे भी लीलयैव दूसरी ओर चले जाते हैं, तथा शत्रुसंघ पर आक्रमणका सूत्रपात करते हैं।

३९ वीरों का यह अनिवार्य कर्तव्य है कि, वे अपने शत्रुओं का समूल विनाश करें, कहीं भी उन्हें रहने के लिए स्थान न दें और उनका आमूलचूल विध्वंस कर चुकने पर ही अपनी शक्ति को बढाते चलें।

४० बल अत्यधिक बढ जाने से तनिक मतवाले से बनकर वीर पुरुष शत्रुदल पर आक्रमण करते समय पर्वतों को भी विकंपित कर देते हैं और मार्ग पर पाये जानेवाले वृक्षों को भी उखाडकर हटा देते हैं। ऐसे बल की आवश्यकता रखनेवाले कार्यों की पूर्ति करना उनके लिए संभव है, अतः वे सारी जनता के सहयोग की सहायतासे ऐसी कार्यसिद्धि में अपना बल लगा देवें कि अन्तमें सबकी प्रगति हो। व्यर्थ ही उत्पात तथा विध्वंस-कार्यों में उलझे न रहें। (वायु जिस तरह वेगवान् बनने पर पेडों को तोडमरोड देती है, ठीक उसी प्रकार ये वीर भी शत्रुदल को विनष्ट कर देते हैं।)

राहमें रोडे अटकाना, उसे रोक देना। (३) मायिन् = (माया = चतुराई, कौशल्य, युक्ति, कपट) = कुशल, युक्तिमान्, कपटी। [३९] (१) आधृष् = धैर्य, आक्रमण, धावा करना, चढाई करना और शत्रुको जड मूल से उखाड देना

(४१) उपो इति । रथेषु । पृषतीः । अयुग्ध्वम् । प्रष्टिः । वहति । रोहितः ।
आ । वः । यामाय । पृथिवी । चित् । अश्रोत् । अबीभयन्त । मानुषाः ॥ ६ ॥

(४२) आ । वः । मक्षु । तनाय । कम् । रुद्राः । अवः । वृणीमहे ।
गन्त । नूनम् । नः । अवसा । यथा । पुरा । इत्था । कण्वाय । बिभ्युषे ॥ ७ ॥

(४३) युष्माऽइषितः । मरुतः । मर्त्यऽइषितः । आ । यः । नः । अभ्वः । ईषते ।
वि । तम् । युयोत । शवसा । वि । ओजसा । वि । युष्माकाभिः । ऊतिऽभिः ॥८॥

अन्वयः— ४१ रथेषु पृषतीः उपो अयुग्ध्वं, रोहितः प्रष्टिः वहति, वः यामाय पृथिवी चित् आ अश्रोत्, मानुषाः अबीभयन्त । ४२ हे रुद्राः ! तनाय कं मक्षु वः अवः आ वृणीमहे, यथा पुरा बिभ्युषे कण्वाय नूनं गन्त इत्था अवसा नः [गन्त] । ४३ (हे) मरुतः ! यः अभ्वः युष्मा- इषितः मर्त्य-इषितः नः आ ईषते, तं शवसा वि युयोत, ओजसा वि (युयोत), युष्माकाभिः ऊतिभिः वि (युयोत) ।

अर्थ- ४१ तुम (रथेषु) अपने रथों में (पृषतीः) चित्रविचित्र बिन्दुओंसहित घोडियाँ या हरिनियाँ (उपो अयुग्ध्वं) जोड चुके हो और (रोहितः) लालवर्णवाला घोडा या हिरन (प्रष्टिः) धुरा को (वहति) खींच लेता है । (वः यामाय) तुम्हारे जानेका शब्द (पृथिवी चित्) भूमि (आ अश्रोत्) सुन लेती है, पर उस आवाज से (मानुषाः अबीभयन्त) सभी मानव भयभीत हो उठते हैं ।

४२ हे (रुद्राः !) शत्रु को रुलानेवाले वीर मरुद्गण ! (तनाय कं) हमारे बालबच्चों का कल्याण तथा हित होवे, इसलिए (मक्षु) बहुत ही शीघ्र हमें (वः अवः) तुम्हारा संरक्षण मिल जाए, ऐसा (आ वृणीमहे) हम चाहते हैं; (यथा पुरा) जैसे पहले तुम (बिभ्युषे कण्वाय) भयभीत कण्व की ओर (नूनं गन्त) शीघ्र जा चुके थे, (इत्था) इसी प्रकार (अवसा) रक्षा करने की शक्ति के साथ (नः) हमारी ओर जितना जल्द हो सके, उतना आ जाओ ।

४३ हे (मरुतः !) वीर मरुत्संघ ! (यः अभ्वः) जो डरावना हथियार (युष्मा-इषितः) तुमसे फेंका हुआ या (मर्त्य-इषितः) किसी अन्य मानवसे प्रेरित होता हुआ, अगर (नः आ ईषते) हमारे ऊपर आ गिरता हो, तो (तं) उसे (शवसा वि युयोत) अपने बलसे हटा दो, (ओजसा वि) अपने तेजसे दूर कर दो और (युष्माकाभिः ऊतिभिः) तुम्हारी संरक्षण आयोजनाओंद्वारा उसे (वि) विनष्ट करो ।

भावार्थ- ४१ मरुतों के रथ में जो घोडियाँ या हिरनियाँ जोडी जाती हैं, वे पृष्ठभागपर धब्बे धारण कर लेती हैं, और उन के अग्रभाग में धुरी उठाने के लिए एक लाल रंग का अश्व या हरिण रखा जाता है । जब मरुतों का रथ आगे बढने लगता है, तब सारी पृथ्वी उस के शब्द को ध्यानपूर्वक सुन लेती है । हाँ, अन्य सभी मानव उस ध्वनि को श्रवण करते ही सहम जाते हैं, उन के अन्तस्तल में भीतिरेखा चमक उठती है । यहाँ पर एक ध्यान में रखनेयोग्य बात है कि, मरुतों के वाहन लालवर्णवाले होते हैं, भले ही वे हरिण या घोडे हों । [आगे चलकर मरुतों के पहनावे का रंग केसरिया बतलाया है (देखो मंत्र २११) । मंत्रसंख्या ५२ में ' अरुण-प्सवः ' विशेषण मरुतों को दिया गया है । इस से निश्चित रूप से प्रतीत होता है कि, ये वीर अरुण याने लाल रंगवाले हैं ।]

४२ राष्ट्रके बालकों का रक्षण करने का कार्य वीरोंपर अवलम्बित है, जो आगामी पुश्त की प्रगतिके लिए अत्यधिक सावधानता रखें । जैसे अतीतकालमें समय समय पर वीरोंने सहायता प्रदान की थी, वैसे ही अब भी वे करें ।

४३ यदि हम पर कोई आपत्ति आनेवाली हो, तो वीर अपने बल से, प्रभाव से तथा संरक्षण से उसे हटाकर पूर्णतया पैरोंतले रौंद दें, क्योंकि जनता को निर्भय कराना वीरोंका ही कर्तव्य है ।

टिप्पणी- [४१] याम =जाना, गति, आक्रमण, हमला । [४२] कण्वः = (कण्-आर्तस्वरे)= दुःखी बनकर परम पिता परमात्मा से प्रार्थना करनेवाला, स्तोता, कवि, कण्व नामक एक ऋषि । [४३] अभ्वः (अ-भूव)= अभूनपूर्व, भयानक, घोर, प्रचंड ।

(४४) असामि । हि । प्रऽयज्यवः । कण्वम् । दद । प्रऽचेतसः ।
असामिऽभिः । मरुतः । आ । नः । ऊतिऽभिः । गन्त । वृष्टिम् । न । विऽद्युतः ॥ ९ ॥

(४५) असामि । ओजः । बिभृथ । सुऽदानवः । असामि । धूतयः । शवः ।
ऋषिऽद्विषे । मरुतः । परिऽमन्यवे । इषुम् । न । सृजत । द्विषम् ॥ १० ॥

कण्वपुत्र पुनर्वत्स ऋषि (ऋ० ८।७।१—३६)

(४६) प्र । यत् । वः । त्रिऽस्तुभम् । इषम् । मरुतः । विप्रः । अक्षरत् ।
वि । पर्वतेषु । राजथ ॥ १ ॥

अन्वयः- ४४ (हे) प्र-यज्यवः प्र-चेतसः मरुतः ! कण्वं अ-सामि हि दद, अ-सामिभिः ऊतिभिः, विद्युतः वृष्टिं न, नः आ गन्त । ४५ (हे) सु-दानवः ! अ-सामि ओजः अ-सामि शवः बिभृथ, (हे) धूतयः मरुतः ! ऋषि-द्विषे परि-मन्यवे, इषुं न, द्विषं सृजत । ४६ (हे) मरुतः ! यद् विप्रः वः त्रिष्टुभं इषं प्र अक्षरत्, पर्वतेषु वि राजथ ।

अर्थ- ४४ हे (प्र-यज्यवः) अतीव पूज्य तथा (प्र-चेतसः) उत्कृष्ट ज्ञानी (मरुतः!) वीर मरुतो ! (कण्वं) कण्व को जैसे तुमने (अ-सामि हि) पूर्ण रूपसे (दद) आधार या आश्रय दे दिया था, वैसेही (अ-सामिभिः ऊतिभिः) संरक्षणकी संपूर्ण एवं अविकल आयोजनाओं तथा साधनों से युक्त होकर (विद्युतः वृष्टिं न) विजलियाँ वर्षाकी ओर जैसे चली जाती हैं, वैसे ही तुम (नः आगन्त) हमारी ओर आ जाओ ।

४५ हे (सु-दानवः !) अच्छे दान देनेवाले वीर मरुत् ! (अ-सामि ओजः) अधूरा नहीं, ऐसा समूचा वल एवं (अ-सामि शवः) अविकल शक्ति (बिभृथ) तुम धारण करते हो, हे (धूतयः मरुतः !) शत्रुदल को विकंपित करनेवाले वीर मरुद्गण ! (ऋषि-द्विषे) ऋषियों से द्वेष करनेवाले (परि-मन्यवे) क्रोधी शत्रु को धराशायी करने के लिए (इषुं न) वाण के समान (द्विषं) द्वेष करनेवाले शत्रु को ही (सृजत) उस पर छोड दो।

४६ हे (मरुतः) वीर मरुत गण ! (यत् विप्रः) जब ज्ञानी पुरुष (वः) तुम्हारे लिए (त्रिष्टुभं) त्रिष्टुभ् छन्द के वनाया हुआ स्तोत्र पढकर (इषं प्र अक्षरत्) अन्न अर्पण कर चुका, तब तुम (पर्वतेषु विराजथ) पर्वतों में विराजमान होते हो।

भावार्थ- ४४ पूजार्ह तथा ज्ञानविज्ञान से युक्त एवं विभूषित वीर लोग हमें सब प्रकार से सुरक्षित रखें और हमारी मदद करें।

४५ वीर मरुतों के समीप अविकल रूप से शारीरिक वल तथा अन्य सामर्थ्य भी है, किसी प्रकार की त्रुटि नहीं है । वे इस असीम सामर्थ्य का प्रयोग करके उस शत्रु को दूर हटा दें, जो ऋषियों का अर्थात् विद्वान् तथा श्रेष्ठ ज्ञानियों से द्वेषपूर्ण भाव रखता हो; या उसी पर दूसरे शत्रु को छोडकर उसे विनष्ट कर डाले ।

४६ एक समय जब ज्ञानी उपासक ने मरुतों को लक्ष्य में रखकर त्रिष्टुभ छन्द का सामगायन किया और उन्हें अन्न प्रदान किया तब वे वीर पर्वत श्रेणियों में आनन्दपूर्वक दिन बिताने लगे थे ।

टिप्पणी— [४४] (१) अ-सामि= आधा नहीं, पूर्ण, पूर्णरूपेण । (२) प्र-चेतस्= ध्यानपूर्वक कार्य करनेवाला, बुद्धिमान्, ज्ञानी, सुखी, हर्षित, अच्छे विचारवाला । (३) कण्व- देखो मंत्र ४२ । [४५] इस मंत्रभाग में (ऋषि-द्विषे, परि-मन्यवे द्विषं सृजत) एक मननीय राजनैतिक तत्वका प्रतिपादन किया है कि, एक शत्रुको दूसरे शत्रुसे लडाकर दोनोंको भी हतवल करके परास्त करना ।

(४७) यत् । अङ्ग । तविषीऽयवः । यामम् । शुभ्राः । अचिंध्वम् ।
नि । पर्वताः । अहासत ॥२॥

(४८) उत् । ईरयन्त । वायुऽभिः । वाश्रासः । पृश्निऽमातरः ।
धुक्षन्त । पिप्युषीम् । इषम् ॥ ३ ॥

(४९) वपन्ति । मरुतः । मिहम् । प्र । वेपयन्ति । पर्वतान् ।
यत् । यामम् । यान्ति । वायुऽभिः ॥ ४ ॥

अन्वयः- ४७ (हे) तविषी-यवः शुभ्राः अङ्ग ! यद् यामं अचिध्वं, पर्वताः नि अहासत ।
४८ वाश्रासः पृश्नि-मातरः वायुभिः उद् ईरयन्त, पिप्युषीं इषं धुक्षन्त ।
४९ मरुतः यद् वायुभिः यामं यान्ति, मिहं वपन्ति, पर्वतान् प्र वेपयन्ति ।

अर्थ- ४७ हे (तविषी-यवः) बलवान् (शुभ्राः) सुहानेवाले (अङ्ग) प्रिय तथा वीर मरुतो ! (यत्) जब तुम अपना (यामं) गमनके लिए निश्चित किया हुआ रथ (अचिध्वं) सुसज्ज करते हो, तब (पर्वता नि अहासत) पर्वत भी चलायमान हो उठते हैं।

४८ (वाश्रासः) गर्जना करनेवाले (पृश्नि-मातरः) भूमि को माता माननेवाले वीर मरुत् (वायुभिः) वायु--प्रवाहों की सहायता से (उद् ईरयन्त) मेघों को इधर-उधर ले चलते हैं और तदनुसार (पिप्युषीं इषं धुक्षन्त) पुष्टिकारक अन्न का सृजन करते हैं।

४९ (मरुतः) वीर मरुतों का यह दल (यत् वायुभिः) जब वायुओं के साथ (यामं यान्ति) दौडने लगते हैं, तब (मिहं वपन्ति) वे वर्षा करने लगते हैं, और (पर्वतान् प्र वेपयन्ति) पर्वतश्रेणियोंको कंपायमान कर देते हैं।

भावार्थ- ४७ बल बढानेवाले वीर जब शत्रु पर चढाई करने की लालसा से अपना रथ सुसज्जित कर देते हैं, तब ऐसा प्रतीत होने लगता है कि, मानों पहाड भी हिलने लगते हैं।

४८ पवन की झकोरों से बादल इधर-उधर जाने लगते हैं और कुछ काल के उपरान्त उन से वर्षा होती है, तथा अन्न भी यथेष्ट मात्रा में उत्पन्न होता है। इसी अन्न से जीवसृष्टि का भरणपोषण होता है। निस्संदेह मरुतों का यह कार्य वर्णनीय है।

टिप्पणी [४७] (१) तविषी-यु = (तविष = शक्ति, धैर्य, बल, सामर्थ्य, बलिष्ठ, स्वर्ग;) शक्तिमान्, धीरवीर, उत्साह एवं उमंगसे भरा हुआ। (२) शुभ्र। = चमकीला तेजस्वी, सुन्दर, साफ सुथरा, सफेद, चन्दन, स्वर्ग, चाँदी। (शुभ्राः = शरीर पर चन्दन का लेप करनेवाले ?) शोभायमान। [४८] चूँकि इस मंत्र में ऐसा कहा है, (पृश्निमातरः वायुभिः उदीरयन्ते) अर्थात् वायु की लहरियों से मरुत् मेघों को तितरबितर कर देते हैं, अस्ताव्यस्त कर डालते हैं, ऐसा प्रतीत होता है कि, मरुत् एवं वायु दो विभिन्न वस्तुओं की सूचना देते हैं। अगले मंत्र पर की हुई टिप्पणी देख लीजिए। [४९] यहाँ पर यों बतलाया है कि, (मरुतः वायुभिः यान्ति) मरुत् वायुओं के साथ भागने लगते हैं और वर्षा का प्रारम्भ करते हैं। इस से ऐसी कल्पना करनेमें क्या हर्ज कि, मरुत् तथा वायु दोनों विभिन्न अर्थवाले शब्द हैं। इस बारे में ऊपर के मंत्र में बतलाया हुआ वर्णन देखिए और ४१६ तथा ४१७ संख्यावाले मंत्र भी देखिए, क्योंकि वहाँपर ' वातासः न ' (वायुओं के समान ये मरुत् हैं) ऐसा कहा है।

(५०) नि । यत् । यामाय । वः । गिरिः । नि । सिन्धवः । विऽधर्मणे ।
महे । शुष्माय । येमिरे ॥ ५ ॥

(५१) युष्मान् । ऊँ इति । नक्तम् । ऊतये । युष्मान् । दिवा । हवामहे ।
युष्मान् । प्रऽयति । अध्वरे ॥ ६ ॥

(५२) उत् । ऊँ इति । त्ये । अरुणऽप्सवः । चित्राः । यामेभिः । ईरते ।
वाश्राः । अधि । स्नुना । दिवः ॥ ७ ॥

(५३) सृजन्ति । रश्मिम् । ओजसा । पन्थाम् । सूर्याय । यातवे ।
ते । भानुऽभिः । वि । तस्थिरे ॥ ८ ॥

अन्वयः— ५० यद् वः यामाय गिरिः नि, सिन्धवः वि-धर्मणे महे शुष्माय नि येमिरे।
५१ ऊतये युष्मान् उ नक्तं हवामहे, दिवा युष्मान् प्रयति अ-ध्वरे युष्मान् हवामहे।
५२ त्ये अरुण-प्सवः चित्राः वाश्राः यामेभिः दिवः अधि स्नुना उत् ईरते उ।
५३ सूर्याय यातवे रश्मिं पन्थां ओजसा सृजन्ति, ते भानुभिः वि तस्थिरे।

अर्थ— ५० (यद्) जब (वः यामाय) तुम्हारी गतिशीलता एवं प्रगति से भयभीत होकर (गिरिः नि) पर्वत एवं (वि-धर्मणे) विशेष ढंग से अपना धारण करनेवाले तुम्हारे (महे) बडे एवं महनीय (शुष्माय) बल से डरकर (सिन्धवः) नदियाँ (नि येमिरे) अपने आप को नियंत्रित कर देती हैं, [अर्थात् रुक जाती हैं, तब तुम यथेष्ट वर्षा करते हो ।]

५१ हमारी (ऊतये) रक्षा के लिए (युष्मान् उ) तुम्हें ही हम (नक्तं) रात्री के समय (हवामहे) बुलाते हैं, (दिवा) दिन की वेला में भी (युष्मान्) तुम्हें ही हम पुकारते हैं (प्रयति अ-ध्वरे) प्रारंभित हिंसारहित कर्मों के समय भी हम (युष्मान्) तुम्हीं को बुलाते हैं।

५२ (त्ये) वे (अरुण-प्सवः) लालिमायुक्त (चित्राः) आश्चर्यकारक (वाश्राः) गर्जना करनेवाले वीर मरुत् (यामेभिः) अपने रथों में से (दिवः अधि) द्युलोक के ऊपर (स्नुना) पर्वतों की ऊँची चोटियों पर से (उद् ईरते उ) उडान लेने लगते हैं।

५३ (सूर्याय यातवे) सूर्यके जानेके लिए (रश्मिं पन्थां) किरणरूपी मार्गको (ओजसा सृजन्ति) जो अपनी शक्तिसे बना देते हैं, (ते) वे (भानुभिः वि तस्थिरे) तेजद्वारा संसारको व्याप्त कर देते हैं।

भावार्थ- ५० मरुतोंमें विद्यमान वेग तथा बलसे भयभीत होकर पर्वत स्थिर हुए और नदियाँ धीमी चालसे चलने लगीं । ५१ कार्य करते समय, दिन एवं रात्रीकी वेलामें अपने संरक्षणके लिए परम पिता परमात्मा से प्रार्थना करनी चाहिए। ५२ लाल वर्णवाला गणवेश पहनकर और रथ पर बैठकर ये वीर पर्वतों परसे भी संचार करने लगते हैं। ५३ मरुतोंमें यह शक्ति विद्यमान है कि, वे सूर्यको भी प्रकाशका मार्ग बतलाते हैं और सभी जगह तेजस्वी किरणों को फैला देते हैं।

टिप्पणी- [५२] अरुण-प्सु = (अरुण-भासू) = लालवर्ण से युक्त, रक्तिम आभा से युक्त गणवेश पहननेवाले । [५३] चूंकि यहाँ यों बतलाया है कि, सूर्यसे प्रकाश को जानेके लिए मरुत् राह बना देते हैं, अतः एक विचारणीय प्रश्न उपस्थित होता है, क्या मरुत् वायु से भिन्न पर सूक्ष्म वायु के समान कोई तत्त्व है, जिस में वायु-सदृश लहरियाँ उत्पन्न होती हों? (मंत्र ४८-४९ तथा ४१६-४१७ में दी हुई उपमाओं से प्रतीत होता है कि, वायु तथा मरुत् विभिन्न हैं।)

(५४) इमाम् । मे । मरुतः । गिरम् । इमम् । स्तोमम् । ऋभुक्षणः ।
इमम् । मे । वनत । हवम् ॥ ९ ॥

(५५) त्रीणि । सरांसि । पृश्नयः । दुदुह्रे । वज्रिणे । मधु । उत्सम् । कवन्धम् । उद्रिणम् ॥१०॥

(५६) मरुतः । यत् । ह । वः । दिवः । सुम्नऽयन्तः । हवामहे ।
आ । तु । नः । उप । गन्तन ॥ ११ ॥

(५७) यूयम् । हि । स्थ । सुऽदानवः । रुद्राः । ऋभुक्षणः । दमे ।
उत । प्रऽचेतसः । मदे ॥ १२ ॥

अन्वयः— ५४ (हे) मरुतः! इमां मे गिरं वनत, (हे) ऋभु-क्षणः! इमं स्तोमं, मे इमं हवम् वनत।
५५ पृश्नयः वज्रिणे त्रीणि सरांसि, मधु उत्सं, उद्रिणं कवन्धं, दुदुह्रे।
५६ (हे) मरुतः! यत् ह वः सुम्नायन्तः दिवः हवामहे, आ तु नः उप गन्तन।
५७ (हे) सु-दानवः रुद्राः ऋभु-क्षणः! यूयं उत दमे मदे प्र-चेतसः स्थ।

अर्थ— ५४ हे (मरुतः!) वीर मरुतो! (इमां मे गिरं) इस मेरी स्तुतिपूर्ण वाणी को (वनत) स्वीकार करो; हे (ऋभु-क्षणः!) शस्त्रास्त्रोंसे सुसज्ज वीरो! तुम (इमं स्तोमं) इस मेरे स्तोत्र का और (मे इमं हवं) मेरी इस प्रार्थनाका स्वीकार करो। ५५ (पृश्नयः) मरुतोंकी माताओंने (वज्रिणे) इन्द्रके लिए (त्रीणि सरांसि) तीन झीलें, (मधु) मिठाससभरा (उत्सं) जलपूर्ण कुंड और (उद्रिणं) पानी से भरा हुआ (कवन्धं) जल धारण करनेवाला बृहदाकारपात्र या मेघ (दुदुह्रे) दोहन कर भरा है। ५६ हे (मरुतः) वीर मरुद्गण! (यत् ह) जब (वः) तुम्हें, (सुम्नायन्तः) सुखी होनेकी लालसा करनेवाले हम (दिवः हवामहे) द्युलोक से बुलाते हैं, उस समय (आ तु) तुरन्त ही तुम (नः उप गन्तन) हमारे समीप आ जाओ। ५७ हे (सु-दानवः!) भली प्रकार दान देनेवाले (रुद्राः) शत्रुसंघ को रुलानेवाले तथा (ऋभु-क्षणः) शस्त्र धारण करनेवाले वीरो! (यूयं उत हि) तुम सचमुचही जब अपने (दमे) घर में या यज्ञ में (मदे) आनन्द में रहते हो, एवं सोमरस का सेवन करते हो, तब (प्र-चेतसः स्थ) तुम्हारी बुद्धि अधिक चेतनायुक्त बन जाती है।

भावार्थ– ५५ भूमि, गौ तथा वाणी मरुतोंकी माताएँ हैं। भूमिसे अन्न तथा जल, गौ से दुग्ध और वाणीसे ज्ञान की प्राप्ति होती है। तीनोंके तीन सेवनीय तथा उपादेय वस्तुएँ हैं। मरुतोंकी माताओंने त्रिविध दुग्धसे तीन झीलें भरकर तैयार कर रखी हैं ताकि वीर मरुतोंका भरणपोषण सुचारु रूपसे एवं भली भाँति हो जाए। ५७ ये वीर बडे ही उदार, शत्रुओं का नाश करनेवाले सदैव शस्त्रास्त्रोंसे सुसज्ज हैं और जिस समय ये अपने प्रासादों में तथा निवासस्थलोंमें सुख-पूर्वक दिन बिताते हैं अथवा यज्ञभूमि में सोमरस का सेवन करते हैं, तब इनकी बुद्धि अतीव चेतनाशील होती है।

टिप्पणी- [५४] ऋभु = कारीगर, कुशल, शोधक, लुहार, रथकार, बाण, वज्र। ऋभु-क्ष = इन्द्रका वज्र, शस्त्र; ऋभुक्षणः = शस्त्रधारी, कारीगरोंको आश्रय देनेवाले (मंत्र ५७ और ८३ देखिए)। [५५] (१) क-वन्ध = पानी इकट्ठा करनेके लिए बडा भारी कुंड या मेघ। [५६] यहाँ पर 'सुम्नायन्तः' पद पाया जाता है, जिसका कि अर्थ है सुख पाने के लिए सचेष्ट रहनेवाले। ध्यान में रहे कि 'सु-मन' (सुम्न) मन को भली भाँति संस्कारसम्पन्न करने से ही यह सुख मिल सकता है। यह अतीव महत्त्वपूर्ण तत्त्व कभी न भूलना चाहिए। 'सु-मन' तथा 'सुम्न' वास्तव में एक ही है। इस पद से हमें यह सूचना मिलती है कि, उत्तम ढंग से परिष्कृत मन ही सुख का सच्चा साधन है। इसलिए मंत्र ६० एवं ९७ देख लीजिए। [५७] (१) दम = इन्द्रियदमन, संयम, मनकी स्थिरता, गृह। (२) मद = प्रेम, गर्व, आनन्द, मधु, सोम एवं वीर्य।

(५८) आ । नः । रयिम् । मदऽच्युतम् । पुरुऽक्षुम् । विश्वऽधायसम् ।
इयर्त । मरुतः । दिवः ॥ १३ ॥

(५९) अधिऽइव । यत् । गिरीणाम् । यामम् । शुभ्राः । अचिध्वम् ।
सुवानैः । मन्दध्वे । इन्दुऽभिः ॥ १४ ॥

(६०) एतावतः । चित् । एषाम् । सुम्नम् । भिक्षेत । मर्त्यः ।
अदाभ्यस्य । मन्मऽभिः ॥ १५ ॥

अन्वयः— ५८ (हे) मरुतः ! नः मद-च्युतं पुरु-क्षुं विश्व-धायसं रयिं दिवः आ इयर्त ।
५९ (हे) शुभ्राः ! गिरीणां अधिइव यत् यामं अचिध्वं (तदा यूयं) सुवानैः इन्दुभिः मन्दध्वे ।
६० मर्त्यः एतावतः चित् अ-दाभ्यस्य मन्मभिः एषां सुम्नं भिक्षेत ।

अर्थ— ५८ हे (मरुतः !) मरुत् संघ ! (नः) हमारे लिए (मद-च्युतं) शत्रुओं के गर्व का भंग करनेवाले, (पुरु-क्षुं) सब के लिए पर्याप्त (विश्व-धायसं) तथा सब के पोषण की क्षमता रखनेवाले (रयिं) धनको (दिवः आ इयर्त) द्युलोक से ला दो। ५९ हे (शुभ्राः !) तेजस्वी वीरो! (गिरीणां अधिइव) पर्वतमय प्रदेश पर चढ जानेके समय जिस ढंगसे सुसज्ज कर रखते हैं वैसे ही (यत्) जब तुम (यामं अचिध्वं) रथ को तैयार कर चुकते हो, उस समय (सुवानैः इन्दुभिः) निचोडे हुए सोमरस की धाराओं से (मन्दध्वे) तुम हर्षित होते हो। ६० (मर्त्यः) मानव (एतावतः चित्) इस प्रकार सचमुच ही (अ-दाभ्यस्य) न दबाये जानेवाले प्रभु के (मन्मभिः) मननीय काव्यों से (एषां) इनसे (सुम्नं भिक्षेत) उत्तम सुख की याचना करे।

भावार्थ- ५८ हमें जो धन मिले वह, इस भाँतिका हो कि (१) उस धनसे शत्रुदलका गर्व विनष्ट हो जाए, (२) वह इतनी मात्रामें उपलब्ध हो कि, सब सुखपूर्वक रह सकें, (३) सबकी पुष्टि हो जाए, सभी बलिष्ठ बनें। यदि ये तीन बातें हो जायँ, तोही वह धन समीप रखनेयोग्य समझना उचित है, अन्य किसी प्रकारका नहीं। ५९ पर्वतों पर चढते समय जैसे रथको तैयार करना पडता है, वैसे ही ये वीर मरुत् जब रथको पूर्णतया सिद्ध या लैस बना रखते हैं, तब वे सोमरसके सेवन से प्रसन्न एवं हर्षित हो उठते हैं। प्रथमतः सोमरस पीकर पश्चात् रथको तैयार रखकर पार्वतीय सडकों परसे शत्रुदल पर धावा करके, उनकी धज्जियाँ उडाने के लिए मरुत् गमन करते हैं। ६० परम पिता परमात्मा किसी भी शत्रुके दबावसे दबनेवाला नहीं है, क्योंकि वह असीम सामर्थ्यवान् है। मानव उसके सम्बन्ध में मननीय काव्य की निर्मिति करें तथा तल्लीनचेता बन गायन करें। मनकी उन्नत दशामें जो सुख मिल सकता है, उसे पानेकी चेष्टा करनी चाहिए।

टिप्पणी- [५८] धनसंपत्ति से क्या किया जाय?- तीन तरहके कार्योंमें सफलता मिलनी चाहिए, अर्थात् (१) घमंड न होने पाय, (२) सभी उससे लाभान्वित हों, तथा (३) सब का पोषण हो। जो धन ऐसे कर सकता है, वही उच्च कोटि का समझना चाहिए। पर जिस धन के वर्धन से गर्व बढ जाए, जो किसी एक के समीपही इकट्ठा होता रहे और जिससे सभी के पोषणकार्य में तनिक भी सहायता न मिले, वह निम्न श्रेणि का है। यहाँ पर बतलाया है कि, धनका उपयोग कैसे किया जाय। [५९] (१) सुवानः = (सु= अभिषवे, स्नपन-पीडन-स्नान-सुरासंधानेषु) निचोडा जानेवाला रस। (२) इन्दुः = सोमरस, आनन्द बढानेवाला, अन्तस्तल पिघलानेवाला रस। [६०] (१) सुम्नं = (सु-मनः) सुख की जड में उत्तम मन ही तो है। मानवमात्र की बस यही लालसा हो कि, उच्च कोटि के मन के फलस्वरूप जो सुख मिल सकता है, वही पाना चाहिए। यदि मन में हीन एवं जघन्य विचारों की भरमार हो, तो सच्चा सुख पाना नितांत असंभव है। (२) अ-दाभ्यस्य मन्म = जो किसी भी शत्रु की शक्ति से दब नहीं जाता, उसी का मनन या चिंतन करने में सहायक हो, ऐसे काव्य की सृष्टि करनी चाहिए और मानवजाति उसी काव्य के गायन में निरत रहे। ऐसे वीरकाव्यों से उत्तम ढंगसे मन को परिष्कृत (सु-मनः; सु-म्नं) तथा परिमार्जित करना सुगम होगा, जिस से सच्चे सुख की प्राप्ति होने में तनिक भी देर न लगेगी।

(६१) ये । द्रप्साःऽइव । रोदसी इति । धमन्ति । अनु । वृष्टिऽभिः ।
उत्सम् । दुहन्तः । अक्षितम् ॥ १६ ॥

(६२) उत् । ऊँ इति । स्वानेभिः । ईरते । उत् । रथैः । उत् । ऊँ इति । वायुऽभिः
उत् । स्तोमैः । पृश्निऽमातरः ॥ १७ ॥

(६३) येन । आव । तुर्वशम् । यदुम् । येन । कण्वम् । धनऽस्पृतम् ।
राये । सु । तस्य । धीमहि ॥ १८ ॥

अन्वयः- ६१ ये अ-क्षितं उत्सं दुहन्तः वृष्टिभिः द्रप्साःइव रोदसी अनु धमन्ति ।
६२ पृश्नि-मातरः स्वानेभिः उ उत् ईरते, रथैः उत्, वायुभिः उ उत्, स्तोमैः उत् (ईरते)।
६३ येन तुर्वशं यदुं आव, येन धन--स्पृतं कण्वं, तस्य (ते अवनं) राये सु धीमहि ।

अर्थ —६१ (ये) जो (अ-क्षितं उत्सं) कभी न घटनेवाले झरनेको-मेघको (दुहन्तः) दुहते हैं, वे वीर (वृष्टिभिः) वर्षाओंकी सहायतासे (द्रप्साःइव) मानों वारिशकी बूँदोंसे (रोदसी अनु धमन्ति) समूचे आकाश एवं भूमंडलको व्याप्त कर देते हैं ।

६२ (पृश्नि-मातरः) भूमिको माता माननेवाले वीर (स्वानेभिः उ) अपने शब्दों तथा अभिभाषणों से (उत् ईरते) ऊपर चढते हैं, (रथैः उत्) रथोंसे ऊर्ध्वगामी बनते हैं, (वायुभिः उ उत्) वायुओं से ऊंचे पदपर आरूढ होते हैं. (स्तोमैः उत्) यज्ञोंसेभी ऊपर उठ जाते हैं ।

६३ (येन) जिस शक्तिके सहारे (तुर्वशं यदुं) तुर्वश उपाधिधारी यदुनरेश का तुमने (आव) प्रतिपालन किया, (येन) जिससे (धन-स्पृतं कण्वं) धनको चाहनेवाले कण्वका संरक्षण किया, (तस्य) उस तुम्हारी संरक्षणक्षम शक्तिका हम (राये) धनकी प्राप्ति के लिये (सु धीमहि) भली भाँति ध्यान करते हैं।

भावार्थ —६१ मरुत् मेघोंसे वर्षा करते हैं और वर्षाकी बूँदोंसे अखिल विश्व को परिपूर्ण कर डालते हैं ।

६२ ये वीर भूमिको अपनी माता समझकर उसकी सेवा करनेवाले हैं और अपने अभिभाषणों, रथों, वायुयानों एवं यज्ञोंसे ऊंची दशा पाते हैं । इन्हीं साधनोंद्वारा वे अपनी प्रगति करने में पर्याप्त सफलता पाते हैं ।

६३ इन वीरोंने तुर्वश यदु तथा धनेच्छुक कण्व की यथावत् रक्षा की । हमारी इच्छा है कि ये वीर उसी तरह हमें बचा दें, ताकि हम उनकी छत्रछायामें अधिकाधिक धनधान्यसंपन्न हों और उस वैभव एवं संपत्तिके बलबूतेपर विविध यज्ञ संपन्न कर समूची जनता का कल्याण करेंगे ।

टिप्पणी— [६१] द्रप्स (Drops), बूँद। [६२] वीरों का भाषण ऐसा हो कि, उससे उनकी उन्नति में लेशमात्र भी रुकावट न हो; वैसेही वे अपने रथ उत्कृष्ट राहपरसे ले चलें, श्रेष्ठ यज्ञ संपन्न करें और अनुकूल वायुप्रवाहों की सहायतासे (वायुयानों से) आकाशपथसे अच्छी जगह जा पहुंचें । कई मंत्रों में यह उल्लेख पाया जाता है कि मरुत् पंछीकी नाईं आकाशपथमें से यात्रा करते हैं। देखिये मंत्रों के क्रमांक ९१ (श्येनासो न पक्षिणः), १५१ (वयो न पप्तता) और ३८९ (आ हंसासो नीलपृष्ठा अपप्तन्) । 'वायुभिः उत्'से ज्ञात होता है कि वायुओं की सहायतासे मरुत् ऊपर उठ जाते हैं। अतः वायु एवं मरुतों में विभिन्नता है, दोनोंमें एकरूपता नहीं । मंत्र ४९ पर जो टिप्पणी लिखी है, सो देखिये । आगे चलकर मंत्र ८० में मरुतों के आकाशयानका स्पष्ट उल्लेख उपलब्ध है, उसका विचार करना उचित है । [६३] (१) कण्व (कण् शब्दे)= कवि, वक्ता, विद्वान्, आर्त जो कराहता हो, एक ऋषि का नाम । (२) तुर्वश= (तुर्-वश) त्वरापूर्वक शत्रुको वशमें लानेवाला, एक नरेश का नाम । (३) यदु= (यम् उपरमे, यमेर्दुक् औणादिकः) बुरे कर्मों से उपरत हो पीछे हटनेवाला, एक राजा का नाम ।

(६४) इमाः । ऊँ इति । वः । सुऽदानवः । घृतम् । न । पिप्युषीः । इषः ।
वर्धान् । काण्वस्य । मन्मऽभिः ॥ १९ ॥

(६५) क्व । नूनम् । सुऽदानवः । मदथ । वृक्तऽबर्हिषः । ब्रह्मा । कः । वः । सपर्यति ॥२०॥

(६६) नहि । स्म । यत् । ह । वः । पुरा । स्तोमेभिः । वृक्तऽबर्हिषः ।
शर्धान् । ऋतस्य । जिन्वथ ॥ २१ ॥

(६७) सम् । ऊँ इति । त्ये । महतीः । अपः । सम् । क्षोणी इति । सम् । ऊँ इति । सूर्यम् ।
सम् । वज्रम् । पर्वऽशः । दधुः ॥ २२ ॥

अन्वयः– ६४ (हे) सु-दानवः ! घृतं न पिप्युषीः इमाः इषः काण्वस्य मन्मभिः वः वर्धान्।
६५ (हे) सु-दानवः वृक्त-बर्हिषः ! क्व नूनं मदथ ? कः ब्रह्मा वः सपर्यति ?
६६ (हे) वृक्त-बर्हिषः ! नहि स्म, पुरा वः यत् ह स्तोमेभिः ऋतस्य शर्धान् जिन्वथ।
६७ त्ये महतीःअपः उ सं दधुः, क्षोणी सं, सूर्यं उ सं, वज्रं पर्वशः सं (दधुः)।

अर्थ— ६४ हे (सु-दानवः!) उत्तम दानी वीरो ! (घृतं न) घीके समान (इमाः पिप्युषीः इषः) ये पुष्टिकारक अन्न (कण्वस्य मन्मभिः) कण्वपुत्र के मनन करनेयोग्य काव्य या स्तोत्रद्वारा (वः वर्धान्) तुम्हारे यशकी वृद्धि करें। ६५ हे (सु--दानवः) सुचारु रूपसे दान देनेवाले तथा (वृक्त--बर्हिषः!) कुशासनोंपर बैठनेवाले वीरो ! (क्व नूनं मदथ ?) भला तुम किधर हर्षित हो रहे थे ? (कः ब्रह्मा) भला वह कौन ब्राह्मण है, जो (वः सपर्यति) तुम्हारी पूजा उपासना करता है ? ६६ (वृक्त -बर्हिषः!) हे दर्भासनपर बैठनेवाले वीरो ! (नहि स्म) क्या यह सच नहीं है कि (यत् ह) सचमुच यहाँपर (पुरा) पहले तुम (वः स्तोमेभिः) अपने प्रशंसा करनेवाले अभिभाषणों से (ऋतस्य शर्धान्) सत्यके सैनिकोंको अर्थात् धर्म के लिए लडने-वाले सिपाहियोंको (जिन्वथ) प्रोत्साहित कर चुके हो। ६७ (त्ये) उन वीरोंने (महतीः अपः) बहुतसा जल (उ सं दधुः) धारण किया, (क्षोणी सं [दधुः]) पृथ्वी को धर दिया और(सूर्यं उ सं [दधुः]) सूर्यको भी आधार दिया; उन्होंनेही (वज्रं पर्वशः सं [दधुः]) अपने वज्रको हर पोरमें या गांठमें सुदृढ बना दिया है।

भावार्थ— ६४ उच्च कोटिके पुष्टिकारक अन्नोंके प्रदान एवं मननीय काव्योंके गायन से वीरोंका यश बढने लगता है। ६५ हे वीरो ! चूँकि तुम शीघ्र मेरे समीप नहीं आ सके, अतः यह सवाल हठात् मेरे मनमें उठ खडा होता है कि किस जगह भला ये आनन्दोल्लाससें चूर हो बैठे हों और शायद ऐसा कौन उपासक इनसे प्रार्थना करता होगा कि, वहांसे शीघ्र प्रस्थान करना इन वीरोंको दूभर प्रतीत होता हो। ६६ सद्धर्म के लिए लडनेवाले सैनिकोंको प्रोत्साहन मिले, इसलिए वीर उत्तम प्रभावोत्पादक भाषणों द्वारा उनका उत्साह बढाते हैं। ६७ इन मरुतोंने मेघोंको, द्यावापृथिवी को, सूर्यको अपनी अपनी जगह भली भाँति धर दिया है और उनका स्थान अटल तथा स्थिर किया है। इन्हीं वीर मरुतोंने अपने वज्र नामक शस्त्र को स्थानस्थानपर ठीक तरह जोडकर उसे बलिष्ठ बना डाला है। अन्य वीरभी अपने हथियार अच्छी तरह तैयार करनेमें सतर्क रहें और शत्रुके हथियारोंसे भी अत्यधिक मात्रामें उन्हें प्रबल तथा कार्यक्षम बना दें।

टिप्पणी— [६५] (१) वृक्त-बर्हिस्= आसनपर-दर्भासनपर बैठनेवाले, कुश फैलाकर बैठनेवाले। (२) ब्रह्मा= ज्ञानी, ब्राह्मण, याजक, उपासक, मंत्रज्ञ, यज्ञके श्रेष्ठ ऋत्विज्। [६६] (१) शर्धः=बल,सामर्थ्य, सैन्य। (२) ऋतस्य शर्धः= सत्यका बल, सत्यधर्मके लिए लडनेवाली सेना। (३) जिन्व्= आनंद देना, उत्साहित करना। [६७] (१) क्षोणी= पृथ्वी, द्यावापृथिवी [निघंटु ३।३०]।

(६८) वि । वृत्रम् । पर्वऽशः । ययुः । वि । पर्वतान् । अराजिनः ।
चक्राणाः । वृष्णि । पौंस्यम् ॥ २३ ॥

(६९) अनु । त्रितस्य । युध्यतः । शुष्मम् । आवन् । उत । क्रतुम् ।
अनु । इन्द्रम् । वृत्रऽतूर्ये ॥ २४॥

(७०) विद्युत्ऽहस्ताः । अभिऽद्यवः । शिप्राः । शीर्षन् । हिरण्ययीः ।
शुभ्राः । वि । अञ्जत । श्रिये ॥ २५ ॥

अन्वयः- ६८ वृष्णि पौंस्यं चक्राणाः अ-राजिनः वृत्रं पर्वशः वि ययुः, पर्वतान् वि (ययुः) ।
६९ युध्यतः त्रितस्य शुष्मं उत क्रतुं अनु आवन्, वृत्र-तूर्ये इन्द्रं अनु (आवन्)।
७० विद्युत्-हस्ताः अभि-द्यवः शुभ्राः शीर्षन् हिरण्ययीः शिप्राः श्रिये वि अञ्जत।

अर्थ— ६८ [वृष्णि] बलशाली [पौंस्यं] पौरुषपूर्ण कार्य [चक्राणाः] करनेवाले इन [अ-राजिनः] संघशासक वीरोंने [वृत्रं पर्वशः वि ययुः] वृत्रके हर गांठके टुकडे टुकडे किये और (पर्वतान् वि [ययुः]) पहाडों को भी विभिन्न कर राह वना डाली । ६९ [युध्यतः त्रितस्य] लडते हुये त्रितके [शुष्मं उत क्रतुं] बल एवं कार्यशक्ति का तुमने [अनु आवन्] संरक्षण किया और [वृत्र-तूर्ये] वृत्रहत्याके अवसरपर [इन्द्रं अनु] इन्द्र को भी सहायता दे दी । ७० [विद्युत्-हस्ताः] बिजलीकी नाईं चमकनेवाले हथियार हाथमें धारण करनेवाले [अभि-द्यवः] तेजस्वी तथा [शुभ्राः] गौरवर्णवाले ये वीर [शीर्षन्] अपने सरपर [हिरण्ययीः शिप्राः] सुवर्ण के बने साफे [श्रिये] शोभा के लिये [वि अञ्जत] रख देते हैं ।

भावार्थ— ६८ ये वीर ऐसे पराक्रमपूर्ण कार्य कर दिखलाते हैं कि, जिनमें बल, वीर्य तथा शूरताकी अतीव आवश्यकता प्रतीत होती है । ये किसी एक नियामक राजाकी छत्रछायासें नहीं रहते हैं । [इन्हें संघशासक नाम दिया जा सकता है, अर्थात् इनका समूचा संघही इनपर शासन करता है । ऐसे] इन वीरोंने वृत्रके टुकडे टुकडे कर डाले और पर्वतोंका भेदन कर आगे बढने के लिए सडक बना दी । ६९ इन वीरोंने त्रित नरेश को लडाईमें सहायता पहुंचाकर उसके बल, उत्साह तथा कर्तृत्वशक्ति को अक्षुण्ण बना रखा, अतः त्रित विजयी बन गया और इसी भाँति इन्द्र को भी वृत्रवध के मौकेपर मदद करके उसे भी विजयी बना दिया। ७० ये वीर चमकीले शस्त्र हाथोंमें रखते हैं । ये तेजस्वी तथा गौरकाय हैं और उनके सिरपर स्वर्णमय शिरस्त्राण सुहाते हैं । अन्य वीर भी इसी भाँति अपने शस्त्रों को पुराने या जीर्ण होने न दें, सदैव विद्युल्लेखाके समान प्रकाशमान एवं चमकीले रूप में रख दें।

टिप्पणी— [६८](१) राजिन्= [राजः अस्य अस्तीति राजी]= जिनपर शासन चलाने के लिए राजा विद्यमान रहता है, वे 'राजिन्' कहलाते हैं । अ-राजिन्= [राजः स्वामी अस्य न विद्यते इत्यराजी।] जिनपर किसी एक व्यक्तिका शासन या नियंत्रण नहीं प्रस्थापित हुआ हो, जिनका सारा संघ या समुदायही हर व्यक्तिपर नियमन डालता हो । मरुत् संघवादी, संघशासक वीर थे और सब स्वयंही मिलकर शासनप्रबंध करते थे । मंत्र २९२ और ३९८ में 'स्व-राजः' पदसे यही भाव सूचित होता हैं। (२) वृष्णि= पौरुषयुक्त, बलशाली, सामर्थ्यवान्, क्रुद्ध, मेष, बैल, प्रकाशकिरण, वायु । (३) पौंस्य= पौरुषकृत्य, सामर्थ्य, वीर्य, पुरुषमें विद्यमान वीरता। [६९] (१) शुष्मं= बल, सामर्थ्य, सैन्य । (२) क्रतुः= कर्मशक्ति, कर्तृत्व, उत्साह, यज्ञ, बुद्धि । (३) त्रित= [त्रिभिस्तायते] तीन शक्तियों का उपयोग कर रक्षा करता है। एक नरेशका नाम [त्रिषु स्थानेषु तायमानः। सायण ऋ० ५।५४।२; २५१ मंत्र]।[७०] (१) शिप्रा=शिरस्त्राण, पगडी, ठुड्डी, नासिका, शिरस्त्राणके मुँहपर आनेवाला जाला।(२) वि-अञ्ज्= सुशोभित करना, सजावट करना, अंजन लगाना, सुन्दर बनाना, व्यक्त करना। हिरण्ययीः शिप्राः व्यञ्जत= सुवर्णसे विभूषित या सुनहली पगडियोंसे ये दूसरों से पृथक् दीख पडते थे। जनताके मध्य इन वीरों को पहचानना इन्हीं सुनहले साफोंसे आसान हुआ करता। स्वर्णमय शिरोवेष्टनसे विभूषित इन वीरों के समुदाय को देखतेही लोग तुरन्त कहना शुरु करते 'लो भाई, ये वीर मरुत् हैं।'

(७१) उशना । यत् । पराऽवतः । उक्ष्णः । रन्ध्रम् । अयातन ।
द्यौः । न । चक्रदत् । भिया ॥ २६ ॥
(७२) आ । नः । मखस्य । दावने । अश्वैः । हिरण्यपाणिऽभिः ।
देवासः । उप । गन्तन ॥ २७ ॥
(७३) यत् । एषाम् । पृषतीः । रथे । प्रष्टिः । वहति । रोहितः ।
यान्ति । शुभ्राः । रिणन् । अपः ॥ २८ ॥

अन्वयः— ७१ (यूयं) उशना यत् परावतः उक्ष्णः रन्ध्रं अयातन, द्यौः न भिया चक्रदत् ।
७२ (हे) देवासः! नः मखस्य दावने हिरण्य-पाणिभिः अश्वैः उप आ गन्तन ।
७३ यत् एषां रथे पृषतीः (युज्यन्ते) प्रष्टिः रोहितः वहति, अपः रिणन् शुभ्राः यान्ति ।

अर्थ— ७१ तुम हित करनेकी [उशनाः] इच्छा करनेवाले [यत्] जब [परावतः] दूरके प्रदेशों से [उक्ष्णः रन्ध्रं] मेघों में [अयातन] आते हो, तब [द्यौः न] द्युलोक के समानही अन्य सभी लोग [भिया चक्रदत् डर के मारे विकंपित हो उठते हैं। ७२ हे [देवासः!] देवतागण! तुम [नः मखस्य दावने] हमारे यज्ञकी देन देनेके समय [हिरण्य-पाणिभिः] हाथों एवं पैरोंमें सुवर्ण के अलंकार पहने हुए [अश्वैः] घोडोंके साथ [उप आ गन्तन] हमारे समीप आओ। ७३ [यत् एषां रथे] जब इनके रथमें [पृषतीः] धब्बे धारण करनेवाली हरिनियाँ लगाई जाती हैं, तब [प्रष्टिः] धुराको कंधेपर धारण करनेवाला [रोहितः] एक लाल रंगका हिरन भी आगे [वहति] खींचने लगता है, उस समय अति वेगके कारण [अपः रिणन्] पसीनेका जल बहने लगता है और [शुभ्राः यान्ति] वे गौरवर्ण के वीर आगे बढने लगते हैं।

भावार्थ— ७१ सब का कल्याण करने की इच्छा से जब मरुत् वर्षाका प्रारम्भ करने के लिये मेघोंमें संचार करने लगते हैं, उस समय आकाशमें भीषण दहाड शुरु होती है, जिससे हरएकके दिलमें भय का संचार होता है। ७२ इन वीरोंके घोडे सुनहले आभूषणोंसे विभूषित होते हैं। ऐसे अश्वोंपर बैठ इस हमारे यज्ञमें वीर मरुत् आ उपस्थित हों। ७३ वीर मरुतोंका रंग गोरा है और उनके रथमें धब्बेवाली हरिणियाँ लगी रहती हैं। उनके आगे एक लाल रंगका हरिण जोता जाता है। इस भाँति उनका रथ सज्ज हो जाए, तो अति वेगसे वह आगे बढने लगता है, जिस से उसे खींचनेवाले पसीनेसे तर हो जाते हैं। ऐसे रथोंपर बैठकर मरुत् जाने लगते हैं।

टिप्पणी— [७१] (१) उक्ष्णः रन्ध्रं= बैलकी गुफा, मेघों का स्थान, बरसनेवाले मेघ की जगह। [७२] (१) 'हिरण्यपाणिभिः अश्वैः उपागन्तन' पैरोंमें स्वर्णमय गहने धारण किये हुए अश्वोंपर चढकर इन वीरोंका आगमन होता है। यहाँपर घोडोंपर बैठनेका उल्लेख पाया जाता है। [७३] (१) प्रष्टिः= धुरा, आगे रहनेवाला, धुरा ढोनेवाला। [२] पृषती = धब्बेवाली, जलकी बूँद, जल गिरानेवाली। रथमें हरिण = मरुत्सूक्तों में अनेक जगह यह वर्णन पाया जाता है कि, मरुतों के रथ में हरिणी या शंबर अथवा बारहसिंगा लगाया जाता है। हरिण से युक्त रथ तो बर्फीले स्थानोंपर काममें आते हैं, इसलिए अन्तस्तल में सन्देह उठ खडा होता है कि शायद ये वीर मरुत् हिमकी अधिकता के लिए विख्यात भू-विभागोंमें निवास करते हों। [इस संबधमें देखो मंत्रोंके क्रमांक ७;४१,७३,११५; १२६;१२७;२०१;२१४;२८६]। आगे चलकर ७४ वें मंत्रमें 'नि-चक्रया' [चक्र या पहियेसे रहित रथसे] मरुत् यात्रा करते थे, ऐसा उल्लेख पाया जाता है। हिमप्रचुर या बर्फीले स्थानोंमें जिन गाडियोंको हिरन खींचते हैं, वे बिना पहियोंके होते हैं। घनीभूत हिमस्तरके ऊपरसे ये हिरन इन वाहनोंको सरपट खींच ले चलते हैं। इस ढंगकी गाडीको [Sledge] नाम दिया जाता है और यह गाडी हिमयुक्त प्रदेशोंमें बहुत कामकी मानी जाती है। इस मंत्रमें निर्देश पाया जाता है

(७४) सुऽसोमे । शर्यणाऽवति । आर्जीके । पस्त्यऽवति ।
ययुः । निऽचक्रया । नरः ॥ २९ ॥

(७५) कदा । गच्छाथ । मरुतः । इत्था । विप्रम् । हवमानम् ।
मार्डीकेभिः । नाधमानम् ॥ ३० ॥

(७६) कत् । ह । नूनम् । कधऽप्रियः । यत् । इन्द्रम् । अजहातन ।
कः । वः । सखिऽत्वे । ओहते ॥ ३१ ॥

अन्वयः— ७४ सु-सोमे आर्जीके शर्यणावति पस्त्यावति नरः नि-चक्रया ययुः।
७५ (हे) मरुतः ! इत्था हवमानं नाधमानं विप्रं कदा मार्डीकेभिः गच्छाथ ?
७६ (हे) कध-प्रियः ! इन्द्रं नूनं अजहातन यत् कत् ह, वः सखित्वे कः ओहते ?

अर्थ— ७४ [सु-सोमे] उत्कृष्ट सोमवल्लियोंसे युक्त [आर्जीके] ऋजीक नामक भूविभाग में [शर्यणावति] शर्यणावत् नामक झीलके समीप विद्यमान [पस्त्या-वति] गृहमें [नरः] नेतृत्वगुणयुक्त वीर [निचक्रया] पहियों से रहित रथमें बैठकर [ययुः] चले जाते हैं।

७५ हे [मरुतः!] वीर मरुतो! [इत्था] इस ढंगसे [हवमानं] प्रार्थना करते हुए, पुकारते हुये तथा [नाधमानं] सहायताकी लालसा रखनेवाले [विप्रं] ज्ञानी पुरुषके समीप भला तुम [कदा] कब [मार्डीकेभिः] सुखवर्धक धनवैभवोंके साथ [गच्छाथ] जानेवाले हो?

७६ हे (कध-प्रियः !) कथाप्रिय वीर मरुतो ! (इन्द्रं) इन्द्र को (नूनं) सचमुच (अजहातन) तुम छोड चुके हो, (यत् कत् ह) भला कभी ऐसा भी हुआ होगा ? [कभी नहीं] तो फिर (वः सखित्वे) तुम्हारी मित्रता पाने के लिए (कः ओहते ?) कौन भला दूसरा लालायित हो उठा है ?

भावार्थ— ७४ ऋजीक देशके एक सूबेको 'आर्जीक' कहते हैं। 'शर्यणावत्' शर्यणा नदी या बडे झील के तटपर अवस्थित भूविभाग। 'पस्त्यावत्' जहाँ रहने के लिए मकान हों, उस जगह ये शूर मरुत् चक्राहित रथ में बैठकर जाते हैं।

७५ प्रार्थना करनेवाले तथा सहायता पाने के सुतरां लालायित ज्ञानी लोगोंको ये वीर सहायता पहुंचाते हैं और अपने साथ सुखको वृद्धिंगत करनेवाले धनोंको लेकर गमन करते हैं।

७६ ये वीर बहुतही कथाप्रिय हैं, अर्थात् ऐतिहासिक वीरगाथाओं को सुनना इन्हें अत्यधिक प्रिय प्रतीत होता है। इन्द्र को इन्होंने कभी छोडा नहीं। एक वार यदि ये वीर किसीको अपना लें, तो उसे ये कभी त्यागने या छोडने के लिए तैयार नहीं होते हैं। वीरों को इसी भाँति बर्ताव रखना चाहिए। जो सत्यधर्म के अनुसार कार्य करने लगता है, वह शीघ्र ही मरुतों का प्रेमपात्र बनता है।

कि, बिना पहियेके तथा हिरनद्वारा आकृष्ट रथपर अधिरूढ होकर वीर मरुत् आगे बढने लगते हैं। [७४] (१) शर्यणा [शर्य] = 'शर' याने सरकंडे जहाँ उगने लगते हैं, ऐसा झील, नदी या जलमय प्रदेश। (२) पस्त्या [पस्-त्या; पशु+स्थान] पशुपालनका स्थान, घर, गोठ या गोशाला, रहनेका स्थल; पस्त्यावत् = गोठोंसे युक्त भूभाग। (३) नि-चक्रया = चक्रहित गाडी से [देखो टि० संख्या ७३]। (४) ऋजीक = गुप्त, ढका हुआ, भूभाग; सोम। आर्जीक = ऋजीकों का प्रदेश, जहाँपर सोम यथेष्ट रूपसे पाया जाता है। [७६] (१) कध-प्रिय = स्तुतिप्रिय (सायणभाष्य)।

(७७) सहो इति । सु । नः । वज्रऽहस्तैः । कण्वासः । अग्निम् । मरुत्ऽभिः ।
स्तुषे । हिरण्यऽवाशीभिः ॥ ३२ ॥

(७८) ओ इति । सु । वृष्णः । प्रऽयज्यून् । आ । नव्यसे । सुविताय ।
ववृत्याम् । चित्रऽवाजान् ॥ ३३ ॥

(७९) गिरयः । चित् । नि । जिहते । पर्शानासः । मन्यमानाः ।
पर्वताः । चित् । नि । येमिरे ॥ ३४ ॥

अन्वयः— ७७ नः कण्वासः ! वज्र-हस्तैः हिरण्य-वाशीभिः मरुद्भिः सहो अग्निं सु स्तुषे ।
७८ वृष्णः प्र-यज्यून् चित्र-वाजान् नव्यसे सुविताय सु आ ववृत्यां उ ।
७९ मन्यमानाः पर्शानासः गिरयः चित् नि जिहते, पर्वताः चित् नि येमिरे ।

अर्थ- ७७ हे (नः कण्वासः !) हमारे कण्वो ! (वज्र-हस्तैः हिरण्य-वाशीभिः) हाथ में वज्र धारण करनेवाले तथा सुवर्णरंजित कुल्हाडियों का उपयोग करनेवाले (मरुद्भिः सहो) मरुतों के साथ विद्यमान (अग्निं) अग्नि की (सु स्तुषे) भली भाँति सराहना करो।

७८ (वृष्णः) वीर्यवान् (प्र-यज्यून्) अत्यंत पूजनीय तथा (चित्र-वाजान्) आश्चर्यजनक बल से युक्त ऐसे तुम्हें (नव्यसे सुविताय) नये धन की प्राप्ति के लिए (सु आ ववृत्यां उ) मेरे निकट आने के लिए आकर्षित करता हूँ।

७९ (मन्यमानाः पर्शानासः) अभिमान करनेवाले शिखरों के साथ (गिरयः चित्) बडे पर्वत भी इन वीरों के आगे (नि जिहते) अपने स्थानसे विचलित होते हैं और (पर्वताः चित्) पहाड भी (नि येमिरे) नियमपूर्वक रहते हैं।

भावार्थ- ७७ ये वीर वज्र एवं कुठार को काम में लाते हैं और अग्नि के उपासक तथा सहायक हैं।
७८ ये वीर अतीव वीर्यवान्, पूजनीय तथा भाँति भाँति की विलक्षण शक्तियों से युक्त हैं। वे हमारे निकट आ जायँ और हमें नया धन प्रदान करें।
७९ इन वीरों के आगे बडे बडे शिखरोंवाले पर्वत एवं छोटेमोटे पहाड भी मानों झुक जाते हैं। इन वीरों का पराक्रम इतना महान् है और इनमें इतना प्रचंड पुरुषार्थ समाया हुआ है कि, बडे बडे पर्वतों को लाँघना इनके लिए कोई असंभव तथा दुरूह बात नहीं है, क्योंकि ये बडी सुगमता से सभी कठिनाइयों को हटा देते हैं।

टिप्पणी— [७७] (१) वाशी = (वश्नतीति वाशी) तेज, छुरी, कृपाण, दुधारी तलवार, कुल्हाडी, परशु। मंत्र १५० वाँ देखिए। निघंटु के अनुसार ' शब्द '। ' हिरण्यवाशी ' = जिस हथियार पर सुनहली बेलबूटी दिखाई दे। ' मरुद्भिः सह अग्निः ' = मरुत् अपने साथ अग्नि रख लिया करते थे। अग्नि मरुतों का मित्र, सखा है, (देखिए ऋ. ८।१०३।१४)। [७८] (१) सुवित = (सु-इत) उत्तम ढंगसे पानेके लिए योग्य, सुपरीक्षित, धन, वस्तु। जो दुरित (दुःइत) नहीं है, वह ' सुवित ' है। वैभवसम्पन्नता, उत्तम मार्ग, सौभाग्य, उन्नति की राह। [७९] (१) पर्शान = पर्वतशिखर, दर्रा, दरार।

(८०) आ । अक्ष्णऽयावानः । वहन्ति । अन्तरिक्षेण । पततः ।
धातारः । स्तुवते । वयः ॥ ३५ ॥

(८१) अग्निः । हि । जनि । पूर्व्यः । छन्दः । न । सूरः । अर्चिषा ।
ते । भानुऽभिः । वि । तस्थिरे ॥ ३६ ॥

कण्वपुत्र सोभरि ऋषि (ऋ० ८।२०।१—२६)

(८२) आ । गन्त । मा । रिषण्यत । प्रऽस्थावानः । मा । अप । स्थात । सऽमन्यवः ।
स्थिरा । चित् । नमयिष्णवः ॥ १ ॥

अन्वयः— ८० अक्ष्ण-यावानः अन्तरिक्षेण पततः स्तुवते वयः धातारः आ वहन्ति ।
८१ अग्निः हि अर्चिषा छन्दः, सूरः न, पूर्व्यः जनि, ते भानुभिः वि तस्थिरे ।
८२ (हे) प्रस्थावानः ! आ गन्त, मा रिषण्यत, (हे) स-मन्यवः ! स्थिरा चित् नमयिष्णवः मा अप स्थात ।

अर्थ- ८० (अक्ष्ण-यावानः) नेत्रोंकी निगाह की नाईं अति वेगसे दौडनेवाले और (अन्तरिक्षेण पततः) आकाश में से उडनेवाले साधन (स्तुवते) उपासक के लिए (वयः धातारः) अन्न की समृद्धि करनेवाले इन वीरों को (आ वहन्ति) ढोते हैं।

८१ (अग्निः हि) अग्नि सचमुच (अर्चिषा) तेज से (छन्दः) ढका हुआ है और (सूरः न) सूर्य के समान वह (पूर्व्यः जनि) पहले प्रकट हुआ तथा पश्चात् (ते भानुभिः) वे वीर मरुत् अपने तेजों से (वि तस्थिरे) स्थिर हो गये ।

८२ हे (प्रस्थावानः !) वेगपूर्वक जानेवाले वीरो ! (आ गन्त) हमारे समीप आओ. (मा रिषण्यत) आने से इनकार न करो । हे (स-मन्यवः !) उत्साहसे परिपूर्ण वीरो ! (स्थिरा चित्) जो शत्रु स्थिर एवं अटल हो चुके हों, उन्हें भी (नमयिष्णवः) तुम झुकानेवाले हो, अतः हमारी यह प्रार्थना है कि, हम से तुम (मा अप स्थात) दूर न रहो ।

भावार्थ- ८० इन वीरों के वाहन बडे वेगवान् तथा शीघ्रगामी होते हैं और उन पर चढकर ये आकाशपथ में से विहार करते हैं, तथा भक्तों को पर्याप्त अन्न देते हैं।

८१ सूर्य के समान ही अग्नि अपने तेज से प्रकाशमान होता है और यज्ञ में पहले पहले व्यक्त हो जाता है। पश्चात् वीर मरुतों का समुदाय अपने अपने स्थान पर आ बैठ जाता है। (अध्यात्म) व्यक्ति के शरीर में भी प्रथम उष्णता संचारित हुआ करती है और पश्चात् प्राणों का आगमन होता है। ध्यान में रहे कि, व्यक्ति में प्राण मरुत् ही हैं।

८२ इन वीरों में इतनी क्षमता विद्यमान है कि, प्रबल तथा सुस्थिर शत्रु.को भी वे विनम्र कर डालते हैं। इनका यह महान् पराक्रम विख्यात है। हमारी यही लालसा है कि, वे हमारे समीप आ जाएँ और हमारी रक्षा करें।

टिप्पणी- [८०] (१) अन्तरिक्षेण पततः अक्ष्णयावानः = अन्तराल में से जानेवाले तथा मानवी दृष्टि के समान अत्यन्त वेगवान् साधनों या वायुयानों से वीर मरुत् संसार में संचार करते हैं। यह स्पष्टतया प्रतीत होता है कि, विमानसदृश ही ये वाहन रहने चाहिए। मंत्र ६२ पर जो टिप्पणी लिखी है, सो देख लीजिए। (२) वयः = अन्न, दीर्घ आयु देनेवाले खाद्यपेय, पक्षी। [८२] (१) रिष् (हिंसायां), मा रिषण्यत = हमें कष्ट न दो, हमारी हत्या न करो। (यदि ये हमारे निकट नहीं आयेंगे, तो हमारी बडी निराशा होगी, वैसा न होने पाय। मरुतों के हमारे यहाँ पधारने से हमारी उमंग बढ जायेगी।)

(८३) वीळुपविऽभिः । मरुतः । ऋभुक्षणः । आ । रुद्रासः । सुदीतिऽभिः ।
इषा । नः । अद्य । आ । गत । पुरुऽस्पृहः । यज्ञम् । आ । सोभरीऽयवः ॥ २ ॥

(८४) विद्म । हि । रुद्रियाणाम् । शुष्मम् । उग्रम् । मरुताम् । शिमीऽवताम् ।
विष्णोः । एषस्य । मीळ्हुषाम् ॥ ३ ॥

अन्वयः— ८३ (हे) ऋभु-क्षणः रुद्रासः मरुतः ! सु-दीतिभिः वीळु-पविभिः आ गत, (हे) पुरु-स्पृहः सोभरीयवः ! नः यज्ञं अद्य इषा आ (गत) आ।

८४ विष्णोः एषस्य मीळ्हुषां शिमीवतां रुद्रियाणां मरुतां उग्रं शुष्मं विद्म हि।

अर्थ- ८३ हे (ऋभुक्षणः) ! वज्रधारी (रुद्रासः) शत्रुसंघ को रुलानेवाले (मरुतः !) वीर मरुतो ! (सु-दीतिभिः) अतीव तेजस्वी (वीळु-पविभिः) सुदृढ वज्रों से युक्त होकर (आ गत) इधर आओ; हे (पुरु-स्पृहः) बहुतोंद्वारा अभिलषित तथा (सोभरीयवः !) सोभरी ऋषि पर अनुग्रह करनेकी इच्छा करने-वाले वीरो ! (नः यज्ञं) हमारे यज्ञस्थल में (अद्य) आज (इषा) अन्न के साथ (आ आ) आओ।

८४ (विष्णोः एषस्य) व्यापक आकांक्षाओंकी पूर्ति करनेवाले, (मीळ्हुषां) वृष्टि करनेवाले, (शिमीवतां) उद्योगशील, (रुद्रियाणां) रुद्र के पुत्र ऐसे (मरुतां) मरुतों के (उग्रं) क्षत्रधर्मोचित वीर भाव पैदा करनेवाले (शुष्मं) बल को (विद्म हि) हम जानते ही हैं।

भावार्थ- ८३ वज्र धारण करनेवाले तथा समूची जनता के प्यारे ये वीर मरुत् अपने तेजस्वी एवं प्रभावशाली हथियारों के साथ इधर चले आयँ और वे इस यज्ञ में यथेष्ट अन्न लायँ, ताकि यह यज्ञ यथोचित ढंग से परिपूर्ण हो जाए।

८४ मरुत् वर्षा करनेवाले, वीर, उद्योग में निरत तथा पराक्रमी हैं। उनका बल अनूठा है।

टिप्पणी- [८३] (१) ऋभु-क्षणः = (ऋभु-क्षन्) 'ऋभु' से तात्पर्य है, कार्यकुशल कारीगर लोग। जिन के समीप ऐसे निष्णात कार्यकर्ताओं की उपस्थिति होती है और उन के भरणपोषण की व्यवस्था निष्पन्न हो जाती है, वे ऋभुक्षन् उपाधिधारी हो सकते हैं। ऋभुक्षणः = (ऋभु-क्ष) ऋभुओं अर्थात् शिल्पकारों के बनाये हुए शस्त्रों का उपयोग करनेवाले 'ऋभुक्षणः' कहे जा सकते हैं। ऋ-भु-क्षणः (उरु-भासमान-निवासाः) जिनके निवासस्थान विशाल हैं, वे (क्षि = निवासे)। (२) रुद्रासः = रुद्रः = (रोदयिता) शत्रुको रुलानेवाला वीर। (३) सु-दीतिः = भलीभाँति तेजधारा से युक्त शस्त्र, जिस के छूनेमात्र से शरीर का अंगभंग होना सम्भव है। (४) वीळु-पविः = प्रबल वज्र, बडा वज्र, एक फौलाद के बने हुए शस्त्र को वज्र कहते हैं, पवि= चक्र, पहिये की परिधि। 'वीळु, वीडु, वीलु, वीरु.' सभी शब्द बडी भारी शक्ति की सूचना देनेवाले हैं। 'वीरता' से इन शब्दों का घनिष्ट संपर्क है। (५) सोभरि = (सु-भरि) भली भाँति अन्न का दान कर के निर्धन एवं असहायों का अच्छा भरणपोषण करनेवाला सुभरि या सोभरि है। जो इस प्रकार अन्न का दान करता हो, उसे मरुत् सभी प्रकार की सहायता पहुँचाते हैं। [८४] (१) शिमी = प्रयत्न, उद्यम, कर्म। (२) शिमी-वत् = उद्यमी, कर्ममें निरत, हमेशा अच्छे कार्य करनेवाला। (३) रुद्रिय = रुद्रके साथ रहनेवाले, महान् वीरके अनुयायी, बडे शूर एवं वीर रुद्रके पुत्र। (४) शुष्मं = शत्रुओं को सुखानेवाला बल। (५) विष्णोः एषस्य मीळ्हुषः = व्यापक आकांक्षाओं की पूर्ति करनेवाले।

(८५) वि । द्वीपानि । पापतन् । तिष्ठत् । दुच्छुना । उभे इति । युजन्त । रोदसी इति ।
प्र । धन्वानि । ऐरत । शुभ्रऽखादयः । यत् । एजथ । स्वऽभानवः ॥ ४ ॥
(८६) अच्युता । चित् । वः । अज्मन् । आ । नानदति । पर्वतासः । वनस्पतिः ।
भूमिः । यामेषु । रेजते ॥ ५ ॥

अन्वयः— ८५ (हे) शुभ्र-खादयः स्व-भानवः ! यत् एजथ, द्वीपानि वि पापतन्, तिष्ठत् दुच्छुना (युज्यते), उभे रोदसी युजन्त, धन्वानि प्र ऐरत ।

८६ वः अज्मन् अ-च्युता चित् पर्वतासः वनस्पतिः आ नानदति, यामेषु भूमिः रेजते ।

अर्थ- ८५ हे (शुभ्र-खादयः) सुफेद हस्तभूषण धारण करनेवाले (स्व-भानवः !) स्वयं तेजस्वी वीरो ! (यत्) जब तुम (एजथ) जाते हो, शत्रुदल पर धावा बोलने के लिए हलचल करते हो, तब (द्वीपानि वि पापतन्) टापू तक नीचे गिर जाते हैं। (तिष्ठत्) सभी स्थावर चीजें (दुच्छुना) विपत्ति से युक्त बन जाते हैं; (उभे रोदसी) दोनों द्युलोक तथा भूलोक कांपने (युजन्त) लगते हैं। (धन्वानि) मरुभूमि की बालू (प्र ऐरत) अधिक वेग से उडने लगती है।

८६ (वः अज्मन्) तुम्हारी चढाई के मौके पर (अच्युता चित्) न हिलनेवाले बडे बडे (पर्वतासः) पहाड तथा (वनस्पतिः) पेड भी (आ नानदति) दहाडने लगते हैं, वैसेही तुम (यामेषु) जब शत्रुदलपर आक्रमणार्थ यात्रा करना शुरु करते हो, तब (भूमिः रेजते) पृथ्वी विकंपित हो उठती है।

भावार्थ- ८५ साफसुथरे गहने पहन कर ये तेजःपूर्ण वीर जब शत्रुदल पर चढाई करने के लिए अति वेग से प्रस्थान करना शुरु करते हैं, तब भूमि के ऊपरी भाग नीचे गिर पडते हैं, वृक्ष जैसे स्थावर भी टूट गिरते हैं, आकाश एवं पृथ्वी में कँपकँपी पैदा हो जाती है और रेगिस्तान की बालुका तक वेग से ऊपर उडने लगती है। इतनी भारी हलचल विश्व में मचा देने की क्षमता वीरों के आन्दोलन में रहती है।

८६ (आधिदैविक क्षेत्रमें) वायु जोर से बहने लग जाए, आँधी या तूफान प्रवर्तित हो जाए, तो पर्वतोंपर के वृक्ष तक डावाँडोल हो जाते हैं, तथा ऊँची पहाडी चोटियों पर पवन की गति अतीव तीव्र प्रतीत होती है। वृक्षों के परस्पर एक दूसरे से घिस जाने से भीषण ध्वनि प्रादुर्भूत होती है, तथा भूमि भी चलायमान प्रतीत होती है। (आधिभौतिक क्षेत्र में) शत्रुओं पर जब वीर सैनिक धावा बोलते हैं, तब दृढमूल होने पर भी शत्रु विचलित हो जडमूल से उखड जाता है।

टिप्पणी- [८५] (१) खादिः = वलय, कटक (हाथपैरों में पहननेयोग्य आभूषण)। खाद्य पदार्थ; मंत्र १६६ देखिए। वृषखादिः (११७), हिरण्यखादिः, सुखादिः (१५० ३१८,), शुभ्रखादिः (८५) ऐसे पदप्रयोग मिलते हैं। खादि एक विभूषण है, जो हाथ में या पैर में पहना जाता है और कँगन, वलय, कटकसदृश ' खादि ' एक आभूषणवाचक शब्द है। (२) शुभ्र-खादयः = चमकीले आभूषण धारण करनेवाले। (३) दुच्छुना = (दुस्-शुना) = (पागल कुत्ता यदि पीछे पडे, तो होनेवाली दशा) संकटपरंपरा, दुरवस्था, दुःख, विपदा। (४) धन्वन् = रेगिस्तान, निर्जल भूविभाग, धूलिमय प्रदेश। (५) द्वीपं=आश्रयस्थान, द्वीपकल्प, टापू। [८६] (१) अच्युता नानदति = स्थिर तथा अटल पदार्थ (दहाडने) काँपने लगते हैं। (विरोधाभास अलंकार देखनेयोग्य है)। (२) वनस्पतिः नानदति = पेडों के टूट गिरने से कड् कड् आवाज सुनाई देती है। (३) भूमिः रेजते = (स्थिरा रेजते) = जोभूमि स्थिर एवं अटल दिखाई देती है, सो भी विकंपित तथा विचलित हो उठती है। (अच्युता) स्थिरीभूत एवं अपने पद पर दृढतया अवस्थित शत्रुओं को भी उखाड फेंक देना केवलमात्र महान् वीरों का कर्तव्य है।

(८७) अमाय । वः । मरुतः । यातवे । द्यौः । जिहीते । उत्ऽतरा । बृहत् ।
यत्र । नरः । देदिशते । तनूषु । आ । त्वक्षांसि । बाहुऽओजसः ॥ ६ ॥

(८८) स्वधाम् । अनु । श्रियम् । नरः । महि । त्वेषाः । अमऽवन्तः । वृषऽप्सवः ।
वहन्ते । अह्रुतऽप्सवः ॥ ७ ॥

(८९) गोभिः । वाणः । अज्यते । सोभरीणाम् । रथे । कोशे । हिरण्यये ।
गोऽबन्धवः । सुऽजातासः । इषे । भुजे । महान्तः । नः । स्परसे । नु ॥ ८ ॥

अन्वयः— ८७ (हे) मरुतः ! वः अमाय यातवे यत्र बाहु-ओजसः नरः त्वक्षांसि तनूषु आ देदिशते, (तत्र) द्यौः उत्तरा बृहत् जिहीते। ८८ त्वेषाः अम-वन्तः वृष-प्सवः अ-ह्रुत-प्सवः नरः स्व-धां अनु श्रियं महि वहन्ति। ८९ सोभरीणां हिरण्यये रथे कोशे गोभिः वाणः अज्यते, गो-बन्धवः सु-जातासः महान्तः नः इषे भुजे स्परसे नु।

अर्थ- ८७ हे (मरुतः !) वीर मरुतो ! (वः अमाय) तुम्हारी सेना को (यातवे) जानेके लिए (यत्र) जिस ओर (बाहु-ओजसः) बाहु-बल से युक्त (नरः) तथा नेता के पद पर अधिष्ठित तुम वीर (त्वक्षांसि) सभी शक्तियों को अपने (तनूषु) शरीरों में एकत्रित कर (आ देदिशते) प्रहार करते हो उधर (द्यौः) आकाश भी (उत्तरा) ऊपर ऊपर (बृहत्) विस्तृत एवं बृहदाकार बनते बनते (जिहीते) जा रहा है, ऐसा प्रतीत होता है। ८८ (त्वेषाः) तेजस्वी, (अमवन्तः) बलवान्, (वृष-प्सवः) बैल के जैसे हृष्टपुष्ट तथा (अ-ह्रुत-प्सवः) सरल स्वभाववाले (नरः) नेताके नाते वीर (स्व-धां अनु) अपनी धारकशक्तिके अनुकूल अपनी (श्रियं महि) शोभा एवं आभाको अत्यधिक मात्रामें (वहन्ति) बढाते हैं। ८९ (सोभरीणां हिरण्यये रथे) ऋषि सोभरिके सुवर्णमय रथके (कोशे) आसनपर (गोभिः) स्वरों के साथ अर्थात् गानोंसहित (वाणः अज्यते) वाण नामक बाजा बजाया जाता है, (गो-बन्धवः) गौके बंधु याने गौको अपनी बहन के समान आदर की दृष्टि से देखनेवाले (सु-जातासः) अच्छे कुल में उत्पन्न (महान्तः) और बडे प्रभावशाली ये वीर (नः इषे) हमारे अन्न के लिए (भुजे) भोगों के लिए तथा (स्परसे) फुर्ती के लिए (नु) तुरन्त ही हमारे सहायक बनें।

भावार्थ- ८७ इन वीरों की सेना जिस ओर मुड कर जाने लगती है और जिस दिशा में ये वीर शत्रु पर चढाई करते हैं, उसी ओर मानों स्वयं आकाश ही विस्तृत एवं चौडा मार्ग बना दे रहा है, ऐसा प्रतीत होता है। ८८ तेजयुक्त, बलिष्ठ जीवनका बलिदान करनेवाले और सरल प्रकृतिवाले वीर अपनी शक्तिके अनुसार निज शोभा बढाते हैं। ८९ सोभरी नामसे विख्यात ऋषियोंके सुवर्णविभूषित रथमें प्रमुख आसनपर बैठकर रमणीय गायनके स्वरोंसे वाण, बाजा बजाया जा रहा है, उस गानको सुनकर गोसेवामें निरत एवं उच्च परिवारमें उत्पन्न महान् वीर हमें अन्न, उपभोग तथा उत्साह दे दें।

टिप्पणी- [८७] (१) बाहु-ओजसः = बाहुबलसे युक्त वीर। (२) त्वक्ष् = (तनूकरणे) निर्माण करना, बनाना, लकडी आदि चीरना; त्वक्षस् = बल, सामर्थ्य, शक्ति, बननेकी शक्ति. निर्माण करनेकी कुशलता, रचनाचातुरी। (३) आदिश्- एक ही दिशामें प्रेरित करना, भय दिखाना, प्रहार करना, उपदेश करना, घोषणा करना। [८८] (१) अम-वान् = बलवान्, समीप सेना रखनेवाला। (२) वृष-प्सु = (वृष- भास्) बैलके समान पुष्ट शरीरवाला, वर्षा करनेवाला, जीवन देनेवाला। (३) अ-ह्रुत-प्सुः = अकुटिल, सरल प्रकृतिका। (४) प्सु = (भास् = प्सु-प्स) दिखाई देना, प्रतीत होना, दृश्य, आकार, शरीर। (५) स्व-धा = अन्न, निज शक्ति, अपनी धारक शक्ति। [८९] (१) गौः = (गो) शब्द वाणी, स्वर, सामगान। (२) गोभिः वाणः अज्यते= मीठे स्वरोंके साथ सामगान करते हुए वाण बाजा बजाते हैं। आलापोंके साथ बाद्य पर बजानेकी क्रिया प्रचलित है। (३) गो-बन्धु = गौके भाई, गाय अपनी बहन है, ऐसा मान कर भ्रातृस्नेहसे

(९०) प्रति। वः। वृषत्ऽअञ्जयः। वृष्णे। शर्धाय। मारुताय। भरध्वम्।
हव्या। वृषऽप्रयाव्ने ॥ ९ ॥

(९१) वृषणश्वेन। मरुतः। वृषऽप्सुना। रथेन। वृषऽनाभिना।
आ। श्येनासः। न। पक्षिणः। वृथा। नरः। हव्या। नः। वीतये। गत ॥ १० ॥

(९२) समानम्। अञ्जि। एषाम्। वि। भ्राजन्ते। रुक्मासः। अधि। बाहुषु।
दविद्युतति। ऋष्टयः ॥ ११ ॥

अन्वयः- ९० (हे) वृषत्-अञ्जयः! वः वृष्णे वृष-प्रयाव्ने मारुताय शर्धाय हव्या प्रति भरध्वं। ९१ (हे) नरः मरुतः! वृषन्-अश्वेन वृष-प्सुना वृष-नाभिना रथेन नः हव्या वीतये, श्येनासः पक्षिणः न, वृथा आ गत। ९२ एषां अञ्जि समानं, रुक्मासः वि भ्राजन्ते, बाहुषु अधि ऋष्टयः दविद्युतति।

अर्थ- ९० (वृषत्-अञ्जयः!) सोम को सम्मानपूर्वक अर्पण करनेवाले हे याजको! तुम (वः) तुम्हारे समीप आनेवाले (वृष्णे) बलवान् तथा (वृष-प्रयाव्ने) बैल के समान इठलाते हुए जानेवाले (मारुताय) मरुतों के समुदाय के (शर्धाय) बल बढाने के लिए (हव्या प्रति भरध्वं) हविष्यान्न प्रत्येक को पर्याप्त मात्रा में प्रदान करो।

९१ हे (नरः मरुतः!) नेतृत्वगुण से संपन्न वीर मरुतो! (वृषन्-अश्वेन) बलिष्ठ घोडों से युक्त, (वृष-प्सुना) बैल के समान सुदृढ दिखाई देनेवाले (वृष-नाभिना) और प्रबल नाभि से युक्त (रथेन) रथसे (नः हव्या) हमारे हविर्द्रव्यों के (वीतये) सेवनार्थ (श्येनासः पक्षिणः न) बाज पंछियों की नाईं वेगसे (वृथा आ गत) बिना किसी कष्ट के आओ।

९२ (एषां) इन सभी वीरों का (अञ्जि) गणवेश (समानं) एकरूप है, इनके गले में (रुक्मासः) सुवर्ण के बने हुए सुन्दर हार (वि भ्राजन्ते) चमकते हैं और (बाहुषु अधि) भुजाओं पर (ऋष्टयः) हथियार (दविद्युतति) प्रकाशमान हो रहे हैं।

भावार्थ- ९० शक्तिमान् तथा प्रतापी मरुतोंको याजक बडे सम्मान एवं आदरसे हविसे परिपूर्ण अन्नकूट पर्याप्त रूपसे दें। ९१ बलवान् घोडों से युक्त एवं सुदृढ रथ पर बैठकर हविष्यान्न के सेवनार्थ वीर पुरुष बहुत जल्द एवं बडे वेगसे हमारे समीप आ जायँ। ९२ इन सभी वीरों की वेशभूषों में कहीं भी विभिन्नता का नाम तक नहीं पाया जाता है। इनके गणवेष की एकरूपता या समानता प्रेक्षणीय है। [देखो मंत्र ३७२।] सब के गलेमें समान रूपके हार पडे हुए हैं और सभी के हाथों में सदृश हाथियार झिलमिल कर रहे हैं।

इसकी सेवा करनेवाले। उसी प्रकार गायको मातृवत् समझनेवाले। (गो-मातरः) मंत्र १२५ देखिए। (४) सु-जातः= कुलीन, प्रतिष्ठित परिवारमें उत्पन्न। (५) हिरण्ययः रथः = सुवर्णका बनाया रथ, सोनेके समान चमकीला रथ, जिसपर सुवर्णके कलाबत्तू या नक्शीका काम किया हो। (६) स्परस् = स्फूर्ति, उत्साह, स्फुरण। (७) वाणं = (शततंख्याभिः तन्त्रीभिर्युक्तः वीणाविशेषः इति सायणभाष्ये; ऋ. १-८५-१०; १३२। ज्ञात होता है, यह एक तरहका तन्तुवाद्य है, जो सौ तारोंसे युक्त है। जैसे सतार या सारंगी कई तारोंसे युक्त है, वैसे ही वाण बाजेमें १०० तारे होते हैं। [९०] (१) अञ्ज्=तेल लगाना, दर्शाना, जाना, चमकना, सम्मान देना; आञ्जि = तेजस्वी, चमकीला, चंदनका रोला, आज्ञा करनेवाला (Commander), तेल, रंग से युक्त तेल, कुम्कुम, वीरों के भूषण (गणवेश), आदरपूर्वक दान, अर्पण। (२) वृषत्, वृषन् = पौरुषयुक्त, समर्थ, शक्तिशाली, प्रमुख, बैल, घोडा, वर्षणकर्ता, इंद्र, सोम। [९२] (१) रुक्म = मुद्राओं का हार, जिन पर किसी प्रकार की छाप दिखाई देती हो, उन्हें 'रुक्म' कहते हैं। (२) ऋष्टिः = दो धारवाली तलवार, कृपाण, भाला, नुकीला शस्त्र।

(९३) ते । उग्रासः । वृषणः । उग्रऽबाहवः । नकिः । तनूषु । येतिरे ।
स्थिरा । धन्वानि । आयुधा । रथेषु । वः । अनीकेषु । अधि । श्रियः ॥ १२ ॥

(९४) येषाम् । अर्णः । न । सऽप्रथः । नाम । त्वेषम् । शश्वताम् । एकम् । इत् । भुजे ।
वयः । न । पित्र्यम् । सहः ॥ १३ ॥

(९५) तान् । वन्दस्व । मरुतः । तान् । उप । स्तुहि । तेषाम् । हि । धुनीनाम् ।
अराणाम् । न । चरमः । तत् । एषाम् । दाना । महा । तत् । एषाम् ॥ १४ ॥

अन्वयः-९३ उग्रासः वृषणः उग्र-बाहवः ते तनूषु नकिः येतिरे, वः रथेषु स्थिरा धन्वानि आयुधा, अनीकेषु अधि श्रियः। ९४ अर्णः न, स-प्रथः त्वेषं शश्वतां येषां नाम एकं इत् सहः, पित्र्यं वयः न, भुजे। ९५ तान् मरुतः वन्दस्व, तान् उपस्तुहि, हि धुनीनां तेषां, अराणां चरमः न, तत् एषां तत् एषां दाना महा।

अर्थ- ९३ (उग्रासः) मनमें किंचित् भयका संचार करानेवाले, (वृषणः) बलिष्ठ (उग्र-बाहवः) तथा सामर्थ्ययुक्त बाहुओंसे युक्त (ते) वे वीर मरुत् (तनूषु) अपने शरीरोंकी रक्षा करनेके कार्यमें (नकिः येतिरे) सुतरां प्रयत्न नहीं करते हैं। हे वीरो! (वः रथेषु) तुम्हारे रथोंमें (स्थिरा) अनेक अटल एवं दृढ (धन्वानि) धनुष्य तथा (आयुधा) कई हथियार हैं, अतएव (अनीकेषु अधि) सेना के अग्रभागों में तुम्हें (श्रियः) विजयजन्य शोभा अलंकृत करती है। ९४ (अर्णः न) हलचलसे युक्त जलप्रवाहकी नाईं (स-प्रथः) चतुर्दिक् फैलनेवाले (त्वेषं) तेजःपूर्ण ढंगका जो (शश्वतां येषां) इन शाश्वत वीरोंका (नाम) यशोवर्णन है, (एकं इत्) यही एकमात्र (सहः) सामर्थ्य देनेवाला है और (पित्र्यं वयः न) पितासे प्राप्त अन्न के समान (भुजे) उपभोगके लिए सर्वथैव योग्य है। ९५ (तान् मरुतः) उन मरुतोंका (वन्दस्व) अभिवादन करो, (तान् उपस्तुहि) उनकी सराहना करो, (हि) क्योंकि (धुनीनां तेषां) शत्रुओंको हिलानेवाले उन वीरोंमें (अराणां चरमः न) श्रेष्ठ एवं कनिष्ठ यह भेदभाव नहीं के बराबर है, अर्थात् सभी समान हैं और किसी भी प्रकारकी विषमता के लिए जगह नहीं है, (तत् एषां तत् एषां) इनके (दाना महा) दान बडे महत्त्वपूर्ण होते हैं।

भावार्थ- ९३ ये वीर बडे ही बलिष्ठ तथा उग्र हैं और इनकी भुजाओं में असीम बल एवं शक्ति विद्यमान है। शत्रुदल से जूझते समय अपने प्राणों की भी पर्वाह ये नहीं करते हैं। इन के रथों में सुदृढ धनुष्य रखे जाते हैं, तथा हथियार भी पर्याप्त मात्रामें रखे जाते हैं। यही कारण है कि, युद्धभूमि में ये ही हमेशा विजयी ठहरते हैं। ९४ जिस में वीरों के तेजस्वी तथा शाश्वत यश का बखान किया हो, वही काव्य शक्ति बढाने में सहायक होता है। वह जलके समान सभी जगह फैलनेवाला तथा बपौती के जैसे भोग्य और स्फूर्तिदायक है। ९५ मरुतोंका अभिवादन करके उन की सराहना करनी चाहिए। सभी प्रकार के शत्रुओं को विकंपित तथा विचलित करने की क्षमता इन वीरों में है। उनमें किसी प्रकारकी विषमता नहीं है, अतः कोई भी ऊँचा या नीचा मरुतों के संघ में नहीं पाया जाता है। सभी साम्यावस्थाकी अनुभूति पाते हैं। इनके दान अत्यन्त महत्त्वपूर्ण होते हैं।

टिप्पणी [९३] (१) रथेषु स्थिरा धन्वानि = रथमें स्थायी एवं अटल धनुष्य रखे हुए हैं। ये धनुष्य बहुत प्रचंड आकारवाले होते हैं और इनसे बाण बहुत दूर तक फेंके जा सकते हैं। हाथोंसे काममें लानेयोग्य धनुष्य 'चल धनुष्य' कहे जाते हैं और इनमें तथा स्थिर धनुष्योंमें पर्याप्त विभिन्नता रहती है। (२) तनूषु नकिः येतिरे = शरीरकी बिलकुल पर्वाह नहीं करते, उदाहरणार्थ, आधुनिक युगके Storm Troopers जैसे। [९५] (१) अरः = अर्यः = स्वामी, श्रेष्ठ, आर्य। (२) चरमः = अन्तिम, हीन। समता- इस मंत्रमें बतलाया है कि, उनमें कोई न श्रेष्ठ है, न कनिष्ठ है, अर्थात् सभी समान हैं (तेषां अराणां चरमः न) यही भाव अधिक विस्तारपूर्वक मंत्र ३०५ तथा ४५३ में

(९६) सुऽभगः । सः । वः । ऊतिषु । आस । पूर्वासु । मरुतः । विऽउष्टिषु ।
यः । वा । नूनम् । उत । असति ॥ १५ ॥

(९७) यस्य । वा । यूयम् । प्रति । वाजिनः । नरः । आ । हव्या । वीतये । गथ ।
अभि । सः । द्युम्नैः । उत । वाजसातिऽभिः । सुम्ना । वः । धूतयः । नशत् ॥१६॥

(९८) यथा । रुद्रस्य । सूनवः । दिवः । वशन्ति । असुरस्य । वेधसः ।
युवानः । तथा । इत् । असत् ॥ १७ ॥

अन्वयः— ९६ (हे) मरुतः ! उत पूर्वासु व्युष्टिषु यः वा नूनं असति सः वः ऊतिषु सुभगः आस।

९७ (हे) धूतयः नरः ! यूयं यस्य वा वाजिनः हव्या वीतये आ गथ, सः द्युम्नैः उत वाज-सातिभिः वः सुम्ना अभि नशत्।

९८ असु-रस्य वेधसः रुद्रस्य युवानः सूनवः दिवः यथा वशन्ति तथा इत् असत्।

अर्थ- ९६ हे (मरुतः !) मरुतो ! (उत पूर्वासु व्युष्टिषु) पहले के दिनों में (यः) जो (वा नूनं असति) तुम्हारा ही बनकर रहा, (सः) वह (वः ऊतिषु) तुम्हारी संरक्षण की आयोजनाओं से सुरक्षित होकर सचमुच (सु-भगः आस) भाग्यशाली बन गया।

९७ हे (धूतयः नरः !) शत्रुओं को विकम्पित कर देनेवाले वीर नेतागण ! (यूयं) तुम (यस्य वा वाजिनः) जिस अन्नयुक्त पुरुष के समीप विद्यमान (हव्या) हविर्द्रव्यों के (वीतये) सेवनार्थ (आ गथ) आते हो, (सः) वह (द्युम्नैः) रत्नों के (उत) तथा (वाज-सातिभिः) अन्नदानों के फलस्वरूप (वः सुम्ना) तुम्हारे सुखों को (अभि नशत्) पूर्ण रूपसे भोगता है।

९८ (असु-रस्य वेधसः) जीवन देनेवाले ज्ञानी (रुद्रस्य युवानः सूनवः) वीरभद्रके पुत्र तथा युवा वीर मरुत् (दिवः) स्वर्ग से आकर (यथा) जैसे (वशन्ति) इच्छा करेंगे, (तथा इत्) उसी प्रकार हमारा बर्ताव (असत्) रहे।

भावार्थ- ९६ यदि कोई एक बार इन वीरों का अनुयायी बन जाए, तो सचमुच उसे भाग्यवान् समझने में कोई आपत्ति नहीं। उस के भाग्य खुल जायेंगे, इस में क्या संशय ?

९७ ये वीर जिस के अन्न का सेवन करते हैं, वह रत्न, अन्न तथा सुखोंसे युक्त होता है।

९८ दूसरों की रक्षा के लिए अपना जीवन देनेवाले नवयुवक वीर स्वर्गीय स्थान में से हमारे निकट आ जायँ और हमारा आचरण भी उन की निगाह में अनुकूल एवं प्रिय बने।

व्यक्त किया है। उन्हें भी इस सम्बन्ध में देखना उचित है। इस मंत्रभाग का (अराणां चरमः न) यही अर्थ है कि जिस प्रकार चक्र के आरों में न कोई छोटा न कोई बड़ा होता है, वैसे ही वीर भी समान होते हैं और उच्चनीचता के भावों से कोसों दूर रहते हैं। ४१८ वें मंत्र में भी पहिये के आरों की ही उपमा दी है। [९६] (१) व्युष्टि= (वि+उष्टि)= उषःकाल, ऐश्वर्य, वैभवशालिता, स्तुति, फल, परिणाम। [९७] (१) द्युम्नं = रत्न, दिव्य मन (द्यु-मन), तेज, यश, शक्ति, धन, स्फूर्ति, अर्पण। (२) सुम्नं=(सु-मनः) सुख, आनन्द, स्तोत्र, संरक्षण, कृपा, यज्ञ (देखो ६० वें मन्त्र की टिप्पणी)। (३) साति=दान, प्राप्ति, सहायता, धन, विनाश, अन्त, दुःख। [९८] (१) असुर= (असु-र) जीवन देनेवाला, ईश्वर, (अ-सुरः) राक्षस, दैत्य। (२) वेधस्= (वि-धा) ज्ञानी, याजक, कवि, निर्माण करनेवाला, विधाता, शूर।

(९९) ये । च । अर्हन्ति । मरुतः । सुऽदानवः । स्मत् । मीळहुषः । चरन्ति । ये ।
अतः । चित् । आ । नः । उप । वस्यसा । हृदा । युवानः । आ । ववृध्वम् ॥१८॥

(१००)यूनः । ऊँ इति । सु । नविष्ठया । वृष्णः । पावकान् । अभि । सोभरे । गिरा ।
गाय । गाःऽइव । चर्कृषत् ॥१९॥

(१०१)सहाः । ये । सन्ति । मुष्टिहाऽइव । हव्यः । विश्वासु । पृत्ऽसु । होतृषु ।
वृष्णः । चन्द्रान् । न । सुश्रवःऽतमान् । गिरा । वन्दस्व । मरुतः । अह ॥२०॥

अन्वयः— ९९ ये सु-दानवः मरुतः अर्हन्ति, ये च मीळहुषः स्मत् चरन्ति, अतः चित् (हे) युवानः ! वस्यसा हृदा नः उप आ आ ववृध्वम् । १०० (हे) सोभरे ! यूनः वृष्णः पावकान् नविष्ठया गिरा चर्कृषत् गाःइव सु अभि गाय । १०१ होतृषु विश्वासु पृत्सु हव्यः मुष्टि-हा इव सहाः सन्ति, वृष्णः चन्द्रान् न सु-श्रवस्तमान् मरुतः अह गिरा वन्दस्व ।

अर्थ- ९९ (ये) जो (सु-दानवः मरुतः) भली भाँति दान देनेवाले मरुतोंका (अर्हन्ति) सत्कार करते हैं (ये च) और जो (मीळहुषः) उन दयासे पिघलनेवाले वीरों के अनुकूल (स्मत् चरन्ति) आचरण रखते हैं, हम भी ठीक उन्हींके समान वर्ताव रखते हैं, (अतः चित्) इसीलिए हे (युवानः !) नवयुवक वीरो ! (वस्यसा हृदा) उदार अन्तःकरणपूर्वक (नः) हमारी ओर (उप आ आ ववृध्वं) आगमन करके हमारी समृद्धि करो। १०० हे (सोभरे!) ऋषि सोभरि! (यूनः) युवक (वृष्णः) वलवान् तथा (पावकान्) पवित्रता करनेवाले वीरों को लक्ष्य में रखकर (नविष्ठया गिरा) अभिनव वाणीसे, स्वरसे, (चर्कृषत्) खेत जोतनेवाला किसान (गाःइव) जिस प्रकार वैलों के लिए गाने या तराने कहता है, वैसे ही (सु अभि गाय) भली भाँति काव्य गायन करो। १०१ (होतृषु) शत्रु को चुनौती देनेवाले (विश्वासु पृत्सु) सभी सैनिकोंमें (हव्यः मुष्टि-हा इव) चुनौती देनेवाले मुष्टियोद्धा मल्लकी नाईं (सहाः सन्ति) जो शत्रुदल के भीषण आक्रमणको सहन करनेकी क्षमता रखते हैं, उन (वृष्णः) वलिष्ठ (चन्द्रान् न) चन्द्रमाके समान आनन्ददायक (सु-श्रवस्तमान्) निर्मल यश से युक्त (मरुतः अह) मरुत् वीरों की ही (गिरा वन्दस्व) सराहना अपनी वाणी से करो।

भावार्थ- ९९ वीर सचमुच दानी हैं और करुणाभरी निगाह से सहायता करते हैं। चूँकि हम उन का सत्कार करते हैं, अतः ये वीर हमारे समीप आ जायँ और हम पर अनुग्रह करें।

१०० हल चलाते समय जैसे काश्तकार वैलों को रिझाने के लिए गाना गाता रहता है, वैसे ही युवक, वलिष्ठ एवं पवित्र वीरों के वर्णनों से युक्त वीरगीतों का गायन तुम करते रहो।

१०१ शत्रुओं पर धावा करनेवाले सभी सैनिकों में जिस भाँति मुष्टियोद्धा पहलवान अधिक बलवान् होता है, उसी प्रकार सभी वीर शत्रुदल का आक्रमण वरदाश्त कर सकें। ऐसे वलिष्ठ, आनन्द वढानेवाले तथा कीर्तिमान् वीरों की प्रशंसा करो।

टिप्पणी- [१००] इस मंत्र से यों जान पडता है कि, वैदिक युगमें खेतों में हल चलाते समय वैलों की थकान दूर करने के लिए गाने गाये जाते थे। ' नविष्ठया गिरा अभि गाय ' नये काव्य या गीत गाते रहो । इससे स्पष्ट होता है कि, नये वीर-काव्यों का सृजन हुआ करता था और ऐसे नवनिर्मित वीरगाथाओं का गायन भी हुआ करता था। सोभरि (देखो टिप्पणी ८३ मन्त्र पर)। [१०१] (१) मुष्टि-हा= घूँसा या मुक्कों से लडनेवाला (Boxer)। (२) होतृ =बुलानेवाला, लडने के लिए शत्रुको चुनौती या आह्वान देनेवाला, देवोंको यज्ञ में बुलानेवाला। (३) सहः=सहनशक्तिसे युक्त, शत्रुकी चढाई होनेपर अपनी जगह अटल रूपसे खडे रहकर शत्रुको ही मार भगानेवाला वीर।

(१०२) गावः । चित् । घ । सऽमन्यवः । सऽजात्येन । मरुतः । सऽबन्धवः ।
रिहते । ककुभः । मिथः ॥२१॥
(१०३) मर्तः । चित् । वः । नृतवः । रुक्मऽवक्षसः । उप । भ्रातृऽत्वम् । आ । अयति ।
अधि । नः । गात । मरुतः । सदा । हि । वः । आपिऽत्वम् । अस्ति । निऽध्रुवि ॥२२॥
(१०४) मरुतः । मारुतस्य । नः । आ । भेषजस्य । वहत । सुऽदानवः ।
यूयम् । सखायः । सप्तयः ॥ २३ ॥

अन्वयः— १०२ (हे) स-मन्यवः मरुतः ! गावः चित् स-जात्येन स-बन्धवः ककुभः मिथः रिहते घ।
१०३ (हे) नृतवः रुक्म-वक्षसः मरुतः ! मर्तः चित् वः भ्रातृत्वं उप आ अयति, नः अधि गात, हि वः आपित्वं सदा नि-ध्रुवि अस्ति।
१०४ (हे) सु-दानवः सखायः सप्तयः मरुतः ! यूयं नः मारुतस्य भेषजस्य आ वहत।

अर्थ- १०२ हे (स-मन्यवः मरुतः !) उत्साही वीर मरुतो ! (गावः चित्) तुम्हारी माताएँ गौएँ (स-जात्येन) एकही जाति की होने के कारण (स-बन्धवः) अपनेही ज्ञातिबांधवों को, बैलों को (ककुभः) विभिन्न दिशाओं में जाने पर भी (मिथः रिहते घ) एक दूसरे को प्रेमपूर्वकही चाटती रहती हैं।

१०३ हे (नृतवः) नृत्य करनेवाले तथा (रुक्म-वक्षसः मरुतः !) मुहरों के हार छाती पर धारण करनेवाले वीर मरुत् गण ! (मर्तः चित्) मानव भी (वः भ्रातृत्वं) तुम्हारे भाईपन को (उप आ अयति) पाने के लिए योग्य ठहरता है, इसीलिए (नः अधि गात) हमारे साथ रहकर गायन करो, (हि) क्योंकि (वः आपित्वं) तुम्हारी मित्रता (सदा) हमेशा (नि-ध्रुवि अस्ति) न टलनेवाली है।

१०४ हे (सु-दानवः) दानी, (सखायः) मित्रवत् बर्ताव रखनेवाले तथा (सप्तयः) सात सात पुरुषों की एक पंक्ति बनाकर यात्रा करनेवाले (मरुतः !) वीर मरुतो ! (यूयं) तुम (नः) हमारे लिए (मारुतस्य भेषजस्य) वायु में विद्यमान औषधि द्रव्य को (आ वहत) ले आओ।

भावार्थ- १०२ मरुतों की माताएँ-गौएँ भले ही किसी भी दिशा में चली जायँ, तो भी प्यार से एक दूसरे को चाटने लगती हैं। (अधिभूत में) वीरों की दयालु माताएँ अपने भाइयों, बहनों एवं वीर पुत्रों और सभी वीरोंको प्यार से गले लगाती हैं।

१०३ वीर सैनिक हर्षपूर्वक नृत्य करनेवाले तथा कई अलंकार अपने वक्षःस्थल पर धारण करनेवाले हैं। मानव को भी उनकी मित्रता पाना सुगम है, योग्यता बढने पर वह मरुतों का साथी बन जाता है और वह मित्रतापूर्ण सम्बन्ध एक बार प्रस्थापित होने पर अटूट बना रहता है।

१०४ ये वीर एक एक पंक्ति में सात सात इस तरह मिलकर चलनेवाले हैं और अच्छे ढंग के उदारचेता मित्र भी हैं। हमारी इच्छा है कि ये हमारे लिए वायुमंडल में विद्यमान औषधि को ले आयँ।

टिप्पणी- [१०४] (१) मारुतस्य भेषजं= वायुमें रोग हटानेकी शक्ति है, इसी कारण वायु-परिवर्तनसे रोगसे पीडित व्यक्तियोंको निरोगिताकी प्राप्ति हो जाती है। यहाँ पर सूचना मिलती है कि, वायुके उचित सेवनसे रोग दूर किये जा सकते हैं। वायुचिकित्साकी झलक इस मंत्रमें मिलती है। (२) सप्ति= घोडा, सात लोगोंकी बनी हुई पंक्ति, घुरा।

(१०५) याभिः । सिन्धुम् । अवथ । याभिः । तूर्वथ । याभिः । दुशस्यथ । क्रिविम् ।
मयः । नः । भूत । ऊतिऽभिः । मयःऽभुवः । शिवाभिः । असचऽद्विषः ॥२४॥
(१०६) यत् । सिन्धौ । यत् । असिक्न्याम् । यत् । समुद्रेषु । मरुतः । सुऽबर्हिषः ।
यत् । पर्वतेषु । भेषजम् ॥ २५ ॥
(१०७) विश्वम् । पश्यन्तः । बिभृथ । तनूषु । आ । तेन । नः । अधि । वोचत ।
क्षमा । रपः । मरुतः । आतुरस्य । नः । इष्कर्त । विऽह्रुतम् । पुनरिति ॥ २६ ॥

अन्वयः- १०५ (हे) मयो-भुवः अ-सच-द्विषः ! याभिः ऊतिभिः सिन्धुं अवथ, याभिः तूर्वथ, याभिः क्रिविं दुशस्यथ, शिवाभिः नः मयः भूत ।

१०६ (हे) सु-बर्हिषः मरुतः ! यत् सिन्धौ भेषजं, यत् असिक्न्यां, यत् समुद्रेषु, यत् पर्वतेषु।

१०७ (हे) मरुतः ! विश्वं पश्यन्तः तनूषु आ बिभृथ, तेन नः अधि वोचत, नः आतुरस्य रपः क्षमा वि-ह्रुतं पुनः इष्कर्त ।

अर्थ- १०५ हे (मयो-भुवः) सुख देनेवाले (अ-सच-द्विषः !) एवं अजातशत्रु वीरो ! (याभिः ऊतिभिः) जिन संरक्षक शक्तियों से तुम (सिन्धुं अवथ) समुद्र की रक्षा करते हो. (याभिः तूर्वथ) जिन शक्तियों के सहारे शत्रु का विनाश करते हो, (याभिः) जिनकी सहायता से (क्रिविं दुशस्यथ) जलकुंड तैयार कर देते हो, उन्हीं (शिवाभिः) कल्याणप्रद शक्तियोंके आधार पर (नः मयः भूत) हमें सुख देनेवाले बनो।

१०६ हे (सु-बर्हिषः मरुतः !) उत्तम तेजस्वी वीर मरुतो ! (यत्) जो (सिन्धौ भेषजं) सिन्धु नद में औषधिद्रव्य है, (यत् असिक्न्यां) जो असिक्नी के प्रवाह में है, (यत् समुद्रेषु) जो समुद्र में है और (यत् पर्वतेषु) जो पर्वतों पर है. वह सभी औषधिद्रव्य तुम्हें विदित है।

१०७ हे (मरुतः !) वीर मरुतो ! (विश्वं पश्यन्तः) सब कुछ देखनेवाले तुम (तनूषु) हमारे शरीरोंमें (आ बिभृथ) पुष्टि उत्पन्न करो और (तेन) उस ज्ञानसे (नः अधि वोचत) हमसे बोलो; उसी प्रकार (नः आतुरस्य) हम में जो बीमार हो. उसके (रपः क्षमा) दोष की शांति करके (विह्रुतं) टूटे हुए अवयव को (पुनः इष्कर्त) फिर से ठीक बिठाओ।

भावार्थ- १०५ ये वीर अपनी शक्तियों से समुद्र एवं नदियों की रक्षा करते हैं, शत्रुदल को मटियामेट कर देते हैं, जनता को पानी पीने को मिले, इसलिए सुविधाएँ पैदा कर देते हैं और सभी लोगों की सुविधा का प्रबन्ध कर डालते हैं। १०६ सिन्धु, असिक्नी, समुद्र तथा पर्वतों पर जो रोगनिवारक औषधि हों, उन्हें जानना वीरों के लिए अनिवार्य है। १०७ ये वीर चिकित्सा करनेवाले कविराज या वैद्य हैं और विविध ओषधियोंसे भली भाँति परिचित हैं। वे हमें पुष्टिकारक औषध प्रदान कर हृष्टपुष्ट बना दें। जो कोई रोगग्रस्त हो, उसके शरीर में पाये जानेवाले दोष को हटाकर और छिन्नविच्छिन्न अंग को फिर ठीक प्रकार से जोडकर पहले जैसे कार्यक्षम बना दें।

टिप्पणी— [१०५] (१) सिन्धुं अवथ = समुद्र का रक्षण करते हो (क्या मरुत् दिव्य नाविक बेडे पर नियुक्त या जल सेना के अधिकारी हैं ?) (२) अ-सच-द्विषः = ये वीर स्वयं ही किसी का भी द्वेष नहीं करते हैं, अतः इन्हें अजातशत्रु कहा है। (३) क्रिवि = चमडे की थैली, कुआँ, जल भरा थैला, पानी का बर्तन। [१०६] (१) सु-बर्हिस् = सरपर उत्तम कलाप धारण करनेवाले, अच्छे यज्ञ करनेवाले। (मंत्र १३८ देखो)। [१०७] (१) वि-ह्रुतं इष्कर्त = लडाई में घायल हुए सैनिकों की प्राथमिक सेवाटहल करके, मरहमपट्टी आदि करना यहाँ पर सूचित है। वनस्पतियों की सहायता से उपर्युक्त चिकित्सा-कार्य करना है। पिछला ही मंत्र देखिए।

गोतमपुत्र नोधा ऋषि (ऋ० १।६४।१—१५)

(१०८) वृष्णे । शर्धाय । सुऽमखाय । वेधसे । नोधः । सुऽवृक्तिम् । प्र । भर । मरुत्ऽभ्यः । अपः । न । धीरः । मनसा । सुऽहस्त्यः । गिरः । सम् । अञ्जे । विदथेषु । आऽभुवः ॥१॥

(१०९) ते । जज्ञिरे । दिवः । ऋष्वासः । उक्षणः । रुद्रस्य । मर्याः । असुराः । अरेपसः । पावकासः । शुचयः । सूर्याःऽइव । सत्वानः । न । द्रप्सिनः । घोरऽवर्पसः ॥ २ ॥

अन्वयः— १०८ (हे) नोधः ! वृष्णे सु-मखाय वेधसे शर्धाय मरुद्भ्यः सु-वृक्तिं प्र भर, धीरः सु-हस्त्यः मनसा, विदथेषु आ-भुवः गिरः, अपः न, सं अञ्जे।

१०९ ते ऋष्वासः उक्षणः असु-राः अ-रेपसः पावकासः सूर्याःइव शुचयः द्रप्सिनः सत्वानः न घोर-वर्पसः रुद्रस्य मर्याः दिवः जज्ञिरे।

अर्थ— १०८ हे (नोधः !) नोधनामक ऋषे ! (वृष्णे) बल पाने के लिए, (सु-मखाय) यज्ञ भली भाँति हों, इस हेतु से, (वेधसे) अच्छे ज्ञानी होने के लिए और (शर्धाय) अपना बल बढाने के लिए (मरुद्भ्यः) मरुतों के लिए (सु-वृक्तिं प्र भर) उत्कृष्टतम काव्यों की यथेष्ट निर्मिति करो, (धीरः) बुद्धिमान् तथा (सु-हस्त्यः) हाथ जोडकर मैं (मनसा) मन से उनकी सराहना कर रहा हूँ और (विदथेषु आ-भुवः) यज्ञों में प्रभावयुक्त (गिरः) वाणियों की (अपः न) जल के समान (सं अञ्जे) वर्षा कर रहा हूं अर्थात् उनके काव्यों का गायन करता हूँ।

१०९ (ते) वे (ऋष्वासः) ऊँचे, (उक्षणः) बडे (असु-राः) जीवन का दान करनेवाले, (अ-रेपसः) पापरहित, (पावकासः) पवित्रता करनेहारे, (सूर्याःइव शुचयः) सूर्य की नाईं तेजस्वी, (द्रप्सिनः) सोम पीनेवाले और (सत्वानः न घोर-वर्पसः) सामर्थ्ययुक्त लोगों के जैसे बृहदाकार शरीरवाले (रुद्रस्य मर्याः) मानों रुद्र के मरणधर्मा वीर (दिवः) स्वर्ग से ही (जज्ञिरे) उत्पन्न हुए।

भावार्थ- १०८ बल, उत्तम कर्म, ज्ञान तथा सामर्थ्य अपने में बढे इसलिए वीर मरुतों के काव्य रचने चाहिए और सार्वजनिक सभाओं में उनका गायन करना उचित है।

१०९ उच्च, महान्, विश्व के हितार्थ अपने प्राणों का भी न झिझकते हुए बलिदान करनेवाले, निष्पाप, सभी जगह पवित्रता फैलानेवाले तेजस्वी, सोमपान करनेवाले, बलिष्ठ और प्रचंड देहधारी ये वीर मानों स्वर्ग से ही इस भूमंडल पर उतर पडे हों।

टिप्पणी- [१०८] (१) नोधस् = [णु -स्तुतौ] काव्य करनेवाला, कवि, एक ऋषि का नाम। [१०९] (१) ऋष्व = ऊँचे विचार मन में रखनेवाले, भव्य, उच्च पदपर रहनेवाले। (२) द्रप्सिन् = (द्रप्सः= सोम) जो अपने समीप सोम रखते हों, वे ' द्रप्सिनः, ' (Drops)। मंत्र ६१ देखिए।

(११०) युवा॑नः । रु॒द्राः । अ॒जराः॑ । अ॒भो॒क्ऽहनः॑ । व॒व॒क्षुः । अध्रि॑ऽगावः । पर्व॑ताःऽइव ।
दृ॒ळ्हा । चि॒त् । विश्वा॑ । भुव॑नानि । पार्थि॑वा । प्र । च्य॒व॒य॒न्ति॒ । दि॒व्यानि॑ । म॒ज्मना॑ ॥ ३ ॥
(१११) चि॒त्रैः । अ॒ञ्जिऽभिः॑ । वपु॑षे । वि । अ॒ञ्ज॒ते॒ । वक्षः॑ऽसु । रु॒क्मान् । अधि॑ । ये॒ति॒रे॒ । शु॒भे ।
अंसे॑षु । ए॒षा॒म् । नि । मि॒मृ॒क्षुः॒ । ऋ॒ष्टयः॑ । सा॒कम् । ज॒ज्ञि॒रे॒ । स्व॒धया॑ । दि॒वः । नरः॑ ॥४॥

अन्वयः- ११० युवानः अ-जराः अ-भोक्-हनः अध्रि-गावः पर्वताःइव रुद्राः ववक्षुः, पार्थिवा दिव्यानि विश्वा भुवनानि दळ्हा चित् मज्मना प्र च्यवयन्ति। १११ वपुषे चित्रैः अञ्जिभिः वि अञ्जते, वक्षःसु शुभे रुक्मान् अधि येतिरे, एषां अंसेषु ऋष्टयः नि मिमृक्षुः, नरः दिवः स्व-धया साकं जज्ञिरे।

अर्थ- ११० (युवानः) युवकदशामें रहनेवाले (अ-जराः) बूढापेसे अछूते (अ-भोक्-हनः) अनुदार कृपणोंको दूर करनेवाले (अध्रि-गावः) आगे बढनेवाले (पर्वताःइव) पहाडोंकी नाईं अपने स्थान पर अटल रूपसे खडे रहनेवाले (रुद्राः) शत्रुओंको रुलानेवाले ये वीर लोगोंको सहायता (ववक्षुः) पहुँचाते हैं; (पार्थिवा) पृथ्वी पर पाये जानेवाले तथा (दिव्यानि) द्युलोकमें विद्यमान (विश्वा भुवनानि) सभी लोक (दळ्हा चित्) कितने भी स्थिर हों, तो भी उन्हें ये (मज्मना) अपने बलसे (प्र च्यवयन्ति) अपदस्थ कर देते हैं, विचलित कर डालते हैं। १११ (वपुषे) शरीरकी सुन्दरता बढानेके लिए (चित्रैः अञ्जिभिः) भाँति भाँतिके आभूषणों-द्वारा वे (वि अञ्जते) विशेष ढंगसे अपनी सुषमा वृद्धिंगत कर देते हैं। (वक्षःसु) छातियों पर (शुभे) शोभा के लिए (रुक्मान्) सुवर्ण के बनाये हारों को (अधि येतिरे) धारण करते हैं। (एषां अंसेषु) इन मरुतोंके कंधों पर (ऋष्टयः नि मिमृक्षुः) हथियार चमकते रहते हैं। (नरः) ये नेताके पद पर अधिष्ठित वीर (दिवः) द्युलोकसे (स्व-धया साकं) अपने बलके साथ (जज्ञिरे) प्रकट हुए।

भावार्थ- ११० सदैव नवयुवक, बुढापा आने पर भी नवयुवकोंके जैसे उमंगभरे, कंजूस तथा स्वार्थी मानवोंको अपने समीप न रहने देनेवाले, किसी भी रुकावट के सामने शीश न झुकाते हुए प्रतिपल आगे ही बढनेवाले, पर्वत की नाईं अपनी जगह अटल खडे हुए, शत्रुदलको विचलित करनेवाले ये वीर जनताकी संपूर्ण सहायता करनेके लिए हमेशा सिद्ध रहते हैं। पृथ्वी या स्वर्गमें पाये जानेवाली सुदृढ चीजोंको भी ये अपने बलसे हिला देते हैं, (तो फिर शत्रु इनके सामने थरथर काँपने लगेंगे, तो कौन आश्चर्यकी बात है ?) १११ वीर मरुत् गहनोंसे अपने शरीर सुशोभित करते हैं, वक्षः-स्थलों पर मुहरोंके हार रख देते हैं, कंधों पर चमकीले आयुध धर देते हैं। ऐसी दशा में उन्हें देखने पर ऐसा प्रतीत होने लगता है कि मानों वे स्वर्गमेंसे ही अपनी अतुलनीय शक्तियों के साथ इस भूमंडल में उतर पडे हों।

---

[११०] (१) अ-जराः = वृद्ध न होनेवाले अर्थात् अवस्था में बुढापा आने पर भी नवयुवकों की तरह अति उमंग से कार्य करनेवाले, बुढापे में भी युवकों के उत्साह से काम में जुटनेवाले। (२) अ-भोक्-हनः = जो उपभोग दूसरों को मिलने चाहिए, उनका अपहरण करके स्वयं ही पाने की चेष्टा करनेवाले एवं समाज के लिए निरुपयोगी मानवोंको दूर करनेवाले। (हन् = [हिंसागत्योः,] यहाँ पर गति बतलानेवाला अर्थ लेना ठीक है।) (३) अध्रि-गुः = अबाध रूप से चढाई करनेवाले, किसी भी रुकावट या अडचन की ओर ध्यान न देनेवाले और शत्रुदल पर बराबर धावा करनेवाले। (४) पर्वताः इव (स्थिराः) = यदि शत्रु ही प्रारम्भ में आक्रमण कर बैठें तो भी अपने निर्धारित स्थानों पर अटल भाव से खडे रहनेवाले अतएव शत्रुदल की चढाई से अपनी जगह छोडकर पीछे न हटनेवाले। (५) पार्थिवा दिव्यानि विश्वा भुवनानि दळ्हा चित् मज्मना प्र च्यवयन्ति = भूमि पर के तथा पर्वत-शिखरों पर विद्यमान सुदृढ दुर्गतक को अपनी अद्भुत सामर्थ्य से हिला देते हैं। ऐसी अनूठी शक्ति के रहते यदि वे शत्रुओं को भी विचलित कर डालें, तो कोई आश्चर्य की बात नहीं। बेशक, दुश्मन उनके सामने खडे रहने का मौका आते ही थरथर काँप उठेंगे। देखो मंत्र १२६। [१११] (१) ऋष्टयः नि मिमृक्षुः = खड्ग भाले या कुठार जो कुछ भी शस्त्र वे धारण करते हों, उन्हें ठीक तरह साफ सुथरा रखकर तथा परिष्कृत करके रखते हैं, अतः वे चमकीले दीख

(११२) ईशानऽकृतः । धुनयः । रिशादसः । वातान् । विऽद्युतः । तविषीभिः । अक्रत ।
दुहन्ति । ऊधः । दिव्यानि । धूतयः । भूमिम् । पिन्वन्ति । पयसा । परिऽज्रयः ॥५॥
(११३) पिन्वन्ति । अपः । मरुतः । सुऽदानवः । पयः । घृतऽवत् । विदथेषु । आऽभुवः ।
अत्यम् । न । मिहे । वि । नयन्ति । वाजिनम् । उत्सम् । दुहन्ति । स्तनयन्तम् । अक्षितम् ॥६॥

अन्वयः— ११२ ईशान-कृतः धुनयः रिश-अदसः तविषीभिः वातान् विद्युतः अक्रत, परि-ज्रयः धूतयः दिव्यानि ऊधः दुहन्ति, भूमिं पयसा पिन्वन्ति। ११३ सु-दानवः आ-भुवः मरुतः विदथेषु घृतवत् पयः अपः पिन्वन्ति, अत्यं न वाजिनं मिहे वि नयन्ति, स्तनयन्तं उत्सं अ-क्षितं दुहन्ति।

अर्थ— ११२ (ईशान-कृतः) स्वामी तथा अधिकारीवर्ग का निर्माण करनेवाले, (धुनयः) शत्रुदल को हिलानेवाले, (रिश-अदसः) हिंसा में निरत विरोधियों का विनाश करनेवाले, (तविषीभिः) अपनी शक्तियों से (वातान्) वायुओं को तथा (विद्युतः) बिजलियों को (अक्रत) उत्पन्न करते हैं। (परि-ज्रयः) चतुर्दिक् वेगपूर्वक आक्रमण करनेवाले तथा (धूतयः) शत्रुसेना को विकंपित करनेवाले ये वीर (दिव्यानि ऊधः) आकाशस्थ मेघों का (दुहन्ति) दोहन करते हैं और (भूमिं पयसा पिन्वन्ति) यथेष्ट वर्षाद्वारा भूमि को तृप्त करते हैं।

११३ (सु-दानवः) अच्छे दानी, (आ-भुवः) प्रभावशाली (मरुतः) वीर मरुतों का संघ (विदथेषु) यज्ञों एवं युद्धस्थलों में (घृतवत् पयः) घी के साथ दूध तथा (अपः पिन्वन्ति) जल की समृद्धि करते हैं, (अत्यं न) घोडे को सिखाते समय जैसे घुमाते हैं, ठीक वैसे ही (वाजिनं) बलयुक्त मेघों को (मिहे) वर्षा के लिए वे (वि नयन्ति) विशेष ढंग से ले चलते हैं, चलाते हैं और तदुपरान्त (स्तनयन्तं उत्सं) गरजनेवाले उस झरने का-मेघ का (अ-क्षितं दुहन्ति) अक्षय रूप से दोहन करते हैं।

भावार्थ— ११२ राष्ट्र के शासन की बागडोर हाथ में लेनेवाले, शासकों के वर्ग को अस्तित्व में लानेवाले, शत्रुओं को विचलित करनेवाले, कष्ट देनेवाले शत्रुसैन्य को जड मूल से उखाड देनेवाले, अपनी शक्तियों से चारों ओर बडे वेग से दुश्मनों पर धावा करनेवाले तथा उन्हें नीचे धकेलनेवाले ये वीर वायुप्रवाह, विद्युत् एवं वर्षा का सृजन करते हैं। ये ही मेघों को दुहकर भूमि पर वर्षारूपी दूध का सेचन करते हैं।

११३ उदारधी तथा प्रभावशाली ये वीर मरुत् यज्ञों में घृत, दुग्ध तथा जल की यथेष्ट समृद्धि कर देते हैं और घोडों को सिखाते समय जिस ढंग से उन्हें चलाते हैं, वैसे ही अन्न के उत्पादन में सहायता पहुँचानेवाले मेघवृंद-को निश्चित राहसे चलाते हैं। उस मेघसमूहरूपी बृहदाकार जलकुंड से पानीके प्रवाह अविरत रूपसे प्रवर्तित कर देते हैं।

पडते हैं। यह वर्णन ध्यानपूर्वक पढ लेना चाहिए और पाठक सोचें कि, वर्तमानकाल में सैनिक एवं उनके अधिकारी किस ढंगसे रहते हैं। पाठकोंको ज्ञात होगा कि, यहाँ पर सैनिकोंका ही वर्णन किया है। देखिए ' अञ्जि ' शब्द मंत्र ९०।

[११२] (१) ईशान-कृतः = (King-makers) राष्ट्रपर प्रभुत्व प्रस्थापित करने की क्षमता से युक्त अधिकारी या शासकवर्ग का निर्माण करनेवाले, नियन्ता की आयोजना करनेवाले। अथर्ववेद में ३।५।७ में ' राज-कृतः ' पद इसी अर्थ की सूचना देता है। (२) दिव्यानि ऊधः दुहन्ति भूमिं पयसा पिन्वन्ति = दिव्य स्तनों का दोहन करके भूमंडल पर दूध की वर्षा करते हैं। (दिव्यं ऊधः = मेघ; पयः = दूध या जल।) (३) धुनयः, धूतयः- हिलानेवाले, शत्रु को उसकी जगह से हटानेवाले, दुश्मनों का उच्चाटन करनेवाले। (४) परि-ज्रयः = (परि-ज्रि) = दुश्मनों पर चहुँ ओर चढाई करनेवाले, चारों ओर फैलनेवाले। (ज्रि जये = विजय पाना, शत्रु को परास्त करना।) (५) रिश-अदसः = (रिश + अदस्) = (रिश्) हिंसक, हत्यारे शत्रुको (अदस्) खा जानेवाले, शत्रु का विनाश करनेवाले। [११३] आ-भुवः = (आ भू) प्रभाव प्रस्थापित करना। (मंत्र ४३ में ' अभ्वः ' पद देखिए।)

(११४) महिपासः । मायिनः । चित्रऽभानवः । गिरयः । न । स्वऽतवसः । रघुऽस्यदः ।
मृगाःऽइव । हस्तिनः । खादथ । वना । यत् । आरुणीषु । तविषीः । अयुग्ध्वम् ॥७॥
(११५) सिंहाःऽइव । नानदति । प्रऽचेतसः । पिशाःइव । सुऽपिशः । विश्वऽवेदसः ।
क्षपः । जिन्वन्तः । पृषतीभिः । ऋष्टिऽभिः । सम् । इत् । सऽबाधः । शवसा । अहिऽमन्यवः ॥८॥

अन्वयः- ११४ महिपासः मायिनः चित्र-भानवः गिरयः न स्व-तवसः रघु-स्यदः हस्तिनः मृगाःइव वना खादथ, यत् आरुणीषु तविषीः अयुग्ध्वं ।

११५ प्र-चेतसः सिंहाःइव नानदति, पिशाःइव सु-पिशः विश्व-वेदसः क्षपः जिन्वन्तः शवसा अ-हि-मन्यवः पृषतीभिः ऋष्टिभिः स-बाधः सं इत् ।

अर्थ- ११४ (महिपासः) बडे, (मायिनः) निपुण कारीगर, (चित्र--भानवः) अत्यन्त तेजस्वी (गिरयः न) पर्वतों के समान (स्व--तवसः) अपने निजी बल से स्थिर रहनेवाले, परन्तु (रघु-स्यदः) वेगपूर्वक जानेवाले तुम (हस्तिनः मृगाःइव) हाथियों एवं मृगों के समान (वना खादथ) वनों को खा जाते हो-तोडमरोड देते हो, (यत्) क्योंकि (आरुणीषु) लाल वर्णवाली घोडियों में से (तविषीः) बलिष्ठों कोही (अयुग्ध्वम्) तुम रथों में लगा देते हो ।

११५ (प्र-चेतसः) ये उत्कृष्ट ज्ञानी वीर (सिंहाःइव) सिंहों के समान (नानदति) गर्जना करते हैं । (पिशाःइव सु-पिशः) आभूषणों से युक्त पुरुषोंकी नाईं सुहानेवाले, (विश्व-वेदसः) सब धनों से युक्त होकर (क्षपः) शत्रुदल की धज्जियाँ उडानेवाले, ((जिन्वन्तः) लोगोंको संतुष्ट करनेवाले, (शवसा अ-हि-मन्यवः) बलयुक्त होनेके कारण जिनका उत्साह घट नहीं जाता, ऐसे वे वीर (पृषतीभिः) धब्बेवाली घोडियों के साथ और (ऋष्टिभिः) हथियारों के साथ (स-बाधः) पीडित जनता की ओर उसकी रक्षा करने के लिए (सं इत्) तुरन्त इकट्ठे होकर चले जाते हैं ।

भावार्थ- ११४ ये वीर मरुत् बडे भारी कुशल, तेजस्वी, पर्वतकी नाईं अपनी सामर्थ्य के सहारे अपनी जगह स्थिर रहनेवाले पर शत्रुओंपर बडे वेगसे हमला करनेवाले हैं और मतवाले गजराज की नाईं वनोंको कुचलने की क्षमता रखते हैं । लाल घोडियों के झुंडमें से ये केवल बलयुक्त घोडियोंको ही अपने रथों में जोडने के लिए चुन लेते हैं ।

११५ ये ज्ञानी वीर सिंहकी नाईं दहाडते हुए घोषणा करते हैं । आभूषणों से बनेठने दीख पडते हैं । सब-प्रकार के धन एवं सामर्थ्य बटोरकर और शत्रुदल की धज्जियाँ उडाकर ये सज्जनों का समाधान करते हैं । इनमें असीम बल विद्यमान है, इसलिए इनका उत्साह कभी घटताही नहीं । भाँतिभाँति के अनूठे हथियार साथ में रखकर पीडित प्रजाका दुःख हरण करने के लिए ये वीर एकत्रित बन अत्याचारी शत्रुओंपर चढाई कर बैठते हैं ।

टिप्पणी- [११४] (१) महिषः=बडा, बडे शरीरवाला, भैंसा । (२) मायिन् = कुशलतापूर्ण कार्य करनेवाला, सिद्धहस्त, छलकपटसे शत्रु पर हमले करनेमें निपुण । (३) रघु-स्यदः =(लघु-स्यद्)= पैरोंकी आहट न सुनाई दे, इतने वेगसे जानेवाला; शत्रुके अनजाने उसपर धावा करनेवाला । [११५] (१) प्रचेतस् = विशेष ज्ञानी (देखो मंत्र ४४) । (२)पिश् = अलंकार, शोभा; सु-पिश = सुरूप । (३) विश्व-वेदस् = सभी प्रकारके धनोंसे युक्त, सर्वज्ञ । (४) क्षपः = शत्रुदलको मटियामेट करनेवाले । (५) जिन्वन्तः = तृप्ति करनेवाले । (६) शवसा अ-हि- मन्यवः= बल यथेष्ट मात्रा में विद्यमान है, इसलिए (अ हीन-मन्यवः) निरुत्साही न बननेवाले । (७) पृषतीभिः ऋष्टिभिः स-बाधः सं इत् (रक्षितुं गच्छन्ति) = सुशोभित (पकडने की जगह या लकडियों पर धब्बे रहने से) आयुध साथ ले दुःखी जनता के निकट जाकर उनकी रक्षा करते हैं ।

(११६) रोदसी इति । आ । वदत । गणऽश्रियः । नृऽसाचः । शूराः । शवसा । अहिऽमन्यवः ।
आ । वन्धुरेषु । अमतिः । न । दर्शता । विऽद्युत् । न । तस्थौ । मरुतः । रथेषु । वः ॥९॥

(११७) विश्वऽवेदसः । रयिऽभिः । सम्ऽओकसः । सम्ऽमिश्लासः । तविषीभिः । विऽरप्शिनः ।
अस्तारः । इषुम् । दधिरे । गभस्त्योः । अनन्तऽशुष्माः । वृषऽखादयः । नरः ॥१०॥

अन्वयः— ११६ (हे) गण-श्रियः नृ-साचः शूराः शवसा अ-हि-मन्यवः मरुतः! रोदसी आ वदत वन्धुरेषु रथेषु, अमतिः न, दर्शता विद्युत् न, वः आ तस्थौ ।

११७ रयिभिः विश्व-वेदसः सम्-ओकसः तविषीभिः सम्-मिश्लासः वि-रप्शिनः अस्तारः अन्-अन्त-शुष्माः वृष-खादयः नरः गभस्त्योः इषुं दधिरे ।

अर्थ- ११६ हे (गण-श्रियः) समुदाय के कारण सुहानेवाले, (नृ-साचः) लोगों की सेवा करनेवाले, (शूराः) वीर, (शवसा अ-हि-मन्यवः) अत्यधिक बलके कारण न घटनेवाले उत्साहसे युक्त (मरुतः!) वीर मरुतो! (रोदसी आ वदत) भूतल एवं द्युलोक को अपनी दहाड से भर दो, (वन्धुरेषु रथेषु) जिन में बैठने के लिए अच्छी जगह है, ऐसे रथों में (अमतिः न) निर्मल रूपवालों के समान तथा (दर्शता विद्युत् न) दर्शन करनेयोग्य बिजली की नाईं (वः) तुम्हारा तेज (आ तस्थौ) फैल चुका है ।

११७ (रयिभिः विश्व-वेदसः) अनेक धनों से युक्त होनेके कारण सर्वधनयुक्त, (सम्-ओकसः) एकही घरमें रहनेवाले, (तविषीभिः सम्-मिश्लासः) भाँति भाँति के बलों से युक्त, (वि-रप्शिनः) विशेष सामर्थ्यवान्, (अस्तारः) शत्रुसेनापर अस्त्र फेंक देनेवाले, (अन्-अन्त- शुष्माः) असीम सामर्थ्यवाले, (वृष-खादयः) बडे बडे आभूषण धारण करनेवाले, (नरः) नेतृत्वगुणसे विभूषित वीर (गभस्त्योः) बाहुओंपर (इषुं दधिरे) बाण धारण कर रहे हैं ।

भावार्थ- ११६ वीर मरुत् जब गणवेश (वरदी) पहनते हैं, तो बडे प्रेक्षणीय जान पडते हैं। इनमें वीरता कूटकूटकर भरी है और जनताकी सेवा करने का मानों इन्होंने व्रतसा लिया है । पर्याप्त रूप से बलवान् हैं, अतः इनकी उमंग कभी घटती ही नहीं। जब वे अपने सुशोभित रथोंपर जा बैठते हैं, तो दामिनीकी दमककी नाईं तेजस्वी दिखाई देते हैं।

११७ विविध धन समीप रखनेवाले, एकही घर या निवासस्थानमें रहनेवाले, विभिन्न शक्तियोंसे युक्त, शत्रुसेनापर अस्त्र फेंकनेवाले जो भारी गहने पहनते हैं, ऐसे वीर नेता कंधोंपर बाण तथा तरकस धारण करते हैं ।

टिप्पणी [११६] (१) गण-श्रियः= सामूहिक पहनावा पहनने के कारण सुहानेवाले । (२) नृ-साचः= मानवों की सेवा करनेवाले । (३) शवसा अ-हि-मन्यवः= देखो पिछला मंत्र । (४) वन्धुरः रथः= जिस में बैठनेकी जगह हो, ऐसा रथ । (५) वन्धुरः (बन्धुरः) = प्रेक्षणीय, शोभायुक्त, सुखकारक, झुका हुआ । (६) अमतिः = आकार, रूप, तेजस्विता, प्रकाश, समय । [११७] (१) सम्-ओकसः = एक घरमें (बॅरॅक Barrack) रहनेवाले वीर सैनिक । [देखो मंत्र ३२१, ३४५, ४४७] (२) रयिभिः विश्व-वेदसः = अपने समीप बहुत प्रकारके धन विद्यमान हैं, इसलिये विविध-धनसमन्वित। (३) तविषीभिः संमिश्लाः, अनन्तशुष्माः = बलवान्, सामर्थ्य से परिपूर्ण। (४) वृष-खादयः= सोमरसके साथ खानेकी चीजें खानेवाले (सायन) [मंत्र १५० देखिए]। (५) गभस्त्योः इषुं दधिरे = स्कंधप्रदेशपर तूणीर धारण करते हैं । (६) विरप्शिनः = विशेष सामर्थ्य से युक्त ।

(११८) हिरण्ययेभिः । पविऽभिः । पयःऽवृधः । उत् । जिघ्नन्ते । आऽपथ्यः । न । पर्वतान् ।
मखाः । अयासः । स्वऽसृतः । ध्रुवऽच्युतः । दुध्रऽकृतः । मरुतः । भ्राजत्ऽऋष्टयः ॥११॥

(११९) घृषुम् । पावकम् । वनिनम् । विऽचर्षणिम् । रुद्रस्य । सूनुम् । हवसा । गृणीमसि ।
रजःऽतुरम् । तवसम् । मारुतम् । गणम् । ऋजीषिणम् । वृषणम् । सश्चत । श्रिये ॥१२॥

अन्वयः— ११८ पयो-वृधः मखाः अयासः स्व-सृतः ध्रुवच्युतः दु-ध्र-कृतः भ्राजत्-ऋष्टयः मरुतः आ-पथ्यः न पर्वतान् हिरण्ययेभिः पविभिः उत् जिघ्नन्ते । ११९ घृषुं पावकं वनिनं वि-चर्षणिं रुद्रस्य सूनुं हवसा गृणीमसि, श्रिये रजस्-तुरं तवसं वृषणं ऋजीषिणं मारुतं गणं सश्चत ।

अर्थ- ११८ (पयो-वृधः) दूध पीकर पुष्ट बननेवाले, (मखाः) यज्ञ करनेवाले, (अयासः) आगे जानेवाले, (स्व-सृतः) स्वेच्छापूर्वक हलचलें करनेवाले, (ध्रुव--च्युतः) अटल रूप से खडे शत्रुओं को भी हिलानेवाले, (दु-ध्र-कृतः) दूसरों से न पकडने तथा घेरे जानेवाले तथा (भ्राजत् ऋष्टयः) तेजस्वी हाथियार साथ रखनेवाले (मरुतः) वीर मरुत् (आ-पथ्यः न) चलनेवाला जिस तरह राह में पडा हुआ तिनका दूर फेंक देता है, ठीक वैसे ही (पर्वतान्) पहाडोंतक को (हिरण्ययेभिः पविभिः) स्वर्णमय रथों के पहियों से (उत् जिघ्नन्ते) उडा देते हैं ।

११९ (घृषुं) युद्धके संघर्षमें चतुर, (पावकं) पवित्रता करनेवाले, (वनिनं) जंगलोंमें घूमनेवाले, (वि-चर्षणिं) विशेष ध्यानपूर्वक हलचल करनेवाले, (रुद्रस्य सूनुं) महावीर के पुत्ररूपी इन वीरोंके समूह की (हवसा) प्रार्थना करते हुए (गृणीमसि) प्रशंसा करते हैं; तुम (श्रिये) अपने ऐश्वर्यको बढाने के लिए (रजस्-तुरं) धूलि उडानेवाले अर्थात् अति वेग से गमन करनेवाले, (तवसं) बलिष्ठ, (वृषणं) वीर्यवान् तथा (ऋजीषिणं) सोम पीनेवाले (मारुतं गणं) मरुत्समुदाय को (सश्चत) प्राप्त हो जाओ ।

भावार्थ- ११८ गोदुग्ध-सेवन से पुष्टि पाकर अच्छे कार्य करते हुए शत्रुओं पर हमले करने के लिए आगे बढनेवाले, स्थिर शत्रुओं को भी विचलित करनेवाले, आभापूर्ण हथियारों से सज्ज तथा जिन्हें कोई घेर नहीं सकता, ऐसे ये वीर पर्वतों को भी नगण्य तथा तुच्छ मानते हैं । ११९ महासमर के छिड जाने पर चतुराई से अपना कर्तव्य निभानेवाले, पवित्र आचरण रखनेवाले, वनस्थलों में संचार करनेवाले, अधिक सोचविचारपूर्वक हलचलोंका सूत्रपात करनेवाले ये वीर मरुत् हैं । हम इन्हीं वीरोंकी सराहना करनेके लिए काव्यगायन करते हैं । तुम लोग भी अपना वैभव बढाने के लिए शीघ्रता से चढाई करनेवाले, बलिष्ठ, पराक्रमी एवं सोम पीनेवाले मरुतों के निकट चले जाओ ।

टिप्पणी- [११८] (१) पयो-वृधः= चूँकि ये वीर गौको अपनी माता मानते हैं, इसलिए नित गोदुग्ध का सेवन कर के पुष्ट तथा वृद्धिंगत होते हैं । (२) मखाः= स्वयं ही यज्ञ करनेवाले । (३) स्व-सृतः= स्वयं हलचल करनेवाले, जिन्हें अपनी निजी स्फूर्ति से ही कार्य करने की प्रेरणा मिलती है । (४) ध्रुव-च्युतः= सुदृढ शत्रुओं को भी जगह से हटानेवाले । (५) दु--ध्र--कृतः (दुर्धरं, अन्यैः धर्तुं अशक्यं आत्मानं कुर्वाणाः)= जिन्हें पकडना या घेर लेना दूसरों को असम्भव तथा बीहड प्रतीत हो । (६) पर्वतान् उत् जिघ्नन्ते = पहाडों को ये नगण्य एवं अकिंचित्कर समझते हैं, इसलिए शत्रुदल पर चढाई करते समय अगर राह में पहाडों की वजह से कठिनाई प्रतीत हो, तो भी उन्हें तिनका मानकर पार चले जाते हैं और अपने गंतव्य स्थल को पहुँच जाते हैं । [११९] (१) घृषुः= शत्रु से जूझने में निपुण, प्रसन्न, हर्षित, चपल, फुर्तीला । (२) वनिन् = जंगलों में घूमनेवाला । (३) वि-चर्षणि= विशेष ढंग से देखनेहारा, विशेष रूप से हलचल करनेवाला, विशेष तरह की शक्ति से युक्त वीर । (४) रजस्-तुर= अति वेग से चले जाने के कारण धूलि उडानेवाला, वाहन जब तेज जाने लगता है, तब जिस तरह गर्द या धूल उडा करती है, उस तरह धूलिकणोंको बिखेरते हुए यात्रा करनेवाला, अथवा (रजः) अन्तरिक्षमेंसे विमानद्वारा (तुर) शीघ्रतया जानेवाला । (५) ऋजीषिन् = (ऋजीषः सोमावशेषः) सोमरस निचोडने के पश्चात् जो बचा हुआ अंश रहता है । सोमरस की बनी हुई खाने की चीज सेवन करनेवाला । (ऋजीषं पिष्टपचनं खाद्यविशेषः । कौमुदी उणादि ४७६)

(१२०) प्र । नु । सः । मर्तः । शवसा । जनान् । अति । तस्थौ । वः । ऊती । मरुतः । यम् । आवत । अर्वत्ऽभिः । वाजम् । भरते । धना । नृऽभिः । आऽपृच्छ्यम् । क्रतुम् । आ । क्षेति । पुष्यति ॥ १३ ॥

(१२१) चर्कृत्यम् । मरुतः । पृत्ऽसु । दुस्तरम् । द्युऽमन्तम् । शुष्मम् । मघवत्ऽसु । धत्तन । धनऽस्पृतम् । उक्थ्यम् । विश्वऽचर्षणीम् । तोकम् । पुष्येम । तनयं । शतम् । हिमाः ॥ १४ ॥

(१२२) नु । स्थिरम् । मरुतः । वीरऽवन्तम् । ऋतिऽसहम् । रयिम् । अस्मासु । धत्त । सहस्रिणम् । शतिनम् । शूशुऽवांसम् । प्रातः । मक्षु । धियाऽवसुः । जगम्यात् ॥ १५ ॥

अन्वयः- १२० (हे) मरुतः! वः ऊती यं प्र आवत सः मर्तः शवसा जनान् अति नु तस्थौ, अर्वद्भिः वाजं नृभिः धना भरते, पुष्यति, आपृच्छ्यं क्रतुं आ क्षेति। १२१ (हे) मरुतः! मघ-वत्सु चर्कृत्यं पृत्सु दुस्-तरं द्युमन्तं शुष्मं धन-स्पृतं उक्थ्यं विश्व-चर्षणिं तोकं तनयं धत्तन, शतं हिमाः पुष्येम। १२२ (हे) मरुतः! अस्मासु स्थिरं वीर-वन्तं ऋती-षाहं शतिनं सहस्रिणं शूशुवांसं रयिं नु धत्त, प्रातः धिया-वसुः मक्षु जगम्यात्।

अर्थ- १२० हे (मरुतः!) मरुतो! तुम (वः ऊती) अपनी संरक्षक शक्तिके द्वारा (यं प्र आवत) जिसकी रक्षा करते हो, (सः मर्तः) वह मनुष्य (शवसा) बलमें (जनान् अति) अन्य लोगोंकी अपेक्षा श्रेष्ठ होकर (नु तस्थौ) स्थिर बन जाता है। (अर्वद्भिः वाजं) वह घुडसवारों के दल की सहायतासे अन्न पाता है, (नृभिः धना भरते) वीरोंकी मदद से यथेष्ट मात्रामें धन इकट्ठा करता है और (पुष्यति) पुष्ट होता है। उसी प्रकार (आपृच्छ्यं क्रतुं) सराहनीय यज्ञकी ओर (आ क्षेति) चला जाता है, अर्थात् यज्ञ करता है।

१२१ हे (मरुतः!) वीर मरुतो! (मघ-वत्सु) धनिक तथा वैभवसंपन्न लोगोंमें (चर्कृत्यं) उत्तम कार्य करनेवाला, (पृत्सु दुस्-तरं) युद्धोंमें विजेता, (द्युमन्तं) तेजस्वी, (शुष्मं) बलिष्ठ, (धन-स्पृतं) धन से युक्त, (उक्थ्यं) सराहनीय, (विश्व-चर्षणिं) सब लोगोंके हितकर्ता (तोकं) पुत्र एवं (तनयं) पौत्र (धत्तन) होते रहें। उसी प्रकार (शतं हिमाः पुष्येम) हम सौ वर्षतक जीवित रहकर पुष्ट होते रहें।

१२२ हे (मरुतः!) वीर मरुतो! (अस्मासु) हममें (स्थिरं वीर-वन्तं) स्थायी तथा वीरोंसे युक्त, (ऋती षाहं) शत्रुओंका पराभव करनेवाले, (शतिनं सहस्रिणं) सैकडों और सहस्रों तरहके, (शूशुवांसं) वर्धिष्णु (रयिं) धन को (नु धत्त) अवश्य ही धर दो। (प्रातः) प्रातःकाल के समय (धिया-वसुः) बुद्धिद्वारा कर्मोंका सम्पादन करके धन पानेवाले तुम (मक्षु जगम्यात्) शीघ्र हमारे निकट चले आओ।

भावार्थ- १२० ये वीर जिसकी रक्षा करते हैं, वह दूसरोंसे भी अपेक्षाकृत उच्च एवं श्रेष्ठ ठहरता है और अपने पैदल तथा घुडसवारोंके दलमें विद्यमान वीरोंकी सहायतासे यथेष्ट धनधान्य बटोरता हुआ हृष्टपुष्ट होकर भाँति भाँतिके यज्ञ करता रहता है।

१२१ उत्साहसे कार्य करनेवाले, लडाइयोंमें सदैव विजयी बननेवाले, शक्ति तथा बलसे लबालब भरे हुए, धन बढानेवाले, सराहनीय, समूची जनताके हितके लिए बडी लगनसे प्रयत्न करनेवाले पुत्र एवं पौत्र धनाढ्य लोगों के घरों में उत्पन्न हों और हम पूरी एक शताब्दि तक जीवित रह कर पुष्टि प्राप्त करें। (धनिकोंके प्रासादोंमें बिलकुल इसके विपरीत स्थिति पाई जाती है, अत: यह मंत्र अतीव महत्त्वपूर्ण चेतावनी दे रहा है।) १२२ हमें उस धनकी आवश्यकता है, जो चिरकाल तक टिक सके, जिससे वीरता बढ जाए, शत्रुदलका निःपात करना सुगम हो जाए, कीर्ति फैल सके और जो सैकडों एवं सहस्रों प्रकारका हो, या जिसकी गिनतीमें शतसंख्या तथा सहस्रसंख्याका उपयोग हो।

टिप्पणी- [१२०] आपृच्छ्यः क्रतुः = प्रशंसनीय यज्ञ। [१२१] (१) चर्कृत्यः = बार बार अच्छे कार्य कुशलतापूर्वक करनेवाला। (२) पृत्सु दुस्तरः = रणभूमि में जिसे परास्त करना असंभव है। सदैव विजयी। (३) धन-स्पृत् = धन पाकर उसे बढानेवाला। (४) विश्व-चर्षणिः = समूचे मानवोंका हित करनेवाला, सार्वजनिक कल्याण के कार्य करनेवाला (A worker imbued with public spirit)। [१२२] (१) वीरवत् = जिसके

रहूगणपुत्र गोतमऋषि (ऋ० १ । ८५।१-१२)

(१२३) प्र । ये । शुम्भन्ते । जनयः । न । सप्तयः । यामन् । रुद्रस्य । सूनवः । सुऽदंससः ।
रोदसी इति । हि । मरुतः । चक्रिरे । वृधे । मदन्ति । वीराः । विदथेषु । घृष्वयः ॥१॥

(१२४) ते । उक्षितासः । महिमानम् । आशत । दिवि । रुद्रासः । अधि । चक्रिरे । सदः ।
अर्चन्तः । अर्कम् । जनयन्तः । इन्द्रियम् । अधि । श्रियः । दधिरे । पृश्निऽमातरः ॥२॥

अन्वयः— १२३ ये सु-दंससः सप्तयः रुद्रस्य सूनवः यामन् जनयः न प्र शुम्भन्ते, मरुतः हि वृधे रोदसी चक्रिरे, घृष्वयः वीराः विदथेषु मदन्ति । १२४ रुद्रासः दिवि सदः अधि चक्रिरे, अर्कं अर्चन्तः इन्द्रियं जनयन्तः पृश्नि-मातरः श्रियः अधि दधिरे, ते उक्षितासः महिमानं आशत ।

अर्थ- १२३ (ये) ये जो (सु-दंससः) अच्छे कार्य करनेवाले, (सप्तयः) प्रगतिशील, (रुद्रस्य सूनवः) महावीर के पुत्र वीर मरुत् (यामन्) बाहर जाते हैं, उस समय (जनयः न) महिलाओं के समान (प्र शुम्भन्ते) अपने आपको सुशोभित करते हैं। (मरुतः हि) मरुतोंने ही (वृधे) सब की अभिवृद्धि के लिए (रोदसी चक्रिरे) द्युलोक एवं भूलोक की प्रस्थापना कर डाली, तथा ये वीर (घृष्वयः वीराः) शत्रुदल को तहसनहस करनेवाले शूर पुरुष हैं और (विदथेषु मदन्ति) यज्ञों में या रणांगणों में हर्षित हो उठते हैं।

१२४ (रुद्रासः) शत्रुदल को रुलानेवाले वीरोंने (दिवि) आकाश में (सदः अधि चक्रिरे) अच्छा स्थान या घर बना रखा है। (अर्कं अर्चन्तः) पूजनीय देवकी उपासना करते हुए, (इन्द्रियं जन॰ यन्तः) इंद्रियों में विद्यमान् शक्ति को प्रकट करते हुए, (पृश्नि-मातरः) मातृभूमि के सुपुत्र ये वीर (श्रियः अधि दधिरे) अपनी शोभा एवं चारुता बढा चुके हैं। (ते उक्षितासः) वे अपने स्थानों पर अभिषिक्त होकर (महिमानं आशत) बडप्पन को पा सके।

भावार्थ- १२३ प्रगतिशील तथा शुभ कार्य करनेवाले ये पुरोगामी वीर बाहर निकलते समय महिलाओं की तरह अपने आप को सँवारते हैं और खूब बन-ठन के प्रयाण करते हैं। सब की प्रगति के लिए यथेष्ट स्थान मिले, इसलिए पृथ्वी एवं आकाश का सृजन हुआ है। भू-चर शत्रुओं की धज्जियाँ उडानेवाले ये वीर युद्ध का अवसर उपस्थित होते ही अतीव उल्लसित एवं प्रसन्न हो उठते हैं। लडाई का मौका आनेपर इन वीरों का दिल हराभरा हो जाता है।

१२४ सचमुच ये वीर युद्ध में विजयी बनकर स्वर्ग में अपना घर तैयार कर देते हैं। वे परमात्मा की उपासना करते हैं और अपनी शक्ति को बढाते हैं, तथा मातृभूमिके कल्याण के लिए धनवैभव की वृद्धि करते हैं। वे अपनी जगह रहकर तथा उचित कार्य करके बडप्पन प्राप्त करते हैं।

समीप वीर हों; शूर पुत्रों से युक्त। (२) ऋती-षाह = (ऋती = आक्रमण, हमला, चढाई) = शत्रुको हरानेवाला। (३) शूशुवान् = प्रवृद्ध, बढा हुआ, बढनेवाला। (४) धिया-वसुः = बुद्धि तथा कर्मशक्तिसे युक्त, बुद्धि से भाँति भाँतिके कार्य पूर्ण करके धन कमानेवाला। [१२३] (१) सु-दंसस् = शुभ कर्म करनेहारे। (२) सप्तिः = सात सात लोगों की पंक्तिमें खडे रहनेवाले या हमला करनेवाले, भूमि पर रेंगते हुए जाकर चढाई करनेवाले। (३) घृष्वयः = शत्रुदलको मटियामेट करनेवाले, संघर्ष में शामिल हो दुष्टों को कुचलनेवाले। (४) विदथः = यज्ञ, युद्ध। [१२४] (१) अर्कः = पूज्य, देव, सूर्य। (२) इन्द्रिय = इंद्रशक्ति, इंद्रियों की शक्ति; (इन्-द्र) शत्रुओं को पददलित एवं पराभूत करने की शक्ति। (३) पृश्निमातरः = गौमाता तथा भूमि को माता माननेवाले। (४) उक्षित = सिंचित, स्थान पर अभिषिक्त।

(१२५) गोऽमातरः । यत् । शुभयन्ते । अञ्जिऽभिः । तनूषु । शुभ्राः । दधिरे । विरुक्मतः ।
बाधन्ते । विश्वम् । अभिऽमातिनम् । अप । वर्त्मानि । एषाम् । अनु । रीयते । घृतम् ॥३॥

(१२६) वि । ये । भ्राजन्ते । सुऽमखासः । ऋष्टिऽभिः ।
प्रऽच्यवयन्तः । अच्युता । चित् । ओजसा ।
मनःऽजुवः । यत् । मरुतः । रथेषु । आ । वृषऽव्रातासः । पृषतीः । अयुग्ध्वम् । ॥४॥

अन्वयः— १२५ शुभ्राः गो-मातरः यत् अञ्जिभिः शुभयन्ते तनूषु वि-रुक्मतः दधिरे, विश्वं अभिमातिनं अप बाधन्ते, एषां वर्त्मानि घृतं अनु रीयते ।

१२६ ये सु-मखासः ऋष्टिभिः वि भ्राजन्ते, (हे) मरुतः ! यत् मनो-जुवः वृष-व्रातासः रथेषु पृषतीः आ अयुग्ध्वं, अ-च्युता चित् ओजसा प्रच्यवयन्तः ।

अर्थ- १२५ (शुभ्राः) तेजस्वी, (गो-मातरः) भूमि को माता समझनेवाले वीर (यत्) जब (अञ्जि-भिः शुभयन्ते) अलंकारों से अपने को सुशोभित करते हैं, अपनी सजावट करते हैं, तब वे (तनूषु) अपने शरीरों पर (वि-रुक्मतः दधिरे) विशेष ढंग से सुहानेवाले आभूषण पहनते हैं, वे (विश्वं अभि-मातिनं) सभी शत्रुओं को (अप बाधन्ते) दूर हटा देते हैं, उनकी राह में रुकावटें खडी कर देते हैं, इसलिए (एषां) इनके (वर्त्मानि) मार्गों पर (घृतं अनु रीयते) घी जैसे पौष्टिक पदार्थ इन्हें पर्याप्त मात्रा में मिल जाते हैं ।

१२६ (ये सु-मखासः) जो तुम अच्छे यज्ञ करनेवाले वीर (ऋष्टिभिः) शस्त्रों के साथ (वि भ्राजन्ते) विशेष रूपसे चमकते हो, तथा हे (मरुतः !) मरुतो ! (यत्) जब (मनो-जुवः) मन की नाईं वेग से जानेवाले और (वृष-व्रातासः) सामर्थ्यशाली संघ बनानेवाले तुम (रथेषु) अपने रथों में (पृषतीः आ अयुग्ध्वं) धब्बेवाली हिरनियाँ जोडते हो, तब (अ-च्युता चित्) न हिलनेवाले सुदृढ शत्रुओं को भी (ओजसा) अपनी शक्ति से (प्रच्यवयन्तः) हिला देते हो ।

भावार्थ- १२५ गौ एवं भूमि को माता माननेवाले वीर आभूषणों तथा हथियारोंसे निजी शरीरों को खूब सजाते हैं और चूँकि वे शत्रुदलों का संहार करते हैं, अतएव उन्हें पौष्टिक अन्न पर्याप्त रूप से मिलता है ।

१२६ श्रेष्ठ यज्ञ करनेवाले, मन के समान वेगवान् तथा बलिष्ठ हो संघमय जीवन बितानेवाले वीर शस्त्रास्त्रों से सुसज्ज बन रथ पर चढ जाते हैं और सुदृढ शत्रुओं को भी जडमूल से उखाड फेंक देते हैं ।

टिप्पणी- [१२५] (१) गो-मातरः = गाय एवं भूमिको मातृवत् समझनेवाले । (२) अञ्जि = आभूषण, शस्त्र, गणवेश (देखो मंत्र ९०) । (३) वि-रुक्मत् = विशेष चमकीले गहने । (४) अभिमातिन् = हत्या करनेवाला शत्रु । [१२६] (१) सु-मखः = अच्छे यज्ञ तथा कर्म करनेवाले । (२) वृष-व्रातः = बलवानों का संघ; अभेद्य संघ बनाकर रहनेवाले । (३) अ-च्युता प्रच्यवयन्तः = स्थिरों तक को हिला देते हैं, चिरकाल से स्थायी बने हुए शत्रुओं को भी अपदस्थ करा के विनष्ट करते हैं (देखिए मंत्र ८६ और ११०) ।

(१२७) प्र । यत् । रथेषु । पृषतीः । अयुग्ध्वम् । वाजे । अद्रिम् । मरुतः । रंहयन्तः ।
उत । अरुषस्य । वि । स्यन्ति । धाराः । चर्मऽइव । उदऽभिः । वि । उन्दन्ति । भूम ॥५॥
(१२८) आ । वः । वहन्तु । सप्तयः । रघुऽस्यदः । रघुऽपत्वानः । प्र । जिगात । बाहुऽभिः ।
सीदत । आ । बर्हिः । उरु । वः । सदः । कृतम् । मादयध्वम् । मरुतः । मध्वः । अन्धसः ॥६॥
(१२९) ते । अवर्धन्त । स्वऽतवसः । महिऽत्वना । आ । नाकम् । तस्थुः । उरु । चक्रिरे । सदः ।
विष्णुः । यत् । ह । आवत् । वृषणम् । मदऽच्युतम् । वयः । न । सीदन् । अधि । बर्हिषि । प्रिये ॥७॥

अन्वयः- १२७ (हे) मरुतः ! वाजे अद्रिं रंहयन्तः यत् रथेषु पृषतीः प्र अयुग्ध्वं उत अ-रुषस्य धाराः वि स्यन्ति उदभिः भूम चर्मइव वि उन्दन्ति । १२८ वः रघु-स्यदः सप्तयः आ वहन्तु, रघु-पत्वानः बाहुभिः प्र जिगात, (हे) मरुतः ! वः उरु सदः कृतं, बर्हिः आ सीदत, मध्वः अन्धसः मादयध्वं । १२९ ते स्व-तवसः अवर्धन्त, महित्वना नाकं आ तस्थुः, उरु सदः चक्रिरे, यत् वृषणं मद-च्युतं विष्णुः आवत् ह प्रिये बर्हिषि अधि, वयः न, सीदन् ।

अर्थ- १२७ हे (मरुतः!) वीर मरुतो! (वाजे) अन्नके लिए (अद्रिं रंहयन्तः) मेघोंको प्रेरणा देते हुए, (यत्) जिस समय (रथेषु पृषतीः प्र अयुग्ध्वं) रथोंमें धब्बेवाली हिरनियाँ जोड देते हो, (उत) उस समय (अ-रुषस्य धाराः) तनिक मटमैले दिखाई देनेवाले मेघकी जलधाराएँ (वि स्यन्ति) वेगपूर्वक नीचे गिरने लगती हैं और उन (उदभिः) जलप्रवाहोंसे (भूम) भूमिको (चर्मइव) चमडी के जैसे (वि उन्दन्ति) भीगी या गीली कर डालते हैं। १२८ (वः) तुम्हें (रघु-स्यदः सप्तयः) वेगसे दौडनेवाले घोडे इधर (आ वहन्तु) ले आयँ, (रघु-पत्वानः) शीघ्र जानेवाले तुम (बाहुभिः) अपनी भुजाओं में विद्यमान शक्ति को पराक्रमद्वारा प्रकट करते हुए इधर (प्र जिगात) आओ । हे (मरुतः !) वीर मरुतो ! (वः) तुम्हारे लिए (उरु सदः) बडा घर, यज्ञस्थान हम (कृतं) तैयार कर चुके हैं, (बर्हिः आ सीदत) यहाँ दर्भमय आसन पर बैठ जाओ और (मध्वः अन्धसः) मिठास भरे अन्नके सेवन से (मादयध्वं) सन्तुष्ट एवं हर्षित बनो।
१२९ (ते) वे वीर (स्व-तवसः) अपने बलसे ही (अवर्धन्त) बढते रहते हैं। वे अपने (महित्वना) बडप्पन के फलस्वरूप (नाकं आ तस्थुः) स्वर्ग में जा उपस्थित हुए । उन्होंने अपने निवास के लिए (उरु सदः चक्रिरे) बडा भारी विस्तृत घर तैयार कर रखा है । (यत् वृषणं) जिस बल देनेवाले तथा (मद-च्युतं) आनन्द बढानेवालेका (विष्णुः आवत् ह) व्यापक परमात्मा स्वयं ही रक्षण करता है, उस (प्रिये बर्हिषि अधि) हमारे प्रिय यज्ञ में (वयः न) पंछियों की नाईं (सीदन्) पधार कर बैठो।

भावार्थ- १२७ मरुत् मेघों को गतिशील बना देते हैं, इसलिए वर्षाका प्रारम्भ हो जलसमूह से समूची पृथ्वी आर्द्र हो उठती है । १२८ फुर्तीले घोडे तुम्हें इधर लायँ। तुम जैसे शीघ्रगामी अपने बाहुबलसे तेजस्वी बनकर इधर आओ। क्योंकि तुम्हारे लिए बडा विस्तृत स्थान यहाँ पर तैयार कर रखा है । इधर पधार कर तथा आसनों पर बैठकर मिठास से पूर्ण अन्न या सोमरसका सेवन कर हर्षित बनो । १२९ वीर अपनी शक्तिसे बडे होते हैं; अपनी कर्तृत्वशक्ति से स्वर्ग तक चढ जाते हैं और अपने बलसे विशाल जगह पर प्रभुत्व प्रस्थापित करते हैं। ऐसे वीर हमारे यज्ञमें शीघ्र ही पधारें।

टिप्पणी- [१२७] (१) अद्रिः = पर्वत या मेघ । (२) अ-रुष = तेजहीन, मलिन, निष्प्रभ (मेघ); रुष् = तेज, प्रकाश । [१२८] (१) रघु-स्यद् = (लघु-स्यद्) चपल, बडे वेग से जानेवाला। (२) रघु-पत्वन् = (लघु-पत्वन्) शीघ्रगति, वेगवान्, तेज उडनेवाला । (३) अन्धस् = अन्न, सोमरस। [१२९] (१) स्व-तवसः अवर्धन्त = सभी वीर अपने निजी बलसे बढते हैं। (२) महित्वना नाकं आ तस्थुः = अपनी महिमा तथा बडप्पन से स्वर्ग परके ऊँचे पद पर जा बैठते हैं। (३) उरु सदः चक्रिरे = अपने प्रयत्नसे अपने लिए विस्तृत स्थानका निर्माण करते हैं। (४) मदच्युतं वृषणं विष्णुः आवत् = आनन्द देनेवाले बलिष्ठ वीर की रक्षा करने का बीडा विष्णु ही उठाता है ।

(१३०) शूरा॑ऽइव । इत् । युयु॑धयः । न । जग्म॑यः । श्र॒व॒स्यवः॑ । न । पृत॑नासु । ये॒ति॒रे॒ ।
भय॑न्ते । विश्वा॑ । भुव॑ना । म॒रुत्ऽभ्यः॑ । राजा॑नःऽइव । त्वे॒षऽसं॑दृशः । नरः॑ ॥ ८ ॥

(१३१) त्वष्टा॑ । यत् । वज्र॑म् । सुऽकृ॑तम् । हि॒र॒ण्यय॑म् । स॒हस्र॑ऽभृष्टिम् । सु॒ऽअपाः॑ । अव॑र्तयत् ।
ध॒त्ते । इन्द्रः॑ । नरि॑ । अपां॑सि । कर्त॑वे ।
अह॑न् । वृ॒त्रम् । निः । अ॒पाम् । औ॒ब्ज॒त् । अ॒र्ण॒वम् ॥ ९ ॥

अन्वयः— १३० शूराःइव इत्, युयुधयः न जग्मयः, श्रवस्यवः न पृतनासु येतिरे, राजानःइव त्वेष-संदृशः नरः मरुद्भ्यः विश्वा भुवना भयन्ते ।

१३१ सु-अपाः त्वष्टा यत् सु-कृतं हिरण्ययं सहस्र-भृष्टिं वज्रं अवर्तयत् इन्द्रः नरि अपांसि कर्तवे धत्ते, अर्णवं वृत्रं अहन्, अपां निः औब्जत् ।

अर्थ- १३० (शूराःइव इत्) वीरों के समान लडने की इच्छा करनेवाले (युयुधयः न जग्मयः) योद्धाओंकी नाईं शत्रु पर जा चढाई करनेवाले तथा (श्रवस्यवः न) यशकी इच्छा करनेवाले वीरोंके जैसे ये वीर (पृतनासु येतिरे) संग्रामों में बडा भारी पुरुषार्थ कर दिखलाते हैं। (राजानःइव) राजाओं के समान (त्वेष-संदृशः) तेजस्वी दिखाई देनेवाले ये (नरः) नेता वीर हैं, इसलिए (मरुद्भ्यः) इन मरुतों से (विश्वा भुवना भयन्ते) सारे लोक भयभीत हो उठते हैं।

१३१ (सु-अपाः) अच्छे कौशल्यपूर्ण कार्य करनेवाले (त्वष्टा) कारीगरने (यत् सु-कृतं) जो अच्छी तरह बनाया हुआ, (हिरण्ययं) सुवर्णमय, (सहस्र-भृष्टिं वज्रं) सहस्र धाराओं से युक्त वज्र इन्द्र को (अवर्तयत्) दे दिया, उस हथियार को (इन्द्रः) इन्द्रने (नरि) मानवों में प्रचलित युद्धों में (अपांसि कर्तवे) वीरतापूर्ण कार्य कर दिखलाने के लिए (धत्ते) धारण किया और (अर्ण-वं वृत्रं अहन्) जल को रोकनेवाले शत्रु को मार डाला तथा (अपां निः औब्जत्) जल को जाने के लिए उन्मुक्त कर दिया।

भावार्थ- १३० ये वीर सच्चे शूरों की भाँति लडते हैं, योद्धाओं के समान शत्रुसेनापर आक्रमण कर बैठते हैं, कीर्ति पाने के लिए लडनेवाले वीर पुरुषों की नाईं ये रणभूमि में भारी पराक्रम करते हैं। जैसे राजालोग तेजस्वी दीख पडते हैं, ठीक वैसे ही ये हैं। इसलिए सभी इनसे अतीव प्रभावित होते हैं।

१३१ अत्यन्त निपुण कारीगरने एक वज्र नामक शस्त्र तैयार कर दिया, जिसकी सहस्र धाराएँ या नोक विद्यमान थे और जिस पर शोभा के लिए सुनहली पच्चीकारी की गयी थी। इन्द्रने उस श्रेष्ठ आयुध को पाकर मानव-जाति में बारंबार होनेवाली लडाइयों में शूरता की अभिव्यंजना करने के लिए उसका प्रयोग किया। जलस्रोत पर प्रभुत्व प्रस्थापित करके ढकनेवाले तथा घेरनेवाले शत्रु का वध करके सब के लिए जल को उन्मुक्त कर रखा।

टिप्पणी- [१३१] (१) स्वपाः = (सु + अपाः) = अच्छे ढंग से पच्चीकारी आदि कार्य करनेवाला चतुर कारीगर। (२) सु-कृतं = सुन्दर बनावट से निर्माण किया हुआ। (३) सहस्र-भृष्टिः = सहस्र नोकों से युक्त। (४) नरि = युद्ध में, मनुष्यों के मध्य होनेवाले संघर्षों में। (५) अपः = कर्म, कृत्य, पराक्रम। (६) अर्ण-व = जल को रोकनेवाला, अपने लिए जल रखनेवाला। (७) वृत्र = आवरण करनेवाला, घेरनेवाला शत्रु, वृत्रासुर, एक राक्षस का नाम।

(१३२) ऊर्ध्वम् । नुनुद्रे । अवतम् । ते । ओजसा । दादृहाणम् । चित् । बिभिदुः । वि । पर्वतम् ।
धमन्तः । वाणम् । मरुतः । सुऽदानवः ।
मदे । सोमस्य । रण्यानि । चक्रिरे ॥ १०॥

(१३३) जिह्मम् । नुनुद्रे । अवतम् । तया । दिशा ।
असिञ्चन् । उत्सम् । गोतमाय । तृष्णऽजे ।
आ । गच्छन्ति । ईम् । अवसा । चित्रऽभानवः ।
कामम् । विप्रस्य । तर्पयन्त । धामऽभिः ॥ ११ ॥

अन्वयः— १३२ ते ओजसा ऊर्ध्वं अवतं नुनुद्रे, दादृहाणं पर्वतं चित् वि बिभिदुः, सु-दानवः मरुतः सोमस्य मदे वाणं धमन्तः रण्यानि चक्रिरे ।

१३३ अवतं तया दिशा जिह्मं नुनुद्रे, तृष्णजे गोतमाय उत्सं असिञ्चन्, चित्र-भानवः अवसा ईं आ गच्छन्ति, धामभिः विप्रस्य कामं तर्पयन्त ।

अर्थ– १३२ (ते) वे वीर (ओजसा) अपनी शक्ति से (ऊर्ध्वं अवतं) ऊँची जगह विद्यमान तालाव या झील के पानी को (नुनुद्रे) प्रेरित कर चुके और इस कार्य के लिए (दादृहाणं पर्वतं चित्) राह में रोडे अटकानेवाले पर्वत को भी (वि बिभिदुः) छिन्नविच्छिन्न कर चुके । पश्चात् उन (सु-दानवः मरुतः) अच्छे दानी मरुतोंने (सोमस्य मदे) सोमपान से उद्भूत आनन्द से (वाणं धमन्तः) वाण वाजा बजा कर (रण्यानि चक्रिरे) रमणीय गानों का सृजन किया ।

१३३ वे वीर (अवतं) झील का पानी (तया दिशा) उस दिशा में (जिह्मं) तेढी राह से (नुनुद्रे) ले गये और (तृष्णजे गोतमाय) प्यास के मारे अकुलाते हुए गोतम के लिए (उत्सं असिञ्चन्) जलकुंड में उस जल का झरना बढने दिया । इस भाँति वे (चित्र-भानवः) अति तेजस्वी वीर (अवसा ईं) संरक्षक शक्तियों के साथ (आ गच्छन्ति) आ गये और (धामभिः) अपनी शक्तियों से (विप्रस्य कामं) उस ज्ञानी की लालसा को (तर्पयन्त) तृप्त किया ।

भावार्थ– १३२ ऊँचे स्थान पर पाये जानेवाले तालाव का पानी मरुतों ने नहर बनाकर दूसरी ओर पहुँचा दिया और ऐसा नहर खुदाई का कार्य करते समय राह में जो पहाड रुकावट के रूप में पाये गये थे, उन्हें काटकर पानी के वहावके लिए मार्ग बना दिया । इतना कार्य कर चुकने पर सोमरसको पीकर बडे आनन्दसे उन्होंने सामगायन किया ।

१३३ इन वीरों ने टेढीमेढी राह से नहर खुदवाकर झील का पानी अन्य जगह पहुँचा दिया और ऋषिके आश्रम में पीने के जल का विपुल संचय कर रखा, जिसके फलस्वरूप गोतमजी की पानी की आवश्यकता पूर्ण हुई । इस भाँति ये तेजःपुञ्ज वीर दलबलसमेत तथा शक्तिसामर्थ्य से परिपूर्ण हो इधर पधारते हैं और अपने भक्तों तथा अनुयायियों की लालसाओं को तृप्त करते हैं । [देखिए मंत्र १३२, १५४]

टिप्पणी– १३२ (१) अवतं = कूआँ, कुंड, हौज, जल का संचय, तालाब, रक्षण करनेवाला । मंत्र १३३ तथा १५४ देखिए । (२) नुद् = प्रेरित करना । (३) दादृहाणं = बढा हुआ, मार्ग में बढकर खडा हुआ । (४) वाणं = मंत्र ८९ देखिए (' शतसंख्याभिः तंत्रीभिर्युक्तः वीणाविशेषः ' सायणभाष्य) सौ तारों का बनाया हुआ एक तंतुवाद्य । [१३३] (१) जिह्म = कुटिल, टेढा, वक्र; । (२) धामन् = तेज, शक्ति, स्थान । (३) अवतः (अवटः) = गहरा स्थान, खाई; १३२ वाँ मंत्र देखिए । (४) गोतम = बहुतसी गौएँ साथ रखनेवाला ऋषि, जिसके आश्रम में अनगिनती गौओं का झुंड दिखाई पडता हो ।

(१३४) या । वः । शर्म । शशमानाय । सन्ति ।
त्रिऽधातूनि । दाशुषे । यच्छत । अधि ।
अस्मभ्यम् । तानि । मरुतः । वि । यन्त ।
रयिम् । नः । धत्त । वृषणः । सुऽवीरम् ॥ १२ ॥

[ऋ० १।८६।१-१०]

(१३५) मरुतः । यस्य । हि । क्षये । पाथ । दिवः । विऽमहसः ।
सः । सुऽगोपातमः । जनः ॥ १ ॥

अन्वयः- १३४ (हे) मरुतः ! शशमानाय त्रि-धातूनि वः या शर्म सन्ति, दाशुषे अधि यच्छत, तानि अस्मभ्यं वि यन्त, (हे) वृषणः ! नः सु-वीरं रयिं धत्त ।
१३५ (हे) वि-महसः मरुतः ! दिवः यस्य हि क्षये पाथ, सः सु-गो-पा-तमः जनः ।

अर्थ- १३४ हे (मरुतः !) वीर मरुतो ! (शशमानाय) शीघ्र गति से जानेवालों को देने के लिए (त्रि-धातूनि) तीन प्रकार की धारक शक्तियों से मिलनेवाले (वः या शर्म) तुम्हारे जो सुख (सन्ति) विद्यमान हैं और जिन्हें तुम (दाशुषे अधि यच्छत) दानी को दिया करते हो, (तानि) उन्हें (अस्मभ्यं वि यन्त) हमें दो । हे (वृषणः !) बलवान् वीरो ! (नः) हमें (सु-वीरं) अच्छे वीरों से युक्त (रयिं) धन (धत्त) दे दो ।

१३५ हे (वि- महसः मरुतः !) विलक्षण ढंग से तेजस्वी वीर मरुतो ! (दिवः) अन्तरिक्ष में से पधारकर (यस्य हि क्षये) जिस के घर में तुम (पाथ) सोमरस पीते हो, (सः) वह (सु-गो-पा-तमः जनः) अत्यन्त ही सुरक्षित मानव है ।

भावार्थ- १३४ त्रिविध धारक शक्तियों से जो कुछ भी सुख पाये जा सकते हैं, उन्हें वे वीर श्रेष्ठ कार्यों को शीघ्रता से निभानेवालों के लिए उपभोगार्थ देते हैं । हमारी लालसा है कि, हमें भी वे सुख मिल जायँ तथा उच्च कोटि के वीरों से रक्षित धन हमें प्राप्त हो । (अभिप्राय इतना ही है कि, धन तो अवश्यमेव कमाना चाहिए और उस की समुचित रक्षा के लिए आवश्यक वीरता पाने के लिए भी प्रयत्नशील रहना चाहिए ।)

१३५ तेजस्वी वीर लोग जिस मानव के घर में सोम का ग्रहण करते हैं, वह अवश्यमेव सुरक्षित रहेगा, ऐसा माननेमें कोई आपत्ति नहीं ।

टिप्पणी- [१३४] (१) शशमानः= (शश्= प्लुतगतौ)= शीघ्र गतिसे जानेवाले, जल्द कार्य पुरा करनेवाले (देखो मंत्र १४२) । (२) त्रिधातु = तीन धातुओं का उपयोग जिस में हुआ हो; तीन स्थानों में जो हैं; तीन धारक शक्तियों से युक्त । (३) शर्म = सुख, घर, आश्रयस्थान । [१३५] (१) वि-महस् = विशेष महत्त्व, बडा तेज । (२) क्षयः = (क्षि निवासे)= घर, स्थान । (३) सु-गो-पा-तमः = उच्च कोटिकी गौओंकी भली भाँति रक्षा करनेवाला, रक्षक वीरों से युक्त । इस पद से हमें यह सूचना मिलती है कि, गाय की यथावत् रक्षा करना मानों सर्वस्व का संरक्षण करना ही है ।

(१३६) यज्ञैः । वा । यज्ञऽवाहसः । विप्रस्य । वा । मतीनाम् । मरुतः । शृणुत । हवम् ॥२॥

(१३७) उत । वा । यस्य । वाजिनः । अनु । विप्रम् । अतक्षत ।
सः । गन्ता । गोऽमति । व्रजे ॥ ३ ॥

(१३८) अस्य । वीरस्य । बर्हिषि । सुतः । सोमः । दिविष्टिषु ।
उक्थम् । मदः । च । शस्यते ॥ ४ ॥

अन्वयः— १३६ (हे) यज्ञ-वाहसः मरुतः ! यज्ञैः वा विप्रस्य मतीनां वा, हवं शृणुत ।
१३७ उत वा यस्य वाजिनः विप्रं अनु अतक्षत, सः गो-मति व्रजे गन्ता ।
१३८ दिविष्टिषु बर्हिषि अस्य वीरस्य सोमः सुतः, उक्थं मदः च शस्यते ।

अर्थ- १३६ हे (यज्ञ- वाहसः मरुतः !) यज्ञ का गुरुतर भार उठानेवाले मरुतो ! (यज्ञैः वा) यज्ञों के द्वारा या (विप्रस्य मतीनां वा) विद्वान् की बुद्धि की सहायता से तुम हमारी (हवं शृणुत) प्रार्थना सुनो ।

१३७ (उत वा) अथवा (यस्य वाजिनः) जिस के बलवान् वीर (विप्रं अनु अतक्षत) ज्ञानी के अनुकूल हो, उसे श्रेष्ठ बना देते हैं, (सः) वह (गो-मति व्रजे) अनेक गौओं से भरे प्रदेश में (गन्ता) चला जाता है, अर्थात् वह अनगिनती गौएँ पाता है ।

१३८ (दिविष्टिषु = दिव्-इष्टिषु) इष्टिके दिनमें होनेवाले (बर्हिषि) यज्ञमें, (अस्य वीरस्य) इस वीर के लिए, (सोमः सुतः) सोम का रस निचोडा जा चुका है । (उक्थं) अब स्तोत्र का गान होता है और सोमरस से उद्भूत (मदः च शस्यते) आनन्द की प्रशंसा की जाती है ।

भावार्थ- १३६ यज्ञों के अर्थात् कर्मों के द्वारा तथा ज्ञानी लोगों की सुमतियों याने अच्छे संकल्पों के द्वारा जो प्रार्थना होती है, सो तुम सुनो ।

१३७ यदि वीर ज्ञानी के अनुकूल बनें, तो उस ज्ञानी पुरुष को बहुतसी गौएँ पाने में कोई कठिनाई नहीं होती है ।

१३८ जिन दिनों में यज्ञ प्रचलित रखे जाते हैं, तब सोमरस का सेवन तथा सामगान का श्रवण जारी रहता है ।

टिप्पणी- [१३६] किसी न किसी आदर्श या ध्येय को सामने रखकर ही मानव कर्म में प्रवृत्त होता है और उस कर्म से ध्येय का प्रकटीकरण होता है । उसी प्रकार ज्ञानसम्पन्न विद्वान् लोग मनन के उपरान्त जो संकल्प ठान लेते हैं, वह भी उनके आदर्श को ही दर्शाता है । अतः ऐसा कह सकते हैं कि, मानव के कर्म तथा संकल्प के साथ ही साथ जो प्रार्थनाएँ हुआ करती हैं, जिन आकांक्षाओं तथा ध्येयों की अभिव्यञ्जना होती है, उन्हें देवता सुन लें । संकल्प तथा कर्म के द्वारा जो ध्येय आविर्भूत होता है, वही मानव का उच्च कोटि का ध्येय है, ऐसा समझना ठीक है और देवता का ध्यान उधर आकर्षित होता ही है । [१३७] (१) वाजिन् = घोडा, घुडसवार, बलिष्ठ, धान्य रखनेवाला । (२) अनु + तक्ष् = बना देना, निर्माण करना, संस्कार करके तैयार कर देना । (३) गो-मति व्रजे = अनेक गौओं से युक्त ग्वालोंके बाडे में । (४) व्रजः = ग्वालोंका बाडा । वीरोंकी अनुकूलता होने पर यथेष्ट गौएँ पाना कोई कठिन बात नहीं है । क्योंकि गौएं साथ रखनाही प्रचुर संपत्ति या वैभव का चिह्न है । [१३८] दिविष्टि = (दिव् + इष्टि) = दिन में की जानेवाली इष्टि । (२) बर्हिस् = दर्भ, आसन, यज्ञ । मंत्र १०६ देखिए ।

(१३९) अस्य । श्रोपन्तु । आ । भुवः । विश्वाः । यः । चर्षणीः । अभि । सूरम् । चित् । ससुषीः । इषः ॥ ५ ॥

(१४०) पूर्वीभिः । हि । ददाशिम । शरत्ऽभिः । मरुतः । वयम् । अवःऽभिः । चर्षणीनाम् ॥ ६ ॥

(१४१) सुऽभगः । सः । प्रऽयज्यवः । मरुतः । अस्तु । मर्त्यः । यस्य । प्रयांसि । पर्षथ ॥ ७ ॥

अन्वयः- १३९ विश्वाः चर्षणीः, सूरं चित्, इषः ससुषीः, यः अभि-भुवः अस्य (मरुतः) आ श्रोपन्तु।

१४० (हे) मरुतः ! चर्षणीनां अवोभिः वयं पूर्वीभिः शरद्भिः हि ददाशिम ।

१४१ (हे) प्र-यज्यवः मरुतः ! सः मर्त्यः सु-भगः अस्तु, यस्य प्रयांसि पर्षथ ।

अर्थ- १३९ (विश्वाः चर्षणीः) सभी मानवों को तथा (सूरं चित्) विद्वान् को भी (इषः ससुषीः) अन्न मिल जाय. इसलिए (यः अभि-भुवः) जो शत्रु का पराभव करता है, (अस्य) उस का काव्य-गायन सभी वीर (आ श्रोपन्तु) सुन लें।

१४० हे (मरुतः !) वीर मरुतो ! (चर्षणीनां अवोभिः) कृषकों की तथा मानवों की समुचित रक्षा करने की शक्तियों से युक्त (वयं) हम लोक (पूर्वीभिः शरद्भिः) अनेक वर्षों से (हि) सचमुच (ददाशिम) दान देते आ रहे हैं।

१४१ हे (प्र-यज्यवः मरुतः !) पूज्य मरुतो ! (सः मर्त्यः) वह मनुष्य (सु-भगः अस्तु) अच्छे भाग्यवाला रहता है कि, (यस्य प्रयांसि) जिस के अन्न का (पर्षथ) सेवन तुम करते हो।

भावार्थ- १३९ जो वीर पुरुष समूची मानवजाति को तथा विद्वन्मंडली को अन्न की प्राप्ति हो, इस हेतु शत्रुदल का पराभव करनेकी चेष्टा करके सफलता पाता है, उसी वीरके यशका गान लोग करते हैं और उस गुण-गरिमा-गान को सुनकर श्रोताओं में स्फूर्ति का संचार हो जाता है।

१४० कृषकों तथा सभी मानवजाति की रक्षा करने के लिए जो आवश्यक गुण या शक्तियाँ हैं, उनसे युक्त बनकर हम पहले से ही दान देते आये हैं। (या किसानों तथा अन्य लोगों की संरक्षणक्षम शक्तियों के द्वारा सुरक्षित बन हम प्रथमतः दानी बन चुके हैं।)

१४१ वीर पुरुष जिसके अन्न का सेवन करते हैं, वह मनुष्य सचमुच भाग्यशाली बनता है।

टिप्पणी- [१३९] (१) सूरः = विद्वान्, बडा समालोचक। (२) ससुषीः = (सु गतौ) चला जाय, पहुँचे, प्राप्त हों। (३) अभि-भुवः = शत्रुदल का पराभव करनेवाला। (४) विश्वाः चर्षणीः = जनता, समूचा मानवी समाज। (चर्षणिः = [कृष्] कृषक, काश्तकार, कृषिकर्म करनेवाला. कर्ममें निरत।) [१४०] (१) चर्षणिः- (कृष्) = कृषक, हलसे भूमि जोतनेवाला। (२) अवस्=संरक्षण। [१४१] (१) प्र-यज्युः = यज्ञिय, पूज्य। (२) सु-भगः = भाग्यवान्। (३) प्रयस् = अन्न, प्रयत्नों के उपरांत प्राप्त किया हुआ भोग।

*

(१४२) शशमानस्य । वा । नरः ! स्वेदस्य । सत्यऽशवसः । विद । कामस्य । वेनतः ॥८॥

(१४३) यूयम् । तत् । सत्यऽशवसः । आविः । कर्त । महिऽत्वना ।
विध्यत । विऽद्युता । रक्षः ॥ ९ ॥

(१४४) गूहत । गुह्यम् । तमः । वि । यात । विश्वम् । अत्रिणम् ।
ज्योतिः । कर्त । यत् । उश्मसि ॥ १० ॥

अन्वयः— १४२ (हे) सत्य-शवसः मरुतः ! शशमानस्य स्वेदस्य वेनतः वा कामस्य विद ।

१४३ (हे) सत्य-शवसः ! यूयं तत् आविः कर्त, विद्युता महित्वना रक्षः विध्यत ।

१४४ गुह्यं तमः गूहत, विश्वं अत्रिणं वि यात, यत् ज्योतिः उश्मसि कर्त ।

अर्थ- १४२ हे (सत्य-शवसः मरुतः !) सत्यसे उद्भूत बल से युक्त मरुतो ! (शशमानस्य) शीघ्र गति के कारण (स्वेदस्य) पसीने से भींगे हुए, तथा (वेनतः वा) तुम्हारी सेवा करनेवाले की (कामस्य विद) अभिलाषा पूर्ण करो ।

१४३ हे (सत्य-शवसः !) सत्य के बल से युक्त वीरो ! (यूयं) तुम (तत्) वह अपना बल (आविः कर्त) प्रकट करो । उस अपने (विद्युता महित्वना) तेजस्वी बल से (रक्षः विध्यत) राक्षसोंको मार डालो ।

१४४ (गुह्यं) गुफामें विद्यमान (तमः) अँधेरा (गूहत) ढक दो, विनष्ट करो। (विश्वं अत्रिणं) सभी पेटू दुरात्माओं को (वि यात) दूर कर दो। (यत् ज्योतिः) जिस तेजको हम (उश्मसि) पाने के लिए लालायित हैं, वह हमें (कर्त) दिला दो ।

भावार्थ- १४२ ये वीर सचाई के भक्त हैं, अतः बलवान् हैं । जो जल्द चले जाने के कारण पसीने से तर होते हैं या लगातार काम करने से थकेमाँदे होते हैं, उनकी सेवा करनेवालों की इच्छाएँ ये वीर पूर्ण कर देते हैं ।

१४३ ये वीर सच्चे बलवान् हैं । इनका वह बल प्रकट हो जाय और उसके फलस्वरूप सदैव कष्ट पहुँचानेवाले दुष्टों का नाश हो जाय ।

१४४ अँधियारी विनष्ट करके तथा कभी तृप्त न होनेवाले स्वार्थी शत्रुओं को हटाकर सभी जगह प्रकाश का विस्तार करना चाहिए ।

टिप्पणी- [१४२] (१) सत्य-शवस = सत्य का बल, जो सच्चे बल से युक्त होते हैं । (२) शशमानः = (शश्-प्लुतगतौ) = शीघ्र गतिसे जानेवाला, बहुत काम करनेवाला (मंत्र १३४ देखो) । [१४४] (१) गुह्यं तमः = गुहा में रहनेवाला अँधेरा, अन्तस्तलका अज्ञानरूपी तमःपटल, घरमें विद्यमान अंधकार । (२) अत्रिन् = खानेवाले, पेटू दूसरोंका भाग स्वयं ही उठाकर उपभोग लेनेवाले स्वार्थी । [इस मंत्रके साथ 'तमसो मा ज्योतिर्गमय । मृत्योर्माऽमृतं गमय ॥ ' (बृहदा० १।३।२८) इसकी तुलना कीजिए ।]

(ऋ० १।८७।१—६)

(१४५) प्रऽत्वक्षसः। प्रऽतवसः। विऽरप्शिनः। अनानताः। अविथुराः। ऋजीषिणः।
जुष्टऽतमासः। नृऽतमासः। अञ्जिऽभिः।
वि। आनज्रे। के। चित्। उस्राःऽइव। स्तृऽभिः॥ १॥

(१४६) उपऽह्वरेषु। यत्। अचिध्वम्। ययिम्। वयःऽइव। मरुतः। केन। चित्। पथा।
श्चोतन्ति। कोशाः। उप। वः। रथेषु। आ। घृतम्। उक्षत। मधुऽवर्णम्। अर्चते॥२॥

अन्वयः- १४५ प्र-त्वक्षसः प्र-तवसः वि-रप्शिनः अन्-आनताः अ-विथुराः ऋजीषिणः जुष्ट-तमासः नृ-तमासः के चित् उस्राःइव स्तृभिः वि आनज्रे।

१४६ (हे) मरुतः! वयःइव केन चित् पथा यत् उपह्वरेषु ययिं अचिध्वं, वः रथेषु कोशाः उप श्चोतन्ति, अर्चते मधु-वर्णं घृतं आ उक्षत।

अर्थ- १४५ (प्र-त्वक्षसः) शत्रुदल को क्षीण करनेवाले, (प्र-तवसः) अच्छे बलशाली, (वि-रप्शिनः) बडे भारी वक्ता, (अन्-आनताः) किसीके सम्मुख शीश न झुकानेहारे, (अ-विथुराः) न बिछुडनेवाले अर्थात् एकतापूर्वक जीवनयात्रा बितानेवाले (ऋजीषिणः) सोमरस पीनेवाले या सीदा-सादा तथा सरल बर्ताव रखनेवाले, (जुष्ट-तमासः) जनता को अतीव सेव्य प्रतीत होनेवाले तथा (नृ-तमासः) नेताओं में प्रमुख ये वीर (केचित् उस्राःइव) सूर्यकिरणों के समान (स्तृभिः) वस्त्र तथा अलंकारों से युक्त होकर (वि आनज्रे) प्रकाशमान होते हैं।

१४६ हे (मरुतः!) वीर मरुतो! (वयःइव) पंछी की नाईं (केन चित् पथा) किसी भी मार्ग से आकर (यत्) जब (उपह्वरेषु) हमारे समीप (ययिं) आनेवालों को तुम (अचिध्वं) इकट्ठे करते हो, तब (वः रथेषु) तुम्हारे रथों में विद्यमान (कोशाः) भांडार हम पर (उप श्चोतन्ति) धन की वर्षा करने लगते हैं और (अर्चते) पूजा करनेवाले उपासक के लिए (मधु-वर्णं) मधु की नाईं स्वच्छ वर्णवाले (घृतं) घी या जल की तुम (आ उक्षत) वर्षा करते हो।

भावार्थ- १४५ शत्रुओं को हतबल करनेवाले, बलसे पूर्ण, अच्छे वक्ता, सदैव अपना मस्तक ऊँचा करके चलनेहारे, एक ही विचार से आचरण करनेवाले, सोम का सेवन करनेवाले, सेवनीय और प्रमुख नेता बन जाने की क्षमता रखनेवाले वीर वस्त्रालंकारों से सजाये जाने पर सूर्यकिरणवत् सुहाते हैं।

१४६ जिस वक्त तुम किसी भी राह से आकर हमारे निकट आनेवाले लोगों में एकता प्रस्थापित करते हो, संगठन करते हो, तब तुम्हारे रथों में रखे हुए धनभांडार हमें संपत्ति से निहाल कर देते हैं, हम पर मानों धन की संतत वृष्टिसी रखते हैं। तुम लोग भी भक्त एवं उपासक को स्वच्छ जल एवं निर्दोष अन्न पर्याप्त मात्रा में देते हो।

टिप्पणी [१४५] (१) प्र-त्वक्षस् = बडे सामर्थ्यसे युक्त, शत्रुओंको दुर्बल कर देनेवाले। (२) प्र-तवस् = जिसके विक्रम की थाह न मिलती हो, बलिष्ठ। (३) वि-रप्शिन् = (रप्-व्यक्तायां वाचि) गंभीर आवाज से बोलनेवाले, भारी वक्ता, धुवाँधार वक्तृता की झडी लगानेवाले। (४) अन्-आनताः = किसी के सामने न नमनेवाले याने आत्मसंमान को अक्षुण्ण तथा अडिग रखनेवाले। (५) अ-विथुरः = (व्यथ्- भयसंचलनयोः) न डरनेवाले, न बिछुडनेवाले। मंत्र १४७ देखिये। (६) जुष्ट-तमाः= सेवा करने के लिए योग्य, समीप रखने के लिए उचित। [१४६] (१) उपह्वर = एकान्त, समीप, टेढापन, रथ। (२) ययि = आनेवाला। (३) कोशः = खजाना। (४) घृतं = घी, जल।

(१४७) प्र । एषाम् । अज्मेषु । विथुराऽइव । रेजते । भूमिः । यामेषु । यत् । ह । युञ्जते । शुभे । ते । क्रीळयः । धुनयः । भ्राजत्ऽऋष्टयः । स्वयम् । महिऽत्वम् । पनयन्त । धूतयः ॥३॥

(१४८) सः । हि । स्वऽसृत् । पृषत्ऽअश्वः । युवा । गणः । अया । ईशानः । तविषीभिः । आऽवृतः । असि । सत्यः । ऋणऽयावा । अनेद्यः । अस्याः । धियः । प्रऽअविता । अथ । वृषा । गणः ॥४॥

अन्वयः— १४७ यत् ह शुभे युञ्जते, एषां अज्मेषु यामेषु भूमिः विथुराइव प्र रेजते, ते क्रीळयः धुनयः भ्राजत्-ऋष्टयः धूतयः स्वयं महित्वं पनयन्त ।

१४८ सः हि गणः युवा स्व-सृत् पृषत्-अश्वः तविषीभिः आवृतः अया ईशानः अथ सत्यः ऋण-यावा अ-नेद्यः वृषा गणः अस्याः धियः प्र अविता असि ।

अर्थ- १४७ (यत् ह) जब सचमुच ये वीर (शुभे) अच्छे कर्म करने के लिए (युञ्जते) कटिबद्ध हो उठते हैं, तब (एषां अज्मेषु यामेषु) इनके वेगवान् हमलों में (भूमिः) पृथ्वी तक (विथुराइव) अनाथ नारी के समान (प्र रेजते) बहुतही काँपने लगती है। (ते क्रीळयः) वे खिलाडीपन के भाव से प्रेरित, (धुनयः) गतिशील, चपल (भ्राजत्-ऋष्टयः) चमकीले हथियारों से युक्त, (धूतयः) शत्रुको विच-लित कर देनेवाले वीर (स्वयं) अपना (महित्वं) महत्त्व या बडप्पन (पनयन्त) विख्यात कर डालते हैं ।

१४८ (सः हि गणः) वह वीरों का संघ सचमुचही (युवा) यौवनपूर्ण, (स्व-सृत्) स्वयंप्रेरक, (पृषत्-अश्वः) रथ में धब्बेवाले घोडे जोडनेवाला (तविषीभिः आवृतः) और भाँतिभाँति के बलों से युक्त रहने के कारण (अया ईशानः) इस संसार का प्रभु एवं स्वामी बनने के लिए उचित एवं सुयोग्य है। (अथ) और वह (सत्यः ऋण यावा) सचाई से बर्ताव करनेवाला तथा ऋण दूर करनेवाला, (अ-नेद्यः) अनिंदनीय और (वृषा) बलवान् दीख पडनेवाला (गणः) यह संघ (अस्याः धियः) इस हमारे कर्म तथा ज्ञान की (प्र अविता असि) रक्षा करनेवाला है।

भावार्थ- १४७ जिस समय ये वीर जनता का कल्याण करने के लिए सुसज्ज हो जाते हैं, उस समय इनके शत्रुओं पर टूट पडने से मारे डरके समूची पृथ्वी थर थर काँप उठती है । ऐसे अवसर पर खिलाडी, चपल, तेजस्वी शस्त्रास्त्र धारण करनेवाले तथा शत्रु को विकंपित करनेवाले वीरों की महनीयता प्रकट हो जाती है ।

१४८ यह वीरों का संघ युवा, स्वयंप्रेरक, बलिष्ठ, सत्यनिष्ठ, उऋण होने की चेष्टा करनेवाला, प्रशंसनीय तथा सामर्थ्यवान् है, इस कारण से इस संसार पर प्रभुत्व प्रस्थापित करने की क्षमता पूर्ण रूपेण रखता है । हमारी इच्छा है कि, इस भाँति का यह समुदाय हमारे कर्मों तथा संकल्पों में हमारी रक्षा करनेवाला बने । (अगर विश्व में विजयी बनने की एवं जगत् पर स्वामित्व प्रस्थापित करने की लालसा हो, तो उपर्युक्त गुणों की ओर ध्यान देना अतीव आवश्यक है ।)

टिप्पणी [१४७] (१) युञ्जते = युक्त हो जाते हैं, सज्ज बनते हैं, रथ जोडकर तैयार होते हैं। (२) वि-थुरा = (वि-थुरा) विधुर नारीः अनाथ, असहाय महिला । मंत्र १२५ वाँ देखिए ।

(१४९) पितुः। प्रत्नस्य। जन्मना। वदामसि। सोमस्य। जिह्वा। प्र। जिगाति। चक्षसा।
यत्। ईम्। इन्द्रम्। शमि। ऋक्वाणः। आशत। आत्। इत्। नामानि। यज्ञियानि। दधिरे॥५॥
(१५०) श्रियसे। कम्। भानुऽभिः। सम्। मिमिक्षिरे। ते। रश्मिऽभिः। ते। ऋक्वऽभिः। सुऽखादयः।
ते। वाशीऽमन्तः। इष्मिणः। अभीरवः। विद्रे। प्रियस्य। मारुतस्य। धाम्नः॥ ६॥

अन्वयः- १४९ प्रत्नस्य पितुः जन्मना वदामसि, सोमस्य चक्षसा जिह्वा प्र जिगाति, यत् शमि ईं इन्द्रं ऋक्वाणः आशत, आत् इत् यज्ञियानि नामानि दधिरे।

१५० ते कं श्रियसे भानुभिः रश्मिभिः सं मिमिक्षिरे, ते ऋक्वभिः सु-खादयः वाशी-मन्तः इष्मिणः अ-भीरवः ते प्रियस्य मारुतस्य धाम्नः विद्रे।

अर्थ- १४९ (प्रत्नस्य पितुः जन्मना) पुरातन पिता से जन्म पाये हुए हम (वदामसि) कहते हैं कि, (सोमस्य चक्षसा) सोम के दर्शन से (जिह्वा प्र जिगाति) जीभ- वाणी प्रगति करती है, अर्थात् वीरों के काव्य का गायन करती है। (यत्) जब ये वीर (शमि) शत्रु को शान्त करनेवाले युद्ध में (ईं इन्द्रं) उस इन्द्र को (ऋक्वाणः) स्फूर्ति देकर (आशत) सहायता करते हैं, (आत् इत्) तभी वे (यज्ञियानि नामानि) प्रशंसनीय नाम- यश (दधिरे) धारण करते हैं।

१५० (ते) वे वीर मरुत् (कं श्रियसे) सब को सुख मिले इसलिए (भानुभिः रश्मिभिः) तेजस्वी किरणों से (सं मिमिक्षिरे) सब मिलकर वर्षा करना चाहते हैं। (ते) वे (ऋक्वभिः) कवियों के साथ (सु-खादयः) उत्तम अन्न का सेवन करनेहारे या अच्छे आभूषण धारण करनेवाले, (वाशी-मन्तः) कुल्हाडी धारण करनेवाले (इष्मिणः) वेग से जानेवाले तथा (अ-भीरवः) न डरनेवाले (ते) वे वीर (प्रियस्य मारुतस्य धाम्नः) प्रिय मरुतों के स्थान को (विद्रे) पाते हैं।

भावार्थ- १४९ श्रेष्ठ परिवार में उत्पन्न हुए हम इस बात की घोषणा करना चाहते हैं कि, सोम की आहुति देते समय मुँह से अर्थात् जिह्वा से भी देवताओं की सराहना करनी चाहिए। शत्रुदल को विनष्ट करने के लिए जो युद्ध छेडने पडते हैं, उनमें इन्द्र को स्फूर्ति प्रदान करते हुए ये वीर सराहनीय कीर्ति पाते हैं। इन नामों से उनकी कर्तृत्व-शक्ति प्रकट हुआ करती है।

१५० ये वीर जनता सुखी बने इस लिए भूमि में, पृथ्वी-मंडल पर बडा भारी यत्न करते हैं और यज्ञ में हविष्यान्न का भोजन करनेवाले, सुन्दर वीरोचित आभूषण पहननेवाले, कुठार हाथ में उठाकर शत्रुदल पर टूट पडनेवाले, निर्भयता से पूर्ण वीर अपने प्रिय देश को पाकर उस की सेवा में लगे रहते हैं।

टिप्पणी [१४९] (१) शम् = शांत करना, शत्रु का वध करना। (२) ऋक्वाणः = (ऋच्-स्तुतौ) = प्रशंसा करके प्रेरणा करनेवाले। प्रहर भगवः, जहि, वीरयस्व ' ऐसे मंत्रों से या ' शूर, वीर ' आदि नाम पुकार कर उत्साह बढाया जाता है। वीरों की उमंग कैसी बढानी चाहिए, सो यहाँ पर विदित होगा। प्रशंसा करनेयोग्य नाम ही (यज्ञियानि नामानि) धारण करने चाहिए। ' विक्रमसिंह, प्रताप, राजपूत ' वगैरह नाम वीरों को देने चाहिये। वेद में ' वृत्रहा, शत्रुहा ' जैसे नाम हैं, जो कि उत्साहवर्धक हैं। सैनिकों को प्रोत्साहित करने की सूचना यहाँ पर मिलती है। [१५०] (१) सु-खादिः = अच्छा अन्न खानेवाले, सुन्दर वरदी या गणवेश पहननेवाले, या वीरों के गहने धारण करनेवाले। (२) वाशी-मान् = कुठार, भाले, तलवार, परशु लेकर आक्रमण करनेवाला वीर। मंत्र ७७ देखो। (३) इष्मिन् = गतिमान्, आक्रमणशील। (४) अ-भीरुः = निडर। (५) प्रियस्य धाम्नः विद्रे = प्यारे देश को पहुँच जाते हैं, या प्राप्त हो जाते हैं।

(ऋ० १।८८।१-६)

(१५१) आ । विद्युन्मत्ऽभिः । मरुतः । सुऽअर्कैः । रथेभिः । यात । ऋष्टिमत्ऽभिः । अश्वऽपर्णैः ।
आ । वर्षिष्ठया । नः । इषा । वयः । न । पप्तत । सुऽमायाः ॥ १ ॥

(१५२) ते । अरुणेभिः । वरम् । आ । पिशङ्गैः । शुभे । कम् । यान्ति । रथतूःऽभिः । अश्वैः ।
रुक्मः । न । चित्रः । स्वधितिऽवान् । पव्या । रथस्य । जङ्घनन्त । भूम ॥ २ ॥

अन्वयः-१५१ (हे) मरुतः! विद्युन्मद्भिः सु-अर्कैः ऋष्टि-मद्भिः अश्व-पर्णैः रथेभिः आ यात, (हे) सु-मायाः! वर्षिष्ठया इषा, वयः न, नः आ पप्तत।

१५२ ते अरुणेभिः पिशङ्गैः रथ-तूर्भिः अश्वैः शुभे वरं कं आ यान्ति, रुक्मः न चित्रः, स्वधिति-वान्, रथस्य पव्या भूम जंघनन्त।

अर्थ- १५१ हे (मरुतः !) वीर मरुतो ! (विद्युन्मद्भिः) विजली से युक्त या विजली की नाईं अति-तेजस्वी, (सु-अर्कैः) अतिशय पूज्य, (ऋष्टि-मद्भिः) हथियारों से सजे हुए तथा (अश्व-पर्णैः) घोडों से युक्त होने के कारण वेग से जानेवाले (रथेभिः) रथों से (आ यात) इधर आओ। हे (सु-मायाः !) अच्छे कुशल वीरो ! तुम (वर्षिष्ठया इषा) श्रेष्ठ अन्न के साथ (वयः न) पंछियों के समान वेगपूर्वक (नः आ पप्तत) हमारे निकट चले आओ।

१५२ (ते) वे वीर (अरुणेभिः) रक्तिम दीख पडनेवाले तथा (पिशङ्गैः) भूरे वदामी वर्ण-वाले और (रथ-तूर्भिः) त्वरापूर्वक रथ खींचनेवाले (अश्वैः) घोडों के साथ (शुभे) शुभकार्य करने के लिए और (वरं कं) उच्च कोटिका कल्याण संपादन करने के लिए, सुख देनेके लिए (आ यान्ति) आते हैं। वह वीरों का संघ (रुक्मः न) सुवर्णकी भाँति (चित्रः) प्रेक्षणीय तथा (स्वधिति-वान्) शस्त्रों से युक्त है। ये वीर (रथस्य पव्या) वाहन के पहियोंकी लौहपट्टिकाओं से (भूम) समूची पृथ्वी पर (जंघनन्त) गति करते हैं, गतिशील वनते हैं।

भावार्थ- १५१ अपने शस्त्रास्त्र, रथ तथा रण-चातुरीके द्वारा वीर पुरुष अच्छा अन्न प्राप्त कर लें और ऐसी आयोजना ढूँढ निकालें कि वह सब को यथावत् मिल जाए।

१५२ वीर पुरुष समूची जनता का श्रेष्ठ कल्याण करने के लिए अपने रथों को हथियारों तथा अन्य विशेष आयुधों से भली भाँति सज्ज करके सभी स्थानों में संचार करें।

टिप्पणी- [१५१] (१) अश्व-पर्णः = (अश्वानां पर्ण पतनं गमनं यत्र) अश्वों के जोडने से वेगपूर्वक जाने-वाला (रथ)। (२) सु-मायाः = (माया = कौशल्य, दस्तकारी।) उत्तम कार्य-कुशलता से युक्त, कलापूर्ण वस्तु वनानेहारे। (३) वयः न = पंछियों के समान (आकाश में से जैसे पक्षी चले आते हैं, उसी तरह तुम आकाश-यानों में बैठकर आ जाओ।) (देखो मंत्र ९१; ३८९) [१५२] (१) रुक्मः = जिस पर छाप दीख पडती हो ऐसा सोने का टुकडा, अलंकार, मुहर। (२) स्व-धितिः = कुठार, शस्त्र। (३) पविः = रथ के पहिये पर लगी हुई लौह पट्टिका; चक्र नामक एक हथियार। (४) हन् = (हिंसागत्योः) वध करना, गति करना (जाना)।

(१५३) श्रिये । कम् । वः । अधि । तनूषु । वाशीः । मेधा । वना । न । कृणवन्ते । ऊर्ध्वा ।
युष्मभ्यम् । कम् । मरुतः । सुऽजाताः । तुविऽद्युम्नासः । धनयन्ते । अद्रिम् ॥ ३ ॥

(१५४) अहानि । गृध्राः । परि । आ । वः । आ । अगुः ।
इमाम् । धियम् । वार्कार्याम् । च । देवीम् ।
ब्रह्म । कृण्वन्तः । गोतमासः । अर्कैः ।
ऊर्ध्वम् । नुनुद्रे । उत्सऽधिम् । पिबध्यै ॥ ४ ॥

अन्वयः— १५३ श्रिये कं वः तनूषु अधि वाशीः (वर्तते), वना न मेधा ऊर्ध्वा कृणवन्ते, (हे) सु-जाताः मरुतः! तुवि-द्युम्नासः युष्मभ्यं कं अद्रिं धनयन्ते।

१५४ (हे) गोतमासः! गृध्राः वः अहानि परि आ आ अगुः, वार्-कार्यां च इमां देवीं धियं अर्कैः ब्रह्म कृण्वन्तः, पिबध्यै उत्सधिं ऊर्ध्वं नुनुद्रे।

अर्थ- १५३ (श्रिये कं) विजयश्री तथा सुख पानेके लिए (वः तनूषु अधि) तुम्हारे शरीरोंपर (वाशीः) आयुध लटकते रहते हैं; (वना न) वनके वृक्षों के समान [अर्थात् वनों में पेड जैसे ऊँचे बढते हैं, उसी तरह तुम्हारे उपासक तथा भक्त] अपनी (मेधा) बुद्धिको (ऊर्ध्वा) उच्च कोटिकी (कृणवन्ते) बना देते हैं। हे (सु-जाताः मरुतः!) अच्छे परिवारमें उत्पन्न वीर मरुतो! (तुवि-द्युम्नासः) अत्यंत दिव्य मनसे युक्त तुम्हारे भक्त (युष्मभ्यं कं) तुम्हें सुख देनेके लिए (अद्रिं) पर्वतसे भी (धनयन्ते) धनका सृजन करते हैं [पर्वतोंपर से सोमसदृश वनस्पति लाकर तुम्हारे लिए अन्न तैयार करते हैं।]

१५४ हे (गोतमासः!) गौतमो! (गृध्राः वः) जल की इच्छा करनेवाले तुम्हें अब (अहानि) अच्छे दिन (परि आ आ अगुः) प्राप्त हो चुके हैं। अब तुम (वार्-कार्यां च) जलसे करनेयोग्य (इमां देवीं धियं) इन दिव्य कर्मों को (अर्कैः) पूज्य मंत्रों से (ब्रह्म) ज्ञानसे पवित्र (कृण्वन्तः) करो। (पिबध्यै) पानी पीनेके लिए मिले, सुगमता हो, इसलिए अब (ऊर्ध्वं) ऊपर रखे हुए (उत्सधिं) कुंडके जल को तुम्हारी ओर (नुनुद्रे) नहरद्वारा पहुंचाया गया है।

भावार्थ- १५३ समर में विजयी बनने के लिए और जनता का सुख बढाने के लिए भी वीर पुरुष अपने समीप सदैव शस्त्र रखें। अपनी विचारप्रणाली को भी हमेशा परिमार्जित तथा परिष्कृत रखें। मन में दिव्य विचारों का संग्रह बनाकर पर्वतीय एवं पार्थिव धनवैभव का उपयोग समूची जनता का सुख बढाने के लिए करें।

१५४ निवासस्थलों में यथेष्ट जल मिले, तो बहुत सारी सुविधाएँ प्राप्त हुआ करती हैं, इसमें क्या संशय? इस कारण से इन वीरोंने गोतम के आश्रम के लिए जल की सुविधा कर डाली। पश्चात् उस स्थान में मानवी बुद्धि ज्ञान के कारण पवित्र हो जाए, इस ख्याल से प्रभावित होकर ब्रह्मयज्ञसदृश कर्मों की पूर्ति कराई। (मंत्र १३२, १३३ देखिए।)

टिप्पणी- [१५३] (१) द्युम्नं = (द्यु-मनः) तेजस्वी मन, विचार, यश, कांति, शोभा, शक्ति, धन, तेज, बल। (२) अ-द्रिः = तोड देने में असंभव दीख पडे, ऐसा पर्वत, सोम कूटने का पत्थर, वृक्ष, मेघ, वज्र, शस्त्र। (३) धनयन्ते = (धन शब्दात्तत्करोतीति णिच्) धन पैदा करते हैं, आवाज निकालते हैं। [१५४] (१) गृध्रः = लालची, गिद्ध, इच्छा करनेवाला। (२) वार्कार्या = (वार्-कार्या) जल से निष्पन्न होनेवाले (कर्म)। (३) उत्स-धिः = कूआँ, कुंड, जलाशय, बावडी। (४) धीः = बुद्धि, कर्म।

(१५५) एतत् । त्यत् । न । योजनम् । अचेति ।
सस्वः । ह । यत् । मरुतः । गोतमः । वः ।
पश्यन् । हिरण्यऽचक्रान् । अयःदंष्ट्रान् ।
विऽधावतः । वराहून् ॥ ५ ॥

(१५६) एषा । स्या । वः । मरुतः । अनुऽभर्त्री ।
प्रति । स्तोभति । वाघतः । न । वाणी ।
अस्तोभयत् । वृथा । आसाम् । अनु । स्वधाम् । गभस्त्योः ॥ ६ ॥

अन्वयः— १५५ (हे) मरुतः! हिरण्य-चक्रान् अयो-दंष्ट्रान् वि-धावतः वर-आहून् वः पश्यन् गोतमः यत् एतत् योजनं सस्वः ह त्यत् न अचेति।

१५६ (हे) मरुतः! गभस्त्योः स्व-धां अनु स्या एषा अनु-भर्त्री वाघतः वाणी न वः प्रति स्तोभति, आसां वृथा अस्तोभयत्।

अर्थ— १५५ हे (मरुतः!) वीर मरुतो! (हिरण्य-चक्रान्) स्वर्णविभूषित पहिये की शक्ल के हथियार धारण करनेवाले (अयो-दंष्ट्रान्) फौलाद की तेज डाढोंसे- धाराओं से युक्त हथियार लेकर (वि-धावतः) भाँतिभाँति के प्रकारों से शत्रुओंपर दौडकर टूट पडनेवाले और (वर-आ-हून्) बलिष्ठ शत्रुओंका विनाश करनेवाले (वः) तुम्हें (पश्यन्) देखनेवाले (गोतमः) ऋषि गोतमने (यत् एतत्) जो यह तुम्हारी (योजनं) आयोजना- छन्दोबद्ध स्तुति (सस्वः ह) गुप्त रूपसे वर्णित कर रखी है, (त्यत्) वह सचमुच (न अचेति) अवर्णनीय है।

१५६ हे (मरुतः!) वीर मरुतो! तुम्हारे (गभस्त्योः) बाहुओंकी (स्व-धां अनु) धारक शक्तिको-शूरता को-ध्यान में रख कर (स्या एषा) वही यह (अनु-भर्त्री) तुम्हारे यशका पोषण करनेवाली (वाघतः वाणी) हम जैसे स्तोताओंकी वाणी (न) अब (वः प्रति स्तोभति) तुममेंसे प्रत्येक का वर्णन करती है। पहले भी (आसां) इन वाणियों ने (वृथा) किसी विशेष हेतुके सिवा इसी भाँति (अस्तोभयत्) सराहना की थी।

भावार्थ— १५५ वीरोंको चाहिए कि वे अपने तीक्ष्ण शस्त्र साथ लेकर शत्रुदलपर विभिन्न प्रकारोंसे हमलोंका सूत्रपात कर दे और उन्हें तितरबितर कर डाले। इस तरह शत्रुओंको जडमूलसे विनष्ट करना चाहिए। ऐसे वीरोंका समुचित बखान करनेके लिए कवि वीर गाथाओंका सृजन करेंगे और चतुर्दिक् इन वीर गीतों तथा काव्यों का गायन शुरू होगा।

१५६ वीर पुरुष जब युद्धभूमि में असीम शूरता प्रकट करते हैं, तब अनेक काव्योंका सृजन बडी आसानी से हो जाता है और ध्यान में रखनेयोग्य बात है कि, सभी कवि उन काव्यों की रचना में स्वयंस्फूर्ति से भाग लेते हैं, इसीलिए उन काव्यों के गायन एवं परिशीलन से जनता में बडी आसानी से जोशीले भाव पैदा हो जाते हैं।

टिप्पणी— [१५५] (१) चक्र = पहिया, चक्रके आकारवाला हथियार। (२) हिरण्य-चक्र = सुवर्णकी पच्चीकारी से विभूषित पहिया जैसे दिखाई देनेवाला शस्त्र। (३) वर-आ-हुः (वर-आ-हन्)= बलिष्ठ शत्रुको धराशायी करनेवाला (४) योजनं = जोडना, रचना, तैयारी, शब्दों की रचना करके काव्य बनाना। (५) अयो-दंष्ट्र = फौलाद का बना एक हथियार जिसमें कई तीक्ष्ण धाराएँ पाई जाती हैं। (६) वि-धाव् = शत्रु पर भाँति भाँति के प्रकारों से चढाई करना। (७) सस्वः = गुप्त ढंग से; देखो ऋ. ५।३०।२ और ७।५९।७, ३८९। [१५६] (१) गभस्तिः= किरण, गाडी का पृष्ठवंश, हाथ, कोहनी के आगे हाथ, सूर्य, किरण। (२) स्व-धा = अपनी धारक शक्ति, सामर्थ्य, अन्न। (३) वृथा = व्यर्थ, अनावश्यक, विशेष कारण के सिवा, निष्काम भाव से, स्वाभाविक रूप से।

दिवोदासपुत्र परुच्छेपऋषि (ऋ. १।१३९।८)

(१५७) मो इति । सु । वः । असत् । अभि । तानि । पौंस्या । सना । भूवन् । द्युम्नानि ।
मा । उत । जारिषुः । अस्मत् । पुरा । उत । जारिषुः ।
यत् । वः । चित्रम् । युगेऽयुगे । नव्यम् । घोषात् । अमर्त्यम् ।
अस्मासु । तत् । मरुतः । यत् । च । दुस्तरम् । दिधृत । यत् । च । दुस्तरम् ॥ ८ ॥

मित्रावरुणपुत्र अगस्त्यऋषि (ऋ. १।१६६।१-१५)

(१५८) तत् । नु । वोचाम । रभसाय । जन्मने । पूर्वम् । महिऽत्वम् । वृषभस्य । केतवे ।
ऐधाऽइव । यामन् । मरुतः । तुविऽस्वनः । युधाऽइव । शक्राः । तविषाणि । कर्तन ॥ १ ॥

अन्वयः—१५७ (हे) मरुतः ! वः तानि सना पौंस्या अस्मत् मो सु अभि भूवन्, उत द्युम्नानि मा जारिषुः, उत अस्मत् पुरा (मा) जारिषुः; वः यत् चित्रं नव्यं अ-मर्त्यं घोषात् तत् युगे युगे अस्मासु, यत् च दुस्तरं यत् च दुस्तरं दिधृत।

१५८ (हे) मरुतः ! रभसाय जन्मने, वृषभस्य केतवे, तत् पूर्वं महित्वं नु वोचाम, (हे) तुवि-स्वनः शक्राः ! युधाइव यामन् ऐधाइव तविषाणि कर्तन ।

अर्थ- १५७ हे (मरुतः !) वीर मरुतो ! (वः तानि) तुम्हारे वे (सना) सनातन पराक्रम करनेहारे (पौंस्या) बल (अस्मत्) हमसे (मो सु अभि भूवन्) कभी दूर न होने पायँ। (उत) उसी प्रकार हमारे (द्युम्नानि) यश (मा जारिषुः) कदापि क्षीण न हों। (उत) वैसे ही (अस्मत् पुरा) हमारे नगर ([मा] जारिषुः) कभी वीरान या ऊजड न हों। (वः यत्) तुम्हारा जो (चित्रं) आश्चर्यकारक (नव्यं) नया तथा (अ-मर्त्यं) अमर (घोषात् तत्) गोशालाओंसे लेकर मानवोंतक धन है, वह सभी (युगे युगे) प्रत्येक युग में (अस्मासु) हम में स्थिर रहे। (यत् च दुस्तरं, यत् च दुस्तरं) जो कुछ भी अजिंक्य धन है, वह भी हमें (दिधृत) दे दो।

१५८ हे (मरुतः !) वीर मरुतो ! (रभसाय जन्मने) पराक्रम करने के लिए सुयोग्य जीवन प्राप्त हो, इसलिए और (वृषभस्य केतवे) बलिष्ठों के नेता बनने के लिए (तत्) वह तुम्हारा (पूर्वं) प्राचीन कालसे चला आ रहा (महित्वं) महत्त्व (नु वोचाम) हम ठीक ठीक कह रहे हैं। हे (तुविस्वनः) गरजनेवाले तथा (शक्राः !) समर्थ वीरो ! (युधाइव) युद्धवेला के समानही (यामन्) शत्रुदल पर चढाई करने के लिए (ऐधाइव) धधकते हुए अग्नि की नाईं (तविषाणि कर्तन) बल प्राप्त करो।

भावार्थ- १५७ हमेशा वीर पराक्रम के कृत्य कर दिखलायें, हमें भी उसी तरह वीरतापूर्ण कार्य निष्पन्न करने की शक्ति मिले। उस शक्ति के फलस्वरूप हमारा यश बढे। हमारे नगर समृद्धिशाली बनें। प्रतिपल वीरों का बल प्रकट हो जाए। हमें इस भाँति का धन मिले कि, शत्रु कभी उसे हम से न छीन ले सके।

१५८ हम सामर्थ्यवान् बनें और नेता के पद पर बैठ सकें, इसीलिए हम वीरों के काव्य का गायन तथा पठन करते हैं। युद्ध छिड जाने के मौके पर जिस तरह तुम्हारी हलचलें या तैयारियाँ हुआ करती हैं, उन्हें वैसे ही अक्षुण्ण बनाये रखो। उन तैयारियों में तनिक भी ढीलापन न रहने पाय, ऐसी सावधानी रखनी चाहिए।

टिप्पणी- [१५७] (१) घोषः = गौ-शाला, जहां गायें बँधी रहती हैं, ग्वालोंका वाडा। [१५८] (१) रभसः = बलवान्, सशक्त, शक्ति, सामर्थ्य, जोर, त्वरा, क्रोध, आनन्द। (२) वृषभः = बलवान्, वर्षा करनेवाला। (३) वृषभस्य केतुः = बलिष्ठ वीर का लक्षण, शक्ति का चिन्ह। (४) केतुः = प्रमुख, नेता, अग्रेसर, चिन्ह, ध्वज।

(१५९) नित्यम् । न । सूनुम् । मधु । बिभ्रतः । उप । क्रीळन्ति । क्रीळाः । विदथेषु । घृष्वयः ।
नक्षन्ति । रुद्राः । अवसा । नमस्विनम् । न । मर्धन्ति । स्वऽतवसः । हविःऽकृतम् ॥२॥
(१६०) यस्मै । ऊमासः । अमृताः । अरासत । रायः । पोषम् । च । हविषा । ददाशुषे ।
उक्षन्ति । अस्मै । मरुतः । हिताःऽइव । पुरु । रजांसि । पयसा । मयःऽभुवः ॥३॥

अन्वयः— १५९ नित्यं सूनुं न मधु बिभ्रतः घृष्वयः क्रीळाः विदथेषु उप क्रीळन्ति, रुद्राः नमस्विनं अवसा नक्षन्ति, स्व-तवसः हविस्-कृतं न मर्धन्ति।

१६० ऊमासः अ-मृताः मरुतः यस्मै हविषा ददाशुषे रायः पोषं अरासत अस्मै हिताःइव मयो-भुवः रजांसि पुरु पयसा उक्षन्ति।

अर्थ- १५९ (नित्यं सूनुं न) पिता जिस प्रकार अपने औरस पुत्र को खाद्यवस्तु दे देता है, वैसे ही सब के लिए (मधु बिभ्रतः) मिठासभरे रस का धारण करनेवाले (घृष्वयः) युद्धसंघर्षमें निपुण और (क्रीळाः) क्रीडासक्त मनोवृत्तिवाले ये वीर (विदथेषु उप क्रीळन्ति) युद्धों में मानों खेलकूद में लगे हों, इस भाँति कार्य करना शुरू करते हैं। (रुद्राः) शत्रुको रुलानेवाले ये वीर (नमस्विनं) उपासकों को (अवसा नक्षन्ति) स्वकीय शक्ति से सुरक्षित रखते हैं। (स्व-तवसः) अपने निजी बलसे युक्त ये वीर (हविस्-कृतं) हविष्यान्न देनेवाले को (न मर्धन्ति) कष्ट नहीं पहुँचाते हैं।

१६० (ऊमासः) रक्षण करनेवाले, (अ-मृताः) अमर वीर मरुतों ने (यस्मै हविषा ददाशुषे) जिस हविष्यान्न देनेवाले को (रायः पोषं) धन की पुष्टि (अरासत) प्रदान की- बहुतसा धन दे दिया- (अस्मै) उसके लिए (हिताःइव) कल्याणकारक मित्रों के समान (मयो-भुवः) सुख देनेवाले वे वीर (रजांसि) हल चलाई हुई भूमि पर (पुरु पयसा) बहुत जल से (उक्षन्ति) वर्षा करते हैं।

भावार्थ- १५९ जिस तरह पिता अपने पुत्र को खानेकी चीजें देता है, उसी प्रकार वीरों को चाहिए कि वे भी सभी लोगों को पुत्रवत् मान उन्हें खानपान की वस्तुएँ प्रदान करें। ये वीर हमेशा खिलाडीपन से पारस्परिक बर्ताव करें और धर्मयुद्ध में कुशलतापूर्वक अपना कार्य करते रहें। शत्रुओं को हटाकर साधु जनों का संरक्षण करना चाहिए और दानी उदार लोगों को किसी प्रकार का कष्ट न देकर सुख पहुँचाना चाहिए।

१६० सब के संरक्षण का तथा उदार दानी पुरुषों के भरणपोषण का बीडा वीरों को उठाना पडता है। चूँकि वीर समूची जनता के हितकर्ता हैं, अतएव वे सबको सुख पहुँचाते हैं।

टिप्पणी- [१५९] (१) मधु = मीठा, मीठा रस, शहद, सोमरस। (२) नित्यः = हमेशा का, न बदलनेवाला, सतत, ज्यों का त्यों रहनेवाला। (३) नित्यः सूनुः = औरस पुत्र, जिसका दूसरे का होना असंभव है। (४) घृष्वयः = (घृषु संघर्षे स्पर्धायां च) चढाऊपरी में निपुण। [१६०] (१) ऊमः = (अव् रक्षणे) = रक्षा करनेवाला, अच्छा मित्र, प्रिय मित्र। (२) रजस् = धूलि, जोती हुई जमीन, उर्वर भूमि, अंतरिक्षलोक। मंत्र १८८ देखिए।

(१६१) आ । ये । रजांसि । तविषीभिः । अव्यत । प्र । वः । एवासः । स्वऽयतासः । अध्रजन् ।
भयन्ते । विश्वा । भुवनानि । हर्म्या । चित्रः । वः । यामः । प्रऽयतासु । ऋष्टिषु ॥ ४ ॥

(१६२) यत् । त्वेषऽयामाः । नदयन्त । पर्वतान् । दिवः । वा । पृष्ठम् । नर्याः । अचुच्यवुः ।
विश्वः । वः । अज्मन् । भयते । वनस्पतिः । रथियन्तीऽइव । प्र । जिहीते । ओषधिः ॥५॥

अन्वयः- १६१ ये एवासः तविषीभिः रजांसि अव्यत, स्व-यतासः प्र अध्रजन्, प्र-यतासु वः ऋष्टिषु विश्वा भुवनानि हर्म्या भयन्ते, वः यामः चित्रः।

१६२ त्वेष-यामाः यत् पर्वतान् नदयन्त, वा नर्याः दिवः पृष्ठं अचुच्यवुः, वः अज्मन् विश्वः वनस्पतिः भयते, ओषधिः रथीयन्तीइव प्र जिहीते।

अर्थ- १६१ (ये एवासः) जो तुम वेगवान् वीर (तविषीभिः) अपने सामर्थ्यों तथा बलोंद्वारा (रजांसि अव्यत) सब लोगों का संरक्षण करते हो, तथा (स्व-यतासः) स्वयं ही अपना नियंत्रण करनेवाले तुम जब शत्रुपर (प्र अध्रजन्) वेगपूर्वक दौड जाते हो और जब (प्र-यतासु वः ऋष्टिषु) अपने हाथियारों को आगे धकेलते हो, उस समय (विश्वा भुवनानि) सारे भुवन, (हर्म्या) बडे बडे प्रासाद भी (भयन्ते) भयभीत हो उठते हैं, क्योंकि (वः यामः) तुम्हारी यह हलचल (चित्रः) सचमुच आश्चर्य-जनक है।

१६२ (त्वेष-यामाः) वेगपूर्वक चढाई करनेवाले ये वीर (यत्) जब (पर्वतान् नदयन्त) पहाडों को निनादमय बना डालते हैं, (वा) उसी प्रकार (नर्याः) जनता का हित करनेवाले ये वीर जब (दिवः पृष्ठं अचुच्यवुः) अन्तरिक्ष के पृष्ठभाग पर से जाने लगते हैं, उस समय हे वीरो ! (वः अज्मन्) तुम्हारी इस चढाई के फलस्वरूप (विश्वः वनस्पतिः) सभी वृक्ष (भयते) भयव्याकुल हो जाते हैं और सभी (ओषधिः) औषधियाँ भी (रथीयन्तीइव) रथ पर बैठी हुई महिला के समान (प्र जिहीते) विकंपित हुआ करती हैं।

भावार्थ- १६१ ये वीर सब की रक्षा में दत्तचित्त हुआ करते हैं और जब अपना नियंत्रण स्वयं ही करते हैं तथा शत्रुदल पर टूट पडते हैं, तब स्वयं स्फूर्ति से यह सब कुछ होता है, इसलिए सभी लोग सहम जाते हैं, क्योंकि इनका आक्रमण कोई साधारणसी बात नहीं है। इन वीरों की चढाई में भीषणता पर्याप्त मात्रा में पाई जाती है।

१६२ जब हमले करनेवाले शूर लोग शत्रुदल पर चढाई करने के लिए पहाडों में तथा अन्तरिक्ष में बडे जोर से आक्रमण कर देते हैं, तब वृक्षवनस्पति सभी विचलित हो जाते हैं।

टिप्पणी- [१६१] (१) एवः = जानेवाला, वेगवान्, चपल, घोडा । (२) स्व-यत = (यम् उपरमे) स्वयं ही अपना नियमन करनेहारा। [१६२] (१) त्वेष-यामः = (त्वेषः) वेगपूर्वक किया हुआ (यामः) आक्रमण जिसे Blitzkrieg कहते हैं, विद्युत्वेग से शत्रु पर धावा करना। (२) वनस्पतिः = (वनस्-पतिः) = पेड, खंभा, यूप, सोम, बडा भारी वृक्ष।

(१६३) यूयम् । नः । उग्राः । मरुतः । सुऽचेतुना । अरिष्टऽग्रामाः । सुऽमतिम् । पिपर्तन ।
यत्र । वः । दिद्युत् । रदति । क्रिविःऽदती । रिणाति । पश्वः । सुधिताऽइव । बर्हणा ॥ ६ ॥
(१६४) प्र । स्कम्भऽदेष्णाः । अनवभ्रऽराधसः । अलातृणासः । विदथेषु । सुऽस्तुताः ।
अर्चन्ति । अर्कम् । मदिरस्य । पीतये । विदुः । वीरस्य । प्रथमानि । पौंस्या ॥ ७ ॥

अन्वयः— १६३ सु-धिताइव वर्हणा यत्र वः क्रिविर्-दती दिद्युत् रदति, पश्वः रिणाति, (हे) उग्राः मरुतः! यूयं सु-चेतुना अ-रिष्ट-ग्रामाः नः सु-मतिं पिपर्तन।

१६४ स्कम्भ-देष्णाः अन्-अवभ्र-राधसः अल-आ-तृणासः सु-स्तुताः विदथेषु मदिरस्य पीतये अर्कं अर्चन्ति, वीरस्य प्रथमानि पौंस्या विदुः।

अर्थ- १६३ (सु-धिताइव) अच्छे प्रकार पकडे हुए (वर्हणा) हथियार के समान (यत्र) जिस समय (वः) तुम्हारा (क्रिविर्-दती) तीक्ष्ण रूप से दंदानेदार और (दिद्युत्) चमकीली तलवार (रदति) शत्रुदल के टुकडे टुकडे कर डालती है, तथा (पश्वः रिणाति) जानवरों को भी मार डालती है, उस समय हे (उग्राः मरुतः!) शूर तथा मन में भय पैदा करनेवाले वीर मरुतो! (यूयं) तुम (सु-चेतुना) उत्तम अन्तःकरणपूर्वक (अ-रिष्ट-ग्रामाः) गाँवों का नाश न करते हुए (नः सु-मतिं) हमारी अच्छी बुद्धि को वढाते हो।

१६४ (स्कम्भ-देष्णाः) आश्रय देनेवाले, (अन्-अवभ्र-राधसः) जिन का धन कोई छीन नहीं सकता ऐसे, (अल-आ-तृणासः) शत्रुओं का पूरा पूरा विनाश करनेहारे तथा (सु-स्तुताः) अत्यन्त सराहनीय ये वीर (विदथेषु) युद्धस्थलों तथा यज्ञों में (मदिरस्य पीतये) सोमरस पीने के लिए (अर्कं प्र अर्चन्ति) पूंजनीय देवता की भली भाँति पूजा करते हैं। क्योंकि वही (वीरस्य) वीरों के (प्रथमानि) प्रथम श्रेणी में परिगणनीय (पौंस्या विदुः) वल तथा पुरुषार्थ जानते हैं।

भावार्थ- १६३ अपने तीक्ष्ण हथियारों से वीर सैनिक शत्रु का विनाश कर देते हैं, इतनाही नहीं अपि तु शत्रु के पशुओं का भी वध कर डालते हैं। हे वीरो! तुम्हारे शुभ अंतःकरण से हमारी सुवुद्धि बढाओ और हमारे ग्रामों का विनाश न करो।

१६४ वीर लोग ही अन्य सज्जनों को आश्रय देते हैं, अपने धनवैभव का भली प्रकार संरक्षण करते हैं, शत्रुओं का विनाश करते हैं और सोमरस का सेवन करके युद्धों में अपना प्रभाव दर्शाते हैं तथा परमात्मा की उपासना भी करते हैं। ऐसे वीर ही अन्य वीरों की शक्तियों की यथोचित जाँच करने की क्षमता रखते हैं।

टिप्पणी- [१६३] (१) वर्हणा = शस्त्र, नोकवाला शस्त्र, नोक। (२) ग्रामः = देहात, जाति, समूह, संघ। (३) सु-चेतु = उत्तम मन। (४) रद् (विलेखने) = टुकडा करना, खुरचना। (५) दती = खंड करनेवाला, काटनेवाला। [१६४] (१) स्कम्भः = स्तंभ, आश्रय, आधारस्तम्भ। (२) देष्णं = दान, देन। (३) अव-भ्र = भाग ले जाना, छीन लेना, सीधी राह से न ले जाकर अज्ञात पगडंडी से ले जाना। (४) राधस् = सिद्धि, अन्न, कृपा, दया, देन, संपत्ति। (५) अलातृणासः = [अल (अलं) + आतृणासः = वध करनेवाले] पूर्ण रूपेण उच्चाटन करनेहारे।

(१६५) शतभुजिऽभिः । तम् । अभिऽहुतेः । अघात् । पूःऽभिः । रक्षत । मरुतः । यम् । आवत ।
जनम् । यम् । उग्राः । तवसः । विऽरप्शिनः ।
पाथन । शंसात् । तनयस्य । पुष्टिषु ॥ ८ ॥

(१६६) विश्वानि । भद्रा । मरुतः । रथेषु । वः । मिथस्पृध्याऽइव । तविषाणि । आऽहिता ।
अंसेषु । आ । वः । प्रऽपथेषु । खादयः ।
अक्षः । वः । चक्रा । समया । वि । ववृते ॥ ९ ॥

अन्वयः— १६५ (हे) उग्राः तवसः वि-रप्शिनः मरुतः ! यं अभिहुतेः अघात् आवत, यं जनं तनयस्य पुष्टिषु शंसात् पाथन, तं शत-भुजिभिः पूर्भिः रक्षत ।

१६६ (हे) मरुतः ! वः रथेषु विश्वानि भद्रा, वः अंसेषु आ मिथ-स्पृध्याइव तविषाणि आहिता, प्र-पथेषु खादयः, वः अक्षः चक्रा समया वि ववृते ।

अर्थ- १६५ हे (उग्राः) शूर, (तवसः) बलिष्ठ और (वि-रप्शिनः) समर्थ (मरुतः !) वीर-मरुतो ! (यं) जिसे (अभिहुतेः) विनाश से और (अघात्) पापसे तुम (आवत) सुरक्षित रखते हो, (यं जनं) जिस मनुष्य का (तनयस्य पुष्टिषु) वह अपने बालबच्चों का भरणपोषण कर ले, इसलिए (शंसात्) निन्दा से (पाथन) बचाते हो, (तं) उसे (शत-भुजिभिः) सैकडों उपभोग के साधनों से युक्त (पूर्भिः) दुर्गों से (रक्षत) रक्षित करो।

१६६ हे (मरुतः !) वीर मरुतो ! (वः रथेषु) तुम्हारे रथों में (विश्वानि भद्रा) सभी कल्याणकारण वस्तुएँ रखी हैं। (वः अंसेषु आ) तुम्हारे कंधों पर (मिथ-स्पृध्याइव) मानों एक दूसरे से चढाऊपरी करनेवाले (तविषाणि) बलयुक्त हथियार (आहिता) लटकाये हुए हैं। (प्र-पथेषु) सुदूर मार्गों में यात्रा करने के लिए (खादयः) खानेपीने की चीजों का संग्रह पर्याप्त है। (वः अक्षः चक्रा) तुम्हारे रथके पहियों को जोडनेवाला डंडा तथा उसके चक्र (समया वि ववृते) उचित समय पर घूमते हैं।

भावार्थ- १६५ जो बलवान् तथा वीर होते हैं, वे जनता को नाश तथा पापकृत्यों एवं निंदा से बचाने की चेष्टा में सफलता पाते हैं। इन वीरों के भुजबल के सहारे जनता सुरक्षित और अकुतोभय होकर अच्छे गढों से युक्त नगरी में निवास करते हैं और वहाँ पर अपने पुत्रपौत्रों का संरक्षण करते हैं।

१६६ वीरों के रथों पर सभी आवश्यक युद्धसाधनों का संग्रह रहता है। वे अपने शरीरों पर हथियार धारण करते हैं। दूर की यात्रा के लिए सभी जरूरी खानेपीने की चीजें रथों पर इकट्ठी की हुई हैं और इनके रथों के पहिये भी उचित वेला में जैसे घूमने चाहिए, वैसे ही फिरते रहते हैं।

टिप्पणी-[१६५] (१) अभिहुतिः = विनाश, हार, हानि, क्षति, पराजय। (२) पुर् = नगर, पुरी, कीला, तट। (३) भुजिः = (मानवी जीवन के लिए आवश्यक) उपभोग। (४) शंसः = स्तुति, आशीर्वाद, शाप, निन्दा। (५) वि-रप्शिन् = बडा, विशेष स्तुत्य, विशेष सामर्थ्य से युक्त। [१६६] (१) प्र-पथः = लंबा मार्ग, यात्रा, दूर का स्थान, चौडी राह या सडक। (२) समया = (सं-अया) = समीप, मौके पर, नियत समय में मिलकर जाना। (३) वृत् = घूमना (४) अक्षः = रथ के पहियों को जोडनेवाला डंडा।

(१६७) भूरी॑णि । भ॒द्रा । नर्ये॑षु । बा॒हुषु॑ ।
वक्षः॑ऽसु । रु॒क्मा: । र॒भ॒सासः॑ । अ॒ञ्जयः॑ ।
अंसे॑षु । एताः॑ । प॒विषु॑ । क्षु॒राः । अधि॑ ।
वयः॑ । न । प॒क्षान् । वि । अनु॑ । श्रियः॑ । धि॒रे॒ ॥ १० ॥

(१६८) म॒हान्तः॑ । म॒ह्ना । वि॒ऽभ्वः॑ । विऽभू॑तयः ।
दू॒रे॒ऽदृशः॑ । ये । दि॒व्याःऽइ॑व । स्तृऽभिः॑ ।
म॒न्द्राः । सु॒ऽजि॒ह्वाः । स्वरि॑तारः । आ॒सऽभिः॑ ।
सम्ऽमि॑श्लाः । इन्द्रे॑ । म॒रुतः॑ । प॒रि॒ऽस्तुभः॑ ॥ ११ ॥

अन्वयः— १६७ नर्येषु बाहुषु भूरीणि भद्रा, वक्षःसु रुक्माः, अंसेषु एताः रभसासः अञ्जयः, पविषु अधि क्षुराः, वयः पक्षान् न, अनु श्रियः वि धिरे।

१६८ ये मरुतः मह्ना महान्तः विभ्वः वि-भूतयः स्तृभिः दिव्याःइव दूरे-दृशः (ते) मन्द्राः सु-जिह्वाः आसभिः स्वरितारः, इन्द्रे सं-मिश्लाः परि-स्तुभः।

अर्थ- १६७ (नर्येषु) जनता का हित करनेवाले इन वीरों की (बाहुषु) भुजाओं में (भूरीणि भद्रा) यथेष्ट कल्याणकारक शक्ति विद्यमान है, (वक्षःसु रुक्माः) उनके वक्षःस्थलों पर मुहरों के हार तथा (अंसेषु) कन्धों पर (एताः) विभिन्न रँगवाले, (रभसासः) सुदृढ (अञ्जयः) वीरभूषण हैं, उनके (पविषु अधि) वज्रों पर (क्षुराः) तीक्ष्ण धाराएँ हैं, (वयः पक्षान् न) पंछी जिस तरह डैने धारण करते हैं, उसी प्रकार (अनु श्रियः वि धिरे) भाँति भाँति की शोभाएँ वे धारण करते हैं।

१६८ (ये मरुतः) जो वीर मरुत् (मह्ना) अपनी महत्ता के कारण (महान्तः) बडे (विभ्वः) सामर्थ्यवान् (वि-भूतयः) ऐश्वर्यशाली, तथा (स्तृभिः) नक्षत्रों से युक्त (दिव्याःइव) स्वर्गीय देवतागण की नाईं सुहानेवाले, (दूरे-दृशः) दूरदर्शी, (मन्द्राः) हर्षित और (सु-जिह्वाः) अच्छी जीभ रहने के कारण अपने (आसभिः) मुखोंसे (स्वरितारः) भली भाँति बोलनेवाले हैं। वे (इन्द्रे सं-मिश्लाः) इंद्र को सहायता पहुंचानेवाले हैं, अतः (परि-स्तुभः) सभी प्रकार से सराहनीय हैं।

भावार्थ- १६७ जनता का हित करने के लिए वीरों के बाहु प्रस्फुरित होने तथा आगे बढने लगते हैं और उनके उरोभाव पर एवं कंधों पर विभिन्न वीरभूषण चमकते हैं। उनके शस्त्र तीक्ष्ण धाराओं से युक्त होते हैं। पंछी जिस भाँति अपने डैनों से सुहाने लगते हैं, उसी प्रकार ये वीर इन सभी आभूषणों एवं आयुधों से बडे भले प्रतीत होते हैं।

१६८ वीरों में श्रेष्ठ गुण विद्यमान हैं, इसी कारण से वे महान तथा ऊँचे पद पर विराजमान होते हैं और वे अत्यधिक सामर्थ्यवान्, ऐश्वर्यवान्, दूरदर्शी, तेजस्वी, उल्लसित, अच्छे भाषण करनेहारे और परमात्मा के कार्य का बीडा उठाने के कारण सभी के लिए प्रशंसनीय हैं।

टिप्पणी- [१६७] (१) एतः = तेजस्वी, भाँति भाँति के रंगों से युक्त, वेग से जानेवाला। [१६८] (१) वि-भुः = बलवान्, प्रमुख, समर्थ, व्यापक, शासक। (२) दूरे-दृशः = दूर से ही दिखाई देनेवाले, दूर दृष्टि से युक्त, दूरदर्शी। (३) वि-भूतिः = विशेष ऐश्वर्ययुक्त, शक्तिमान्, बडप्पन, बल, वैभवशालिता। (४) सु-जिह्वः = मधुर भाषण करनेहारा, अच्छा वाग्मी। (५) स्वरितृ = उत्तम स्वर से बोलनेहारा।

(१६९) तत् । वः । सुऽजाताः । मरुतः । महिऽत्वनम् । दीर्घम् । वः । दात्रम् । अदितेःऽइव । व्रतम् ।
इन्द्रः । चन । त्यजसा । वि । हुणाति । तत् । जनाय । यस्मै । सुऽकृते । अराध्वम् ॥ १२ ॥

(१७०) तत् । वः । जामिऽत्वम् । मरुतः । परे । युगे । पुरु । यत् । शंसम् । अमृतासः । आवत ।
अया । धिया । मनवे । श्रुष्टिम् । आव्य ।
साकम् । नरः । दंसनैः । आ । चिकित्रिरे ॥ १३ ॥

अन्वयः- १६९ (हे) सु-जाताः मरुतः ! वः तत् महित्वनं अदितेःइव दीर्घं व्रतं वः दात्रं, यस्मै सु-कृते जनाय त्यजसा अराध्वं, तत् इन्द्रः चन वि हुणाति ।

१७० (हे) अ-मृतासः मरुतः ! वः तत् जामित्वं, यत् परे युगे शंसं पुरु आवत, अया धिया मनवे साकं दंसनैः नरः श्रुष्टिं आव्य आ चिकित्रिरे ।

अर्थ- १६९ हे (सु-जाताः मरुतः !) कुलीन वीर मरुतो ! (वः) तुम्हारा (तत् महित्वनं) वह बडप्पन सचमुच प्रसिद्ध है। (अदितेःइव दीर्घं व्रतं) भूमि के विस्तृत व्रत के समान ही (वः दात्रं) तुम्हारी उदारता बहुत बडी है, (यस्मै) जिस (सु-कृते) पुण्यात्मा (जनाय) मानव को तुम (त्यजसा) अपनी त्यागवृत्ति से जो (अराध्वं) दान देते हो, (तत्) उसे (इन्द्रः चन [च न] वि हुणाति) इंद्र तक विनष्ट नहीं कर सकता है।

१७० हे (अ-मृतासः मरुतः !) अमर वीर मरुत्‌गण ! (वः तत् जामित्वं) तुम्हारा वह भाईपन बहुत प्रसिद्ध है, (यत्) जिस (परे युगे) प्राचीन काल में निर्मित (शंसं) स्तुति को सुनकर तुम हमारी (पुरु आवत) बहुत रक्षा कर चुके हो और उसी (अया धिया) इस बुद्धि से (मनवे) मनुष्यमात्र के लिए (साकं नरः) मिलजुलकर पराक्रम करनेवाले नेता बने हुए तुम (दंसनैः) अपने कर्मों से (श्रुष्टिं आव्य) ऐश्वर्य की रक्षा कर के उस में विद्यमान (आ चिकित्रिरे) दोषों को दूर हटाते हो।

भावार्थ- १६९ वीर पुरुष बडी भारी उदारता से जो दान देते हैं, उसी से उनका बडप्पन प्रकट होता है। पृथ्वी के समान ही ये बडे विशालचेता एवं उदार हुआ करते हैं। शुभ कर्म करनेवाले को इन से जो सहायता मिलती है, वह अप्रतिम तथा बेजोड ही है। एक बार ये वीर अगर कुछ कार्यकर्ता को दे डालें, तो कोई भी इस दान को छीन नहीं सकता। वीरों की देन को छीन लेने की मजाल भला किस में होगी? विशेषतया जब सुयोग्य कार्यकर्ता उस दान को पाने के अधिकारी हों।

१७० तुम वीरों का भ्रातृप्रेम सचमुच अवर्णनीय है। अतीतकाल में तुम भली भाँति हमारी रक्षा कर चुके ही हो, लेकिन आगामी युग में भी उसी उदार मनोवृत्ति से सारे मानवों की रक्षा के लिए तुम सभी वीर मिलजुलकर एक दिल से अपने कर्मोंद्वारा जिस रक्षण के गुरुतर कार्य को उठाना चाहते हो, वह भी पूर्णतया त्रुटिहीन एवं अविकल है।

टिप्पणी- [१६९] (१) अदितिः = (अ + दितिः) अखण्डित, धरती, प्रकृति, गाय (अद् + ति) = अन्न देनेवाली, खानेकी चीजें देनेवाली। (२) दात्रं = दान, देन। (३) त्यजस् = त्याग, अर्पण, दान। [१७०] (१) जामिः = एक ही वंश या परिवार में उत्पन्न होने से भाईबहन का सम्बन्ध, सख्य, स्नेह। जामित्वं = भाईपन, भाई का प्यार। (२) श्रुष्टिः = सुनना, सहायता, वर, वैभवसंपन्नता, सुख, ऐश्वर्य। (३) दंसनं = कर्म। (४) आ-चिकित् = चिकित्सा करना, दोष दूर करना।

(१७१) येन॑ । दी॒र्घम् । म॒रु॒तः॒ । शू॒शवा॑म । यु॒ष्माके॑न । परी॑णसा । तु॒रा॒सः॒ ।
आ । यत् । त॒त॒नन् । वृ॒जने॑ । जना॑सः । ए॒भिः॑ । य॒ज्ञेभिः॑ । तत् । अ॒भि । इ॒ष्टिम् ।
अ॒श्या॒म् ॥ १४ ॥

(१७२) ए॒षः । वः॒ । स्तोमः॑ । म॒रु॒तः॒ । इ॒यम् । गीः । मा॒न्दा॒र्यस्य॑ । मा॒न्यस्य॑ । का॒रोः ।
आ । इ॒षा । या॒सि॒ष्ट॒ । त॒न्वे॑ । व॒याम् । वि॒द्यामः॑ । इ॒षम् । वृ॒जन॑म् । जी॒रऽदा॑नुम् ॥ १५ ॥

अन्वयः— १७१ (हे) तुरासः मरुतः! येन युष्माकेन परीणसा दीर्घं शूशवाम, यत् जनासः वृजने आ ततनन्, तत् इष्टिं एभिः यज्ञेभिः अभि अश्याम्।

१७२ (हे) मरुतः! मान्दार्यस्य मान्यस्य कारोः, एषः स्तोमः, इयं गीः वः, इषा तन्वे आ यासिष्ट, वयां इषं वृजनं जीर-दानुं विद्याम।

अर्थ- १७१ हे (तुरासः मरुतः!) वेगवान् वीर मरुतो! (येन युष्माकेन परीणसा) जिस तुम्हारे ऐश्वर्य के सहयोगसे हम (दीर्घं) बडेबडे कार्य (शूशवाम) करते हैं और (यत्) जिससे (जनासः) सभी लोग (वृजने) संग्रामों में (आ ततनन्) चतुर्दिक् फैल जाते हैं- विजयी बन जाते हैं- (तत् इष्टिं) उस तुम्हारी शुभ इच्छा को हम (एभिः यज्ञेभिः) इन यज्ञकर्मों से (अभि अश्यां) प्राप्त हों।

१७२ हे (मरुतः!) वीर मरुतो! (मान्दार्यस्य) हर्षित मनोवृत्ति के तथा (मान्यस्य) संमानाई (कारोः) कारीगर या कविका किया हुआ (एषः स्तोमः) यह काव्य तथा (इयं गीः) यह प्रशंसा (वः) तुम्हारे लिए है। यह सारी सराहना हमारे (इषा) अन्न के साथ (तन्वे) तुम्हारे शरीर की वृद्धि करने के लिए तुम्हें (आ यासिष्ट) प्राप्त हो जाए; उसी प्रकार (वयां) हमें (इषं) अन्न, (वृजनं) बल और (जीर-दानुं) शीघ्र विजय (विद्याम) प्राप्त हो जाए।

भावार्थ १७१ तुम्हारी महान् सहायता पाकर ही हम बडे बडे कर्म कर चुके हैं और उसी तुम्हारी सहायता से सभी लोग भाँति भाँति के युद्धों में विजयी बन चुके हैं। हमारी यही लालसा है कि, अब शुरू किये जानेवाले कर्मों में वही तुम्हारी पुरानी सहायता हमें मिल जाए।

१७२ उच्च कोटि के कवि का बनाया हुआ यह काव्य तथा यह अन्न इन श्रेष्ठ वीरों का उत्साह बढाने के लिए उन्हें प्राप्त हो जाय और हमें अन्न, सामर्थ्य तथा विजय मिले।

टिप्पणी- [१७१] (१) इष्टिः = इच्छा, कामना, यज्ञ, अभीष्ट विषय। (२) परीणस् = (पॄ - पालनपूरणयोः = विपुलता, अधिकता, अत्यन्त ऐश्वर्ययुक्त। बहुनाम (निघं ३।१)। (३) शव् = (शव्-गतौ) जाना, बदलना। [१७२] (१) मान्दार्यः = (मन्द् = आनंदित होना, प्रकाशना, स्तुति करना।) हर्षित मनवाला, प्रकाशमान, स्तुतिपाठक। (२) कारुः = करनेवाला, कारीगर, कवि, स्तोता। (३) जीर-दानु = (जीर = शीघ्र, चपल गति, तलवार; दानुः = विजयी, दान, वायु, वैभव।) शीघ्र उन्नति, शीघ्र विजयप्राप्ति। (४) वृजनं = शत्रु को हरा देने की शक्ति, वह सामर्थ्य जिससे शत्रु दूर हो जाय।

(ऋ० १।१६७।२-११)

(१७३) आ । नः । अर्वःऽभिः । मरुतः । यान्तु । अच्छ ।
ज्येष्ठेभिः । वा । बृहत्ऽदिवैः । सुऽमायाः ।
अर्ध । यत् । एषाम् । निऽयुतः । परमाः । समुद्रस्य । चित् । धनयन्त । पारे ॥ २ ॥
(१७४) मिम्यक्ष । येषु । सुऽधिता । घृताची । हिरण्यऽनिर्निक् । उपरा । न । ऋष्टिः ।
गुहा । चरन्ती । मनुषः । न । योषा । सभाऽवती । विदथ्याऽइव । सम् । वाक् ॥ ३ ॥

अन्वयः— १७३ सु-मायाः मरुतः अर्वोभिः ज्येष्ठेभिः बृहत्-दिवैः वा नः अच्छ आ यान्तु, अध यत् एषां परमाः नियुतः समुद्रस्य पारे चित् धनयन्त ।

१७४ सु-धिता घृताची हिरण्य-निर्णिक् ऋष्टिः उपरा न, येषु सं मिम्यक्ष, गुहा चरन्ती मनुषः योषा न, विदथ्याइव वाक् सभा-वती ।

अर्थ- १७३ (सु-मायाः) ये अच्छे कौशल से युक्त (मरुतः) वीर मरुत्-गण अपने (अर्वोभिः) संरक्षण-क्षम शक्तियों के साथ और (ज्येष्ठेभिः) श्रेष्ठ (बृहत्-दिवैः वा) रत्नों के साथ (नः अच्छ आ यान्तु) हमारे निकट आ जाएँ । (अध यत्) और तदुपरान्त (एषां परमाः नियुतः) इनके उत्तम घोडे (समुद्रस्य पारे चित्) समुन्दर के भी परे चले जाकर (धनयन्त) धन लानेका प्रयत्न करें।

१७४ (सु-धिता) भली भाँति सुदृढ ढंगसे पकडी हुई, (घृताची) तेज बनाई हुई, (हिरण्य-निर्णिक्) सुवर्ण के समान चमकनेवाली (ऋष्टिः) तलवार (उपरा न) मेघमण्डल में विद्यमान् बिजली के समान (येषु) जिन वीरोंके निकट (सं मिम्यक्ष) सदैव रहा करती है, वह (गुहा चरन्ती) परदे में संचार करती हुई (मनुषः योषा न) मानवकी नारी के समान कभी अदृश्य रहती है और कभी कभी (विदथ्याइव वाक्) यज्ञसभा की वाणी की न्याईं (सभा-वती) सभासदों में प्रकट हुआ करती है ।

भावार्थ- १७३ निपुण वीर अपनी संरक्षणक्षम शक्तियों के साथ हमारी रक्षा करें और दिव्य रत्न प्रदान करके हमारी संपत्ति बढा दें । उसी प्रकार इनके घोडे भी समुद्रपार चले जाकर वहाँसे संपत्ति लायें और हममें वितीर्ण करें । १७४ वीरोंकी तलवार श्रेष्ठ फौलादकी बनी हुई है और वह तीक्ष्ण एवं स्वर्णवत् चमकीली दीख पडती है । वीर लोग उसे बहुत मजबूत तरहसे हाथमें पकडे रहते हैं । तथापि वह मानवी महिलाके समान कभी कभी मियानमें छिपी पडी रहती है और यज्ञिय मंत्रघोष के समान वह किन्हीं अवसरों पर युद्धके जारी रहने पर बाहर अपना स्वरूप दर्शाती है ।

टिप्पणी- [१७३] (१) नियुत् = घोडा, पंक्ति, कतार, पंक्ति में खडी की हुई सेना । (२) बृहत्-दिव् = बडा तेजस्वी धन । [१७४] (१) घृताची = तैलयुक्त, जलयुक्त, तेजस्वी, तेल में तेज बनायी हुई (शायद यह अभिप्राय हो कि, फौलाद का शस्त्र गर्म करके तेल में डुबा देते हैं या अच्छी तरह तपा कर जल में डाल देते हैं, ऐसा भी अर्थ होगा।) (२) गुहा = गुफा, ढकी हुई बंद जगह, अंतःकरण, रनिवास । (गुहा चरन्ती मनुषः योषा- क्या साधारण महिलाएँ मियान में रखी हुई तलवार के समान घर के भीतर ही रहा करती थीं ?) (३) हिरण्य-निर्णिक् = सुनहले रंग की। (४) उपरा (उपला) = मेघसमुदाय, मेघमाला, मेघ में विद्यमान विद्युत् । इस मंत्रके दो अर्थ हो सकते हैं- (१) मेघपर अर्थ- (सु-हिता) भली भाँति रखी हुई (घृत-अची) जल छोडनेवाली, बरसात करनेवाली (हिरण्य-निर्णिक्) सोने के समान चमकनेवाली (ऋष्टिः न) तलवारके समान प्रकाशित (उपरा) मेघ की विद्युत् मानवी महिला के समान कभी कभी (गुहा) बन्द जगह में गुप्त रूप से रहती है और किन्हीं अवसरों पर (विदथ्याइव वाक्) यज्ञमंडपान्तर्गत सभाके वेदघोषकी नाईं बाहर आ निकलती है, अर्थात् दामिनी कभी चमक उठती है और कभी उसकी दमक नहीं दिखाई देती है । (२) वीरोंकी तलवार- (सु-हिता) अच्छी तरह हाथ में धरी हुई

*

(१७५) परा । शुभ्राः । अयासः । यव्या । साधारण्याऽइव । मरुतः । मिमिक्षुः ।
न । रोदसी इति । अप । नुदन्त । घोराः । जुषन्त । वृधम् । सख्याय । देवाः ॥४॥
(१७६) जोषत् । यत् । ईम् । असुर्या । सचध्यै । विसितऽस्तुका । रोदसी । नृऽमनाः ।
आ । सूर्याऽइव । विधतः । रथम् । गात् । त्वेषऽप्रतीका । नभसः । न । इत्या ॥ ५ ॥

अन्वयः- १७५ शुभ्राः अयासः मरुतः साधारण्याइव यव्या परा मिमिक्षुः, घोराः रोदसी न अप नुदन्त, देवाः सख्याय वृधं जुषन्त ।

१७६ असु-र्या नृ-मनाः रोदसी यत् ईं सचध्यै जोषत्. वि-सित-स्तुका त्वेष-प्रतीका सूर्या-इव विधतः रथं नभसः इत्या न आ गात् ।

अर्थ- १७५ (शुभ्राः) तेजस्वी, (अयासः) शत्रु पर हमला करनेवाले (मरुतः) वीर मरुत् (साधारण्या-इव) सामान्य नारी के साथ जैसे लोग वर्ताव रखते हैं, उसी तरह (यव्या) जौ उत्पन्न करनेवाली धरती पर (परा मिमिक्षुः) वहुत वर्षा कर चुके हैं। (घोराः) उन देखते ही मनमें तनिक भय उत्पन्न करनेवाले मरुतोंने (रोदसी) आकाश एवं धरती को (न अप नुदन्त) दूर नहीं हटा दिया। अर्थात् उनकी उपेक्षा नहीं की, क्योंकि (देवाः) प्रकाशमान उन मरुतोंने (सख्याय) सवसे मित्रता प्रस्थापित करनेके लिए हीं (वृधं) वडप्पनका (जुषन्त) अंगिकार किया है।

१७६ (असु-र्या) जीवन देनेहारी और (नृ-मनाः) वीरों पर मन रखनेवाली (रोदसी) धरती या विद्युत् (यत् ईं) जो इनके (सचध्यै) सहवास के लिए (जोषत्) उनकी सेवा करती है। वह (वि-सित-स्तुका) केश सँवारकर ठीक वाँधे हुए (त्वेष-प्रतीका) तेजस्वी अवयववाली (सूर्याइव) सूर्यासावित्री के समान (विधतः रथं) विधाता के रथपर (नभसः इत्या न) सूर्य की गति के समान विशेष गति से (आ गात्) आ पहुँची।

भावार्थ- १७५ जो शूर तथा वीर हैं, वे उर्वरा भूमि को वडे परिश्रमपूर्वक जोतते हैं और मेघ भी ऐसी धरती पर यथेष्ट वर्षा करते हैं। जिस प्रकार सामान्य नारी से कोई भी सम्बन्ध रखता है, उसी प्रकार ये वीर भी भूलोक एवं द्युलोक में विद्यमान सब चीजों से मित्रतापूर्ण सम्पर्क प्रस्थापित करते हैं। इसीसे इन वीरों को वडप्पन प्राप्त हुआ है।

१७६ वीरों की पत्नी वीरों पर असीम प्रेम करती है और वह खूब सँवारकर तथा वन-ठन के या साज-सिंगार करके जैसे सावित्री पति के घर जाने के लिए विधाता के रथ पर बैठ गयी थी वैसे ही पतिगृह पहुँचने के लिए वह भी वीरों के रथ पर चढ जाती है।

(घृत-प्रची) तीक्ष्ण धारावाली (हिरण्य-निर्णिक्) स्वर्ण की न्याई कान्तिमय दिखाई देनेवाली (उपरा न) मेघकी विजली के समान चमकनेवाली (ऋष्टिः) वीरों की तलवार सदैव वीरोंके निकट रहा करती है, लेकिन वह कभी कभी (गुहा चरन्ती) परदे में रहती हुई नारी के समान अदृश्य रहती है, तो एकाध अवसर पर जिस प्रकार यज्ञमंडप में वेदवाणी प्रकट होती है, उसी तरह वह (विदथ्या) युद्धभूमिमें या रणमें अपना स्वरूप व्यक्त करती है। [१७५]
(१) यव्यं = (यवानां क्षेत्रं) = जिस धरती में जौ पैदा होते हों। (२) अयासः = गतिशील, आक्रमण करने-हारे। [१७६] (१) सूर्या = सूर्य की पुत्री, नवपरिणीता वधू। (२) इत्या = गति, जाना, सडक, पालकी, वाहन। (३) असु-र्या = जीवन प्रदान करनेवाली। (४) प्रतीक = अवयव, चेहरा। (५) नभस् = मेघ, जल, आकाश, सूर्य।

(१७७) आ । अस्थापयन्त । युवतिम् । युवानः । शुभे । निऽमिश्लाम् । विदथेषु । पज्राम् ।
अर्कः । यत् । वः । मरुतः । हविष्मान् ।
गायत् । गाथम् । सुतऽसोमः । दुवस्यन् ॥ ६ ॥

(१७८) प्र । तम् । विवक्मि । वक्म्यः । यः । एषाम् । मरुताम् । महिमा । सत्यः । अस्ति ।
सचा । यत् । ईम् । वृषऽमनाः । अहम्ऽयुः ।
स्थिरा । चित् । जनीः । वहते । सुऽभागाः ॥ ७ ॥

अन्वयः— १७७ (हे) मरुतः ! यत् अर्कः हविष्मान् सुत-सोमः वः दुवस्यन् विदथेषु गाथं आ गायत्, युवानः नि-मिश्लां पज्रां युवतिं शुभे अस्थापयन्त ।

१७८ एषां मरुतां यः वक्म्यः सत्यः महिमा अस्ति, तं प्र विवक्मि, यत् ईं स्थिरा चित् सचा वृष-मनाः अहं-युः सु-भागाः जनीः वहते ।

अर्थ- १७७ हे (मरुतः !) वीर मरुतो ! (यत्) जब (अर्कः) पूजनीय, (हविष्मान्) हविष्यान्न समीप रखनेवाला और (सुत-सोमः) जिसने सोमरस निचोड रखा है, वह (वः दुवस्यन्) तुम वीरों की पूजा करनेहारा उपासक (विदथेषु) यज्ञों में (गाथं) स्तोत्र का (आ गायत्) गायन करता है, तब (युवानः) तुम युवक वीर (नि-मिश्लां) नित्य सहवास में रहती हुई (पज्रां) बलशाली (युवतिं) नव-यौवना-स्वपत्नी को- (शुभे) अच्छे मार्ग में, यज्ञ में (अस्थापयन्त) प्रस्थापित करते हो, ले आते हो ।

१७८ (एषां मरुतां) इन वीर-मरुतों का (यः वक्म्यः) जो वर्णनीय एवं (सत्यः) सच्चा (महिमा अस्ति) बडप्पन है (तं प्र विवक्मि) उसका मैं भलीभाँति बखान करता हूँ। (यत् ईं) वह इस तरह कि यह (स्थिरा चित्) अटल धरती भी (सचा) इनका अनुसरण करनेवाली (वृष-मनाः) बलवानों से मनःपूर्वक प्रेम करनेहारी पर वीरपत्नी बनने की (अहं-युः) अहंकार धारण करनेवाली और (सु-भागाः) सौभाग्य युक्त (जनीः) प्रजा (वहते) धारण करती है, उत्पन्न करती है ।

भावार्थ- १७७ जब उपासक तुम्हारी प्रशंसा करते हैं, तब वीरों की धर्मपत्नी सन्मार्ग पर चलती हुई अपने पति का यश बढाती है ।

१७८ वीरों की महिमा इतनी अवर्णनीय है कि, धरतीमाता तक उनकी शूरता पर लुब्ध होकर अच्छी सामर्थ्यशाली प्रजा का धारणपोषण करती है । इन वीरों की महिलाएँ भी इनके पराक्रम से संतुष्ट होकर अच्छे गुणों से युक्त संतान को जन्म देती हैं ।

टिप्पणी- [१७७] (१) पज्र = बलशाली, सामर्थ्यवान् । (२) दुवस् = (दुवस्यति= सम्मान देता है, पूजा करता है) सम्मान, पूजा । दुवस्यन् = पूजा करनेवाला, सम्मान करनेहारा । मंत्र १८५ देखो । [१७८] (१) वक्मन् = (वच् परिभाषणे) स्तुतिस्तोत्र; वक्म्यः = स्तुत्य, वर्णनीय । (२) सच् = (समवाये सेचने सेवने च) = अनुसरण करना, निकटस्थ बनना, सहवास में रहना, आज्ञा मान लेना, सहायता करना । (३) जनिः = जन्म, उत्पत्ति (प्रजा) संतति । (४) वृष-मनाः = बलिष्ठ पर आसक्त होनेवाली, जिसका चित्त वर्षा पर लगा हो, बलवान मनवाली ।

(१७९) पान्ति । मित्राऽवरुणौ । अवद्यात् । चयते । ईम् । अर्यमो इति । अप्रऽशस्तान् । उत । च्यवन्ते । अच्युता । ध्रुवाणि । वावृधे । ईम् । मरुतः । दातिऽवारः ॥ ८ ॥

(१८०) नहि । नु । वः । मरुतः । अन्ति । अस्मे इति । आरात्तात् । चित् । शवसः । अन्तम् । आपुः । ते । धृष्णुना । शवसा । शूशुऽवांसः । अर्णः । न । द्वेषः । धृषता । परि । स्थुः ॥९॥

अन्वयः— १७९ (हे) मरुतः ! मित्रा-वरुणौ अवद्यात् ईं पान्ति, अर्यमा उ अ-प्रशस्तान् चयते, उत अ-च्युता ध्रुवाणि च्यवन्ते, ईं दाति-वारः वावृधे।

१८० (हे) मरुतः ! वः शवसः अन्तं अन्ति आरात्तात् चित् अस्मे नहि नु आपुः, ते धृष्णुना शवसा शूशुवांसः धृषता द्वेषः, अर्णः न, परि स्थुः।

अर्थ- १७९ हे (मरुतः !) वीर-मरुतो ! (मित्रा-वरुणौ) मित्र एवं वरुण (अवद्यात्) निंदनीय दोषों से (ईं पान्ति) रक्षण करते हैं। (अर्यमा उ) अर्यमा ही (अ-प्रशस्तान्) निंदा करनेयोग्य वस्तुओं को (चयते) एक ओर कर देता है और (उत) उसी प्रकार (अ-च्युता) न हिलनेवाले तथा (ध्रुवाणि) दृढ शत्रुओं को भी (च्यवन्ते) अपने पदों पर से ढकेल देते हैं, (ईं) यह तुम्हारा (दाति-वारः) दान का वर हमेशा (वावृधे) बढता जाता है। तुम्हारी सहायता अधिकाधिक मिलती रहती है।

१८० हे (मरुतः !) वीर-मरुतो ! (वः शवसः) तुम्हारी सामर्थ्य की (अन्तं) चरम सीमा (अन्ति) समीप से या (आरात्तात् चित्) दूर से भी (अस्मे) हमें (नहि नु आपुः) सचमुच प्राप्त नहीं हुई है। (ते धृष्णुना शवसा) वे वीर आवेशयुक्त बल से (शूशुवांसः) बढनेवाले, अपने (धृषता) शत्रुदल की धज्जियाँ उडानेवाले बल से (द्वेषः) शत्रुओं को (अर्णः न) जल के समान (परि स्थुः) घेर लेते हैं।

भावार्थ- १७९ उपासक को मित्र, वरुण तथा अर्यमा दोषों से और निंदा से बचाते हैं। उसी प्रकार ये वीर सुस्थिर शत्रुओं को भी पदभ्रष्ट करके सारी प्रजा को प्रगतिशील बनने में सहायता पहुँचाते हैं। सहायता करने का गुण इनमें प्रतिपल बढता ही रहता है।

१८० पराक्रम कर दिखलाने की जो शक्ति वीरों में अंतर्निगूढ बनी रहती है, उसकी चरम सीमाका ज्ञान अभी तक किसी को भी नहीं है। चूँकि उन वीरों में यह सामर्थ्य छिपा पडा है कि, इनके शत्रुओं को तुरन्त पराभूत तथा हतबल कर टाले, अतः वे प्रतिपल वर्धिष्णु ही बने रहते हैं। इसी दुर्दम्य शक्ति के सहारे वे शत्रु को घेरकर उसे विनष्ट कर देते हैं।

टिप्पणी- [१७९] (१) दातिः = (दा दाने) दान, त्याग, सहायता; (दा छेदने) काटना, तोडना। (२) वारः = वर, समूह, राशि, वेला, दिवस, सन्धि। [१८०] (१) धृषत् = शत्रुका पराभव करनेवाला, इस धर्षण करने की क्षमता से युक्त; (२) धृष्णु = वह साहसपूर्ण भाव कि जिससे शत्रुका पराभव अवश्य किया जाय। (३) द्विष् = द्वेष करनेवाला, दुश्मन।

(१८१) व॒यम् । अ॒द्य । इन्द्र॑स्य । प्रेष्ठाः । व॒यम् । श्वः । वो॒चेम॒हि । स॒ऽम॒र्ये ।
व॒यम् । पु॒रा । महिं॑ । च॒ । नः॒ । अनु॑ । द्यून् । तत् । नः॒ । ऋ॒भु॒क्षाः । न॒राम् । अनु॑ । स्या॒त् ॥१०॥
(१८२) ए॒षः । वः॒ । स्तोमः॑ । म॒रु॒तः॒ । इ॒यम् । गीः । मा॒न्दा॒र्यस्य॑ । मा॒न्यस्य॑ । का॒रोः ।
आ । इ॒षा । या॒सी॒ष्ट॒ । त॒न्वे॑ । व॒याम् । वि॒द्याम॑ । इ॒षम् । वृ॒जन॑म् । जी॒रऽदा॑नुम् ॥ ११ ॥

(ऋ.१।१६८।१—१०)

(१८३) य॒ज्ञाऽय॑ज्ञा । वः॒ । स॒मना॑ । तु॒तु॒र्वणि॑ः । धियं॑म्ऽधियम् । वः॒ । दे॒व॒ऽयाः । ऊँ इति॑ । द॒धि॒ध्वे ।
आ । वः॒ । अ॒र्वाच॑ः । सु॒वि॒ताय॑ । रोद॑स्योः । म॒हे । व॒वृ॒त्याम् । अव॑से । सु॒वृ॒क्तिऽभिः॑ ॥ १ ॥

अन्वयः— १८१ अद्य वयं इन्द्रस्य प्रेष्ठाः, वयं श्वः, पुरा वयं नः महि च द्यून् अनु स-मर्ये वोचेमहि, तत् ऋभुक्षाः नरां नः अनु स्यात्।

१८२ [ऋ० १।१६६।१५; १७२ देखिये।] [१८३] यज्ञा-यज्ञा वः स-मना तुतुर्वणिः, धियं-धियं देव-याः उ दधिध्वे, रोदस्योः सु-विताय महे अवसे सु-वृक्तिभिः वः अर्वाचः आ ववृत्यां।

अर्थ- १८१ (अद्य वयं) आज हम (इन्द्रस्य प्र-इष्ठाः) इन्द्र के अतीव प्रिय बने हैं (वयं) हम (श्वः) कल भी उसी तरह उसके प्यारे बनेंगे। (पुरा वयं) पहले हम (नः) हमें (महि च) बडप्पन मिल जाय इस लिए (द्यून् अनु) प्रतिदिन (स-मर्ये) युद्धों में (वोचेमहि) हम घोषित कर चुके हैं- प्रार्थना कर चुके (तत्) कि (ऋभु-क्षाः) वह इन्द्र (नरां) सब मानवों में (नः) हमें (अनु स्यात्) अनुकूल बने। १८२ [ऋ० १।१६६।१५; १७२ देखिये।]

१८३ (यज्ञा-यज्ञा) हर कर्म में (वः) तुम्हारा (स-मना) मन का सम भाव (तुतुर्वणिः) सेवा करने में त्वरा करने वाला है; तुम अपना (धियं-धियं) हर विचार (देव-याः उ) दैवी सामर्थ्य पाने की इच्छा से ही (दधिध्वे) धारण करते हो। (रोदस्योः) आकाश एवं पृथ्वी की (सुविताय) सुस्थिति के लिए तथा (महे अवसे) सब के पूर्ण रक्षण के लिए (सु-वृक्तिभिः) अच्छे प्रशंसनीय मार्गों से (वः) तुम्हें (अर्वाचः) हमारी ओर (आ ववृत्यां) आकर्षित करता हूँ।

भावार्थ- १८१ हम प्रभु से प्रार्थना करते हैं कि, अतीत वर्तमान एवं भविष्य तीनों कालों में वह हम पर कृपा-दृष्टि रखे जिससे हमें बडप्पन मिले और स्पर्धा में उसकी मदद से विजयी बनें।

१८२ [ऋ० १।१६६।१५; १७२ देखिये।]

१८३ वीरों के मन की संतुलित दशा ही उन्हें हर शुभ कार्य में प्रेरित करती है, स्फूर्ति प्रदान करती हैं। वे ख्याल करते हैं कि, दैवी शक्ति पाकर सब लोगों की सुस्थिति एवं सुरक्षा के लिए ही उसका उपयोग करना चाहिए। इसीलिए ऐसे महान वीरों को अपने अनुकूल बनाना चाहिए।

टिप्पणी- [१८१] (१) मर्यः = मर्त्य, मानव। (२) स-मर्य = मर्त्योंसे युक्त, सभा, समाज, यज्ञ, युद्ध। (३) द्यु = दिवस, आकाश, स्वर्ग, प्रकाश। (४) ऋभु-क्षाः = (ऋभु) कारीगरों एवं शिल्पियों को (क्षाः) सुखी जीवन देनेहारा, शिल्पनिपुण लोगों का पालन कर्ता, इन्द्र। [१८३] (१) सु-वित = उत्तम दशा वैभव, अच्छी राह। (२) स-मना = समत्व, मिलकर रहना, एक ही समय। (३) तुतुर्वणिः (तुतुर्-वनिः) = त्वरापूर्वक कार्य निभाने का स्वभाव। (४) सु-वृक्ति = प्रशंसा, स्तुति। (५) आ-वृत् = पुनः पुनः आकृष्ट करना।

(१८४) व॒व्रासः॑ । न । ये । स्व॒ऽजाः । स्वऽतंवसः । इषम् । स्वः॑ । अ॒भिऽजायन्त । धूतयः ।
स॒ह॒स्रियासः । अ॒पाम् । न । ऊर्मयः । आ॒सा । गावः॑ । वन्द्यासः । न । उ॒क्षणः॑ ॥ २ ॥

(१८५) सोमासः । न । ये । सुताः । तृप्तऽअंशवः । हृ॒त्ऽसु । पी॒तासः॑ । दु॒वसः॑ । न । आसते ।
आ । ए॒षाम् । अंसेषु । र॒म्भिणीऽइव । र॒र॒भे । हस्तेषु । खा॒दिः । च॒ । कृतिः । च॒ ।
सम् । द॒धे ॥ ३ ॥

अन्वयः— १८४ ये वव्रासः न, स्व-जाः स्व-तवसः धूतयः इषं स्वः अभिजायन्त, अपां ऊर्मयः न, सहस्रि-यासः, वन्द्यास गावः उक्षणः न आसा।

१८५ सुताः पीतासः हृत्सु तृप्त-अंशवः सोमाः न, ये दुवसः न, आसते, एषां अंसेषु रम्भिणी-इव आ ररभे, हस्तेषु च खादिः कृतिः च सं दधे।

अर्थ-- १८४ (ये) जो (वव्रासः न) सुरक्षित स्थानों के समान सबको सुरक्षित रखते हैं और जो (स्व-जाः) अपनी निजी स्फूर्ति से कार्य करते हैं और (स्व-तवसः) अपने बलसे युक्त होनेके कारण (धूतयः) शत्रुओं को हिला देते हैं वे (इषं) अन्नप्राप्ति तथा (स्वः) स्वप्रकाश के लिए ही (अभिजायन्त) सभी तरहसे जन्मे होते हैं, वे (अपां ऊर्मयः न) जलके तरंगों के समान (सहस्रि-यासः) हजारों लोगों को प्रिय होते हैं। वेही (वन्द्यासः गावः उक्षणः न) पूज्य गौ तथा बैलों के समान (आसा) हमारे समीप रहें।

१८५ (सुताः) निचोडे हुए (पीतासः) पिये हुए (हृत्सु) हृदय में जाकर (तृप्त-अंशवः) तृप्ति करनेवाले (सोमाः न) सोमरस के समान, (दुवसः न) पूज्य मानवों के समानही जो वीर पुरुष राष्ट्र में (आसते) रहते हैं (एषां अंसेषु) उनके कंधों पर (रम्भिणीइव) लट्ठ ले चढाई करनेवाली सैनी के समान हथियार (आ ररभे) विद्यमान हैं। उसी प्रकार उनके (हस्तेषु खादिः) हाथों में अलंकार तथा (कृतिः च) तलवार भी (सं दधे) भली प्रकार धरे हुए हैं।

भावार्थ-- १८४ स्वयं प्रेरणा से ही वीर सैनिक जनता का संरक्षण करने के लिए आगे आते हैं। अपनी शक्ति से शत्रुओं का नाश करके वे जनता को भययुक्त करते हैं। वे मानों लोगों को अन्न एवं तेजस्विता देने के लिए ही जन्मे हों। पानी के समान सभी लोग उन्हें चाहते हैं और सब की यही इच्छा है कि, गाय बैल जैसे वे अपने समीप सदैव रहें।

१८५ सोमरस के सेवन के उपरान्त जैसे हर्ष एवं उमंग में वृद्धि होती है उसी प्रकार जो वीर जनता में कर्म करने का उत्साह बढाते हैं उनके कंधों पर हथियार और हाथ में ढाल तलवार दिखाई देते हैं।

टिप्पणी-- [१८४] (१) आसा =(आस्, आसः) मुख, समीप, आँखोंके सामने, सहमने, बिलकुल समीप। (२) वव्रासः = (वव्रः = आश्रयस्थान, ढँकी हुई सुरक्षित जगह, जहाँ रहने पर अच्छी रक्षा हो सकती हो, आश्रय-स्थान; गुहा। (३) स्व-जः = अपनी प्रेरणा से आगे बढनेवाला, दूसरे के दबाव से नहीं। (४) स्वः (स्व-रा) आत्मतेज, अपना प्रकाश (५) ऊर्मि = लहर, तरंग। [१८५] (१) अंशुः = सोमवल्ली, सोमरस। (२) कृतिः = (कृती छेदने= काटना)= काटनेवाला आयुध, तलवार। (३) रम्भ = लकडी, लाठी। रम्भिणी = लाठी लेकर चढाई करने वाली सेना। भाले के समान शस्त्र।

(१८६) अव । स्वऽयुक्ताः । दिवः । आ । वृथा । ययुः । अमर्त्याः । कशया । चोदत । त्मना ।
अरेणवः । तुविऽजाताः । अचुच्यवुः । दृळ्हानि । चित् ।
मरुतः । भ्राजत्ऽऋष्टयः ॥ ४ ॥

(१८७) कः । वः । अन्तः । मरुतः । ऋष्टिऽविद्युतः । रेजति । त्मना । हन्वाऽइव । जिह्वया ।
धन्वऽच्युतः । इषाम् । न । यामनि । पुरुऽप्रैषाः । अहन्यः । न । एतशः ॥ ५ ॥

अन्वयः— १८६ स्व-युक्ताः दिवः वृथा अव आ ययुः, (हे) अ-मर्त्याः ! त्मना कशया चोदत, अ-रेणवः तुवि-जाताः भ्राजत्-ऋष्टयः मरुतः दळ्हानि चित् अचुच्यवुः ।

१८७ (हे) ऋष्टि-विद्युतः मरुतः ! इषां पुरु-प्रैषाः धन्व-च्युतः न, अ-हन्यः एतशः न, वः अन्तः त्मना जिह्वया हन्वाइव कः रेजति ।

अर्थ- १८६ (स्व-युक्ताः) स्वयं ही कर्म में निरत होनेवाले वे वीर (दिवः) द्युलोक से (वृथा) अनायासही (अव आ ययुः) नीचे आये हुए हैं । हे (अ-मर्त्याः !) अमर वीरो ! (त्मना) तुम अपने (कशया) कोडे से घोडों को (चोदत) प्रेरित करो । ये (अ-रेणवः) निर्मल (तुवि-जाताः) बल के लिए प्रसिद्ध तथा (भ्राजत्-ऋष्टयः) तेजस्वी हथियार धारण करनेवाले (मरुतः) वीर मरुत् (दळ्हानि चित्) सुदृढों को भी (अचुच्यवुः) हिला देते हैं ।

१८७ हे (ऋष्टि-विद्युतः मरुतः !) आयुधों से विराजमान वीर मरुतो ! तुम (इषां) अन्न के लिए (पुरु-प्रैषाः) बहुत प्रेरणा करनेहारे हो । (धन्व-च्युतः न) धनुष्य से छोडे हुए बाण की न्याईं या (अ-हन्यः) जिसे मारने की कोई आवश्यकता नहीं, ऐसे (एतशः न) सिखाये हुए घोडे के समान (वः अन्तः) तुममें (त्मना) स्वयं ही (जिह्वया) जीभ के साथ-वाणीसहित (हन्वाइव) ठुड्डी जैसे हिलती है, वैसेही (कः रेजति ?) कौन भला प्रेरणा करता है ?

भावार्थ- १८६ अपनी ही इच्छा से कार्य करनेवाले ये वीर दिव्यस्वरूपी हैं और निष्काम भाव से विविध कार्यों में जुट जाते हैं । इन निर्मल एवं तेजस्वी वीरों में इतनी क्षमता है कि, प्रबल शत्रुओं में भी क्या मजाल कि इनके सामने खडे रह सके ।

१८७ वीर सैनिक अन्न की वृद्धि के लिए बहुत प्रयत्न करते हैं । धनुष्य से छोडा हुआ तीर जैसे ठीक पहुँच जाता है, वैसे ही या भली भाँति सिखाया हुआ घोडा जैसे ठीक चलता रहता है, वैसे ही तुम जो कार्य-भार उठाते हो, उसे अच्छी तरह निभाते हो । भला इसमें तुम्हें अन्तःप्रेरणा कैसे मिलती होगी ?

टिप्पणी- [१८६] (१) रेणुः = धूलिकण, मल, अरेणु = स्वच्छ, दोषरहित । (२) स्व-युक्ताः = (स्वैः युक्ताः, स्वेन युक्ताः स्वे युक्ताः) = अपने सभी वीरों के साथ, स्वयं ही अपने आप को प्रेरित करनेवाले, अपनी आयोजना स्वयं तैयार करनेवाले, खुद ही काम में तत्पर होनेवाले । (३) युक्त = जुडा हुआ, एक स्थान पर लाया हुआ, योग्य, कुशल, कर्मों में कुशल (गीता), सिद्ध । (४) वृथा = व्यर्थ, जिसमें विशेष स्वार्थका कोई हेतु न हो इस ढंग से, आसानी से । [१८७] (१) पुरु-प्रैषा = भाँति भाँति की प्रेरणाएँ, इच्छाएँ, आकांक्षाएँ । (२) अ-हन्यः = जिसे मारने या फटकारने की कोई जरूरत न हो । (३) [अहन्-यः = दिन में होनेवाला, प्रकाशकिरण ।] (४ एतशः = घोडा, सिखाया हुआ घोडा, प्रकाशकिरण, ।

(१८८) क्व । स्वित् । अस्य । रजसः । मुहः । परम् । क्व । अवरम् । मरुतः । यस्मिन् । आऽयय । यत् । च्यवयथ । विथुराऽइव । समूऽहितम् । वि । अद्रिणा । पतथ । त्वेषम् । अर्णवम् ॥६॥

(१८९) सातिः । न । वः । अमऽवती । स्वःऽवती । त्वेषा । विऽपाका । मरुतः । पिपिष्वती । भद्रा । वः । रातिः । पृणतः । न । दक्षिणा । पृथुऽज्रयी । असुर्याऽइव । जञ्जती ॥७॥

अन्वयः— १८८ (हे) मरुतः! यस्मिन् आयय, अस्य महः रजसः परं क्व स्वित्? अवरं क्व? यत् सं-हितं च्यवयथ, अद्रिणा वि-थुराइव त्वेषं अर्णवं वि पतथ।

१८९ (हे) मरुतः! वः सातिः न, वः रातिः अम-वती स्वर्-वती त्वेषा वि-पाका पिपिष्वती भद्रा, पृणतः दक्षिणा न, पृथु-ज्रयी असुर्याइव जञ्जती।

अर्थ- १८८ हे (मरुतः!) वीर मरुतो! (यस्मिन्) जहाँ से (आयय) तुम आते हो, (अस्य महः रजसः) उस प्रसिद्ध विस्तृत अंतरिक्षलोक का (परं क्व स्वित्?) उस ओर का छोर कौनसा है? (अवरं क्व?) और इस ओर का भी कौन है? (यत्) जब कि तुम (सं-हितं) इकट्ठे हुए मेघों को तथा शत्रुओं को (च्यवयथ) हिला देते हो, उस समय (अद्रिणा) वज्र से (वि-थुराइव) निराश्रित के समान (त्वेषं अर्णवं) उन तेजस्वी मेघों या शत्रुओं को तुम (वि पतथ) नीचे गिरा देते हो।

१८९ हे (मरुतः!) वीर-मरुतो! (वः सातिः न) तुम्हारी देन के समान ही (वः रातिः) तुम्हारी कृपा भी (अम-वती) बलवान्, (स्वर्-वती) सुख देनेवाली, (त्वेषा) तेजस्वी, (वि-पाका) विशेष फल देनेवाली, (पिपिष्वती) शत्रुदल को चकनाचूर करनेवाली तथा (भद्रा) कल्याणकारक है; (पृणतः दक्षिणा न) जनता को संतुष्ट करनेवाले धनाढ्य पुरुष की दी हुई दक्षिणा के समान (पृथु-ज्रयी) विशेष विजय दिलानेवाली और (असुर्याइव) दैवी शक्ति के समान (जञ्जती) शत्रु से जूझनेवाली है।

भावार्थ- १८८ महान् तथा असीम अंतरिक्ष में से तुम आते हो और बादलों तथा दुश्मनों को विचलित करते हो। एवं निराधारों के समान उन्हें नीचे गिरा देते हो। (इस मंत्र में बादल और शत्रुओं के बारे में समान भाव व्यक्त किये हैं।)

१८९ वीरों का दान तथा दयालुता शक्ति, सुख, तेजस्विता और कल्याण प्रदान करनेवाली है ही, पर उसी से शत्रु का नाश करने की सामर्थ्य भी मिल जाती है।

टिप्पणी-[१८८] (१) वि-थुरा = निराश्रित, विधवा नारी। [१८९] (१) सातिः = देन, स्वीकार, नाश, सहायता, अंत, संपत्ति। (२) रातिः = उदार, तैयार, मित्र, दान, कृपा। (३) दक्षिणा = देन, कीर्ति, दुधारु गौ, दक्षिण दिशा। (४) जज्, जञ्ज् = जाना, लडना, शत्रुको हराना। (५) अम = बल, दबाव, रोब, भय, रोग, अनुयायी, प्राणवायु, अपरिमित। (६) वि-पाका = उत्तम परिपाक करनेहारी। (७) असुर्य = दैवी। (८) पिपिष्वती = चूर्ण करनेवाली, चकनाचूर करनेवाली। (९) ज्रि = जय पाना, पराभव करना; पृथु-ज्रयी = विशेष विजय देनेवाली, विशेष व्यापक।

(१९०) प्रति । स्तोभन्ति । सिन्धवः । पविऽभ्यः । यत् । अभ्रियाम् । वाचम् । उत्ऽईरयन्ति ।
अव । स्मयन्त । विऽद्युतः । पृथिव्याम् ।
यदि । घृतम् । मरुतः । प्रुष्णुवन्ति ॥ ८ ॥

(१९१) असूत । पृश्निः । महते । रणाय । त्वेषम् । अयासाम् । मरुताम् । अनीकम् ।
ते । सप्सरासः । अजनयन्त । अभ्वम् ।
आत् । इत् । स्वधाम् । इषिराम् । परि । अपश्यन् ॥ ९ ॥

अन्वयः— १९० यत् पविभ्यः अभ्रियां वाचं उदीरयन्ति, सिन्धवः प्रति स्तोभन्ति, यदि मरुतः घृतं प्रुष्णुवन्ति, पृथिव्यां विद्युतः अव स्मयन्त ।

१९१ पृश्निः महते रणाय अयासां मरुतां त्वेषं अनीकं असूत, ते सप्सरासः अभ्वं अजनयन्त आत् इत् इषिरां स्व-धां परि अपश्यन् ।

अर्थ- १९० (यत्) जब ये वीर (पविभ्यः) रथ के पहियों से (अभ्रियां वाचं) मेघसदृश गर्जना (उदीरयन्ति) प्रवर्तित कर देते हैं, तब (सिन्धवः) नदियाँ (प्रति स्तोभन्ति) चौखला उठती हैं (यदि) जिस समय (मरुतः) वीर मरुत् (घृतं) जल (प्रुष्णुवन्ति) बरसने लगते हैं तब (पृथिव्यां) धरती पर (विद्युतः) बिजलियाँ मानों (अव स्मयन्त) हँसती हैं, ऐसा जान पडता है ।

१९१ (पृश्निः) मातृभूमि ने (महते रणाय) बडे भारी संग्राम के लिए (अयासां मरुतां) गतिमान् वीर मरुतों का (त्वेषं अनीकं) तेजस्वी सैन्य (असूत) उत्पन्न किया। (ते सप् सरासः) वे इकट्ठे होकर हलचल करनेवाले वीर (अभ्वं अजनयन्त) बडी शक्ति प्रकट कर चुके। (आत् इत्) तदुपरान्त उन्होंने (इषि-रां स्व-धां) अन्न देनेवाली अपनी धारक शक्ति को ही (परि अपश्यन्) चतुर्दिक् देख लिया ।

भावार्थ- १९० (आधिभौतिक अर्थ-) इन वीरों का रथ चलने लगे, तो मेघों की दहाडसी सुनाई पडती है और नदियों को पार करते समय जलप्रवाह में भारी खलबली मच जाती है । (आधिदैविक अर्थ-) जब वायुप्रवाह बहने लगते हैं, तब मेघगर्जना हुआ करती है, दामिनी की दमक दीख पडती है और मूसलाधार वर्षाके फलस्वरूप नदियों में महान् बाढ आती है ।

१९१ शत्रु से जूझने के लिए मातृभूमि की प्रेरणा से वीरों की प्रचंड सेना अस्तित्व में आ गयी । एकत्रित बनकर शत्रु पर टूट पडनेवाले इन वीरों ने युद्ध में बडी भारी शक्ति प्रकट की और उन्होंने देखा कि, उस शक्तिमें अन्न का सृजन करने की क्षमता थी ।

टिप्पणी- [१९०] (१) स्तुभ् = (स्तम्भ्) = स्तब्ध होना; प्रति + स्तुभ् = खलबली मचाना । (२) प्रुष् = (स्नेहनसेवनपूरणेषु) वृष्टि करना, गीला करना । (३) पवि = पहिये की पट्टी, वाणी, वज्र, भाले की नोक । [१९१] (१) सप्-सराः = [(सप्- समवाये) इकट्ठे होना; सृ = (गतौ) सरकना, जाना.] मिलजुलकर इकट्ठे होकर जानेवाले, संघरूप होकर लडनेवाले । (२) अभ्वं = बडा भव्य, अभूतपूर्वशक्ति (३) इषि-र = रसपूर्ण, उत्तेजक, बलवान्, चपल, अग्नि, अन्न देनेवाला ।

*

(१९२) एषः । वः । स्तोमः । मरुतः । इयम् । गीः । मान्दार्यस्य । मान्यस्य । कारोः ।
आ । इषा । यासीष्ट । तन्वे । वयाम् । विद्याम । इषम् । वृजनम् । जीरऽदानुम् ॥ १० ॥

(ऋ० १ । १७१ । १-२)

(१९३) प्रति । वः । एना । नमसा । अहम् । एमि । सुऽउक्तेन । भिक्षे । सुऽमतिम् । तुराणाम् ।
रराणता । मरुतः । वेद्याभिः । नि । हेळः । धत्त । वि । मुचध्वम् । अश्वान् ॥ १ ॥

(१९४) एषः । वः । स्तोमः । मरुतः । नमस्वान् । हृदा । तष्टः । मनसा । धायि । देवाः ।
उप । ईम् । आ । यात । मनसा । जुषाणाः । यूयम् । हि । स्थ । नमसः । इत् । वृधासः ॥२॥

अन्वयः- १९२ [ऋ. १।१६६।१५; १७२ देखिये ।]

१९३ (हे) मरुतः ! अहं एना नमसा सूक्तेन वः प्रति एमि, तुराणां सु-मतिं भिक्षे, वेद्याभिः रराणता हेळः निधत्त, अश्वान् वि मुचध्वं ।

१९४ (हे) मरुतः ! एषः नमस्वान् हृदा तष्टः वः स्तोमः मनसा धायि, (हे) देवाः ! मनसा ईं जुषाणाः उप आ यात, हि यूयं नमसः इत् वृधासः स्थ ।

अर्थ- १९२ [ऋ० १।१६६।१५; १७२ देखिये ।]

१९३ हे (मरुतः !) वीर मरुतो ! (अहं एना नमसा) मैं इस नमनसे तथा इस (सूक्तेन) स्तुति से (वः प्रति एमि) तुम्हारे समीप आता हूँ-तुम्हारी उपासना करता हूँ। (तुराणां) वेगसे जानेवाले तुम वीरों की (सु-मतिं) अच्छी बुद्धि की मैं (भिक्षे) याचना करता हूँ । (वेद्याभिः) इन जाननेयोग्य स्तुतियों से (रराणता) आनन्दित हुए मनसे तुम अपना (हेळः) द्वेष (नि धत्त) एक ओर धर दो, उसे हमारे निकट आने न दो, (अश्वान्) अपने रथ के घोडों को (वि मुचध्वं) मुक्त करो अर्थात् तुम इधर ही रहो, यहाँ से अन्य किसी जगह न चले जाओ ।

१९४ हे (मरुतः !) वीर मरुतो ! (एषः) यह (नमस्वान्) नम्रतासे (हृदा तष्टः) मनःपूर्वक रचा हुआ (वः स्तोमः) तुम्हारा काव्य (मनसा धायि) एकतान बन के सुनो- अपने मनमें इसे स्थान दो, हे (देवाः !) द्योतमान वीरो ! (मनसा ईं) मनसे यह हमारा काव्य (जुषाणाः) स्वीकार कर तुम (उप आ यात) हमारी ओर आओ । (यूयं हि) क्योंकि तुम (नमसः इत्) सत्कर्मों की ही, अन्नकी ही (वृधासः) समृद्धि करनेवाले हो ।

भावार्थ- १९२ [ऋ० १।१६६।१५; १७२ देखिये ।]

१९३ मैं इन वीरोंकी उपासना करता हूँ, उनके निकट जाकर रहना चाहता हूँ और चेष्टा करता हूँ कि, इनकी अच्छी बुद्धि से लाभ उठा सकूँ। वे हमपर कभी क्रोध न करें और वे प्रसन्नचित्त हो लगातार हमारे निकट निवास करें । बस यही मेरी लालसा है ।

१९४ हे वीरो ! हमने बडी भक्ति से यह तुम्हारा काव्य बनाया है, तनिक ध्यानपूर्वक इसे सुनिए, हमारे समीप आइए और हमारे लिए अन्नकी वृद्धि कीजिए ।

टिप्पणी- [१९३] (१) रण् = (गतौ शब्दे च) = शब्द करना, हर्षित होना । (२) रराणत् = आनन्दित हुआ, प्रसन्न हुआ । (३) हेळः= (हेडः= हेलः=हेळः=hate) अनादर, तिरस्कार, घृणा, (क्रोध,) द्वेष । [१९४] (१) तष्ट = [तक्ष्= तनूकरणे = काटना, ठीक ठीक बना देना, आरेसे चीरना] अच्छी तरह बनाया हुआ, भली भाँति निर्मित । (२) हृदा तष्टः = मनःपूर्वक किया हुआ, लगन से रचा हुआ । (३) नमस् = नमस्कार, अन्न, वज्र, दान, यज्ञ (सत्कर्म) ।

(ऋ० १। १७२ । १-३)

(१९५) चित्रः । वः । अस्तु । यामः । चित्रः । ऊती । सुऽदानवः ।
मरुतः । अहिऽभानवः ॥ १ ॥

(१९६) आरे । सा । वः । सुऽदानवः । मरुतः । ऋञ्जती । शरुः ।
आरे । अश्मा । यम् । अस्यथ ॥ २ ॥

(१९७) तृणऽस्कन्दस्य । नु । विशः । परि । वृङ्क्त । सुऽदानवः ।
ऊर्ध्वान् । नः । कर्त । जीवसे ॥ ३ ॥

अन्वयः— १९५ (हे) सु-दानवः अ-हि-भानवः मरुतः ! वः यामः ऊती चित्रः अस्तु ।
१९६ (हे) सु-दानवः मरुतः ! वः सा ऋञ्जती शरुः आरे, यं अस्यथ अश्मा आरे ।
१९७ (हे) सु-दानवः ! तृण-स्कन्दस्य विशः नु परि वृङ्क्त, नः जीवसे ऊर्ध्वान् कर्त ।

अर्थ- १९५ हे (सु-दानवः !) अच्छे दानशूर और (अ-हि-भानवः) जिनका तेज कभी न घट जाता है, ऐसे (मरुतः !) वीर मरुतो ! (वः) तुम्हारी (यामः) हलचल (चित्रः) आश्चर्यकारक तथा तुम्हारी (ऊती) संरक्षणक्षम शक्ति भी (चित्रः [चित्रा]) आश्चर्यकारक (अस्तु) होवे।

१९६ हे (सु-दानवः मरुतः !) भली भाँति दान देनेवाले वीर मरुतो ! (वः) वह तुम्हारा (ऋञ्जती) वेगसे शत्रुदलपर टूट पडनेवाला (शरुः) हथियार हमसे (आरे) दूर रहे। (यं अस्यथ) जिसे तुम शत्रुपर फेंक देते हो, वह (अश्मा) वज्र भी हमसे (आरे) दूर रहने पाय।

१९७ हे (सु-दानवः !) अच्छे दानशूर वीरो ! (तृण-स्कन्दस्य) तिनके के समान आसानीसे नष्ट होनेवाले (विशः) इन प्रजाजनों का नाश (नु) शीघ्रही (परि-वृङ्क्त) दूर हटा दो, अर्थात् उन्हें सुरक्षित रखो। (नः जीवसे) हम बहुत दिनोंतक जीवित रहें, इसलिए हमें (ऊर्ध्वान् कर्त) उच्च कोटिके बना दो।

भावार्थ- १९५ शत्रुदल पर चढाई करने की वीरों की योजना बडी ही विलक्षण है और रक्षण करने की शक्ति भी बहुत बडी है।

१९६ वीरों का हथियार हम पर न गिरे।

१९७ जो जनता तिनके के समान सुगमता से विनष्ट होती हो, उसे बचा कर उच्च पदतक ले जाओ और दीर्घायुष्यसंपन्न करो।

टिप्पणी [१९५] (१) अ-हि-भानवः = (अ-हीन-भानवः = अ-हीयमान- भानवः) = जिनका तेज कभी कम न होता हो। (२) दान-वः = (दा-दाने) = दान देनेवाले, उदार, देव। दान-वः = (दा-छेदने) = टुकडे करनेवाले, कत्ल करनेवाले, राक्षस। [१९६] (१) ऋञ्ज् = वेगसे जाना, दौडना, प्रयत्न करना, अलंकृत करना। ऋञ्जती = वेगसे जानेवाली, सरकनेवाली, सरपट जानेवाली। (२) शरुः = बाण, तीर, शस्त्र, वज्र, क्रोध। (३) अश्मन् = पत्थर, (पत्थर जैसा कडा हथियार) मेघ, वज्र, पहाड, ओले। (४) आरे = दूर, समीप। [१९७] (१) स्कन्द् = (गतिशोषणयोः) गिर पडना, नष्ट होना, हिलना, सूख जाना। (२) तृण-स्कन्द = घासफूस या तिनके की न्याई इधर उधर पडे रहना, सूख जाना। (३) ऊर्ध्व = ऊँचा।

शुनकपुत्र गृत्समदऋषि (पहले शुनहोत्रपुत्र आङ्गिरस और उसके बाद शुनकपुत्र भार्गव) (ऋ० २।३०।११)

(१९८) तम् । वः । शर्धम् । मारुतम् । सुम्नऽयुः । गिरा ।
उप । ब्रुवे । नमसा । दैव्यम् । जनम् ।
यथा । रयिम् । सर्वऽवीरम् । नशामहै । अपत्यऽसाचम् । श्रुत्यम् । दिवेऽदिवे ॥११॥

(ऋ० २।३४ । १-१५)

(१९९) धाराऽवराः । मरुतः । धृष्णुऽओजसः । मृगाः । न । भीमाः । तविषीभिः । अर्चिनः ।
अग्नयः । न । शुशुचानाः । ऋजीषिणः । भृमिम् । धमन्तः । अप । गाः । अवृण्वत ॥१॥

अन्वयः— १९८ वः तं दैव्यं जनं मारुतं शर्धं सुम्न-युः नमसा गिरा उप ब्रुवे, यथा सर्व-वीरं अपत्य-साचं श्रुत्यं रयिं दिवे-दिवे नशामहै ।

१९९ धारा-वराः धृष्णु-ओजसः, मृगाः न भीमाः, तविषीभिः अर्चिनः, अग्नयः न, शुशुचानाः ऋजीषिणः भृमिं धमन्तः मरुतः गाः अप अवृण्वत ।

अर्थ- १९८ (वः) तुम्हारे (तं) उस (दैव्यं) तेजस्वी (जनं) प्रकट हुए (मारुतं शर्धं) वीर मरुतों के बल की, (सुम्न-युः) मैं सुखको चाहनेवाला, (नमसा) नमनसे और (गिरा) वाणी से (उप ब्रुवे) सराहना करता हूँ । (यथा) इस उपाय से हम (सर्व-वीरं) सभी वीरों से युक्त (अपत्य-साचं) पुत्र-पौत्रादिकों से युक्त तथा (श्रुत्यं) कीर्तिसे युक्त (रयिं) धनको (दिवे-दिवे) प्रति दिन (नशामहै) प्राप्त करें ।

१९९ (धारा-- वराः) युद्ध के मोर्चे पर श्रेष्ठ प्रतीत होनेवाले, (धृष्णु-ओजसः) शत्रु को पछाडने के बलसे युक्त, (मृगाः न भीमाः) सिंहकी न्याईं भीषण, (तविषीभिः) निज बल से (अर्चिनः) पूजनीय ठहरे हुए, (अग्नयः न) अग्नि के जैसे (शुशुचानाः) तेजस्वी, (ऋजीषिणः) वेग से जानेवाले या सोमरस पीनेवाले और (भृमिं) वेग को (धमन्तः) उत्पन्न करनेहारे (मरुतः) वीर मरुत् (गाः) किरणों को [या गौओं को] शत्रु के कारागृह से (अप अवृण्वत) रिहा कर देते हैं ।

भावार्थ- १९८ में वीरों के बल की प्रशंसा करता हूँ । इससे हम सभी को वीरतायुक्त धन मिलता रहे । वह धन इस भाँति मिले कि, उसके साथ शूरता, वीरता, धीरज, वीर संतान एवं यश भी प्राप्त हो। अगर शूरता आदि स्पृहणीय गुणों से रहित धन हो, तो हमें वह नहीं चाहिए ।

१९९ ये वीर घमासान लडाई के मोर्चे पर श्रेष्ठता सिद्ध कर दिखाते हैं और वीरतापूर्ण कार्य करके बतलाते हैं। वे शत्रु को पछाड देते हैं । अपने निजी बलसे उच्च कोटिके कार्य निष्पन्न करके वंदनीय बन जाते हैं । शत्रुदलको हराकर अपहरण की हुई गौओं को छुडा लाते हैं ।

टिप्पणी— [१९८] (१) नश् = (अदर्शने) अभाव में विलीन होना, पहुँचना, पाना, मिलना । (२) जनं = जन्-जनी प्रादुर्भावे) = उत्पन्न हुआ । (३) सर्व-वीरं = सभी तरह की शूरताकी शक्तियों से परिपूर्ण । [१९९] (१) धारा = ओघ प्रवाह, सेना का मोर्चा, समूह, कीर्ति, सादृश्य, भाषण । (२) अर्चिन् = पूजा करनेवाला, प्रकाशमान (तविषीभिः अर्चिनः = बल से तेजस्वी या बल से मातृभूमि की पूजा करनेहारे ।) (३) ऋज् (गतिस्थानार्जनोपार्जनेषु) जाना, प्राप्त करना, अपनी जगह स्थिर रहना, बलवान होना । (४) ऋजीषिन् = गतिमान, स्थिर, बलिष्ठ, रस निचोडने पर बचा हुआ अंश, सोम । (५) मृगः = सिंह, जानवर । (६) भृमिः = भ्रमण, झंझावात, शीघ्रता, आवर्त ।

(२००) द्यावः । न । स्तृऽभिः । चितयन्त । खादिनः ।
वि । अभ्रियाः । न । द्युतयन्त । वृष्टयः ।
रुद्रः । यत् । वः । मरुतः । रुक्मऽवक्षसः ।
वृषा । अजनि । पृश्न्याः । शुक्रे । ऊधनि ॥ २ ॥

(२०१) उक्षन्ते । अश्वान् । अत्यान्ऽइव । आजिषु ।
नदस्य । कर्णैः । तुरयन्ते । आशुऽभिः ।
हिरण्यऽशिप्राः । मरुतः । दविध्वतः । पृक्षम् । याथ । पृषतीभिः । सऽमन्यवः ॥३॥

अन्वयः— २०० स्तृभिः न द्यावः खादिनः चितयन्त, वृष्टयः, अभ्रियाः न, वि द्युतयन्त, यत् (हे) रुक्म-वक्षसः मरुतः ! वः वृषा रुद्रः पृश्न्याः शुक्रे ऊधनि अजनि ।

२०१ अत्यान् इव अश्वान् उक्षन्ते, नदस्य कर्णैः आशुभिः आजिषु तुरयन्ते, (हे) हिरण्य-शिप्राः स-मन्यवः मरुतः ! दविध्वतः पृषतीभिः पृक्षं याथ ।

अर्थ— २०० (स्तृभिः न) नक्षत्रों से जिस प्रकार (द्यावः) द्युलोक उसी प्रकार (खादिनः) कँगन-धारी वीर इन आभूषणों से (चितयन्त) सुहाते हैं । (वृष्टयः) बल की वर्षा करनेहारे वे वीर (अभ्रियाः न) मेघ में विद्यमान बिजली के समान (वि द्युतयन्त) विशेष ढंग से द्योतमान होते हैं । (यत्) क्योंकि हे (रुक्म-वक्षसः) उरोभाग पर मुहरों के हार पहननेवाले (मरुतः !) वीर मरुतो ! (वः) तुम्हें (वृषा रुद्रः) बलिष्ठ रुद्र (पृश्न्याः) भूमि के (शुक्रे ऊधनि) पवित्र उदरमें से (अजनि) निर्माण कर चुका ।

२०१ (अत्यान् इव) घुडदौड के घोडों के समान अपने (अश्वान्) घोडों को भी ये वीर (उक्षन्ते) बलिष्ठ करते हैं । वे (नदस्य कर्णैः) नाद करनेवाले, हिनहिनानेवाले (आशुभिः) घोडों-सहित (आजिषु) युद्धों में, चढाई के समय (तुरयन्ते) वेग से चले जाते हैं । हे (हिरण्य-शिप्राः) सोने के साफे पहने हुए (स-मन्यवः) उत्साही (मरुतः !) वीर मरुतो ! (दवि-ध्वतः) शत्रुओं को हिलानेवाले तुम (पृषतीभिः) धब्बेवाली हिरनियोंसहित (पृक्षं याथ) अन्न के समीप जाते हो ।

भावार्थ— २०० वीरों के आभूषण पहनने पर ये वीर बहुत भले दिखाई देते हैं और वे बिजली के समान चमकने लगते हैं । मातृभूमि की सेवा के लिए ही ये अस्तित्व में आ चुके हैं ।

२०१ वीर मरुत् अपने घोडोंको पुष्टिकारक अन्न देकर, उन्हें बलवान् बना देते हैं और हिनहिनानेवाले घोडों के साथ शीघ्र ही रणभूमि में तुरन्त जा पहुँचते हैं । वे शत्रुओं को परास्त कर विपुल अन्न पाते हैं ।

टिप्पणी-- [२००] (१) स्तृ = नक्षत्र, तारका । (२) अभ्रियः = मेघ में पैदा होनेवाली बिजली । (३) पृश्निः = गौ, धरती, अंतरिक्ष । [२०१] (१) नदस्य कर्णैः (करणैः) = नाद करनेवाले, हिनहिनानेवाले (घोडों के साथ,) [नदस्य आशुभिः कर्णैः = घोषणा करने के त्वराशील सींगसहित, कर्ण = Mego--Phone ।] (२) अश्वः = घोडा, व्यापनेवाला, खूब खानेवाला, घोडेके समान बलवान् । (३) उक्ष् = सिंचन करना, गीला करना, सबल होना । (४) आजि = (अज् गतौ) शत्रु पर करने का धावा, हमला, शीघ्रतापूर्वक विद्युत्‌गतिसे की हुई चढाई । (५) मन्युः = उत्साह, स-मन्युः = उत्साहसे युक्त, (मंत्र २०३ देखो ।) (६) दविध्वत् = (धूञ् कम्पने) हिलानेवाला ।

(२०२) पृक्षे । ता । विश्वा । भुवना । ववक्षिरे । मित्राय । वा । सदम् । आ । जीरऽदानवः ।
पृषत्ऽअश्वासः । अनवभ्रऽराधसः ।
ऋजिप्यासः । न । वयुनेषु । धूःऽसदः ॥ ४ ॥

(२०३) इन्धन्वऽभिः । धेनुऽभिः । रप्शदूधऽभिः । अध्वस्मऽभिः । पथिऽभिः । भ्राजत्-ऋष्टयः ।
आ । हंसासः । न । स्वसराणि । गन्तन ।
मधोः । मदाय । मरुतः । सऽमन्यवः ॥ ५ ॥

अन्वयः— २०२ जीर-दानवः पृषत्-अश्वासः अन्-अवभ्र-राधसः, ऋजिप्यासः न, वयुनेषु धूर्-सदः, पृक्षे मित्राय सदं वा ता विश्वा भुवना आ ववक्षिरे ।

२०३ (हे) स-मन्यवः भ्राजत्-ऋष्टयः मरुतः ! इन्धन्वभिः रप्शत्-ऊधभिः धेनुभिः अ-ध्वस्माभिः पथिभिः मधोः मदाय, हंसासः स्व-सराणि न, आ गन्तन ।

अर्थ- २०२ (जीर-दानवः) शीघ्र विजय पानेवाले, (पृषत्-अश्वासः) धब्बेवाले घोडे समीप रखनेवाले, (अन्-अवभ्र-राधसः) जिनका धन कोई भी छीन नहीं सकता, ऐसे और (ऋजिप्यासः न) सीधी राह से उन्नति को जानेवाले के समान (वयुनेषु) सभी कर्मों में (धूर्-सदः) अग्रभाग में बैठनेवाले ये वीर (पृक्षे) अन्नदान के समय (मित्राय सदं वा) मित्रों को स्थान देने के समान (ता विश्वा भुवना) उन सब भुवनों को (आ ववक्षिरे) आश्रय देते हैं ।

२०३ हे (स-मन्यवः) उत्साही, (भ्राजत्-ऋष्टयः) तेजस्वी हथियार धारण करनेवाले (मरुतः!) वीर मरुतो ! (इन्धन्वभिः) प्रज्वलित, तेजस्वी (रप्शत्-ऊधभिः) स्तुत्य और महान् थनों से युक्त (धेनुभिः) गौओं के साथ (अ-ध्वस्मभिः) अविनाशी (पथिभिः) मार्गों से (मधोः मदाय) सोमरसजन्य आनन्द के लिए इस यज्ञ के समीप (हंसासः स्व-सराणि न) हंस जैसे अपने निवासस्थान के समीप जाते हैं, उसी प्रकार (आ गन्तन) आओ ।

भावार्थ- २०२ ये वीर उदारचेता, अश्वारोही, धनसम्पन्न, सरल मार्ग से उन्नत बननेवालों के समान सभी कार्य करते समय अग्रगन्ता बननेवाले हैं । अन्न का प्रदान करते समय जैसे वे मित्रों को स्थान देते हैं उसी प्रकार सभी प्राणियोंको सहारा देनेवाले हैं ।

२०३ विपुल दूध देनेवाली गौओं के साथ सोमरस पीने के लिए ये वीर अच्छे सुघड मार्गों पर से इस यज्ञ की ओर आ जायँ ।

टिप्पणी— [२०२] (१) जीर-दानुः = (जीर= जल्द, तलवार; दानु= शूर, विजयी, विजेता, दान देनेवाला, काटनेवाला) शीघ्र विजयी, तुरन्त दान देनेवाला, तलवार ले मारकाट करनेवाला । (२) ऋजिप्य= (ऋजु+प्राप्य) सीधी राह से जानेवाला, सरलतया अपनी उन्नति करनेवाला । (३) वयुनं = ज्ञान, कर्म, नियम, रीति, व्यवस्था (Rule, Order) (४) अन्-अवभ्र-राधसः = अपतनशील धन से युक्त । (५) धूर्-सद् = प्रमुख, धुराके स्थान में बैठनेवाला । (६) भुवनं=भुवन, प्राणी, बनी हुई चीज । [२०३] (१) अ-ध्वस्मन् = (ध्वंस् अवस्रंसने गतौ च) अविनाशी । (२) स्व-सर = [स्व-सृ- (सर्) गतौ] स्वयमेव जिधर जाने की प्रवृत्ति हो, वह स्थान, घर, अपना स्थान । (३) स-मन्युः = उत्साही, समान अंतःकरण के, एक विचार के । (देखिए मंत्र २०१ ।)

(२०४) आ । नः । ब्रह्माणि । मरुतः । सऽमन्यवः ।
नराम् । न । शंसः । सवनानि । गन्तन ।
अश्वांऽइव । पिप्यत । धेनुम् । ऊधनि ।
कर्त । धियम् । जरित्रे । वाजऽपेशसम् ॥ ६ ॥

(२०५) तम् । नः । दात । मरुतः । वाजिनम् । रथे ।
आपानम् । ब्रह्म । चितयत् । दिवेऽदिवे ।
इषम् । स्तोतृऽभ्यः । वृजनेषु । कारवे ।
सनिम् । मेधाम् । अरिष्टम् । दुस्तरम् । सहः ॥ ७ ॥

अन्वयः- २०४ (हे) स-मन्यवः मरुतः ! नरां शंसः न नः ब्रह्माणि सवनानि आ गन्तन, अश्वांइव धेनुं ऊधनि पिप्यत, जरित्रे वाज-पेशसं धियं कर्त ।

२०५ (हे) मरुतः ! रथे वाजिनं, दिवे-दिवे ब्रह्म चितयत्, आपानं तं इषं स्तोतृभ्यः नः दात, वृजनेषु कारवे सनिं मेधां अ-रिष्टं दुस्-तरं सहः ।

अर्थ- २०४ हे (स-मन्यवः मरुतः !) उत्साही मरुतो ! (नरां शंसः न) शूरों में प्रशंसनीय वीरों के समान (नः ब्रह्माणि सवनानि) हमारे ज्ञानमय सोमसत्रकी ओर (आ गन्तन) आ जाओ। (अश्वांइव) घोडी के समान हृष्टपुष्ट (धेनुं) गौको (ऊधनि) दुग्धाशय में (पिप्यत) पुष्ट करो। (जरित्रे) उपासक को (वाज-पेशसं) अन्नसे भली प्रकार सुरूपता देने का (धियं कर्त) कर्म करो ।

२०५ हे (मरुतः !) वीर मरुतो ! हमें (रथे वाजिनं) रथमें बैठनेवाला वीर और (दिवे-दिवे) हरदिन (आपानं ब्रह्म चितयत्) प्राप्तव्य ज्ञान का संवर्धन करनेवाला ज्ञानी पुत्र दे दो, तथा इस भाँति (तं इषं) वह अभीष्ट अन्न भी (स्तोतृभ्यः नः दात) हम उपासकों को देदो। (वृजनेषु कारवे) युद्धों में पराक्रम करनेहारे वीर को धन की (सनिं) देन (मेधां) बुद्धि तथा (अ-रिष्टं) अविनाशी एवं (दुस्-तरं) अजेय (सहः) सहनशक्ति भी दे दो ।

भावार्थ- २०४ शूर सैनिकों में जो सबसे अधिक शूर होते हैं, उनका अनुकरण अन्य वीरोंको करना चाहिए। इस भाँति अधिक पराक्रम करके वे सदैव सत्कर्मों में अपना हाथ बँटाये । परिपुष्ट घोडी के समान गौएँ भी चपल तथा पुष्ट रहें। गौओं को अधिक दुधारु बनाने की चेष्टा करें। अन्न से बल बढाकर शरीर प्रमाणबद्ध रहे, इसीलिए भाँतिभाँति के प्रयोग करने चाहिए।

२०५ हमें शूर, ज्ञानी, रथी, तथा सत्यनिष्ठ पुत्र मिले। हमें पर्याप्त अन्न मिले। लडाई में वीरतापूर्ण कार्य कर दिखलानेवाले को मिलनेयोग्य देन, बुद्धिकी प्रबलता, अविनाशी और अजेय शक्ति भी हमें मिले।

टिप्पणी- [२०४] (१) पेशस् = सुरूपता, तेजस्विता। (२) नृ = नेता, शूर। (३) धेनुं ऊधनि पिप्यत= गौका दुग्धाशय पुष्ट रहे ऐसा करो, गौ अधिक दूध देने लगे ऐसा करो। (४) जरितृ = स्तोता, उपासक, भक्त। (५) वाज-पेशस् = अन्न से बल पाकर जो शारीरिक गठन होता हो। (६) धी = बुद्धि, कर्म, (ज्ञानपूर्वक किया हुआ कर्म।) [२०५] (१) मेधा = शक्ति, धारणा-बुद्धि। (२) सहः = शत्रुके हमले सहन करके अपने स्थान पर अपराभूत दशा में खडे रहने की शक्ति। (३) वृजनं = दुर्ग, गढ में रहकर करने का युद्ध।

(२०६) यत् । युञ्जते । मरुतः । रुक्मऽवक्षसः ।
अश्वान् । रथेषु । भगे । आ । सुऽदानवः ।
धेनुः । न । शिश्वे । स्वसरेषु । पिन्वते ।
जनाय । रातऽहविषे । महीम् । इषम् ॥ ८ ॥

(२०७) यः । नः । मरुतः । वृकऽताति । मर्त्यः ।
रिपुः । दधे । वसवः । रक्षत । रिषः ।
वर्तयत । तपुषा । चक्रिया । अभि । तम् ।
अव । रुद्राः । अशसः । हन्तन । वधः ॥ ९ ॥

अन्वयः – २०६ यत् सु दानवः रुक्म-वक्षसः मरुतः भगे अश्वान् रथेषु आ युञ्जते, धेनुः शिश्वे न, रात-हविषे जनाय स्वसरेषु महीं इषं पिन्वते ।

२०७ (हे) वसवः मरुतः ! यः मर्त्यः वृक-ताति नः रिपुः दधे, रिषः रक्षत, तं तपुषा चक्रिया अभि वर्तयत, (हे) रुद्राः ! अशसः वधः अव हन्तन ।

अर्थ- २०६ (यत् सु-दानवः) जब दानशूर एवं (रुक्म-वक्षसः मरुतः) वक्षःस्थलपर स्वर्णमुद्रिकाओं से बना हार धारण करनेवाले वीर मरुत् (भगे) ऐश्वर्यप्राप्ति के लिए अपने (अश्वान्) घोडों को (रथेषु आ युञ्जते) रथों में जोड देते हैं, तब वे, (धेनुः शिश्वे न) जैसे गौ अपने बछडे के लिए दूध देती है उसी प्रकार (रात हविषे जनाय) हविष्यान्न देनेवाले लोगों के लिए (स्व सरेषु) उनके अपने घरों में ही (महीं इषं पिन्वते) बडी भारी अन्नसमृद्धि पर्याप्त मात्रा में प्रदान करते हैं ।

२०७ हे (वसवः मरुतः !) बसानेवाले वीर मरुतो ! (यः मर्त्यः) जो मानव (वृक-ताति) भेडिये के समान क्रूर बन (नः रिपुः दधे) हमारे लिए शत्रुभूत होकर बैठा हो, उस (रिषः) हिंसक से (रक्षत) हमारी रक्षा कीजिए। (तं) उसे (तपुषा) संतापदायक (चक्रिया) पहिये जैसे हथियार से (अभि वर्तयत) घेर डालो। हे (रुद्राः !) शत्रुको रुलानेवाले वीरो ! (अशसः) पेटू (वध्यः) हननीय शत्रुका (आ हन्तन) वध करो ।

भावार्थ- २०६ वीर युद्ध के लिए रथपर चढकर जाते हैं और उधर भारी विजय पाकर धन साथ ले आते हैं। पश्चात् उदार पुरुषों को वही धन उचित मात्रा में विभक्त करके बाँट देते हैं ।

२०७ जो मनुष्य क्रूर बनकर हमसे शत्रुतापूर्ण व्यवहार करता हो उससे हमें बचाओ। चारों ओरसे उस शत्रु को घेरकर नष्ट कर डालो।

टिप्पणी- [२०६] (१) भगः = ऐश्वर्य, धन, भाग्य, सुख, कीर्ति, वैभवशालिता । [२०७] (१) चक्रिया= (चक्रं) = चक्रव्यूह, पहिये के समान हथियार । (२) अशस् = (अ शस्) = अप्रशस्त, दुष्ट. (अश्) भक्षक, पेटू । (३) तं तपुषा चक्रिया अभि वर्तयत = (तं) उस शत्रु को (तपुषा) धधकनेवाले, जल्द तपनेवाले (चक्रिया) चक्रवत् दिखाई देनेवाले शस्त्रों से घेरकर (अभि) चतुर्दिक् (वर्तयत) घेर दो ।

(२०८) चित्रं । तत् । वः । मरुतः । याम । चेकिते ।
पृश्न्याः । यत् । ऊधः । अपि । आपयः । दुहुः ।
यत् । वा । निदे । नवमानस्य । रुद्रियाः ।
त्रितम् । जराय । जुरताम् । अदाभ्याः ॥ १० ॥

(२०९) तान् । वः । महः । मरुतः । एवऽयाव्नः । विष्णोः । एषस्य । प्रऽभृथे । हवामहे ।
हिरण्यऽवर्णान् । ककुहान् । यतऽस्रुचः । ब्रह्मण्यन्तः । शंस्यम् । राधः । ईमहे ॥ ११ ॥

अन्वयः— २०८ (हे) मरुतः ! वः तत् चित्रं याम चेकिते, यत् आपयः पृश्न्याः अपि ऊधः दुहुः. यत् (हे) अ-दाभ्याः रुद्रियाः ! नवमानस्य निदे त्रितं जुरतां जराय वा।

२०९ (हे) मरुतः ! एव-याव्नः महः तान् वः विष्णोः एषस्य प्र-भृथे हवामहे, ब्रह्मण्यन्तः यत स्रुचः हिरण्य-वर्णान् ककुहान् शस्यं राधः ईमहे।

अर्थ– २०८ हे (मरुतः !) वीर मरुतो ! (वः तत् चित्रं) तुम्हारा वह आश्चर्यजनक (याम) हमला (चेकिते) सब को विदित है, (यत्) क्योंकि सब से (आपयः) मित्रता करनेवाले तुम (पृश्न्याः अपि ऊधः) गौके दुग्धाशय का (दुहुः) दोहन करके दूध पीते हो। (यत्) उसी प्रकार हे (अ-दाभ्याः) न दबनेवाले (रुद्रियाः !) महावीरो ! (नवमानस्य) तुम्हारे उपासक की (निदे) निंदा करनेहारे तथा (त्रितं) त्रित नामवाले ऋषिको (जुरतां) मारने की इच्छा करनेवाले शत्रुओं के (जराय वा) विनाश के लिए तुमही प्रयत्नशील हो, यह बात विख्यात है।

२०९ हे (मरुतः !) वीर मरुतो ! (एव याव्नः) वेगसे जानेवाले (महः) तथा महत्त्वयुक्त ऐसे (तान् वः) तुम्हें हमारे (विष्णोः) व्यापक हितकी (एषस्य) इच्छा की (प्र-भृथे) पूर्ति के लिए (हवामहे) हम बुलाते हैं। (ब्रह्मण्यन्तः) ज्ञानकी इच्छा करनेहारे तथा (यत-स्रुचः) पुण्य कर्म के लिए कटिबद्ध हो उठनेवाले हम (हिरण्य-वर्णान) सुवर्णवत् तेजस्वी एवं (ककुहान्) अत्यन्त उत्कृष्ट ऐसे इन वीरों के समीप (शस्यं राधः) सराहनीय धनकी (ईमहे) याचना करते हैं।

भावार्थ- २०८ वीर सैनिक शत्रुदल पर जब धावा करते हैं, तो उस चढाईको देख प्रेक्षक अचम्भेमें आते हैं। ये वीर गोदुग्ध को पीते हैं और अपने अनुयायिओं की रक्षा करते हैं, अतः वे शत्रुओं तथा निन्दकोंसे बिलकुल नहीं डरते हैं।

२०९ वीरों को बुलाने में हमारा यही अभिप्राय है कि वे हमारे सार्वजनिक हित की जो अभिलाषाएँ हैं उन्हें पूर्ण करनेमें सहायता दे दें। हम ज्ञान पाने की अभिलाषा करते हैं और एतदर्थ हम प्रयत्नशील भी हैं। इसीलिए हम इन श्रेष्ठ वीरों के निकट जाकर उनसे प्रशंसनीय धन माँग रहे हैं। वे हमारी इच्छा पूर्ण करें।

टिप्पणी- [२०८] (१) अदाभ्य =(अ-दाभ्य) न दबनेवाला, जिसे कोई क्षति न पहुँची हो। (२) आपिः= आप्त, सुगमता से प्राप्त होनेवाला, मित्र। (३) त्रित = त्रैतवाद के तत्त्वज्ञान का प्रचार करनेवाला [एकत, द्वित, त्रित ये तीन ऋषि त्रिविध तत्त्वज्ञान के प्रवर्तक थे। ऐक्य, द्वैत, त्रैत वादों का प्रवर्तन उन्होंने किया।]

[२०९] (१) एव-यावन् = वेगपूर्वक जानेवाला। (२) ककुह = प्रधान, उत्कृष्ट, सबसे श्रेष्ठ। (३) यत स्रुच् = यज्ञकुण्ड में घृतकी आहुति देनेके लिए जिसने स्रुचा तैयार कर रखी हो (अच्छे कार्य करने के लिए जिसने कमर कस ली हो, ऐसा त्यागी पुरुष)। (४) हिरण्य-वर्ण = वीर मरुत् सुवर्णकान्ति से शोभित पीत-और वर्णवाले थे (मरुद्भ्यो वैश्यं। वा० य० ३०।५) वैश्यों का रँग पीत बतलाया जाता है; इसी भाँति यहाँ पर मरुतों का वर्ण पीत है, ऐसा सूचित किया है।

(२१०) ते । दशऽग्वाः । प्रथमाः । यज्ञम् । ऊहिरे ।
ते । नः । हिन्वन्तु । उषसः । विऽउंष्टिषु ।
उषाः । न । रामीः । अरुणैः । अप । ऊर्णुते ।
महः । ज्योतिषा । शुचता । गोऽअर्णसा ॥१२॥

(२११) ते । क्षोणीभिः । अरुणेभिः । न । अञ्जिऽभिः । रुद्राः । ऋतस्य । सदनेषु । ववृधुः ।
निऽमेघमानाः । अत्येन । पाजसा । सुऽचन्द्रम् । वर्णम् । दधिरे । सुऽपेशसम् ॥१३॥

अन्वयः— २१० दश-ग्वाः प्रथमाः ते यज्ञं ऊहिरे, ते नः उषसः व्युष्टिषु हिन्वन्तु, उषा न, अरुणैः रामीः महः शुचता गो-अर्णसा ज्योतिषा अप ऊर्णुते ।

२११ रुद्राः ते, क्षोणीभिः अरुणेभिः न, आञ्जिभिः ऋतस्य सदनेषु ववृधुः, नि-मेघमानाः अत्येन पाजसा सु-चन्द्रं सु-पेशसं वर्णं दधिरे ।

अर्थ- २१० (दश-ग्वाः) दस मासतक यज्ञ करनेवाले तथा (प्रथमाः) अद्वितीय ऐसे (ते) उन वीरों ने (यज्ञं ऊहिरे) यज्ञ किया । (ते) वे (नः (हमें (उषसः व्युष्टिषु) उषःकाल के प्रारंभ में (हिन्वन्तु) प्रेरणा दें । (उषाः न) उषा जिस प्रकार (अरुणैः) रक्तिम किरणों से (रामीः) अँधेरी रात्री को आच्छादित करती है, वैसे ही वे वीर (महः) बडे (शुचता) तेजस्वी (गो- अर्णसा) किरणों के तेजसे (ज्योतिषा) प्रकाश से सारा संसार (अप ऊर्णुते) ढक देते हैं ।

२११ (रुद्राः ते) शत्रुओंको रुलानेवाले वे वीर (क्षोणीभिः) चकणाचूर किये हुए (अरुणेभिः न) केसरिया के समान पीतवर्णवाले (अञ्जिभिः) वस्त्रालंकारों से युक्त होकर (ऋतस्य) उदकयुक्त (सदनेषु) घरों में (ववृधुः) बढे । उसी प्रकार (नि-मेघमानाः) पूर्णतया स्नेहपूर्वक मिलकर कार्य करनेवाले वे (अत्येन पाजसा) अपने वेगयुक्त बलसे (सु-चन्द्रं) अत्यन्त आह्लाददायक एवं (सु-पेशसं) अति सुन्दर (वर्णं) कान्ति को (दधिरे) धारण करते हैं ।

भावार्थ- २१० ये वीर वर्ष में दस महीने यज्ञकर्म करने में बिताते हैं । ये हमें प्रतिदिन सत्कर्म की प्रेरणा दें अर्थात् इन के चारित्र्य को देखकर हमारे दिल में प्रति पल सत्कर्म की प्रेरणा होती रहे । ये वीर अपने पवित्र तेज से द्योतमान रहते हैं ।

२११ इन वीरों के वस्त्राभूषण पीले रँग में रँगे हुए हैं । जिधर जल विपुलतया मिलता हो, उधर ही ये रहते हैं । प्रीतिपूर्वक मिलकर रहनेवाले ये अपने वेग एवं बल से वीरता के कार्य करते रहते हैं, इसलिए बहुत तेजस्वी दीख पडते हैं ।

टिप्पणी- [२१०] (१) दश-ग्वाः (दश-गो [गम्]) दस दिशाओं में जानेवाले, दस गौएँ साथ रखनेवाले, दस मास चलनेहारे । (२) रामी= (राम=अँधेरा) अँधेरी रात, आनन्द देनेवाली, रात्री । (३) व्युष्टि= (वि- उष्=दाहे)= विशेष प्रकाशित, विशेष मनोहर, दिन का आरम्भ, प्रकाश । (४) गो-अर्णस्= किरण-समूह, प्रकाश का प्रवाह, उजियारे का ओघ । [२११] (१) पाजस्= बल । (२) नि-मेघमानाः (मेहतीति मेघः = मेघ-समुदाय) = पूर्णरूप से एकत्रित होनेवाले । (३) ऋतस्य सदनेषु = जहाँ जल अधिक हो, ऐसे स्थानों में । (४) क्षोणी = (क्षु-शब्दे, क्षुद्- संपेषणे) = शब्द करनेवाली, पृथ्वी; चूर्ण किया हुआ, महीन आटा करनेयोग्य । (५) अरुण = लाल रंग, केसरिया वर्ण, केशर, सुवर्ण ।

(२१२) तान्। इ॒यानः। महि॑। वरू॑थम्। ऊ॒तये॑।
उप॑। घ॒। इत्। ए॒ना। नम॑सा। गृ॒णी॒म॒सि॒।
त्रि॒तः। न। यान्। पञ्च॑। होतॄ॑न्। अ॒भीष्ट॑ये।
आ॒ऽव॒वर्त॑त्। अव॑रान्। च॒क्रिया॑। अव॑से ॥ १४ ॥

(२१३) यया॑। र॒ध्रम्। पा॒रय॑थ। अति॑। अंहः॑।
यया॑। नि॒दः। मु॒ञ्चथ॑। व॒न्दि॒तार॑म्।
अ॒र्वाची॑। सा। म॒रु॒तः॒। या। वः॒। ऊ॒तिः।
ओ इति॑। सु। वा॒श्राऽइ॑व। सु॒ऽम॒तिः। जि॒गा॒तु॒ ॥ १५ ॥

अन्वयः— २१२ यान् अवरान् पञ्च होतॄन् चक्रिया अवसे, अभीष्टये न त्रितः आववर्तत् तान् ऊतये महि वरूथं इयानः एना नमसा उप इत् गृणीमसि घ।

२१३ (हे) मरुतः! यया रध्रं अंहः अति पारयथ, यया वन्दितारं निदः मुञ्चथ, या वः ऊतिः सा अर्वाची, सु-मतिः वाश्राइव ओ सु जिगातु।

अर्थ– २१२ (यान्) जिन (अवरान्) अत्यन्त श्रेष्ठ (पञ्च होतॄन्) पाँच याजकों तथा वीरोंको (चक्रिया) चक्रकी शक्लवाले हथियार से (अवसे) रक्षण करने के लिए (अभीष्टये न) तथा अभीष्टपूर्ति के लिए (त्रितः) ऋषि त्रितने (आववर्तत्) अपने समीप बुला लिया था, (तान्) उनके समीप (ऊतये) संरक्षण के लिए (महि वरूथं) बडा आश्रयस्थान (इयानः) माँगनेवाले हम (एना नमसा) इस नमस्कार से (उप इत्) समीप जाकर उनकी (गृणीमसि घ) प्रशंसा करते हैं।

२१३ हे (मरुतः!) वीर मरुतो! (यया) जिसकी सहायता से तुम (रध्रं) उपासक को (अंहः) पाप के (अति पारयथ) परे ले जाते हो, (यया) जिस से (वन्दितारं) वन्दन करनेवाले को (निदः) निंदा करनवाले से (मुञ्चथ) छुडाते हो, (या वः ऊतिः) जो इस भाँति तुम्हारी संरक्षणक्षम शक्ति है (सा अर्वाची) वह हमारी ओर आ जाए और तुम्हारी (सु-मतिः) अच्छी बुद्धि (वाश्राइव) रंभानेवाली गौ के समान (ओ सु जिगातु) भली प्रकार हमारे निकट आए, हमें प्राप्त हो।

भावार्थ– २१२ ये वीर स्वयं यज्ञ करनेहारे हैं और अपने अनुयायियों की रक्षाका भार अपने ऊपर लेनेवाले हैं। हम उनसे अपना रक्षाकी अपेक्षा करते हैं और इसलिए उन्हें नमन करके उनकी सराहना करते हैं।

२१३ तुममें विद्यमान जिन संरक्षक शक्तियों की सहायतासे तुम उपासकों को पापोंसे बचाते हो, निन्दक लोगोंसे बचाते हो, उस तुम्हारे संरक्षण की छत्रच्छाया में हम रहने पायें और तुम्हारी सुमति से हम लाभ उठायें।

टिप्पणी– [२१२] (१) वरूथं = घर, रक्षण, कवच, समुदाय, ढाल। (२) अ-वर = (न विद्यते वरः श्रेष्ठः अन्यः येषां ते) श्रेष्ठ, (अवरान् मुख्यान्। सायण)। [२१३] (१) रध्र = (रध्-हिंसा-संराध्योः) पूजा करनेहारा, श्रीमान्, उदार, सुखी, दुःख देनेवाला।

गाथिपुत्र विश्वामित्र ऋषि (ऋ० ३।२६।४—६)

(२१४) प्र । यन्तु । वाजाः । तविषीभिः । अग्नयः । शुभे । सम्ऽमिश्लाः । पृषतीः । अयुक्षत ।
बृहत्ऽउक्षः । मरुतः । विश्वऽवेदसः । प्र । वेपयन्ति । पर्वतान् । अदाभ्याः ॥४॥

(२१५) अग्निऽश्रियः । मरुतः । विश्वऽकृष्टयः । आ । त्वेषम् । उग्रम् । अवः । ईमहे । वयम् ।
ते । स्वानिनः । रुद्रियाः । वर्षऽनिर्निजः । सिंहाः । न । हेषऽक्रतवः । सुऽदानवः ॥५॥

अन्वयः— २१४ वाजाः अग्नयः तविषीभिः प्र यन्तु, शुभे सं-मिश्लाः पृषतीः अयुक्षत, अ-दाभ्याः विश्व-वेदसः बृहत्- उक्षः मरुतः पर्वतान् प्र वेपयन्ति ।

२१५ मरुतः अग्नि-श्रियः विश्व-कृष्टयः, उग्रं त्वेषं अवः आ ईमहे, ते वर्ष-निर्णिजः रुद्रियाः हेष-क्रतवः सिंहाः न, स्वानिनः सु-दानवः ।

अर्थ- २१४ (वाजाः) बलवान् या अन्नवान् (अग्नयः) अग्निवत् तेजस्वी वीर (तविषीभिः) अपने बलोंसहित शत्रुदलपर (प्र यन्तु) चढाई करें या टूट पडें। (शुभे) लोककल्याण के लिए (सं-मिश्लाः) इकट्ठे हुए वे वीर (पृषतीः अयुक्षत) धब्बेवाली घोडियाँ या हरिणियाँ रथों में जोड देते हैं। (अ-दाभ्याः) न दबनेवाले (विश्व-वेदसः) सभी धनों से युक्त और (बृहत्-उक्षः) अतीव बलवान् वे (मरुतः) वीर मरुत् (पर्वतान् प्र वेपयन्ति) पहाडोंको भी हिला देते हैं।

२१५ (मरुतः अग्निश्रियः) वे वीर मरुत् अग्निवत् तेजस्वी हैं और (विश्व-कृष्टयः) सभी किसानों में से हैं। उनके (उग्रं त्वेषं अवः) प्रखर तेजस्वी संरक्षणको (वयं आ ईमहे) हम चाहते हैं। (ते वर्ष-निर्णिजः) वे स्वदेशी गणवेश पहननेवाले हैं तथा (रुद्रियाः) महावीर के समान शूरवीर और (हेष-क्रतवः सिंहाः न) गर्जना करनेवाले सिंह के समान (स्वानिनः) बडा शब्द करनेहारे हैं एवं (सु दानवः) बडे अच्छे दानी हैं।

भावार्थ- २१४ वीर अपना बल एकत्रित कर के शत्रुदल पर टूट पडें। जनता का हित करने के लिए वे मिलजुल कर कार्य करें। ये वीर किसी से दबनेवाले नहीं हैं और अच्छे ज्ञानी एवं सामर्थ्यवान् होने के कारण यदि प्रयत्न करें, तो पर्वत-श्रेणियों को भी अपनी जगह से उखाड फेंक देंगे।

२१५ ये वीर अग्नि की नाईं तेजस्वी हैं और कृषक होते हुए भी सेना में प्रविष्ट हुए हैं। ये स्वदेश में बनाये हुए गणवेश का ही उपयोग करते हैं। हमारी इच्छा है कि वे हमें संकटों से बचायें। वे शेर की नाईं दहाडते हैं और शत्रुको चुनौती देने में झिझकते नहीं। ये बडे उदार भी हैं।

टिप्पणी- [२१४] (१) वाजः = अन्न, यज्ञ, बल, वेग, लडाई, संपत्ति। (२) तविषी = (तविष्) बल, सामर्थ्य, बलिष्ठ, पृथ्वी। (३) अग्नयः = अग्नि के समान तेजस्वी। (अगले मंत्र में 'अग्निश्रियः' शब्द देखिए)। [२१५] (१) कृष् = (विलेखने) खींचना, पराजित करना, प्रभुत्व प्रस्थापित करना, हल चलाना। (२) विश्व-कृष्टि = सारे कृषक, सभी मानव, सब को खींचनेवाला। देखिए " इन्द्र आसीत्सीरपतिः शतक्रतुः, कीनाशा आसन् मरुतः सु दानवः ॥ (अथर्व ६।३०।१)। (३) निर्णिज् = पुष्ट, पवित्र, वस्त्र। (४) वर्ष = वर्षा, देश। वर्ष-निर्णिज् = स्वदेश में बने हुए कपडे पहननेवाला, देशी वरदी या गणवेश उपयोग में लानेवाला, वर्षा को ही जो पहनावा मानते हों।

(२१६) व्रातम्ऽव्रातम् । गणम्ऽगणम् । सुशस्तिऽभिः । अग्नेः । भामम् । मरुताम् । ओजः । ईमहे ।
पृषत्ऽअश्वासः । अनवभ्रऽराधसः । गन्तारः । यज्ञम् । विदथेषु । धीराः ॥६॥

अत्रिपुत्र श्यावाश्व ऋषि (ऋ० ५।५२।१-१७)

(२१७) प्र । श्यावऽअश्व । धृष्णुऽया । अर्च । मरुत्ऽभिः । ऋक्वऽभिः ।
ये । अद्रोघम् । अनुऽस्वधम् । श्रवः । मदन्ति । यज्ञियाः ॥१॥

अन्वयः— २१६ गणं-गणं व्रातं-व्रातं अग्नेः भामं मरुतां ओजः सु-शस्तिभिः ईमहे, पृषत्-अश्वासः अन्-अवभ्र-राधसः धीराः विदथेषु यज्ञं गन्तारः ।

२१७ (हे) श्यावाश्व (श्याव-अश्व !) धृष्णु-या ऋक्वभिः मरुद्भिः प्र अर्च, ये यज्ञियाः अनु-स्व-धं अ-द्रोघं श्रवः मदन्ति ।

अर्थ- २१६ (गणं-गणं) हर सैन्य-विभाग में और (व्रातं-व्रातं) हर समूह में (अग्नेः भामं) अग्नि का तेज तथा (मरुतां ओजः) मरुतों का बल उत्पन्न हो इसलिए हम (सु-शस्तिभिः) उत्तम, अच्छी स्तुतियों से (ईमहे) उनकी प्रार्थना करते हैं । (पृषत्-अश्वासः) धब्बों से युक्त घोडे रखनेवाले (अन्-अवभ्र-राधसः) जिनका धन छीना न जाता हो ऐसे वे (धीराः) धैर्ययुक्त वीर (विदथेषु) यज्ञों में या युद्धों में (यज्ञं गन्तारः) हवनस्थान के समीप जानेवाले हैं ।

२१७ हे (श्याव-अश्व !) भूरे रँग के घोडे पर बैठनेवाले वीर ! (धृष्णु-या) शत्रु का पराभव करने में उपयुक्त बल से परिपूर्ण तू (ऋक्वभिः मरुद्भिः) सराहनीय वीर मरुतों के साथ (प्र अर्च) उनकी पूजा कर । (ये यज्ञियाः) जो पूज्य वीर (अनु स्व-धं) अपनी धारक शक्ति से युक्त हो, (अ-द्रोघं) द्रोह-रहित (श्रवः) कीर्ति पाकर (मदन्ति) हर्षित हो उठते हैं ।

भावार्थ- २१६ हम वीरों के काव्य का गायन इसलिए करते हैं कि, वीरों के हर दल में तथा प्रत्येक विभाग में तेजस्विता स्थिर रहने पाय । इन वीरों के निकट घोडे रखे हुए हैं और वे अती धैर्यशाली हैं । इन के पास जो धन है, वह न कभी घटता और न दूसरों को पतनोन्मुख करता है । संग्राम में जिधर आत्मबलिदान का कार्य करना पडे उधर ये पहुँचकर काम पूरा कर देते हैं ।

२१७ जिस से शत्रु का पराभव हो जाय, ऐसा बल प्राप्त करना चाहिए और वीरों का भी सन्मान करना चाहिए । वीर अपनी धारक शक्ति बढा कर किसी का भी द्वेष न करते हुए बडे बडे कार्यों में सफलता पाकर यशस्वी बन जाते हैं ।

टिप्पणी [२१६] (१) गणः= समुदाय, सैन्य का विभाग (Division, अक्षौहिणी का अंश, जिस में २७ रथ, २७ हाथी, ८१ घोडे, १३५ पैदल सिपाही हों । देखिए मंत्र २४४ पर की टिप्पणी)। (२) व्रातः = समुदाय, समूह, पौरुष, पुरुषार्थ । (३) यज्ञः = यज्ञ, हविर्द्रव्य (जिस सत्कर्म में देवपूजा-संगतिकरण-दान होता हो,) आत्मसमर्पण । (४) धीर= (धी-र) बुद्धि देनेवाले, परामर्श करनेवाले, धैर्यवान् । [२१७] (१) श्याव-अश्वः = (श्याव) भूरे रंग का (अश्व) घोडा, उस घोडे पर बैठनेवाला वीर, [श्यावाश्व ऋषि सायणभाष्य ।] (२) श्रवस् = कान, यश, धन, सराहनीय कर्म, कीर्ति । (३) अर्च् = (पूजायां) = पूजा करना, प्रकाशना, सम्मान करना ।

(२१८) ते । हि । स्थिरस्य । शवसः । सखायः । सन्ति । धृष्णुऽया ।
ते । यामन् । आ । धृषत्ऽविनः । त्मना । पान्ति । शश्वतः ॥२॥

(२१९) ते । स्पन्द्रासः । न । उक्षणः । अति । स्कन्दन्ति । शर्वरीः ।
मरुताम् । अध । महः । दिवि । क्षमा । च । मन्महे ॥३॥

(२२०) मरुत्ऽसु । वः । दधीमहि । स्तोमम् । यज्ञम् । च । धृष्णुऽया ।
विश्वे । ये । मानुषा । युगा । पान्ति । मर्त्यम् । रिषः ॥४॥

अन्वयः— २१८ धृष्णु-या ते हि स्थिरस्य शवसः सखायः सन्ति, ते यामन् शश्वतः धृषत्-विनः त्मना आ पान्ति।

२१९ स्पन्द्रासः न उक्षणः ते शर्वरीः अति स्कन्दन्ति, अध मरुतां दिवि क्षमा च महः मन्महे।

२२० ये विश्वे मानुषा युगा मर्त्यं रिषः पान्ति, वः धृष्णु-या मरुत्सु स्तोमं यज्ञं च दधीमहि।

अर्थ- २१८ (धृष्णु-या ते हि) वे साहसी एवं आक्रमणकर्ता वीर (स्थिरस्य शवसः) स्थायी एवं अटल वल के (सखायः सन्ति) सहायक हैं। (ते यामन्) वे चढाई करते समय (शश्वतः) शाश्वत (धृषत्-विनः) विजयशील सामर्थ्य से युक्त वीरों का (त्मना) स्वयं ही (आ पान्ति) सभी ओरसे संरक्षण करते हैं।

२१९ (ते स्पन्द्रासः) शत्रु को विकम्पित करनेवाले (न उक्षणः) और वलवान् वीर (शर्वरीः अति स्कन्दन्ति) रात्रियों का अतिक्रमण करके आगे चले जाते हैं। (अध) अब इसलिए (मरुतां) मरुतों के (दिवि क्षमा च) द्युलोक में एवं पृथ्वी पर विद्यमान (महः मन्महे) तेजःपूर्ण काव्यका हम मनन करते हैं।

२२० (ये) जो वीर (विश्वे) सभी (मानुषा युगा) मानवी युगों में (मर्त्यं) मानवको (रिपः पान्ति) हिंसक से वचाते हैं, ऐसे (वः) तुम (धृष्णु-या) विजयशील सामर्थ्य से युक्त (मरुत्सु) मरुतों के लिए हम (स्तोमं यज्ञं च) स्तुति तथा पवित्र कार्य (दधीमहि) अर्पण करते हैं।

भावार्थ- २१८ ये साहसी और शूरवीर सैनिक वल की ही सराहना करते हैं। जब ये शत्रुदल पर आक्रमण कर देते हैं, तव स्थायी एवं विजयी बल से परिपूर्ण वीरों की रक्षा करने का गुरुतर कार्यभार स्वयं ही स्वेच्छा से उठाते हैं।

२१९ जो वलिष्ठ वीर शत्रु के दिल में धडकन पैदा करते हैं, वे रात्री के समय दुश्मनों पर चढाई करते हैं और दिन के अवसर पर भी आक्रमण प्रचलित रखते हैं। इसीलिए हम इन के मननीय चरित्र का मनन करते हैं।

२२० जो वीर मानवी युगों में शत्रुओं से अपनी रक्षा करते हैं, उन के सामर्थ्य की सराहना करनी चाहिए।

टिप्पणी- [२१८] (१) शश्वत् = असंख्य, चिरकाल तक टिकनेवाला, सतत। [२१९] (१) मन्मन् = इच्छा, स्तुति, (मननीय काव्य)। (२) शर्वरीः अति स्कन्दन्ति = ये वीर दिन या रात्री का तनिक भी ख्याल न कर के अपना आक्रमण वरावर जारी रखते हैं। (३) स्पन्द् = (किञ्चिच्चलने) = हिलना, हिलाना। [२२०] (१) युगं = युगुल, पतिपत्नी, प्रजा, अनेक वर्षों का काल। (२) मर्त्यः = मानव, मरणधर्मा मनुष्य।

(२२१) अर्हन्तः । ये । सुऽदानवः । नरः । असामिऽशवसः ।
प्र । यज्ञम् । यज्ञियेभ्यः । दिवः । अर्च । मरुत्ऽभ्यः ॥५॥
(२२२) आ । रुक्मैः । आ । युधा । नरः । ऋष्वाः । ऋष्टीः । असृक्षत ।
अनु । एनान् । अह । विऽद्युतः । मरुतः । जज्झतीःऽइव । भानुः । अर्त । त्मना । दिवः ॥६॥
(२२३) ये । ववृधन्त । पार्थिवाः । ये । उरौ । अन्तरिक्षे । आ ।
वृजने । वा । नदीनाम् । सधऽस्थे । वा । महः । दिवः ॥७॥
(२२४) शर्धः । मारुतम् । उत् । शंस । सत्यऽशवसम् । ऋभ्वसम् ।
उत । स्म । ते । शुभे । नरः । प्र । स्पन्द्राः । युजत । त्मना ॥८॥

अन्वयः- २२१ ये अर्हन्तः सु-दानवः अ-सामि-शवसः दिवः नरः यज्ञियेभ्यः मरुद्भ्यः यज्ञं प्र अर्च ।
२२२ रुक्मैः आ युधा आ ऋष्वाः नरः दिवः मरुतः ऋष्टीः एनान् अनु ह जज्झतीःइव विद्युतः असृक्षत, भानुः त्मना अर्त ।
२२३ ये पार्थिवाः, ये उरौ अन्तरिक्षे, नदीनां वृजने वा महः दिवः सध-स्थे वा आ ववृधन्त ।
२२४ सत्य-शवसं ऋभ्वसं मारुतं शर्धः उत् शंस, उत स्म स्पन्द्राः नरः ते शुभे त्मना प्र युजत ।

अर्थ— २२१ (ये) जो (अर्हन्तः) पूज्य, (सु-दानवः) दानशूर, (अ-सामि-शवसः) संपूर्ण वलसे युक्त तथा (दिवः) तेजस्वी, द्योतमान (नरः) नेता हैं, उन (यज्ञियेभ्यः) पूज्य (मरुद्भ्यः) वीर-मरुतों के लिए (यज्ञं) यज्ञ करो और उनकी (प्र अर्च) पूजा करो ।

२२२ (रुक्मैः आ) स्वर्णमुद्रा के हारों से और (युधा आ) आयुधों से युक्त, (ऋष्वाः नरः) वडे तथा नेतृत्वगुण से युक्त (दिवः) दिव्य वीर (ऋष्टीः) अपने भालोंको और (एनान् अनु ह) इनके अनुरोधसे ही (जज्झतीःइव) वडवडाती हुई नदियों के समान (विद्युतः) तेजस्वी वज्र शत्रु पर (असृक्षत) फेंक देते हैं । इनका (भानुः) तेज (त्मना) उनके साथही (अर्त) चला जाता है ।

२२३ (ये पार्थिवाः) जो ये वीर पृथ्वी पर, (ये उरौ अन्तरिक्षे) जो विस्तीर्ण अन्तरिक्ष में या (नदीनां) नदियों के समीप के (वृजने वा) मैदानों में अथवा (महः दिवः) विस्तृत द्युलोकके (सध-स्थे वा) स्थान में (आ ववृधन्त) सभी तरह से वढते रहते हैं ।

२२४ (सत्य-शवसं) सत्य के वलसे युक्त तथा (ऋभ्वसं) हमले करनेवाले (मारुतं शर्धः) वीर मरुतों के सामुदायिक वल की (उत् शंस) स्तुति करो । (उत स्म) क्योंकि (स्पन्द्राः) शत्रुको विचलित एवं विकम्पित करनेवाले और (नरः) नेता वे वीर (शुभे) लोककल्याण के लिए किये जानेवाले सत्कार्य में (त्मना) स्वयं अपनी सदिच्छासे ही (प्र युजत) जुट जाते हैं ।

भावार्थ- २२१ पूजनीय, दानी वीरों का अच्छा सत्कार करना चाहिए ।
२२२ हार एवं हथियारों से सजे हुए ये वीर वहुत तेजस्वी प्रतीत होते हैं ।
२२३ ये वीर भूमंडल पर, अन्तरिक्ष में तथा द्युलोक में भी अवाधरूप से संचार करते हैं ।
२२४ वीरों के सच्चे वल का वखान करो । ये वीर जनता के हित के लिए स्वेच्छापूर्वक यत्न करते रहते हैं ।

टिप्पणी-- [२२१] (१) सामि = आधा, अपूर्ण; अ-सामि = पूर्ण, अविकल, समग्र ।
[२२४] (१) ऋभ्वसः = वहुत दूर फैले हुए, धैर्यशाली, चढाई करनेवाले । (२) शर्धः = वल, समूह, संघ, शत्रु के विनाश करनेका वल ।

(२२५) उत । स्म । ते । परुष्ण्याम् । ऊर्णाः । वसत । शुन्ध्यवः ।
उत । पव्या । रथानाम् । अद्रिम् । भिन्दन्ति । ओजसा ॥९॥

(२२६) आऽपथयः । विऽपथयः । अन्तःऽपथाः । अनुऽपथाः ।
एतेभिः । मह्यम् । नामऽभिः । यज्ञम् । विऽस्तारः । ओहते ॥१०॥

(२२७) अध । नरः । नि । ओहते । अध । निऽयुतः । ओहते ।
अध । पारावताः । इति । चित्रा । रूपाणि । दर्श्या ॥ ११ ॥

अन्वयः- २२५ उत स्म ते परुष्ण्यां शुन्ध्यवः ऊर्णाः वसत, उत रथानां पव्या ओजसा अद्रिं भिन्दन्ति ।

२२६ आ-पथयः वि-पथयः अन्तः-पथाः अनु-पथाः एतेभिः नामभिः विस्तारः मह्यं यज्ञं ओहते ।

२२७ अध नरः नि ओहते, अध नियुतः, अध पारावताः ओहते, इति रूपाणि चित्रा दर्श्या ।

अर्थ- २२५ (उत स्म) और (ते) वे वीर (परुष्ण्यां) परुष्णी नदी में (शुन्ध्यवः) पवित्र होकर (ऊर्णाः वसत) ऊनी कपडे पहनते हैं (उत) और (रथानां पव्या) रथों के पहियों से तथा (ओजसा) बडे बलसे (अद्रिं भिन्दन्ति) पहाड को भी विभिन्न कर डालते हैं ।

२२६ (आ-पथयः) समीप के मार्ग से जानेवाले, (वि-पथयः) विविध मार्गों से जानेवाले, (अन्तः-पथाः) गुप्त सडकों परसे जानेवाले (अनु-पथाः) अनुकूल मार्गोंसे जानेवाले, (एतेभिः नामभिः) ऐसे इन नामों से (विस्तारः) विख्यात हुए ये वीर (मह्यं) मेरे लिए (यज्ञं ओहते) यज्ञ के हविष्यान्न ढोकर लाते हैं ।

२२७ (अध) कभी कभी ये वीर (नरः) नेता बनकर संसार का (नि ओहते) धारण करते हैं, (अध नियुतः) कभी पंक्तियों में खडे रहकर सामुदायिक ढंगसे और (अध) उसी प्रकार (पारावताः) दूर-जगह खडे रहकर भी (ओहते) बोझ ढोते हैं, (इति) इस भाँति उनके (रूपाणि) स्वरूप (चित्रा) आश्चर्यकारक तथा (दर्श्या) देखनेयोग्य हैं ।

भावार्थ- २२५ वीर नदी में नहाकर शुद्ध होते हैं और ऊनी कपडे पहनकर अपने रथों के वेग से पहाडों तक को लाँघ कर चले जाते हैं ।

२२६ भाँति भाँति के मार्गों से जानेवाले वीर चहुँ ओर से अन्नसामग्री लाते हैं ।

२२७ वीर पुरुष नेता बन जाते हैं और सेना में दूर जगह या समीप खडे रहकर संरक्षण का समूचा भार उठा लेते हैं । ये सुस्वरूप तथा दर्शनीय भी हैं ।

टिप्पणी- [२२५] (१) परुस्= शरीर का अवयव; परुष्णी = शरीर, नदी का नाम । (२) ऊर्णा = ऊन, ऊनी कपडे ।

[२२६] (१) आ-पथः = सरल राह । (२) वि-पथः = विशेष मार्ग, विरुद्ध दिशा में जानेवाली सडक । (३) अन्तः-पथः = गुप्त विवरमार्ग, भूमि के अन्दरकी सडक, दरों से जानेवाला मार्ग । (४) अनु-पथः = पगडंडियाँ या बडी सडक की बाजू से जानेवाला सँकरा मार्ग (Foot-Paths) ।

[२२७] (१) नियुत् = घोडा, स्तोता, पंक्ति । (२) पारावताः = दूरदूर खडे हुए; दूर देश में रहे हुए ।

(२२८) छन्दुःऽस्तुभः । कुभन्यवः । उत्सम् । आ । कीरिणः । नृतुः ।
ते । मे । के । चित् । न । तायवः । ऊमाः । आसन् । दृशि । त्विषे ॥ १२ ॥

(२२९) ये । ऋष्वाः । ऋष्टिऽविद्युतः । कवयः । सन्ति । वेधसः ।
तम् । ऋषे । मारुतम् । गणम् । नमस्य । रमय । गिरा ॥ १३ ॥

(२३०) अच्छ । ऋषे । मारुतम् । गणम् । दाना । मित्रम् । न । योषणा ।
दिवः । वा । धृष्णवः । ओजसा । स्तुताः । धीभिः । इषण्यत ॥ १४ ॥

अन्वयः— २२८ छन्दः-स्तुभः कु-भन्यवः कीरिणः उत्सं आ नृतुः, ते के चित् मे तायवः न, ऊमाः दृशि, त्विषे आसन् ।

२२९ (हे) ऋषे ! ये ऋष्वाः ऋष्टि-विद्युतः कवयः वेधसः सन्ति, तं मारुतं गणं नमस्य गिरा रमय ।

२३० (हे) ऋषे ! योषणा मित्रं न मारुतं गणं अच्छ दाना, ओजसा धृष्णवः दिवः वा धीभिः स्तुताः इषण्यत ।

अर्थ- २२८ (छन्दः- स्तुभः) छन्दों से सराहनीय तथा (कु-भन्यवः) मातृभूमि की पूजा करनेवाले वीर (कीरिणः) स्तुति करनेवाले के लिए (उत्सं) जलप्रवाह (आ नृतुः) ला चुके। (ते के चित्) उनमें से कुछ (मे) मेरे लिए (तायवः न) चोरों के समान अदृश्य, कुछ (ऊमाः) रक्षणकर्ता होकर (दृशि) दृष्टिपथ में अवतीर्ण और कई (त्विषे) तेजोबल बढाते (आसन्) थे।

२२९ हे (ऋषे !) ऋषिवर ! (ये) जो (ऋष्वाः) बडे बडे, (ऋष्टि-विद्युतः) हथियारों से द्योतमान, (कवयः) ज्ञानी होते हुए (वेधसः) कुशलतापूर्वक कर्म करनेवाले हैं (तं मारुतं गणं) उस वीर मरुतों के गण को (नमस्य) नमन कर और (गिरा रमय) वाणी से आनन्द दो।

२३० हे (ऋषे !) ऋषिवर ! (योषणा मित्रं न) युवती जिस तरह प्रिय मित्र की ओर चली जाती है, उसीप्रकार (मारुतं गणं अच्छ) मरुत्संघकी ओर (दाना) दान लेकर जाओ। (ओजसा धृष्णवः) बल के कारण शत्रुदल की धज्जियाँ उडानेवाले ये वीर (दिवः वा) तेजस्वी हैं। हे वीरो ! (धीभिः स्तुताः) स्तुतियोंद्वारा प्रशंसित तुम इधर (इषण्यत) आओ।

भावार्थ- २२८ चूँकि वीर मातृभूमि के भक्त होते हैं, इसलिए वे सराहनीय हैं। उन में कुछ गुप्त रूप से, तो कई प्रकट रूप से सब की रक्षा करते हुए तेज की वृद्धि करते हैं।

२२९ वीर सैनिक महान् गुणी, विशेष ज्ञानी, कुशलतापूर्वक कार्य करनेहारे एवं आयुधधारी होने के कारण द्योतमान हैं। इस मरुत्संघ को रमणीय वाणी से हर्षित कर और नमन कर।

२३० दान लेकर वीरों के समीप चले जाना चाहिए। बल से शत्रुदल पर चढाई करनी चाहिए। जो ऐसे आक्रमणकर्ता होंगे, उन की स्तुति होगी।

टिप्पणी- [२२८। (१) कु-भन्यवः (कुः= पृथ्वी, भन् = पूजा करना) = मातृभूमि की पूजा करनेहारे। [(१) केचित् तायवः न = चोरों के समान अदृश्य। (२) केचित् ऊमाः दृशि = दृश्य संरक्षक। (३) केचित् त्विषे = शरीरान्तःसंचारी, शारीरिकबलसंवर्धक।]

[२२९] (१) वेधस् = [वि+धा = करना, उत्पन्न करना, आज्ञा करना] कुशलतापूर्वक कार्य करनेवाला।

[२३०] (१) योषणा = युवती, (यु = जोडना, मिलना, एक जगह आना- (यौति इति) = एक-मित होने की अपेक्षा रखनेहारा।

*

(२३१) नु । मन्वानः । एषाम् । देवान् । अच्छ । न । वक्षणा ।
दाना । सचेत । सूरिऽभिः । यामऽश्रुतेभिः । अञ्जिऽभिः । ॥ १५ ॥

(२३२) प्र । ये । मे । बन्धुऽएषे । गाम् । वोचन्त । सूरयः । पृश्निम् । वोचन्त । मातरम् ।
अध । पितरम् । इष्मिणम् । रुद्रम् । वोचन्त । शिक्वसः ॥ १६ ॥

(२३३) सप्त । मे । सप्त । शाकिनः । एकम्ऽएका । शता । ददुः ।
यमुनायाम् । अधि । श्रुतम् । उत् । राधः । गव्यम् । मृजे । राधः ।
अश्व्यम् । मृजे । ॥ १७ ॥

अन्वयः— २३१ वक्षणा न एषां देवान् अच्छ नु मन्वानः सूरिभिः याम-श्रुतेभिः अञ्जिभिः दाना सचेत ।

२३२ बन्धु-एषे ये सूरयः मे प्र वोचन्त गां पृश्निं मातरं वोचन्त, अध शिक्वसः इष्मिणं रुद्रं पितरं वोचन्त ।

२३३ सप्त सप्त शाकिनः एकं-एका मे शता ददुः, श्रुतं गव्यं राधः यमुनायां अधि उत् मृजे, अश्व्यं राधः नि मृजे ।

अर्थ- २३१ (वक्षणा न) वाहन के समान पार ले जानेवाले (एषां देवान् अच्छ) इन तेजस्वी वीरों की ओर (नु) शीघ्र पहुँच कर (मन्वानः) स्तुति करनेहारा, (सूरिभिः) ज्ञानी, (याम-श्रुतेभिः) चढाई के वार में विख्यात एवं (अञ्जिभिः) वस्त्रालंकारों से अलंकृत ऐसे उन वीरों से (दाना) दान के साथ (सचेत) संगत होता है ।

२३२ उनके (बन्धु-एषे) बांधवोंके जाननेकी इच्छा करने पर (ये सूरयः) जिन ज्ञानी वीरोंने (मे प्र वोचन्त) मुझसे कहा, उन्होंने "(गां) गौ तथा (पृश्निं) भूमि हमारी (मातरं) माताएँ हैं" (वोचन्त) ऐसा कह दिया । (अध) और (शिक्वसः) उन्हीं समर्थ वीरोंने "(इष्मिणं रुद्रं) वेगवान् महावीर हमारा (पितरं) पिता है" ऐसा भी कह दिया ।

अर्थ- २३३ (सप्त सप्त) सात सात सैनिकों की पंक्ति में जानेवाले (शाकिनः) इन समर्थ वीरोंमें से (एकं-एका) हरेकने (मे शता ददुः) मुझे सौ गौएँ दे दीं । (श्रुतं) उस विश्रुत (गव्यं राधः) गोसमूहरूपी धनको (यमुनायां अधि) यमुना नदी में (उत् मृजे) धो डालता हूँ और (अश्व्यं राधः) अश्वरूपी संपत्ति को वहीं पर (नि मृजे) धोता हूँ ।

भावार्थ- २३१ वे वीर संकटोंमें से पार ले जानेवाले हैं और आक्रमण करने में बडे विख्यात हैं । वे ज्ञानी हैं और वस्त्रालंकारों से भूषित रहते हैं । ऐसे उन तेजस्वी वीरों के पास दान लेकर पहुँच जाओ ।

२३२ गौ या भूमि मरुतों की माता है और रुद्र उनका पिता है ।

२३३ वीरों से दानरूप में प्राप्त हुई गौएँ तथा मिले हुए घोडे नदीजल में धोकर साफसुथरे रखने चाहिए ।

टिप्पणी- [२३१] (१) वक्षणं-वक्षणा = अग्नि, छाती, नदी का पात्र, नदी, वाहन ।
[२३२] (१) शिक्वस् = (शक् शक्तौ) समर्थ, सामर्थ्यवान् ।

(ऋ.५।५३।१—१६)

(२३४) कः । वेद । जानम् । एषाम् । कः । वा । पुरा । सुम्नेषु । आस । मरुताम् ।
यत् । युयुज्रे । किलास्यः ॥ १ ॥

(२३५) आ । एतान् । रथेषु । तस्थुषः । कः । शुश्राव । कथा । ययुः ।
कस्मै । सस्रुः । सुऽदासे । अनु । आपयः । इळाभिः । वृष्टयः । सह ॥ २ ॥

(२३६) ते । मे । आहुः । ये । आऽययुः । उप । द्युऽभिः । विऽभिः । मदे ।
नरः । मर्याः । अरेपसः । इमान् । पश्यन् । इति । स्तुहि ॥ ३ ॥

अन्वयः— २३४ यत् किलास्यः युयुज्रे एषां जानं कः वेद, कः वा पुरा मरुतां सुम्नेषु आस ?

२३५ रथेषु तस्थुषः एतान् कथा ययुः, कः आ शुश्राव, आपयः वृष्टयः इळाभिः सह कस्मै सु-दासे अनु सस्रुः ?

२३६ ये द्युभिः विभिः मदे उप आययुः ते मे आहुः, नरः मर्याः अ-रेपसः इमान् पश्यन् स्तुहि इति ।

अर्थ— २३४ वीर मरुतोंने (यत्) जब (किलास्यः) धब्बेवाली हिरनियाँ (युयुज्रे) अपने रथों में जोड दीं, तब (एषां) इनके (जानं) जन्मका रहस्य (कः वेद) कौन भला जानता था ? (कः वा) और कौन भला (पुरा) पहले इन (मरुतां सुम्नेषु) वीर मरुतों के सुखच्छत्रछाया में (आस) रहता था ?

२३५ (रथेषु तस्थुषः) रथोंमें बैठे हुए (एतान्) इन वीरों के समीप कौन भला (कथा ययुः) किस तरह जाते हैं ? उसी प्रकार उनके प्रभाव का वर्णन (कः आ शुश्राव ?) भला किसे सुनने मिला ? (आपयः) मित्रवत् हितकर्ता एवं (वृष्टयः) वर्षाके समान शांतिदायक ये वीर अपनी (इळाभिः सह) गौओं के साथ (कस्मै सु-दासे) किस उत्तम दानी की ओर (अनु सस्रुः) अनुकूल हो चले गये ?

२३६ (ये) जो (द्युभिः विभिः) तेजस्वी सोमों के साथ (मदे) आनंद पानेके लिए (उप आययुः) इकट्ठे हुए (ते मे आहुः) वे मुझसे बोले कि, "(नरः) नेता, (मर्याः) मानवोंके हितकारक (अ-रेपसः) तथा दोषरहित (इमान् पश्यन्) इन वीरों को देखकर (स्तुहि इति) उनकी प्रशंसा करो ।"

भावार्थ- २३४ जब ये वीर रथ में बैठकर संचार करने लगे, तब भला किसे इन के जीवन का ज्ञान प्राप्त हुआ था ? उसी प्रकार कौन लोग इन के सहारे रहते थे ? (ये वीर जब जनता के सुख के लिए प्रयत्नशील हुए, तभी से लोगों को इनका परिचय प्राप्त हुआ और लोग इन के आश्रय में सुखपूर्वक रहने लगे ।)

२३५ वीर रथों पर बैठकर मित्रों से मिलने के लिए जाते हैं, उस समय ये गायें साथ लेकर ही प्रस्थान करने लगते हैं । इन के शौर्य का बखान करना चाहिए ।

२३६ सोमयाग में इकट्ठे हुए सभी लोग कहने लगे कि, वीरों के काव्य का गायन करना चाहिए ।

टिप्पणी- [२३४] (१) किलास्यं = सुफेद धब्बा । किलासी= धब्बेवाली (हिरनी) ।

[२३५] (१) इळा- (इला-इडा) गौ, भूमि, वाणी, दान, स्वर्ग, अन्न । (२) आपिः= मित्र, सुगमतापूर्वक प्राप्त होनेवाला ।

[२३६] (१) विः= जानेवाला, पंछी, घोडा, लगाम, सोम, यजमान ।

(२३७) ये । अ॒ञ्जिषु॑ । ये । वाशी॑षु । स्वऽभा॑नवः । स्र॒क्षु । रु॒क्मेषु॑ । खा॒दिषु॑ ।
श्राया॑ः । रथे॑षु । धन्व॑ऽसु ॥ ४ ॥
(२३८) यु॒ष्माक॑म् । स्म॒ । रथा॑न् । अनु॑ । मु॒दे । द॒धे । म॒रु॒तः । जीर॑ऽदा॒न॒वः ।
वृ॒ष्टी । द्याव॑ः । य॒तीःऽइ॑व ॥ ५ ॥
(२३९) आ । यम् । नर॑ः । सु॒ऽदान॑वः । द॒दा॒शुषे॑ । दि॒वः । कोश॑म् । अचु॑च्यवुः ।
वि । प॒र्जन्य॑म् । सृ॒जन्ति॑ । रोद॑सी इति॑ । अनु॑ । धन्व॑ना । य॒न्ति॒ । वृ॒ष्टय॑ः ॥ ६ ॥

अन्वयः— २३७ ये स्व-भानवः अञ्जिषु ये वाशीषु स्रक्षु रुक्मेषु खादिषु रथेषु धन्वसु श्रायाः ।
२३८ (हे) जीर-दानवः मरुतः! मुदे वृष्टी यतीःइव द्यावः युष्माकं रथान् अनु दधे स्म।
२३९ नरः सु-दानवः दिवः ददाशुषे यं कोशं आ अचुच्यवुः रोदसी पर्जन्यं वि सृजन्ति, वृष्टयः धन्वना अनु यन्ति ।

अर्थ- २३७ (ये) जो (स्व-भानवः) स्वयंप्रकाशमान वीर, (अञ्जिषु) वस्त्रालंकारों में, (वाशीषु) कुठारों में, (स्रक्षु) मालाओं में, (रुक्मेषु) स्वर्णमय हारोंमें, (खादिषु) कँगनों में, (रथेषु) रथोंमें और (धन्वसु) धनुष्यों में (श्रायाः) आश्रय लेते हैं, अर्थात् इनका उपयोग करते हैं।

२३८ हे (जीर-दानवः मरुतः!) शीघ्रतापूर्वक विजय पानेवाले वीर मरुतो! (मुदे) आनंद के लिए मैं (वृष्टी) वर्षा के समान (यतीःइव) वेगपूर्वक जानेवाले (द्यावः) विजलियों के समान तेजस्वी (युष्माकं रथान्) तुम्हारे रथोंका (अनु दधे स्म) अनुसरण करता हूँ।

२३९ (नरः) नेता, (सु-दानवः) अच्छे दानी एवं (दिवः) तेजस्वी वीर (ददाशुषे) दानी लोगों के लिए (यं कोशं) जिस भाण्डार को (आ अचुच्यवुः) सभी स्थानों से बटोर लाते हैं, उसका वे (रोदसी) द्युलोक एवं भूलोक को (पर्जन्यं) वृष्टि के समान (वि सृजन्ति) विभजन कर डालते हैं। (वृष्टयः) वर्षा के समान शांतता देनेवाले वे वीर अपने (धन्वना) धनुष्यों के साथ (अनु यन्ति) चले जाते हैं।

भावार्थ- २३७ ये वीर तेजस्वी हैं और आभूषण, कुठार, माला, हार धारण करते हैं, तथा रथ में बैठकर धनुष्यों का उपयोग करते हैं।

२३८ मैं वीरों के रथ के पीछे चला आ रहा हूँ. (मैं उन के मार्ग का अवलम्बन करता हूँ।)

२३९ ये वीर शूरतापूर्ण कार्य कर के चारों ओर से धन कमा लाते हैं और उन का उचित बँटवारा कर के जनता को सुखी करते हैं।

टिप्पणी- [२३८] (१) दानु = (दा दाने, दो अवखण्डने, दान् खण्डने) दान देनेहारा, शूर, विजेता, नाश करनेवाला।

[२३९] (१) च्यु = गिरना, गँवाना, टपक जाना।

(२४०) तृतृदानाः । सिन्धवः । क्षोदसा । रजः । प्र । सस्रुः । धेनवः । यथा ।
स्यन्नाः । अश्वाःऽइव । अध्वनः । विऽमोचने । वि । यत् । वर्तन्ते । एन्यः ॥ ७ ॥

(२४१) आ । यात । मरुतः । दिवः । आ । अन्तरिक्षात् । अमात् । उत ।
मा । अव । स्थात । पराऽवतः ॥ ८ ॥

(२४२) मा । वः । रसा । अनितभा । कुभा । क्रुमुः । मा । वः । सिन्धुः । नि । रीरमत् ।
मा । वः । परि । स्थात् । सरयुः । पुरीषिणी । अस्मे इति । इत् । सुम्नम् । अस्तु । वः ॥ ९ ॥

अन्वयः- २४० यत् एन्यः अध्वनः विमोचने स्यन्नाः अश्वाःइव वि वर्तन्ते क्षोदसा तृदानाः सिन्धवः धेनवः यथा रजः प्र सस्रुः ।

२४१ (हे) मरुतः ! दिवः उत अ-मात् अन्तरिक्षात् आ यात, परावतः मा अव स्थात ।

२४२ वः अन्-इत-भा कु-भा रसा मा नि रीरमत्, वः क्रुमुः सिन्धुः मा, वः पुरीषिणी सरयुः मा परि स्थात्, अस्मे इत् वः सुम्नं अस्तु ।

अर्थ- २४० (यत् एन्यः) जो नदियाँ (अध्वनः विमोचने) मार्ग ढूँढ निकालने के लिए (स्यन्नाः अश्वाःइव) वेगवान् घोडोंके समान (वि वर्तन्ते) वेगपूर्वक वह जाती हैं, वे (क्षोदसा) उदकसे भूमि को (तृदानाः) फोडनेवाली (सिन्धवः) नदियाँ (धेनवः यथा) गौओं के समान (रजः) उपजाऊ भूमियों की ओर (प्रसस्रुः) वहने लगीं ।

२४१ हे (मरुतः !) वीर मरुतो ! (दिवः) द्युलोक से तथा (उत) उसी प्रकार (अ-मात् अन्तरिक्षात्) असीम अंतरिक्षमेंसे (आ यात) इधर आओ, (परावतः) दूरके देशमें ही (मा अव स्थात) न रहो ।

२४२ (वः) तुम्हें (अन्-इत-भा) तेजहीन और (कु-भा) मलिन (रसा) रसानामक नदी (मा नि रीरमत्) रममाण न करे (वः) तुम्हें (क्रुमुः) वेगपूर्वक आक्रमण करनेहारा (सिन्धुः) सिंधु नद बीचमें ही (मा) न रोक दे, (वः) तुम्हें (पुरीषिणी) जल से परिपूर्ण (सरयुः) सरयु नदी (मा परि स्थात्) न घेर लेवे । (अस्मे इत्) हमें ही (वः सुम्नं) तुम्हारा सुख (अस्तु) प्राप्त हो, मिल जाये ।

भावार्थ- २४० धुवाँधार वर्षा के पश्चात् नदियों में बाढ आने पर पृथ्वी को छिन्नभिन्न करके नदियाँ बहने लगती हैं और उपजाऊ भूभाग को अधिक उर्वर बना देती हैं । २४१ वीर सदैव हमारे निकट आकर यहीं पर रहें । २४२ हे वीरो ! तुम रसा, सिन्धु, पुरीषिणी एवं सरयु नदियों से सींचे हुए प्रदेश में ही रममाण न बनो, अपि तु हमारे निकट आकर हमें सुख दिलाओ ।

टिप्पणी- [२४०] (१) तृद् = भिन्न करना, नाश करना । (२) एनी = नदी । (३) स्यन्न = (स्यन्द् प्रस्रवणे) वेगपूर्वक जानेवाला, पिघलकर बहनेवाला । [२४१] (१) अ-म = (अ-मा = (माने) मापन करना) = अपरिमित, विस्तृत, असीम; (अम् गतौ) = शक्ति, वेग । [२४२] यहाँ पर रसा, सिन्धु, पुरीषिणी तथा सरयु इन चार नदियों का उल्लेख पाया जाता है । अध्यात्मपक्ष में भी इन चारों नदियों का स्थान माना जा सकता है, पर वैसी दशा में इन शब्दों का यौगिक अर्थ करना पडेगा और योगके अनुभवसे निश्चित करना पडेगा कि, मानवी देहमें इन प्रवाहोंसे कौन से स्थान दर्शाये जाते हैं । स्थूल सृष्टि में इन नदियों का स्थान निश्चित है- सिन्ध देश में सिन्धु, अयोध्या के समीप सरयू, काश्मीर में पुरीषिणी (परुष्णी) और शायद वायव्य सीमाप्रांत में बहनेवाली किसी नदीका नाम रसा हो । अभीतक इस नदीके स्थानका निर्णय नहीं हो सका । इस मंत्रमें यह अभिप्राय व्यक्त हुआ है कि, ये वीर सैनिक उपर्युक्त नदियों के रमणीय प्रदेश में ही दिलबहलाव करते न रहें, अपितु हमारे समीप आकर हमारी रक्षा करें । ['कुभा' और 'क्रुमु' भी नदियाँ हैं ऐसा 'ऐतरेयालोचनम्' में (पृष्ठ २२ पर) भट्टाचार्य हितव्रतशर्माजीने लिखा है ।]

(२४३) तम् । वः । शर्धम् । रथानाम् । त्वेषम् । गणम् । मारुतम् । नव्यसीनाम् ।
अनु । प्र । यन्ति । वृष्टयः ॥ १० ॥
(२४४) शर्धम्ऽशर्धम् । वः । एषाम् । व्रातम्ऽव्रातम् । गणम्ऽगणम् । सुऽशस्तिभिः ।
अनु । क्रामेम । धीतिऽभिः ॥ ११ ॥

अन्वयः— २४३ तं वः नव्यसीनां रथानां शर्धं त्वेषं मारुतं गणं अनु वृष्टयः प्र यन्ति ।
२४४ एषां वः शर्धं-शर्धं व्रातं-व्रातं गणं-गणं सु-शस्तिभिः धीतिभिः अनु क्रामेम ।

अर्थ- २४३ (तं) उस (वः) तुम्हारे (नव्यसीनां) नये (रथानां शर्धं) रथों के बल के, सैन्य के एवं (त्वेषं) तेजस्वी (मारुतं गणं) वीर मरुतों के समूह के (अनु) अनुरोध से (वृष्टयः प्र यन्ति) वर्षाएँ वेग से चली जाती हैं ।

२४४ (एषां वः) इन तुम्हारे (शर्धं-शर्धं) हर सैन्य के साथ, (व्रातं--व्रातं) प्रत्येक समुदाय के साथ और (गणं--गणं) हरएक सैन्य के दल के साथ (सु--शस्तिभिः) अत्यन्त सराहनीय अनुशासन के (धीतिभिः) विचारों से युक्त होकर (अनु क्रामेम) हम अनुक्रम से चलते रहें ।

भावार्थ- २४३ जिधर मरुतों के रथ चले जाते हैं, उधर युद्ध होता है, तथा वर्षा भी हुआ करती है ।
२४४ गणवेश पहनकर दलबल का जैसा अनुशासन हो, वैसे ही अनुक्रम से पग धरते चले जाँय ।

टिप्पणी- [२४४] (१) शर्धः = सेना का छोटा विभाग । (२) व्रातः= सेना का उस से किंचित् अधिक हिस्सा । (३) गणः = सेना का और भी अधिक दल । यह अक्षौहिणी का अंश है, जिस में इस भाँति सेना रहा करती है- गणः- सेनाका वह विभाग, जिसमें २७ रथ, २७ हाथी, ८१ घोडे १३५ पैदलसिपाही रहते हैं। यह देखनेयोग्य है कि, गण में कितने मनुष्य पाये जाते हैं । रथ के साथ १ रथी, १ सारथी, १ पार्ष्णिसारथी, २ चक्ररक्षक, २ पृष्ठरक्षक, ४ साईस, मिलकर ११ मनुष्य होते हैं । इस के सिवा एक बाण रखने की गाडी रहती है, जिसे हाँकनेवाला एक मनुष्य चाहिए; अर्थात् हर रथ के साथ १२ मनुष्य रहते हैं । इस गणना के अनुसार २७ रथों के साथ २७×१२= ३२४ मनुष्य होते हैं। कमसे कम २७×११= २९७ तो होंगे ही । हाथी के लिए २ योद्धा, १ महावत, ५ लाठमार, १ भंगी, १ जल ढोनेवाला मिलकर १० आदमी रहते हैं। २७ हथियोंके लिए ठीक २७० मनुष्य कार्य करते हैं । घोडे के साथ एक वीर (सवार) तथा एक साईस ऐसे २ मनुष्य रहते हैं । ८१ घोडोंके कारण १६२ मनुष्य होते हैं । अब पैदल सिपाहियों की संख्या १३५ है । सब की गिनती कर देखिए, तो ८९१ मनुष्यसंख्या होती है । ये युद्ध करनेवाले सैनिक हैं, ऐसा समझना उचित है । योद्धा मरुतों के हर गण में इतने मनुष्य रहते थे । मरुतों की एक पंक्ति में ७ वीर रहते हैं और दोनों ओर के दो पार्श्वरक्षक मिलकर हर पंक्ति में ९ सैनिक होते हैं । इस तरह की ७ कतारों में ७×७= ४९ मरुत् तथा १४ पार्श्वरक्षक कुल मिलाकर ६३ मरुतों का एक दल या छोटासा विभाग होता है । मरुतों का विभाग ७ संख्या से सूचित होता है, इसलिए उनके १४ विभागों में ६३×१४ =८८२ होते हैं । यह संख्या ऊपर अक्षौहिणी की गणना के अनुसार ही हुई, ८९१ से मेल खाती है । हाँ, केवल ९ का अन्तर है, शायद कहीं पर निश्चित अंक कम-ज्यादह माना गया हो । ऐसा हो, तो उसे दूर कर सकते हैं । अर्थात् मरुतों के एक ' गण ' नामक सैन्यविभाग में ८८२ सैनिकों का अन्तर्भाव होता था, ऐसा जान पडता है । ' शर्ध ' तथा ' व्रात ' में कितने सैनिक सम्मिलित होते थे, सो ढूँढना चाहिए । अनुसन्धानकर्ता निश्चित करें कि, क्या ६३ सैनिकों का ' शर्ध, ' (६३×७)= ४४१ सैनिकों का ' व्रात ' एवं ८८२ सैनिकों का ' गण ' ऐसे विभाग माने जा सकते या नहीं । (४) धीतिः = भक्ति, विचार, अंगुलि, प्यास, पेय, अपमान । (५) अनु+क्रम् = एक के पीछे एक पग डालना ।

(२४५) कस्मै । अद्य । सुऽजाताय । रातऽहव्याय । प्र । ययुः । एना । यामेन । मरुतः ॥ १२ ॥

(२४६) येन । तोकाय । तनयाय । धान्यम् । बीजम् । वहध्वे । अक्षितम् ।
अस्मभ्यम् । तत् । धत्तन । यत् । वः । ईमहे । राधः । विश्वऽआयु । सौभगम् ॥१३॥

(२४७) अति । इयाम । निदः । तिरः । स्वस्तिऽभिः । हित्वा । अवद्यम् । अरातीः ।
वृष्ट्वी । शम् । योः । आपः । उस्रि । भेषजम् । स्याम । मरुतः । सह ॥ १४ ॥

अन्वयः— २४५ अद्य मरुतः एना यामेन कस्मै रात-हव्याय सु-जाताय प्र ययुः?

२४६ येन तोकाय तनयाय अ-क्षितं धान्यं बीजं वहध्वे, यत् राधः वः ईमहे तत् विश्व-आयु सौभगं अस्मभ्यं धत्तन।

२४७ (हे मरुतः!) स्वस्तिभिः अवद्यं हित्वा अरातीः तिरः निदः अति इयाम, वृष्ट्वी योः शं आपः उस्रि भेषजं सह स्याम।

अर्थ- २४५ (अद्य) आज (मरुतः) वीर मरुत् (एना यामेन) इस रथ में से (कस्मै) भला किस (रात-हव्याय) हविष्यान्न देनेवाले एवं (सु-जाताय) कुलीन मानव की ओर (प्र ययुः) चले जा रहे हैं?

२४६ (येन) जिससे (तोकाय तनयाय) पुत्रपौत्रों के लिए (अ-क्षितं) न घटनेवाले (धान्यं बीजं) अनाज तथा बीज (वहध्वे) ढोकर लाते हो, (यत् राधः) जिस धनके लिए (वः) तुम्हारे पास हम (ईमहे) आते हैं, (तत्) वह और (विश्व-आयु) दीर्घ जीवन एवं (सौभगं) अच्छा ऐश्वर्य (अस्मभ्यं धत्तन) हमें दे दो।

२४७ हे (मरुतः!) वीर मरुतो! (स्वस्तिभिः) हित कारक उपायों द्वारा (अवद्यं हित्वा) दोष नष्ट करके (अरातीः) शत्रुओं का एवं (तिरः निदः) गुप्त निन्दक का हम (अति इयाम) पराभव कर सकें। हमें (वृष्ट्वी) शक्ति, (योः शं) एकतासे उत्पन्न होनेवाला सुख, (आपः) जल तथा (उस्रि भेषजं) तेजस्वी औषधी (सह स्याम) एक ही समय मिले।

भावार्थ- २४५ प्रश्न है कि, भला आज दिन किस जगह मरुत् पहुँचना चाहते हैं? (उधर हम भी चलें।)

२४६ हमें धन, धान्य, ऐश्वर्य तथा बल चाहिए। हमें ये सभी बातें उपलब्ध हों।

२४७ स्वस्ति तथा क्षेम हमें मिल जाए। हमारे सभी शत्रु विनष्ट हों। ऐक्यभाव से उत्पन्न होनेवाला सुख, शक्ति, जल, परिणामकारक औषधियाँ हमें मिल जायँ।

टिप्पणी-[२४७] (१) योः= (यु= जोडना= एकता) एकतासे। (२) स्वस्ति (सु+अस्ति)= अच्छी दशा में रहना। (३) अ-राति= अनुदार, शत्रु। (४) निद्= निंदक, दुश्मन।

(२४८) सुऽदेवः । समह । असति । सुऽवीरः । नरः । मरुतः । सः । मर्त्यः ।
यम् । त्रायध्वे । स्याम । ते ॥ १५ ॥

(२४९) स्तुहि । भोजान् । स्तुवतः । अस्य । यामनि । रणन् । गावः । न । यवसे ।
यतः । पूर्वान्ऽइव । सखीन् । अनु । ह्वय । गिरा । गृणीहि । कामिनः ॥ १६ ॥

(ऋ० ५।५४।१-१५)

(२५०) प्र । शर्धाय । मारुताय । स्वऽभानवे । इमाम् । वाचम् । अनज । पर्वतऽच्युते ।
घर्मऽस्तुभे । दिवः । आ । पृष्ठऽयज्वने । द्युम्नऽश्रवसे । महि । नृम्णम् । अर्चत ॥ १ ॥

अन्वयः— २४८ (हे) नरः मरुतः! यं त्रायध्वे सः मर्त्यः सु-देवः, स-मह, सु-वीरः असति, ते स्याम।

२४९ स्तुवतः अस्य भोजान् यामनि, गावः न यवसे, रणन् स्तुहि, यतः पूर्वान्ऽइव कामिनः सखीन् ह्वय, गिरा अनु गृणीहि ।

२५० स्व-भानवे पर्वत-च्युते मारुताय शर्धाय इमां वाचं प्र अनज, घर्म-स्तुभे दिवः पृष्ठ-यज्वने द्युम्न-श्रवसे महि नृम्णं आ अर्चत ।

अर्थ— २४८ हे (नरः मरुतः !) नेता वीर मरुतो ! (यं) जिसे (त्रायध्वे) तुम बचाते हो, (सः मर्त्यः) वह मनुष्य (सु-देवः) अत्यन्त तेजस्वी, (स-मह) महत्तासे युक्त और (सु-वीरः) अच्छा वीर (असति) होता है। (ते स्याम) हम भी वैसे ही हों।

२४९ (स्तुवतः अस्य) स्तवन करनेवाले इस भक्त के यज्ञ में (भोजान्) भोजन पाने के लिए (यामन्) जाते समय (गावः न यवसे) गौएँ जिस तरह घासकी ओर जाती हैं वैसे ही, (रणन्) आनन्द-पूर्वक गरजते हुए जानेवाले इन वीरों की (स्तुहि) प्रशंसा करो, (यतः) क्योंकि वे (पूर्वान्इव) पहले परिचित तथा (कामिनः) प्रेमभरे (सखीन्) मित्रों के समान अपने सहायक हैं। उन्हें (ह्वय) अपने समीप बुलाओ और (गिरा) अपनी वाणी से उनकी (अनु गृणीहि) सराहना करो।

२५० (स्व-भानवे) स्वयंप्रकाश और (पर्वत-च्युते) पहाडों को भी हिलानेवाले (मारुताय शर्धाय) मरुतों के बल के लिए (इमां वाचं) इस अपनी वाणी को-कविता को तुम (प्र अनज) भली भाँति सँवारो, अलंकृत करो। (घर्म-स्तुभे) तेजस्वी वीरों की स्तुति करनेहारे, (दिवः पृष्ठ-यज्वने) दिव्य स्थान से पीछे से आकर यजन करनेवाले और (द्युम्न-श्रवसे) तेजस्वी यश पानेवाले वीरोंको (महि नृम्णं) विपुल धन देकर (आ अर्चत) उनकी पूजा करो।

भावार्थ— २४८ जिन्हें वीरों का संरक्षण प्राप्त होवे, वे बडे तेजस्वी, महान तथा वीर होते हैं। हम उसी प्रकार बनें।

२४९ भक्त के यज्ञों में जाते समय इन वीरों को बडा भारी हर्ष होता है। चूँकि ये सब का हित चाहते हैं, इसलिए इनकी स्तुति सब को करनी चाहिए।

२५० अलंकारपूर्ण काव्य वीरों के वर्णन पर बनाओ और उन्हें धन देकर उनका सत्कार करो।

टिप्पणी— [२४९] (१) भोजः = (भुज्- पालनाभ्यवहारयोः = भोग प्राप्त करनेहारा। (२) यामन् = पूजा, यज्ञ, गति, हलचल, चढाई, हमला। (३) अनु+गृ प्रोत्साहन देना, अनुग्रह करना, सराहना करना, उमंग बढाना।

[२५०] (१) यज् = देना, यज्ञ करना, सहायता प्रदान करना, पूजा-संगति-दानात्मक कार्य करना। (२) पृष्ठ = पीठ, पीछे से। (३) घर्म = (घृ = क्षरणदीप्त्योः) प्रकाशमान, तेजस्वी, उष्ण। (४) पृष्ठ-यज्वा = पीछे से अर्थात् किसी को भी विदित न हो, इस ढंग से सहायता देनेवाला। (५) नृम्णं = (नृ-मन) = मानवी मन, जो मानवी मन को बरबस अपनी ओर खींच ले ऐसा धन।

(२५१) प्र । वः । मरुतः । तविषाः । उदन्यवः । वयःऽवृधः । अश्वऽयुजः । परिऽज्रयः । सम् । विऽद्युता । दधति । वाशति । त्रितः । स्वरन्ति । आपः । अवना । परिऽज्रयः ॥२॥
(२५२) विद्युत्ऽमहसः । नरः । अश्मऽदिद्यवः । वातऽत्विषः । मरुतः । पर्वतऽच्युतः । अब्दऽया । चित् । मुहुः । आ । ह्रादुनिऽवृतः । स्तनयत्ऽअमाः । रभसाः । उत्ऽओजसः ॥ ३ ॥

अन्वयः— २५१ (हे) मरुतः ! वः तविषाः उदन्यवः वयो-वृधः अश्व-युजः प्र परि-ज्रयः त्रि-तः विद्युता सं दधति वाशति परि-ज्रयः आपः अवना स्वरन्ति ।

२५२ विद्युत्-महसः नरः अश्म-दिद्यवः वात-त्विषः पर्वत-च्युतः ह्रादुनि-वृतः स्तनयत्-अमाः रभसाः उत्-ओजसः मरुतः मुहुः चित् आ अब्दया ।

अर्थ- २५१ हे (मरुतः !) वीर मरुतो ! (वः तविषा) तुम्हारे बलवान्, (उदन्-यवः) प्रजाके लिए जल देनेवाले, (वयो-वृधः) अन्नकी समृद्धि करनेहारे तथा (अश्व-युजः) रथोंमें घोडे जोडनेवाले वीर जब (प्र परि-ज्रयः) बहुत वेगसे चतुर्दिक् घूमने लगते हैं और तुम्हारा (त्रि-तः) तीनों ओर फैलनेवाला संघ (विद्युता सं दधति) तेजस्वी वज्रोंसे सुसज्ज होता है और (वाशति) शत्रुको चुनौती देता है, तब (परि-ज्रयः) चारों ओर विजय देनेवाला (आपः) जीवन, जल (अवना) पृथ्वी पर (स्वरन्ति) गर्जना करते हुए संचार करता है ।

२५२ (विद्युत्-महसः) बिजली के समान बलवान्, (नरः) नेता, (अश्म-दिद्यवः) हथियारोंके चमकने से तेजस्वी, (वात-त्विषः) वायु के समान गतिशील एवं तेजस्वी, (पर्वत-च्युतः) पहाडों को हिलानेवाले, (ह्रादुनि-वृतः) वज्रोंसे युक्त, (स्तनयत्-अमाः) घोषणा करने की शक्तिसे युक्त, (रभसाः) वेगवान्, (उत्-ओजसः) अच्छे बलशाली वे (मरुतः) वीर मरुत् (मुहुः चित्) बारंबार (आ अब्दया) चारों ओर जल देना चाहते हैं- शत्रुको अपना सच्चा तेज दिखाते हैं ।

भावार्थ- २५१ बलिष्ठ वीर सैनिक प्रजा के लिए जल की व्यवस्था करते हैं, अन्न को वृद्धिंगत करते हैं, रथों में घोडे जोडकर चारों ओर घूमकर समूची हालत को स्वयं ही देख लेते हैं और विजयी बन जाते हैं । बडे अच्छे प्रबंध से अपने हथियार समीप रख लेते हैं और यत्रतत्र विजयपूर्ण वायुमंडल का सृजन करते हैं, तथा भूमंडल पर नहरों से या अन्य किन्हीं उपायों से जल को चहुँ ओर पहुँचा देते हैं ।

२५२ तेजस्वी नेता शस्त्रास्त्रों से सुसज्जित बनकर पहाडों तक को विकंपित कर देनेकी अपनी क्षमता को बढाते हैं और दुश्मन को आह्वान देकर अवश्य ही उन्हें अपना बल दर्शाते हैं ।

[मेघविषयक अर्थ] बिजली चमक रही है, (अश्म) ओले गिर रहे हैं, भारी तूफान हो रहा है, दामिनी की दहाड सुनाई दे रही है, वायुवेग से जान पडता है कि, मानों पहाड उड जायेंगे । इसके बाद मूसलाधार वर्षा हो चहुँ ओर जल ही जल दीख पडता है ।

टिप्पणी- [२५१] (१) उदन्यु = (उदन् + यु = उदक + योजना) प्यासा, जल ढूँढनेवाला, पानी से युक्त होनेवाला । (२) वयस् = अन्न, शरीरप्रकृति, बल, आयुष्य । (३) त्रि-त = (त्रि + ताय् = सन्तान-पालनयोः) तीनों ओर पंक्ति में जानेवाला (त्रिषु स्थानेषु तायमानः—सायनभाष्य) (४) तविष = (तु गति-वृद्धि-हिंसार्थे) बल, शक्ति, सामर्थ्य । (५) परि-ज्रयः (ज्रि जये) चारों दिशाओं में विजयी, चतुर्दिक् गमन, चहुँ ओर खलबली । (६) आप् = (आप् व्याप्तौ) = व्यापक, आकाश, जल, जीवन ।

❊

(२५३) वि । अक्तून् । रुद्राः । वि । अहानि । शिक्वसः । वि । अन्तरिक्षम् । वि । रजांसि । धूतयः ।
वि । यत् । अज्रान् । अजथ । नावः । ईम् । यथा । वि । दुःऽगानि । मरुतः । न । अह । रिष्यथ ॥ ४ ॥

(२५४) तत् । वीर्यम् । वः । मरुतः । महिऽत्वनम् । दीर्घम् । ततान । सूर्यः । न । योजनम् । एताः । न । यामे । अगृभीतऽशोचिषः । अनश्वऽदाम् । यत् । नि । अयातन । गिरिम् ॥ ५ ॥

अन्वयः— २५३ (हे) धूतयः शिक्वसः रुद्राः मरुतः! यत् अक्तून् वि, अहानि वि, अन्तरिक्षं वि, रजांसि वि अजथ, यथा नावः ईं अज्रान् वि, दुर्गाणि वि, न अह रिष्यथ।

२५४ (हे) मरुतः! वः तत् योजनं वीर्यं, सूर्यः न, दीर्घं महित्वनं ततान, यत् यामे, एताः न, अ-गृभीत-शोचिषः अन्-अश्व-दां गिरिं नि अयातन।

अर्थ- २५३ हे (धूतयः) शत्रुओं को हिलानेवाले, (शिक्वसः) सामर्थ्ययुक्त एवं (रुद्राः मरुतः!) दुश्मनों को रुलानेवाले वीर मरुतो! (यत्) जब (अक्तून् वि) रात्रियों में (अहानि वि) दिनों में (अन्तरिक्षं वि) अन्तरिक्षमें से या (रजांसि वि अजथ) धूलिमय प्रदेशमेंसे जाते हो, उस समय (यथा नावः ईं) जैसे नौकाएँ समुन्दरमें से जाती हैं, वैसे ही तुम (अज्रान् वि) विभिन्न प्रदेशों में से तथा (दुर्गाणि वि) बीहड स्थानोंमें से भी जाते हो, तब तुम (न अह रिष्यथ) बिलकुल थक न जाओ, बिना थकावट के यह सब कुछ हो जाय ऐसा करो।

२५४ हे (मरुतः!) वीर मरुतो! (वः तत्) तुम्हारी वे (योजनं) आयोजनाएँ तथा (वीर्यं) शक्ति (सूर्यः न) सूर्यवत् (दीर्घं महित्वनं) अति विस्तृत (ततान) फैली हुई हैं. (यत्) क्योंकि तुम (यामे) शत्रु पर किये जानेवाले आक्रमण के समय (एताः न) कृष्णसारों के समान वेगवान बनकर (अ-गृभीत-शोचिषः) पकडने में असंभव प्रभाव से युक्त हो और (अन्-अश्व-दां) जहाँ पर घोडे पहुँच नहीं सकते, ऐसे (गिरिं) पर्वतपर भी (नि अयातन) हमले चढाते हो।

भावार्थ- २५३ जो बलिष्ठ वीर होते हैं, वे रात को, दिन में, अन्तरिक्ष में से या रेगिस्तानमें से चले जाते हैं। वे समतल भूमि पर से या बीहड पहाडी जगह में से बराबर आगे बढते ही जाते हैं, पर कभी थक नहीं जाते। (इस भाँति शत्रुदल पर लगातार हमले करके वे विजयी बन जाते हैं।)

२५४ वीरों की बनाई हुई युद्धकी आयोजनाएँ तथा उनकी संगठनशक्ति सचमुच बडी अनूठी है। दुश्मनों पर धावा करते वक्त वे जैसे समतल भूमि पर आक्रमण करते हैं, उसी प्रकार वे शत्रु के दुर्ग पर भी चढाई करनेमें हिचकिचाते नहीं।

टिप्पणी-- [२५३] (१) शिक्वस् = (शक् शक्तौ) कुशल, बुद्धिमान, सामर्थ्ययुक्त। शिक्व = कुशल, बुद्धिमान, समर्थ। (२) अज्र = खेत, समतल भूमि।

[२५४] (१) योजनं = जोडनेवाला, इकट्ठा होनेवाला, व्यवस्था, प्रयत्न, आयोजना। (२) अन्-अश्व-दा (गिरिः) जहाँ पर घोडे पग नहीं धर देते, ऐसा स्थान, पहाडी गढ, दुर्गम पर्वत। (३) गिरिः = पर्वत, पार्वतीय दुर्ग, वाणी।

(२५५) अभ्राजि । शर्धः । मरुतः । यत् । अर्णसम् । मोषथ । वृक्षम् । कपनाऽइव । वेधसः । अध । स्म । नः । अरमतिम् । सऽजोषसः । चक्षुःऽइव । यन्तम् । अनु । नेषथ । सुऽगम् ॥ ६ ॥

(२५६) न । सः । जीयते । मरुतः । न । हन्यते । न । स्रेधति । न । व्यथते । न । रिष्यति । न । अस्य । रायः । उप । दस्यन्ति । न । ऊतयः । ऋषिम् । वा । यम् । राजानम् । वा । सुसूदथ ॥ ७ ॥

अन्वयः— २५५ (हे) वेधसः मरुतः ! शर्धः अभ्राजि, यत् कपनाइव अर्णसं वृक्षं मोषथ, अध स्म (हे) स-जोषसः ! चक्षुःइव यन्तं सु-गं अ-रमतिं नः अनु नेषथ ।

२५६ (हे) मरुतः ! यं ऋषिं वा राजानं वा सुसूदथ सः न जीयते, न हन्यते, न स्रेधति, न व्यथते, न रिष्यति, अस्य रायः न उप दस्यन्ति, ऊतयः न ।

अर्थ— २५५ हे (वेधसः) कर्तृत्ववान (मरुतः !) वीर मरुतो ! तुम्हारा (शर्धः) बल (अभ्राजि) द्योतमान हो चुका है, (यत् कपनाइव) क्योंकि प्रबल आँधी के समान (अर्णसं वृक्षं) सागवानी पेडों को भी तुम (मोषथ) तोडमरोड देते हो । (अध स्म) और हे (स-जोषसः!) हर्षित मनवाले वीरो ! (चक्षुःइव) आँख जैसे (यन्तं) जानेवाले को (सु-गं) अच्छा मार्ग दर्शाती है, वैसे ही (अ-रमतिं नः) विना आराम लिए कार्य करनेवाले हमें (अनु नेषथ) अनुकूल ढंगसे सीधी राहपर से ले चलो ।

२५६ हे (मरुतः !) वीर मरुतो ! (यं ऋषिं वा) जिस ऋषि को या (राजानं वा) जिस राजा को तुम अच्छे कार्य में (सुसूदथ) प्रेरित करते हो, (सः न जीयते) वह विजित नहीं बनता है, (न हन्यते) उसकी हत्या नहीं होती है, (न स्रेधति) नष्ट नहीं होता है, (न व्यथते) दुःखी नहीं बनता है और (न रिष्यति) क्षीण भी नहीं होता है । (अस्य रायः) इसके धन (न उप दस्यन्ति) नष्ट नहीं होते हैं तथा (ऊतयः) इनकी संरक्षक शक्तियाँ भी नहीं घटतीं ।

भावार्थ- २५५ कर्तृत्वशाली वीरों का तेज चमकता ही रहता है । जिस प्रकार प्रचंड आँधी बडे पेडों को जडमूल से उखाड फेंक देती है, वैसे ही ये वीर शत्रुओं को हिलाकर गिरा देते हैं । नेत्र जैसे यात्री को सरल सडक पर से ले चलता है, ठीक उसी प्रकार ये वीर हम जैसे प्रबल पुरुषार्थी लोगों को सीधी राह से प्रगति की ओर ले चलें ।

२५६. जिसे वीरों की सहायता मिलती है, उसकी प्रगति सब प्रकार से होती है ।

टिप्पणी- [२५५] (१) अर्णस् = गतिमान, चंचल, जिसमें खलबली मची हुई हो ऐसा प्रवाह, जल, सागवान, समुद्र । (२) अ-रमति = आराम न लेनेवाला, चारों ओर जानेवाला, आज्ञाधारक, रममाण न होनेवाला । (३) मुष् = (मुष् खण्डने मुष्यति, मोषति) क्षति करना, वध करना, तोडना मरोडना । (४) कपना = कंपन, हिलानेवाला, झंझावात, शक्ति, कृमि । (५) वेधस् = (वि-धा) = कर्ता, कर्तृत्ववान, विधाता ।

[२५६] (१) सूद् = प्रेरणा देना, पकाना, फेंकना, उँडेलना, पीडा देना, वध करना । (२) रिष् = (रुष्) क्षीण होना ।

(२५७) नियुत्वन्तः । ग्रामऽजितः । यथा । नरः । अर्यमणः । न । मरुतः । कवन्धिनः ।
पिन्वन्ति । उत्सम् । यत् । इनासः । अस्वरन् । वि । उन्दन्ति । पृथिवीम् । मध्वः ।
अन्धसा ॥ ८ ॥

(२५८) प्रवत्वती । इयम् । पृथिवी । मरुत्ऽभ्यः । प्रवत्वती । द्यौः । भवति । प्रयत्ऽभ्यः ।
प्रवत्वतीः । पथ्याः । अन्तरिक्ष्याः । प्रवत्वन्तः । पर्वताः । जीरऽदानवः ॥९॥

अन्वयः— २५७ यथा नियुत्वन्तः ग्राम-जितः नरः कवन्धिनः मरुतः, अर्यमणः न, यत् इनासः अस्वरन् उत्सं पिन्वन्ति पृथिवीं मध्वः अन्धसा वि उन्दन्ति ।

२५८ (हे) जीर-दानवः ! इयं पृथिवी मरुद्भ्यः प्रवत्-वती, द्यौः प्र-यद्भ्यः प्रवत्-वती भवति अन्तरिक्ष्याः पथ्याः प्रवत्-वतीः, पर्वताः प्रवत्-वन्तः ।

अर्थ- २५७ (यथा) जैसे (नियुत्वन्तः) घोडे समीप रखनेवाले, (ग्राम-जितः) दुश्मनोंके गाँव जीतनेवाले, (नरः) नेता, (कवन्धिनः) समीप जल रखनेवाले (मरुतः) वीर मरुत् (अर्यमणः न) अर्यमाके समान (यत् इनासः) जब वेगसे जाते हैं, तब (अस्वरन्) शब्द करते हैं; (उत्सं पिन्वन्ति) जलकुण्डों को परिपूर्ण बना रखते हैं और (पृथिवीं) भूमि पर (मध्वः) मिठास भरे (अन्धसा) अन्न की (वि उन्दन्ति) विशेष समृद्धि करते हैं ।

२५८ हे (जीरदानवः !) शीघ्र विजयी बननेवाले वीरो ! (इयं पृथिवी) यह भूमि (मरुद्भ्यः) वीर मरुतों के लिए (प्रवत्-वती) सरल मार्गोंसे युक्त बन जाती है, (द्यौः) द्युलोक भी (प्र-यद्भ्यः) वेगपूर्वक जानेवाले इन वीरों के लिए (प्रवत्-वती) आसानीसे जानेयोग्य (भवति) होता है; (अन्तरिक्ष्याः पथ्याः) अन्तराल की सडकें भी उनके लिए (प्रवत्-वतीः) सुगम बनती हैं और (पर्वताः) पहाड भी (प्रवत्-वन्तः) उनके लिए सरल पथवत् बने दीख पडते हैं ।

भावार्थ- २५७ घुडसवार वीर शत्रुओं के ग्राम जीत लेते हैं, तथा वेगपूर्वक दुश्मनों पर धावा करते हैं । उस समय वे बडी भारी घोषणा करते हैं और जलकुण्ड पानी से भरकर भूमंडल पै मधुरिमामय अन्नजल की समृद्धि की यत्रतत्र विपुलता कर देते हैं ।

२५८ वीरों के लिए पृथ्वी, पर्वत, अन्तरिक्ष एवं आकाशपथ सभी सुसाध्य एवं सुगम प्रतीत होते हैं । (वीरों के लिए कोई भी जगह बीहड या दुर्गम नहीं जान पडती है ।)

टिप्पणी-- [२५७] (१) नियुत् = घोडा, पंक्ति । (२) अन्धस् = अन्न (अन्-धस्) प्राण का धारण करनेवाला अन्न । (३) कवन्धिन् = जलकुण्ड या पानी की बोतलें (Water-bottles) समीप रखनेवाले ।
[२५८] (१) प्रवत् = सुगम मार्ग, समतल राह, ऊँचाई, ढाल ।

(२५९) यत् । मरुतः । सऽभरसः । स्वःऽनरः । सूर्ये । उत्ऽइते । मदथ । दिवः । नरः ।
न । वः । अश्वाः । श्रथयन्त । अह । सिस्रतः । सद्यः । अस्य । अध्वनः । पारम् ।
अश्नुथ ॥१०॥

(२६०) अंसेषु । वः । ऋष्टयः । पत्ऽसु । खादयः । वक्षःऽसु । रुक्माः । मरुतः । रथे । शुभः ।
अग्निऽभ्राजसः । विऽद्युतः । गभस्त्योः । शिप्राः । शीर्षऽसु । विऽतताः । हिरण्ययीः ॥११॥

(२६१) तम् । नाकम् । अर्यः । अगृभीतऽशोचिषम् । रुशत् । पिप्पलम् । मरुतः । वि । धूनुथ ।
सम् । अच्यन्त । वृजना । अतित्विषन्त । यत् । स्वरन्ति । घोषम् । विऽततम् ।
ऋतऽयवः ॥१२॥

अन्वयः— २५९ (हे) मरुतः! स-भरसः स्वर्-नरः सूर्ये उदिते मदथ, (हे) दिवः नरः! यत् वः सिस्रतः अश्वाः न अह श्रथयन्त, सद्यः अस्य अध्वनः पारं अश्नुथ। २६० (हे) रथे शुभः मरुतः! वः अंसेषु ऋष्टयः, पत्सु खादयः, वक्षःसु रुक्माः, गभस्त्योः अग्नि-भ्राजसः विद्युतः, शीर्षसु हिरण्ययीः वितताः शिप्राः। २६१ (हे) अर्यः मरुतः! तं अ-गृभीत-शोचिषं नाकं रुशत् पिप्पलं वि धूनुथ, वृजना सं अच्यन्त अतित्विषन्त, यत् ऋतं-यवः विततं घोषं स्वरन्ति।

अर्थ- २५९ हे (मरुतः!) वीर मरुतो! (स-भरसः) समान रूपसे कार्यका बोझ उठानेवाले, मानों (स्वर्-नरः) स्वर्गके नेता तुम (सूर्ये उदिते) सूर्यके उदय होनेपर (मदथ) हर्षित होते हो। हे (दिवः नरः!) तेजस्वी नेता एवं वीरो! (यत्) जबतक (वः सिस्रतः अश्वाः) तुम्हारे दौडनेवाले घोडे (न अह श्रथयन्त) तनिक भी नहीं थक गये हैं, तभी तक (सद्यः) तुरन्तही तुम (अस्य अध्वनः पारं) इस मार्ग के अन्त (अश्नुथ) पहुँच जाओ। २६० हे (रथे शुभः मरुतः!) रथोंमें सुहानेवाले वीर मरुतो! (वः अंसेषु) तुम्हारे कंधोंपर (ऋष्टयः) भाले विराजमान हैं, (पत्सु खादयः) पैरों में कडे, (वक्षःसु रुक्माः) उरोभागपै स्वर्णमुद्राओंके हार, (गभस्त्योः) भुजाओं पर (अग्नि-भ्राजसः विद्युतः) अग्निवत् चमकीले वज्र और (शीर्षसु) माथे पर (हिरण्ययीः वितताः शिप्राः) सुवर्णके भव्य शिरस्त्राण रखे हुए हैं। २६१ हे (अर्यः मरुतः!) पूजनीय वीर मरुतो! (तं अ-गृभीत-शोचिषं) उस अप्रतिहत तेजस्वी (नाकं) आकाशमेंसे (रुशत्) तेजस्वी (पिप्पलं) जलको (वि धूनुथ) विशेष हिलाओ, वर्षा करो। उसके लिए तुम (वृजना) अपने बलों का (सं अच्यन्त) संगठन करके अपने (अतित्विषन्त) तेज बढाओ; (यत्) क्योंकि (ऋत-यवः) पानी चाहनेवाले लोग (विततं) विस्तृत (घोषं स्वरन्ति) घोषणा करके कहते हैं कि, हमें जल चाहिए।

भावार्थ- २५९ सभी कामों का भार वीर सैनिक सम भावसे बराबर बाँट कर उठाते हैं। दिनका प्रारम्भ होने पर (अर्थात् काम शुरु करना सुगम होता है, इसलिए) ये आनन्दित होते हैं। ऐसे उत्साही वीर घोडोंके थक जानेके पहले ही अपने गन्तव्यस्थान पर पहुँच जायँ। २६० इस मंत्र में मरुतों के जिस पहनावे का बखान किया है, वह (Military uniform) ही है। २६१ अपने बल का संगठन करके तेजस्विता बढाओ। वर्षाका जल इकट्ठा करके सबको वह बाँट दो, क्योंकि जनता जल पर्याप्त मात्रा में पाने के लिए अतीव लालायित है।

टिप्पणी- [२५९] (१) भरः = भार, बोझ, आकृति, समूह, ढोनेवाला। स-भरस् = सम भाव से कारभार उठानेवाला। [यत् न श्रथयन्त, सद्यः अध्वनः पारं अश्नुथ = जब लौं अपने अवयव थक नहीं जाते, तभी तक मानव अपने आदर्श या ध्येयको पहुँचनेका प्रयत्न करें।] [२६०] (१) हिरण्ययीः वितताः शिप्राः = सुवर्णकी बेल पत्तियों के किनारवाले साफे। [२६१] (१) ऋत-यु = यज्ञ करने की इच्छा करनेवाला, सत्यकी–जलकी चाह रखनेवाला। (२) पिप्पल = पानी, पीपल का पेड, इन्द्रियभोग। (३) वितत = विस्तृत, संसिद्ध, विरल, फैला हुआ।

(२६२) युष्माऽदत्तस्य । मरुतः । विऽचेतसः । राय: । स्याम । रथ्यः । वयस्वतः ।
न । यः । युच्छति । तिष्यः । यथा । दिवः । अस्मे इति । ररन्त । मरुतः । सहस्रिणम् ॥१३॥
(२६३) यूयम् । रयिम् । मरुतः । स्पार्हऽवीरम् । यूयम् । ऋषिम् । अवथ । सामऽविप्रम् ।
यूयम् । अर्वन्तम् । भरताय । वाजम् । यूयम् । धत्थ । राजानम् । श्रुष्टिमन्तम् ॥१४॥
(२६४) तत् । वः । यामि । द्रविणम् । सद्यःऽऊतयः । येन । स्वः । न । ततनाम । नॄन् । अभि ।
इदम् । सु । मे । मरुतः । हर्यत । वचः । यस्य । तरेम । तरसा । शतम् । हिमाः ॥१५॥

अन्वयः— २६२ (हे) वि-चेतसः मरुतः! युष्मा-दत्तस्य वयस्-वतः रायः रथ्यः स्याम, (हे) मरुतः! अस्मे यः, दिवः तिष्यः यथा, न युच्छति सहस्रिणं ररन्त। २६३ (हे) मरुतः! यूयं स्पार्ह-वीरं रयिं, यूयं साम-विप्रं ऋषिं अवथ, यूयं भरताय अर्वन्तं वाजं, यूयं राजानं श्रुष्टि-मन्तं धत्थ। २६४ (हे) सद्य-ऊतयः! वः तत् द्रविणं यामि, येन नॄन् स्वः न अभि ततनाम, (हे) मरुतः! इदं मे सु-वचः हर्यत, यस्य तरसा शतं हिमाः तरेम।

अर्थ- २६२ हे (वि-चेतसः मरुतः!) विशेष ज्ञानी वीर मरुतो! (युष्मा-दत्तस्य) तुम्हारे दिये हुए (वयस्-वतः) अन्नसे युक्त होकर (रायः) ऐश्वर्य के (रथ्यः) रथ भरके लानेवाले हम (स्याम) हों। हे (मरुतः!) वीर मरुतो! (अस्मे) हमें (यः) वह (दिवः तिष्यः यथा) आकाश में विद्यमान् नक्षत्र के समान (न युच्छति) न नष्ट होनेवाला (सहस्रिणं) हजारों किस्म का धन देकर (ररन्त) संतुष्ट करो।

२६३ हे (मरुतः!) वीर मरुतो! (यूयं) तुम (स्पार्ह-वीरं) स्पृहणीय वीरों से युक्त (रयिं) धन का संरक्षण करते हो; (यूयं साम-विप्रं) तुम शांतिप्रधान या सामगायक विद्वान (ऋषिं अवथ) ऋषि का रक्षण करते हो; (यूयं) तुम (भरताय) जनता का भरणपोषण करनेवाले के लिए (अर्वन्तं वाजं) घोडे तथा अन्न देते हो और (यूयं) तुम (राजानं) नरेश को (श्रुष्टि-मन्तं) वैभवयुक्त करके उसे (धत्थ) धारित एवं पुष्ट करते हो।

२६४ हे (सद्य-ऊतयः!) तुरन्त संरक्षण करनेवाले वीरो! (वः तत्) तुम्हारे उस (द्रविणं यामि) द्रव्य की हम इच्छा करते हैं। (येन) जिससे हम (नॄन्) सभी लोगों को (स्वः न) प्रकाश के समान (अभि ततनाम) दान दे सकें। हे (मरुतः!) वीर मरुतो! (इदं मे सु-वचः) यह मेरा अच्छा वचन (हर्यत) स्वीकार कर लो; (यस्य तरसा) जिसके बलसे हम (शतं हिमाः) सौ हेमन्तऋतु, सौ वर्ष (तरेम) दुःखमें से तैरकर पार पहुँच सकें, जीवित रह सकें।

भावार्थ- २६२ सहस्रों प्रकारका धन और अन्न हमें प्राप्त हो। वह धन आकाशके नक्षत्रकी न्याईं अक्षय एवं अटल रहे।

२६३ वीर पुरुष शूरतायुक्त धन का वितरण करके ज्ञानी तत्त्वज्ञ का पोषण करके प्रजापालनतत्पर भूपाल का पालनपोषण एवं संवर्धन करते हैं।

२६४ हे संरक्षणकर्ता वीरो! हमें प्रचुर धन दो ताकि हम उसे सब लोगों में बाँट दें। मैं अपना यह वचन दे रहा हूँ। इसी भाँति करते हम सौ वर्षों तक दुःख हटाकर जीवनयात्रा बितायें।

टिप्पणी-- [२६३] (१) श्रुष्टि = सुननेवाला, सहायता, वर, वैभव, सुख।

[२६४] (१) स्वर् = स्वर्ग, जल, सूर्यकिरण, प्रकाश। (२) हर्य् (गतिकान्त्योः) = गति करना, इच्छा करना। (३) यामि (याचे) = याचना करता हूँ, चाहता हूँ। (४) स्वः न = (स्वर् न, स्वर्ण) = सूर्यप्रकाशवत्, जैसे सूर्य अपने किरणों को समान रूप से बाँट देता है वैसे। [शतं हिमाः तरेम = पश्येम शरदः शतम्। जीवेम शरदः शतम्॥ (वा० यजु० ३६।२४)]

(२६५) प्रऽयंज्यवः । मरुतः । भ्राजंत्ऽऋष्टयः । बृहत् । वर्यः । दुधिरे । रुक्मऽवक्षसः ।
ईर्यन्ते । अश्वैः । सुऽयमेभिः । आशुऽभिः । शुभंम् । याताम् । अनु । रथाः । अवृत्सत ॥१॥

(२६६) स्वयम् । दुधिध्वे । तविषीम् । यथा । विद । बृहत् । महान्तः । उर्विया । वि । राजथ ।
उत । अन्तरिक्षम् । ममिरे । वि । ओजसा । शुभम् । याताम् । अनु । रथाः । अवृत्सत ॥२॥

अन्वयः- २६५ प्र-यज्यवः भ्राजत्-ऋष्टयः रुक्म-वक्षसः मरुतः बृहत् वयः दधिरे, सु-यमेभिः आशुभिः अश्वैः ईयन्ते, रथाः शुभं यातां अनु अवृत्सत ।

२६६ यथा विद स्वयं तविषीं दधिध्वे, महान्तः उर्विया बृहत् वि राजथ, उत ओजसा अन्तरिक्षं वि ममिरे, रथाः शुभं यातां अनु अवृत्सत।

अर्थ- २६५ (प्र-यज्यवः) विशेष यजनीय कर्म करनेहारे, (भ्राजत्-ऋष्टयः) तेजस्वी हथियारों से युक्त तथा (रुक्म-वक्षसः मरुतः) वक्षःस्थलपर स्वर्णहार धारण करनेहारे वीर मरुत्, (बृहत् वयः दधिरे) वडा भारी वल धारण करते हैं। (सु-यमेभिः) भली भाँति नियमित होनेवाले, (आशुभिः) वेगवान (अश्वैः) घोडों के साथ, वे (ईयन्ते) चले जाते हैं। उनके (रथाः) रथ (शुभं यातां) लोककल्याण के लिए जाते समय उन्हीं के (अनु अवृत्सत) पीछे चले जाते हैं।

२६६ (यथा) चूँकि तुम (विद) बहुत ज्ञान प्राप्त करते हो और (स्वयं तविषीं दधिध्वे) स्वयमेव विशेष वल भी धारण करते हो, तुम (महान्तः) बडे हो और (उर्विया) मातृभूमि का हित करने की लालसा से (बृहत् वि राजथ) विशेष रूपसे सुशोभित होते हो। (उत) और (ओजसा) अपने वल से, (अन्तरिक्षं वि ममिरे) अन्तरिक्षको भी व्याप्त कर डालते हो, (रथाः) इनके रथ (शुभं यातां) लोककल्याण के लिए जाते समय, (अनु अवृत्सत) इन्हीं का अनुसरण करते हैं।

भावार्थ- २६५ अच्छे कर्म करनेहारे, तेजस्वी आयुध धारण करनेवाले, आभूषणों से सुशोभित वीर अपने वल को अत्याधिक रूप से बढाते हैं और चपल अश्वोंपर आरूढ होकर जनता का हित करने के लिए शत्रुदलपर धावा करना शुरू करते हैं।

२६६ वीर पुरुष ज्ञान प्राप्त करके अपना वल बढाकर मातृभूमि का यश बढाने के लिए प्रयत्न करते हैं। अपने इन अदम्य अध्यवसायों के फलस्वरूप वे अत्यन्त सुशोभित दीख पडते हैं और अपनी ऊँची उडानों से समूचा अन्तरिक्ष भी व्याप्त कर डालते हैं।

टिप्पणी- [२६५] (१) वयस्= अन्न, वल, सामर्थ्य, तारुण्य ।

[२६६] (१) उर्व्= (हिंसायाम्) वध करना । (उर्वी)= भूमि, मातृभूमि । (उर्विया) = मातृभूमि के बारे में शुभ वुद्धि, पृथ्वीविषयक विस्तृत भावना । (२) मा (माने) = गिनना, अन्तर्भूत हो जाना, व्याप्त होना ।

(२६७) साकम् । जाताः । सुऽभ्वः । साकम् । उक्षिताः ।
श्रिये । चित् । आ । प्रऽतरम् । ववृधुः । नरः ।
विऽरोकिणः । सूर्यस्यऽइव । रश्मयः ।
शुभम् । याताम् । अनु । रथाः । अवृत्सत ॥३॥

(२६८) आऽभूषेण्यम् । वः । मरुतः । महिऽत्वनम् ।
दिदृक्षेण्यम् । सूर्यस्यऽइव । चक्षणम् ।
उतो इति । अस्मान् । अमृतऽत्वे । दधातन ।
शुभम् । याताम् । अनु । रथाः । अवृत्सत ॥ ४ ॥

अन्वयः— २६७ साकं जाताः सु-भ्वः साकं उक्षिताः नरः श्रिये चित् प्र-तरं आ ववृधुः, सूर्यस्यइव रश्मयः वि-रोकिणः, रथाः शुभं यातां अनु अवृत्सत ।

२६८ (हे) मरुतः ! वः महित्वनं आ-भूषेण्यं सूर्यस्यइव चक्षणं दिदृक्षेण्यं, उत् अस्मान् अ-मृतत्वे दधातन, रथाः शुभं यातां अनु अवृत्सत ।

अर्थ- २६७ जो (साकं जाताः) एक ही समय प्रकट होनेवाले, (सु-भ्वः) अच्छी प्रकार उत्पन्न हुए, (साकं उक्षिता) संघ करके बलसंपन्न होनेवाले (नरः) नेता वे वीर, (श्रिये चित्) वैभव पाने के लिए ही (प्र-तरं) अधिकाधिक (आ ववृधुः) बढते हैं, वे (सूर्यस्यइव रश्मयः) सूर्यकिरणों के समान (वि-रोकिणः) विशेष तजस्वी हैं । (रथाः शुभं ... ...) [मंत्र २६५ वाँ देखिए ।]

२६८ हे (मरुतः !) वीर मरुतो ! (वः महित्वनं) तुम्हारा बडप्पन (आ-भूषेण्यं) सभी प्रकार से शोभायमान है और वह (सूर्यस्यइव चक्षणं) सूर्य के दृश्य के समान (दिदृक्षेण्यं) दर्शनीय है । (उत) इसीलिए तुम (अस्मान् अ-मृतत्वे दधातन) हमें अमरपन को पहुँचाओ । (रथाः शुभं यातां०) [मंत्र २६५ वाँ देखिए ।]

भावार्थ- २६७ ये वीर शत्रुदलपर आक्रमण करते समय एक ही समय प्रकट होते हैं, अपना उत्तम जीवन बिताते हैं, संघ बनाकर अपने बल की वृद्धि करते हैं और सदैव यश के लिए ही सचेष्ट रहा करते हैं । ये सूर्यकिरणवत् तेजस्वी बन प्रकाशमान होते हैं ।

२६८ हे वीरो ! तुम्हारा बडप्पन सचमुच वर्णनीय है । तुम सूर्यवत् तेजस्वी हो, इसीलिए हमें अ-मृतोंमें स्थान दो ।

टिप्पणी- [२६७] (१) वि-रोकिन् = (रोकः = तेजस्विता) = विशेष तेजस्वी । (२) सु-भ्वः = (सु+भू) अच्छी तरह उत्पन्न. सत्पथपर से चलनेवाला । सुभ्वन् = चमकीला, तेजस्वी । (३) उक्ष् = सींचना, बलवान होना । (४) जातः = प्रकट, पैदा हुआ ।

[२६८] (१) चक्षणं = रूप, नया दर्शन, दृश्य ।

(२६९) उत् । ईरयथ । मरुतः । समुद्रतः । यूयम् । वृष्टिम् । वर्षयथ । पुरीषिणः ।
न । वः । दस्राः । उप । दस्यन्ति । धेनवः । शुभम् । याताम् । अनु । रथाः । अवृत्सत ॥५॥
(२७०) यत् । अश्वान् । धूःऽसु । पृषतीः । अयुग्ध्वम् । हिरण्ययान् । प्रति । अत्कान् । अमुग्ध्वम् ।
विश्वाः । इत् । स्पृधः । मरुतः । वि । अस्यथ । शुभम् । याताम् । अनु । रथाः । अवृत्सत ॥६॥
(२७१) न । पर्वताः । न । नद्यः । वरन्त । वः । यत्र । अचिध्वम् । मरुतः । गच्छथ । इत् ।
उँ इति । तत् ।
उत । द्यावापृथिवी इति । याथन । परि । शुभम् । याताम् । अनु । रथाः । अवृत्सत ॥७॥

अन्वयः— २६९ (हे) पुरीषिणः मरुतः! यूयं समुद्रतः उत् ईरयथ, वृष्टिं वर्षयथ, (हे) दस्राः! वः धेनवः न उप दस्यन्ति, रथाः शुभं यातां अनु अवृत्सत।

२७० (हे) मरुतः! यत् पृषतीः अश्वान् धूर्षु अयुग्ध्वं, हिरण्ययान् अत्कान् प्रति अमुग्ध्वं, विश्वाः इत् स्पृधः वि अस्यथ, रथाः शुभं यातां अनु अवृत्सत।

२७१ (हे) मरुतः! वः पर्वताः न वरन्त, नद्यः न, यत्र अचिध्वं तत् गच्छथ इत् उ, उत द्यावा-पृथिवी परि याथन, रथाः शुभं यातां अनु अवृत्सत।

अर्थ- २६९ हे (पुरीषिणः मरुतः!) जलसे युक्त वीर मरुतो! (यूयं) तुम (समुद्रतः) समुद्र के जल को (उत् ईरयथ) ऊपर प्रेरणा देते हो और (वृष्टिं वर्षयथ) वर्षा का प्रारम्भ करते हो। हे (दस्राः!) शत्रुको विनष्ट करनेवाले वीरो! (वः धेनवः) तुम्हारी गौएं (न उप दस्यन्ति) क्षीण नहीं होती हैं। (रथाः शुभं०) [२६५ वाँ मंत्र देखिए।]

२७० हे (मरुतः!) वीर मरुतो! (यत् पृषतीः अश्वान्) जब धब्बेवाले घोडों को तुम, (धूर्षु) रथों के अग्रभाग में जोड देते हो और (हिरण्ययान् अत्कान्) स्वर्णमय कवच (प्रति अमुग्ध्वं) हर कोई पहनते हो, तब (विश्वाः इत्) सभी (स्पृधः) चढाऊपरी करनेवाले दुश्मनोंको तुम (वि अस्यथ) विभिन्न प्रकारों से तितरवितर कर देते हो। (रथाः शुभं०) [मंत्र २६५ वाँ देखिए।]

२७१ हे (मरुतः!) वीर मरुतो! (वः) तुम्हारे मार्ग में (पर्वताः) पहाड (न वरन्त) रुकावट न डालें, (नद्यः न) नदियाँ भी रोडे न अटकायँ। (यत्र) जिधर (अचिध्वं) जाने की इच्छा हो, तत्) उधर (गच्छथ इत् उ) जाओ, (उत) और (द्यावा-पृथिवी) भूमंडल एवं द्युलोक में (परि याथन) चारों ओर घूमो। (रथाः शुभं ... ...) [मंत्र २६५ वाँ देखिए।]

भावार्थ- २६९ समुद्र में विद्यमान जल को ये मरुत् ऊपर आकाश में उठा ले जाते हैं और वहाँ से फिर वर्षा के द्वारा उसे भूमिपर पहुँचा देते हैं। इस वर्षा के कारण गौओं का पोषण होता है। २७० वीर सुन्दर दिखाई देनेवाले अश्वों को रथ में जोडकर कवचधारी बन बैठते हैं और सारे शत्रुओं को मार भगा देते हैं। २७१ पर्वत तथा नदियोंके कारण वीरों के पथ में कोई रुकावट खडी न होने पाय। विजयी बनने के लिए जिधर भी जाना उन्हें पसंद हो, उधर विना किसी विघ्न के वे चले जायँ और सर्वत्र विजय का झंडा फहरायँ।

टिप्पणी- [२६९] (१) दस्रः = जंगली, उग्र। (दस्= फेंकना, नाश करना, जीतना, प्रकाशमान होना।) फेंकनेवाला, शत्रुविनाशक, विजयशील, प्रकाशमान। (२) पुरीष = जल (निघण्टु), मल, विष्ठा। (पुरि-इष) नगरी में जो इष्ट है वह; शरीर में जो इष्ट है वह।

[२७०] (१) अत्कः = (अत् सातत्यगमने) = यात्री, अवयव, जल, विद्युत्, वस्त्र, कवच। (२) प्रति-मुच् = पहनना, शरीरपर धारण करना।

(२७२) यत् । पूर्व्यम् । मरुतः । यत् । च । नूतनम् । यत् । उद्यते । वसवः । यत् । च । शस्यते ।
विश्वस्य । तस्य । भवथ । नवेदसः । शुभम् । याताम् । अनु । रथाः । अवृत्सत ॥८॥
(२७३) मृळत । नः । मरुतः । मा । वधिष्टन । असभ्यम् । शर्म । बहुलम् । वि । यन्तन ।
अधि । स्तोत्रस्य । सख्यस्य । गातन । शुभम् । याताम् । अनु । रथाः । अवृत्सत ॥९॥
(२७४) यूयम् । अस्मान् । नयत । वस्यः । अच्छ । निः । अंहतिऽभ्यः । मरुतः । गृणानाः ।
जुषध्वम् । नः । हव्यऽदातिम् । यजत्राः । वयम् । स्याम । पतयः । रयीणाम् ॥१०॥

अन्वयः— २७२ (हे) वसवः मरुतः ! यत् पूर्व्यं, यत् च नूतनं, यत् उद्यते, यत् च शस्यते, तस्य विश्वस्य नवेदसः भवथ, रथाः शुभं यातां अनु अवृत्सत ।

२७३ (हे) मरुतः ! नः मृळत, मा वधिष्टन, अस्मभ्यं बहुलं शर्म वि यन्तन, स्तोत्रस्य सख्यस्य अधि गातन, रथाः शुभं यातां अनु अवृत्सत।

२७४ (हे) गृणानाः मरुतः ! यूयं अस्मान् अंहतिभ्यः निः वस्यः अच्छ नयत, (हे) यजत्राः ! नः हव्य-दातिं जुषध्वं, वयं रयीणां पतयः स्याम ।

अर्थ- २७२ हे (वसवः मरुतः !) लोगों को बसानेहारे वीर मरुतो ! (यत् पूर्व्यं) जो पुरातन, पुराना है (यत् च नूतनं) और जो नया है (यत् उद्यते) जो उत्कृष्ट है और (यत् च शस्यते) जो प्रशंसित होता है, (तस्य विश्वस्य) उस सर्भाके तुम (नवेदसः भवथ) जाननेवाले होओ । (रथाः शुभं०) [मंत्र २६५ वाँ देखिए ।]

२७३ हे (मरुतः !) वीर मरुतो ! (नः मृळत) हमें सुखी बनाओ; (मा वधिष्टन) हमें न मार डालो; (अस्मभ्यं) हमें (बहुलं शर्म वि यन्तन) बहुत सारा सुख दे दो और हमारी (स्तोत्रस्य सख्यस्य) स्तुतियोग्य मित्रता को तुम (आधि गातन) जान लो । (रथाः शुभं०) [मंत्र २६५ वाँ देखिए ।]

२७४ हे (गृणानाः मरुतः !) प्रशंसनीय वीर मरुतो ! (यूयं) तुम (अस्मान् अंहतिभ्यः निः) हमें दुर्दशासे दूर हटाकर (वस्यः अच्छ) बसने के लिए योग्य जगह की ओर (नयत) ले चलो । हे (यजत्राः !) यज्ञ करनेवाले वीरो ! (नः हव्य-दातिं) हमारे दिये हुए हविष्यान्नका (जुषध्वं) सेवन करो । (वयं) हम (रयीणां पतयः स्याम) विभिन्न प्रकारके धनों के स्वामी या अधिपति बन जायँ, ऐसा करो ।

भावार्थ- २७२ पुराना हो या नया, जो कुछ भी ऊँचा या वर्णनीय ध्येय है, उसे वीर जान लें और उसके लिए सचेष्ट रहें ।

२७३ हमें सुख, आनन्द एवं कल्याण प्राप्त हो, ऐसा करो । जिस से हमारी क्षति हो जाए, ऐसा कुछ भी न करो और हम से मित्रतापूर्ण व्यवहार रखो ।

२७४ हमें वीर पुरुष पापों से बचाएँ और सुखपूर्वक जहाँ निवास कर सकें, ऐसे स्थान तक हमें पहुँचा दें । हम जो कुछ भी हविष्यान्न प्रदान करते हैं, उसे स्वीकार कर हमें भाँति भाँति के धन मिले, ऐसा करना उन्हें उचित है ।

टिप्पणी- [२७२] (१) यत् उद्यते = (उत्-यते = ऊर्ध्वं प्राप्यते) (सायणभाष्य) ऊँचा प्राप्तव्य है । (२) नवेदसः = नवेदस् = " नभ्राणनपान्नवेदा० "- पा० सू० ६-३-७५ द्वारा इस पद की सिद्धि की है, पर अर्थ निषेधात्मक दीख पडता है । सायणाचार्यने ' जाननेवाला ' ऐसा अर्थ किया है । ऋ. १-१६५-१३ में ' नवेदाः ' पद है और यहाँपर भी (सा० भा० में) वही अर्थ किया है । ' अनुत्तम ' (सबसे उत्तम) पदके समान ही ' नवेदाः' पदका अर्थ बहुव्रीहि समास से ' अधिक ज्ञानी ' यों करना चाहिए ।

[२७४] (१) अंहतिः = दान, पाप, चिंता, कष्ट, दुःख, आपत्ति, बीमारी ।

(ऋ० ५।५६ । १-९)

(२७५) अग्ने । शर्धन्तम् । आ । गणम् । पिष्टम् । रुक्मेभिः । अञ्जिभिः ।
विशः । अद्य । मरुताम् । अव । ह्वये । दिवः । चित् । रोचनात् । अधि ॥१॥
(२७६) यथा । चित् । मन्यसे । हृदा । तत् । इत् । मे । जग्मुः । आऽशसः ।
ये । ते । नेदिष्ठम् । हवनानि । आऽगमन् । तान् । वर्ध । भीमऽसंदृशः ॥२॥
(२७७) मीळ्हुष्मतीऽइव । पृथिवी । पराऽहता । मदन्ती । एति । अस्मत् । आ ।
ऋक्षः । न । वः । मरुतः । शिमीऽवान् । अमः । दुध्रः । गौःऽइव । भीमऽयुः ॥३॥

अन्वयः— २७५ (हे) अग्ने ! अद्य शर्धन्तं रुक्मेभिः अञ्जिभिः पिष्टं गणं मरुतां विशः रोचनात् दिवः अधि अव आ ह्वये ।

२७६ हृदा यथा चित् मन्यसे तत् इत् आ-शसः मे जग्मुः, ये ते हवनानि नेदिष्ठं आगमन् तान् भीम-संदृशः वर्ध ।

२७७ मीळ्हुष्मतीइव पृथिवी पर-अ-हता मदन्ती अस्मत् आ एति, (हे) मरुतः ! वः अमः ऋक्षः न शिमी-वान् दु-ध्रः गौःइव भीम-युः ।

अर्थ- २७५ हे (अग्ने !) अग्ने ! (अद्य) आज दिन (शर्धन्तं) शत्रुविनाशक, (रुक्मेभिः अञ्जिभिः) स्वर्ण-हारों एवं वीरों के आभूषणों से (पिष्टं) अलंकृत (गणं) वीर मरुतों के समुदाय को तथा (मरुतां विशः) मरुतों के प्रजाजनों को (रोचनात् दिवः अधि) प्रकाशमय द्युलोक से (अव आ ह्वये) मैं नीचे बुलाता हूँ।

२७६ हे अग्ने ! तू उन्हें (हृदा यथा चित्) अंतःकरणपूर्वक जैसे पूज्य (मन्यसे) समझता है, (तत् इत्) उसी प्रकार वे (आ-शसः) चतुर्दिक् शत्रुदल की धज्जियाँ उडानेवाले वीर (मे जग्मुः) मेरे निकट आ चुके हैं, (ये) जो (ते) तुम्हारे (हवनानि) हवनों के (नेदिष्ठं) समीप (आगमन्) आ गये, (तान् भीम-संदृशः) उन उग्र-स्वरूपी वीरों को (वर्ध) तू बढा दे।

२७७ (मीळ्हुष्मतीइव) उदार तथा (पर-अ-हता) शत्रुसे पराभूत न हुई और इसीलिए (मदन्ती) हर्षित हुई वीरसेना (अस्मत् आ एति) हमारे निकट आ रही है। हे (मरुतः !) वीर मरुतो ! (वः अमः) तुम्हारा बल (ऋक्षः न) सप्तर्षियों के समान (शिमी-वान्) कार्यक्षम तथा (दु-ध्रः) शत्रुओं से घिरे जाने में अशक्य है और (गौःइव) बैल के समान वह (भीम-युः) भयंकर ढंगसे सामर्थ्यवान है।

भावार्थ- २७५ जनता के हित के लिए हम अपने बीच वीरों को बुलाते हैं। वे वीर सैनिक इधर आ जाएँ और अच्छी रक्षा के द्वारा सब को सुखी बना दें।

२७६ पूज्य वीरों को अन्न आदि देकर उनका यथावत् आदरसत्कार करें, तथा जिससे उनकी वृद्धि हो, ऐसे कार्य सम्पन्न करने चाहिए।

२७७ शिकस्त न खायी हुई, उमंग भरी वीर सेना हमें सहायता पहुँचाने के लिए आ रही है। वह प्रबल है; इसीलिए शत्रु उसे घेर नहीं सकते हैं और इसे देख लेने से दर्शकों के मन में तनिक भय का संचार होता है।

टिप्पणी- [२७५] (१) पिष्ट= (पिश्-तेजस्वी करना, व्यवस्थित करना, अलंकृत करना, आकार देना) विभूषित, सजाया हुआ। [२७६] (१) आ-शस्=(शस्-हिंसायाम्) शत्रुका वध, कत्तल। [२७७] (१) मीळ्हुष्मती=(मीढ्वस्-मती)=उदार, दातृत्वयुक्त, स्नेहयुक्त। (२) शिमी-वान्=(शिमी=प्रयत्न, उद्यम, कर्म) प्रबल, प्रयत्नशील, समर्थ। (३) ऋक्षः= विनाशक, घातक, सप्तर्षि, सर्वोत्तम, अत्रि (सायण)।

(२७८) नि । ये । रिणन्ति । ओजसा । वृथा । गावः । न । दुःऽधुरः ।
अश्मानम् । चित् । स्वर्यम् । पर्वतम् । गिरिम् । प्र । च्यवयन्ति । यामऽभिः ॥४॥
(२७९) उत् । तिष्ठ । नूनम् । एषाम् । स्तोमैः । सम्ऽउक्षितानाम् ।
मरुताम् । पुरुऽतमम् । अपूर्व्यम् । गवाम् । सर्गम्ऽइव । ह्वये ॥५॥
(२८०) युङ्ग्ध्वम् । हि । अरुषीः । रथे । युङ्ग्ध्वम् । रथेषु । रोहितः ।
युङ्ग्ध्वम् । हरी इति । अजिरा । धुरि । वोळ्हवे । वहिष्ठा । धुरि । वोळ्हवे ॥६॥

अन्वयः— २७८ दुर्-धुरः गावः न ये ओजसा वृथा नि रिणन्ति यामभिः अश्मानं गिरिं स्वर्-यं पर्वतं चित् प्र च्यवयन्ति।

२७९ उत् तिष्ठ, नूनं स्तोमैः सम्-उक्षितानां एषां मरुतां पुरु-तमं अ-पूर्व्यं गवां सर्गंइव ह्वये।

२८० रथे हि अरुषीः युङ्ग्ध्वं, रथेषु रोहितः युङ्ग्ध्वं, अजिरा वहिष्ठा हरी वोळ्हवे धुरि वोळ्हवे धुरि युङ्ग्ध्वं।

अर्थ- २७८ (दुर्-धुरः गावः न) जीर्ण धुराका नाश जैसे बैल करते हैं, उसी प्रकार (ये) जो वीर (ओजसा) अपनी सामर्थ्य से शत्रुओं का (वृथा) आसानी से विनाश करते हैं, वे (यामभिः) हमलों से (अश्मानं गिरिं) पथरीले पहाडों को तथा (स्वर्-यं पर्वतं चित्) आकाशचुम्बी पहाडों को भी (प्र च्यवयन्ति) स्थानभ्रष्ट कर देते हैं।

२७९ (उत् तिष्ठ) उठो, (नूनं) सचमुच (स्तोमैः) स्तोत्रों से (सम्-उक्षितानां) इकट्ठे बढे हुए (एषां मरुतां) इन वीर मरुतों के (पुरु-तमं) बहुतही बडे (अ-पूर्व्यं) एवं अपूर्व गण की, (गवां सर्गंइव) बैलों के समूह की जैसे प्रार्थना की जाती है, वैसे ही (ह्वये) मैं प्रार्थना करता हूँ।

२८० तुम अपने (रथे हि) रथ में (अरुषीः) लालिमामय हरिणियाँ (युङ्ग्ध्वं) जोड दो और अपने (रथेषु) रथ में (रोहितः) एक लालवर्णवाला हरिण (युङ्ग्ध्वं) लगा दो, या (अजिरा) वेगवान् (वहिष्ठा हरी) ढोने की क्षमता रखनेवाले दो घोडों को रथ (वोळ्हवे धुरि वोळ्हवे धुरि) खींचने के लिए धुरा में (युङ्ग्ध्वं) जोड दो।

भावार्थ- २७८ अपनी शक्ति के सहारे वीर शत्रुओं का वध करते हैं और पर्वतश्रेणी को भी जगह से हिला देते हैं।

२७९ मैं वीरों की सराहना करता हूँ। (वीरों के काव्य का गायन करता हूँ।)

२८० रथ खींचने के लिए घोडे, हिरनियाँ या हरिण रखते हैं।

टिप्पणी- [२७८] (१) स्वर्-यः = स्वर्ग तक पहुँचा हुआ, आकाश को छूनेवाला,। (२) दुर्-धुर् = बुरी धुरा, जीर्ण धुरा।

[२७९] (१) सम्-उक्षित = संवर्धित, (सम्) एकतापूर्वक (उक्षित) बलवान बनाया हुआ।

[२८०] (१) अरुषी = (अरुष = लालिमामय) रक्तिम वर्णवाली (घोडी-हिरनी) अ-रुषी = (रुष् = क्रोध करना) = शांत प्रकृति की (हरिणी)। (२) अजिर = (अज् गतौ) वेगवान्। (रथों में हरिणी या कृष्ण-सार जोडने का उल्लेख मंत्र ७३ तथा ७४ की टिप्पणी में देखिए।)

(२८१) उत । स्यः । वाजी । अरुषः । तुविऽस्वनिः । इह । स्म । धायि । दर्शतः ।
मा । वः । यामेषु । मरुतः । चिरम् । करत् । प्र । तम् । रथेषु । चोदत ॥७॥

(२८२) रथम् । नु । मारुतम् । वयम् । श्रवस्युम् । आ । हुवामहे ।
आ । यस्मिन् । तस्थौ । सुऽरणानि । बिभ्रती । सचा । मरुत्ऽसु । रोदसी ॥८॥

(२८३) तम् । वः । शर्धम् । रथेऽशुभम् । त्वेषम् । पनस्युम् । आ । हुवे ।
यस्मिन् । सुऽजाता । सुऽभगा । महीयते । सचा । मरुत्ऽसु । मीळ्हुषी ॥९॥

अन्वयः— २८१ उत स्यः अरुषः तुवि-स्वनिः दर्शतः वाजी इह धायि स्म, (हे) मरुतः! वः यामेषु चिरं मा करत्, तं रथेषु प्र चोदत।

२८२ यस्मिन् सु-रणानि बिभ्रती रोदसी मरुत्सु सचा आ तस्थौ (तं) श्रवस्युं मारुतं रथं वयं आ हुवामहे।

२८३ यस्मिन् सु-जाता सु-भगा मीळ्हुषी मरुत्सु सचा महीयते तं वः रथे-शुभं त्वेषं पनस्युं शर्धं आ हुवे।

अर्थ- २८१ (उत) सचमुच (स्यः) वह (अरुषः) रक्तिम आभासे युक्त (तुवि-स्वनिः) बडे जोरसे हिनहिनानेवाला (दर्शतः) देखनेयोग्य (वाजी) घोडा (इह) इस रथकी धुरा में (धायि स्म) जोडा गया है। हे (मरुतः!) वीर मरुतो! (वः यामेषु) तुम्हारी चढाइयों में वह (चिरं मा करत्) विलम्ब न करेगा, (तं) उसे (रथेषु प्र चोदत) रथों में बैठकर भली भाँति हाँक दो।

२८२ (यस्मिन्) जिसमें (सु-रणानि) अच्छे रमणीय वस्तुओंको (बिभ्रती) धारण करनेवाली (रोदसी) द्यावापृथिवी (मरुत्सु सचा) वीर मरुतों के साथ (आ तस्थौ) बैठी हुई हैं, उस (श्रवस्-युं) कीर्तिको समीप करनेवाले (मारुतं रथं) वीर मरुतों के रथका (वयं आ हुवामहे) वर्णन हम सभी तरह से कर रहे हैं।

२८३ (यस्मिन्) जिस में (सु-जाता) भली भाँति उत्पन्न, (सु-भगा) अच्छे भाग्यसे युक्त एवं (मीळ्हुषी) उदार द्यावापृथिवी (मरुत्सु सचा) वीर मरुतों के साथ (महीयते) महत्त्व को प्राप्त होती है, (तं) उस (वः) तुम्हारे (रथे-शुभं) रथ में सुहानेवाले (त्वेषं) तेजस्वी और (पनस्युं) सराहनीय (शर्धं) बलकी (आ हुवे) ठीक प्रकार में प्रार्थना करता हूँ।

भावार्थ- २८१ रथको शीघ्रही अश्वयुक्त करके शीघ्र चलनेके लिए उन्हें प्रेरणा करो और बहुत जल्द दुश्मनों पर धावा करो।

२८२ द्यावापृथिवी अच्छे रमणीय वस्तुओं को धारण करके जिनके आधार से टिकी है, उन मरुतों के विजयी रथ का काव्य हम रचते हैं तथा गायन भी करते हैं।

२८३ जिसमें समूचा भाग्य समाया हुआ है, ऐसे तेजस्वी मरुतोंके दिव्य बलकी सराहना मैं करता हूँ।

टिप्पणी- [२८१] (१) तं रथेषु प्र चोदत- यहाँ पर ऐसा दीख पडता है कि, एक वचन के लिए 'रथेषु' बहुवचन का प्रयोग किया गया है अथवा हरएक मरुत् के रथ की इसी भाँति योजना होने के कारण यह बहुवचन का प्रयोग बिलकुल सार्थ है, ऐसा कहा जा सकता है।

[२८२] (१) रणः-णं = युद्ध, समरभूमि, आनंद, रमणीयता। (२) श्रवस्-युः = कीर्ति से संयुक्त होनेवाला, अन्न से जुडानेवाला।

[२८३] (१) सु-जात = अच्छी तरह बना हुआ, कुलीन, उत्तम ढंगसे प्रकट हुआ या निष्पन्न। (२) सु-भग = वैभवशाली, भाग्ययुक्त, अच्छे भाग्यवाला।

(ऋ० ५।५७।१-८)

(२८४) आ । रुद्रासः । इन्द्रऽवन्तः । सऽजोषसः । हिरण्यऽरथाः । सुविताय । गन्तन ।
इयम् । वः । अस्मत् । प्रति । हर्यते । मतिः । तृष्णऽजे । न । दिवः । उत्साः । उदन्यवे ॥१॥
(२८५) वाशीऽमन्तः । ऋष्टिऽमन्तः । मनीषिणः । सुऽधन्वानः । इषुऽमन्तः । निषङ्गिणः ।
सुऽअश्वाः । स्थ । सुऽरथाः । पृश्निऽमातरः । सुऽआयुधाः । मरुतः । याथन । शुभम् ॥२॥
(२८६) धूनुथ । द्याम् । पर्वतान् । दाशुषे । वसु । नि । वः । वना । जिहते । यामनः । भिया ।
कोपयथ । पृथिवीम् । पृश्निऽमातरः । शुभे । यत् । उग्राः । पृषतीः । अयुग्ध्वम् ॥३॥

अन्वयः— २८४ (हे) इन्द्र-वन्तः स-जोषसः हिरण्य-रथाः रुद्रासः ! सुविताय आ गन्तन, इयं अस्मत् मतिः वः प्रति हर्यते, (हे) दिवः ! तृष्णजे उदन्यवे उत्साः न !

२८५ (हे) पृश्नि मातरः मरुतः ! वाशी-मन्तः ऋष्टि-मन्तः मनीषिणः सु-धन्वानः इषु-मन्तः निषङ्गिणः सु-अश्वाः सु-रथाः सु-आयुधाः स्थ शुभं याथन ।

२८६ दाशुषे वसु द्यां पर्वतान् धूनुथ, वः यामनः भिया वना नि जिहते, (हे) पृश्नि-मातरः ! शुभे यत् उग्राः पृषतीः अयुग्ध्वं पृथिवीं कोपयथ ।

अर्थ- २८४ हे (इन्द्र-वन्तः) इन्द्रके साथ रहनेवाले, (स-जोषसः) प्रेम करनेहारे, (हिरण्य-रथाः) सुवर्ण के बनाये रथ रखनेवाले तथा (रुद्रासः!) शत्रु को रुलानेवाले वीरो! (सुविताय) हमारे वैभव को बढाने के लिए (आ गन्तन) हमारे समीप आओ। (इयं अस्मत् मतिः) यह हमारी स्तुति (वः प्रति हर्यते) तुममें से हरेक की पूजा करती है। हे (दिवः!) तेजस्वी वीरो! जिस प्रकार (तृष्णजे) प्यासे और (उदन्-यवे) जलको चाहनेवालेके लिए (उत्साः न) जलकुंड रखे जाते हैं, उसी प्रकार हमारे लिए तुम हो।

२८५ हे (पृश्नि-मातरः मरुतः!) भूमि को माता माननेवाले वीर मरुतो! तुम (वाशी-मन्तः) कुठारसे युक्त, (ऋष्टि-मन्तः) भाले धारण करनेवाले, (मनीषिणः) अच्छे ज्ञानी, (सु-धन्वानः) सुन्दर धनुष्य साथ रखनेहारे, (इषु-मन्तः) बाण रखनेवाले, (निषङ्गिणः) तूणीरवाले, (सु-अश्वाः सु-रथाः) अच्छे घोडों तथा रथोंसे युक्त एवं (सु-आयुधाः) अच्छे हथियार धारण करनेहारे (स्थ) हो और इसीलिए तुम (शुभं) लोककल्याण के लिए (वि याथन) जाते हो।

२८६ (दाशुषे) दानी को (वसु) धन देनेके लिए जब तुम चढाई करते हो तब (द्यां) द्युलोक को और (पर्वतान्) पहाडोंको भी तुम (धूनुथ) हिला देते हो। उस (वः) तुम्हारे (यामनः भिया) हमले के डरसे (वना) अरण्य भी (नि जिहते) बहुतही काँपने लगते हैं। हे (पृश्नि-मातरः!) भूमिको माता समझनेवाले वीरो! (शुभे) लोककल्याण के लिए (यत्) जब तुम (उग्राः) उग्र स्वरूपवाले वीर बन (पृषतीः) धब्बेवाली हरिणियाँ रथों में (अयुग्ध्वं) जोडते हो, तब (पृथिवीं कोपयथ) भूमिको क्षुब्ध कर डालते हो।

भावार्थ- २८४ वीर हमारे पास आ जायँ और प्यासे हुए लोगोंको जल दें और हमारी वाणी उनका काव्यगायन करें। २८५ सभी भाँति के शस्त्रास्त्रों एवं हथियारोंसे सुसज्ज बनकर ये वीर शत्रुदल पर भीषण आक्रमण का सूत्रपात करते हैं। २८६ वीर सैनिक हाथ में शस्त्रास्त्र लेकर जब सज्ज होते हैं तब सभी लोग सहम जाते हैं।

टिप्पणी- [२८४] (१) इन्द्रः = इन्द्र, राजा, ईश्वर, श्रेष्ठ, प्रभु। इन्द्रवन्तः = राजा के साथ रहनेवाले वीर, जिनका प्रभु इन्द्र हो। (२) सुवित = सुदैव, कल्याण, वैभव की समृद्धि। (३) स-जोषसः = (समानप्रीतयः) एक दूसरे पर समान प्रीति करनेवाले, समान उत्साही।

(२८७) वार्तऽत्विषः । मुरुतः । वर्षऽनिर्निजः । यमाःऽइव । सुऽसंदृशः । सुऽपेशसः । पिशङ्गऽअश्वाः । अरुणऽअश्वाः । अरेपसः । प्रऽत्वक्षसः । महिना । द्यौःऽइव । उरवः ॥४॥

(२८८) पुरुऽद्रप्साः । अञ्जिऽमन्तः । सुऽदानवः । त्वेषऽसंदृशः । अनवभ्रऽराधसः । सुऽजातासः । जनुषा । रुक्मऽवक्षसः । दिवः । अर्काः । अमृतम् । नाम । भेजिरे ॥५॥

(२८९) ऋष्टयः । वः । मरुतः । अंसयोः । अधि । सहः । ओजः । बाह्वोः । वः । बलम् । हितम् । नृम्णा । शीर्षऽसु । आयुधा । रथेषु । वः । विश्वा । वः । श्रीः । अधि । तनूषु । पिपिशे ॥६॥

अन्वयः- २८७ मरुतः वात-त्विषः वर्ष-निर्णिजः यमाःइव सु-सदृशः सु-पेशसः पिशङ्ग-अश्वाः अरुण-अश्वाः अ-रेपसः प्र-त्वक्षसः महिना द्यौःइव उरवः। २८८ पुरु-द्रप्साः अञ्जि-मन्तः सु-दानवः त्वेष-संदृशः अन्-अवभ्र-राधसः जनुषा सु-जातासः रुक्म-वक्षसः दिवः अर्काः अ-मृतं नाम भेजिरे। २८९ (हे) मरुतः! वः अंसयोः ऋष्टयः, वः बाह्वोः सहः ओजः बलं अधि हितं, शीर्षसु नृम्णा, वः रथेषु विश्वा आयुधा, वः तनूषु श्रीः अधि पिपिशे।

अर्थ- २८७ (मरुतः) वीर मरुत् (वात-त्विषः) प्रखर तेजसे युक्त, (वर्ष-निर्णिजः) स्वदेशी कपडा पहननेवाले हैं। (यमाःइव) यमज भाई के समान (सु-सदृशः) बिलकुल तुल्यरूप तथा (सु-पेशसः) सुन्दर रूपवाले हैं। वे (पिशङ्ग-अश्वाः) भूरे रंगके एवं (अरुण-अश्वाः) लाल रंगके घोडे समीप रखनेवाले, (अ-रेपसः) पापरहित तथा (प्र-त्वक्षसः) शत्रुओंका पूर्ण विनाश करनेवाले, अपने (महिना) महत्त्व के कारण (द्यौःइव उरवः) आकाश के तुल्य बडे हुए हैं। २८८ (पुरु-द्रप्साः) यथेष्ट जल समीप रखनेवाले, (अञ्जि-मन्तः) वस्त्रालंकार-गणवेश-धारण करनेवाले, (सु-दानवः) दानशूर, (त्वेष-संदृशः) तेजस्वी दीख पडनेवाले, (अन्-अवभ्र-राधसः) जिनका धन कोई छीन नहीं ले जा सकता ऐसे, (जनुषा सु-जातासः) जन्मसे उत्तम परिवारमें उत्पन्न, (रुक्म-वक्षसः) सुवर्णके अलंकार छाती पर धरनेहारे, (दिवः) तेजःपुञ्ज तथा (अर्काः) पूजनीय वीर (अ-मृतं नाम भेजिरे) अमर कीर्ति पा चुके। २८९ हे (मरुतः!) वीर मरुतो! (वः अंसयोः ऋष्टयः) तुम्हारे कंधों पर भाले रखे हैं। (वः बाह्वोः) तुम्हारी भुजाओं में (सहः ओजः) शत्रु को पराभूत करनेका बल तथा (बलं) सामर्थ्य (अधि हितं) रखा हुआ है। (शीर्षसु) माथों पर (नृम्णा) सुवर्णमय शिरोवेष्टन, (वः रथेषु) तुम्हारे रथों में (विश्वा आयुधा) सभी हथियार विद्यमान हैं। (वः तनूषु) तुम्हारे शरीरों पर (श्रीः अधि पिपिशे) तेज अत्यधिक शोभा बढा रहा है।

भावार्थ- २८७ जो वीर शत्रुका नाश करते हैं, वे अपने प्रभावसे ही बडप्पनको प्राप्त होते हैं। २८८ वीर सैनिक पराक्रम करके बडी भारी यशस्विता एवं ख्याति प्राप्त करें। २८९ वीर सैनिक तथा उनके रथ हथियारोंसे सदैव सुसज्ज रहते हैं।

टिप्पणी-- [२८७] (१) वात = (वा गतिगन्धनयोः) फूँका हुआ, भडकाया (प्रखर), वायु। (२) वर्ष = बरसात, देश, राष्ट्र। निर्णिक् = वस्त्र, आच्छादन। वर्ष-निर्णिज् = (१) वर्षा जिनका पहनावा है। (२) स्वदेशी पहनावा करनेवाले। मरुत् भूमिको माता समझनेवाले (पृश्नि-मातरः) हैं, इसलिए अपने देशमें बना हुआ कपडा ही पहनते हैं। यह अर्थ अधिभूतपक्ष में संभवनीय है। अधिदैवत पक्षमें मरुत् आँधी के वायुप्रवाह हैं, जिनका पहनावा वर्षा है। दोनों स्थलोंमें अर्थका श्लेष आसानीसे ध्यानमें आ सकता है। [२८८] (१) द्रप्स = गिर पडना, बिन्दु, जलबिन्दु (Drops)। पुरु-द्रप्स = समीप यथेष्ट जल रखनेवाले, पसीनेसे तर। [२८९] (१) नृम्णं = पौरुष, बल, धैर्य, धन, पगडी (सायण)। इस मंत्र से प्रतीत होता है कि, मरुतोंका रथ बहुत ही विशाल तथा बृहदाकार का रहा हो। क्योंकि इस रथ पर (विश्वा आयुधा) समूचे शस्त्रास्त्र रखे जाते हैं; स्थिर धनुष्य (मंत्र ९३) तथा चल धनुष्य भी पाये जाते हैं। शत्रुदल के वीर धनुष्य की डोरियाँ तोडने पर तुले रहते हैं और कभी कभी धनुष्यके भी तोड जाने

(२९०) गोऽमत् । अश्वऽवत् । रथऽवत् । सुऽवीरम् । चन्द्रऽवत् । राधः । मरुतः । दद । नः ।
प्रऽशस्तिम् । नः । कृणुत । रुद्रियासः । भक्षीय । वः । अवसः । दैव्यस्य ॥७॥

(२९१) हये । नरः । मरुतः । मृळत । नः । तुविऽमघासः । अमृताः । ऋतऽज्ञाः ।
सत्यऽश्रुतः । कवयः । युवानः । बृहत्ऽगिरयः । बृहत् । उक्षमाणाः ॥८॥

(ऋ० ५।५८।१-८)

(२९२) तम् । ऊँ इति । नूनम् । तविषीऽमन्तम् । एषाम् । स्तुषे । गणम् । मारुतम् । नव्यसीनाम् ।
ये । आशुऽअश्वाः । अमऽवत् । वहन्ते । उत । ईशिरे । अमृतस्य । स्वऽराजः ॥१॥

अन्वयः— २९० (हे) मरुतः! गो-मत् अश्व-वत् रथ-वत् सु-वीरं चन्द्र-वत् राधः नः दद, (हे) रुद्रियासः! नः प्र-शस्तिं कृणुत, वः दैव्यस्य अवसः भक्षीय। २९१ हये नरः मरुतः! तुवि-मघासः अ-मृताः ऋत-ज्ञाः सत्य-श्रुतः कवयः युवानः बृहत्-गिरयः बृहत् उक्षमाणाः नः मृळत। २९२ स्व-राजः ये आशु-अश्वाः अम-वत् वहन्ते उत अ-मृतस्य ईशिरे तं उ नूनं एषां नव्यसीनां मारुतं तविषी-मन्तं गणं स्तुषे।

अर्थ- २९० हे (मरुतः!) वीर मरुतो! (गो-मत्) गौओं से युक्त, (अश्व-वत्) घोडों से युक्त, (रथ-वत्) रथों से युक्त, (सु-वीरं) वीरों से परिपूर्ण तथा (चन्द्र-वत्) सुवर्ण से युक्त, (राधः) अन्न (नः दद) हमें दे दो। हे (रुद्रियासः!) वीरो! (नः) हमारी (प्र-शस्तिं) वैभवशालिता (कृणुत) करो। (वः) तुम्हारी (दैव्यस्य अवसः) दिव्य संरक्षणशक्ति का हम (भक्षीय) सेवन कर सकें ऐसा करो।

२९१ (हये नरः मरुतः!) हे नेता एवं वीर मरुतो! (तुवि-मघासः) बहुत सारे धनसे युक्त, (अ-मृताः) अमर, (ऋतज्ञाः) सत्य को जाननेवाले, (सत्य-श्रुतः) सत्य कीर्ति से युक्त, (कवयः युवानः) ज्ञानी एवं युवक, (बृहत्-गिरयः) अत्यन्त सराहनीय और (बृहत् उक्षमाणाः) प्रचंड बल से युक्त तुम (नः मृळत) हमें सुखी बनाओ।

२९२ (स्व-राजः) स्वयंशासक ऐसे (ये) जो वीर (आशु-अश्वाः) वेगवान घोडों को समीप रखनेवाले हैं, इसलिए (अम-वत् वहन्ते) अतिवेग से चले जाते हैं, (उत) और जो (अ-मृतस्य ईशिरे) अमर लोक पर प्रभुत्व प्रस्थापित करते हैं (तं उ नूनं) उस सचमुच (एषां) इन (नव्यसीनां) सराहनीय (मारुतं) वीर मरुतों के (तविषी-मन्तं गणं स्तुषे) बलिष्ठ गण-संघ-की तू स्तुति कर ले।

भावार्थ- २९० हर तरह से सहायता करके और हमारा संरक्षण करके वीर हमारी प्रगति में मददगार हों। हमें अन्न की प्राप्ति ऐसी हो कि जिसके साथ गौ, रथ, अश्व एवं वीर सैनिक की समृद्धि हो जाय।

२९१ ऐसे वीर जनता का संरक्षण कर हम सब को सुखी बना दें।

२९२ जो वीर वन्दनीय हों उनकी प्रशंसा सभी को करनी चाहिए। येही वीर इहलोक तथा परलोक पर प्रभुत्व प्रस्थापित करने की क्षमता रखते हैं।

की संभावना होने के कारण बहुत से धनुष्य रखना अनिवार्य हो, तो आश्चर्य नहीं। वैसे ही कुल्हाडी, भाला, गदा तथा अन्य हथियार रथ में ही रखने पडते थे। अतः रथ बहुत बडा हो, तो स्वाभाविक है। ये सभी आयुध भली भाँति पृथक् पृथक् रखने चाहिए और प्रबंध ऐसा हो कि चाहे जो हथियार ठीक मौके पर हाथमें आ जाय। यदि इस तरहकी व्यवस्थाको मान लें तो यह स्पष्ट है कि, इन महारथियोंका रथ अत्यन्त विशाल प्रमाण पर बना हुआ होगा। [२९०] (१) चन्द्र = कर्पूर, जल, सोना, चन्द्रमा। (२) प्र-शस्ति = स्तुति, वर्णन, मार्गदर्शकता, उत्कृष्टता (वैभव)। [२९१] (१) मघं = दान, धन, महत्त्वयुक्त द्रव्य। (२) गिरि = पर्वत, वाणी, स्तुति, आदरणीय, माननीय। [२९२] (१) स्व-राज् = (राज् दीप्तौ = प्रकाशना, अधिकार प्रस्थापित करना) स्वयंशासक, स्वयंप्रकाश। (२) नव्यसीनां (णु स्तुतौ = प्रशंसा करना; नवितुं योग्यः नव्यः।)=नूतन, सराहनीय। (३) अ-मृत = अमर, अमरपन, देव, स्वर्ग, संपत्ति।

(२९३) त्वेषम् । गणम् । तवसम् । खादिऽहस्तम् । धुनिऽव्रतम् । मायिनम् । दातिऽवारम् ।
मयःऽभुवः । ये । अमिताः । महिऽत्वा । वन्दस्व । विप्र । तुविऽराधसः । नॄन् ॥२॥
(२९४) आ । वः । यन्तु । उदऽवाहासः । अद्य । वृष्टिम् । ये । विश्वे । मरुतः । जुनन्ति ।
अयम् । यः । अग्निः । मरुतः । सम्ऽइद्धः । एतम् । जुषध्वम् । कवयः । युवानः ॥३॥
(२९५) यूयम् । राजानम् । इर्यम् । जनाय । विभ्वऽतष्टम् । जनयथ । यजत्राः ।
युष्मत् । एति । मुष्टिऽहा । बाहुऽजूतः । युष्मत् । सत्ऽअश्वः । मरुतः । सुऽवीरः ॥४॥

अन्वयः— २९३ हे (विप्र !) ये मयो-भुवः महित्वा अ-मिताः तुवि-राधसः नॄन्, तवसं खादि-हस्तं धुनि-व्रतं मायिनं दाति-वारं त्वेषं गणं वन्दस्व । २९४ ये उद-वाहासः वृष्टिं जुनन्ति विश्वे मरुतः अद्य वः आ यन्तु, (हे कवयः युवानः मरुतः ! यः अयं अग्निः सम्-इद्धः एतं जुषध्वं । २९५ (हे) यजत्राः मरुतः ! यूयं जनाय इर्यं विभ्व-तष्टं राजानं जनयथ, युष्मत् मुष्टि-हा बाहु-जूतः एति युष्मत् सत्-अश्वः सु-वीरः ।

अर्थ- २९३ हे (विप्र !) ज्ञानी पुरुष ! (ये मयो-भुवः) जो सुखदायक, (महित्वा) बडप्पन से (अ-मिताः) असीम सामर्थ्यवान तथा (तुवि-राधसः) यथेष्ट धनाढ्य हैं, उन (नॄन्) नेता वीरपुरुषों को तथा (तवसं) बलिष्ठ एवं (खादि-हस्तं) हाथ में वलय-कडे-धारण करनेवाले, (धुनि-व्रतं) शत्रुओं को हिला देने का व्रत जिन्होंने ले लिया हो, ऐसे (मायिनं) कुशल (दाति वारं) दानी या शत्रु का वध करके उसे दूर करनेवाले, (त्वेषं) तेजस्वी ऐसे उन वीरों के (गणं वन्दस्व) संघ को नमन कर।

२९४ (ये उद-वाहासः) जो जल देनेवाले (वृष्टिं जुनन्ति) वृष्टि को प्रेरणा देते हैं, वे (विश्वे मरुतः) सभी वीर मरुत् (अद्य) आज (वः) तुम्हारी ओर (आ यन्तु) आ जायँ। हे (कवयः) ज्ञानी तथा (युवानः मरुतः !) युवक वीर मरुतो ! (यः अयं) जो यह (अग्निः सम्-इद्धः) अग्नि प्रज्वलित किया गया है, (एतं जुषध्वं) इसका सेवन करो।

२९५ हे (यजत्राः मरुतः !) यज्ञ करनेवाले वीर मरुतो ! (यूयं) तुम (जनाय) लोक-कल्याण के लिए (इर्यं) शत्रुविनाशक तथा (विभ्व-तष्टं) कुशलतापूर्वक कार्य करनेहारे (राजानं) राजा को (जनयथ) उत्पन्न कर देते हो। (युष्मत्) तुमसे (मुष्टि-हा) मुष्टि-योधी और (बाहु-जूतः) बाहुबल से शत्रु को हटानेवाला वीर (एति) आ जाता है, हमें प्राप्त होता है। (युष्मत्) तुमसे ही (सत्-अश्वः) अच्छे घोडे रखनेवाला (सु-वीरः) अच्छा वीर तैयार हो जाता है।

भावार्थ- २९३ सभी लोग ऐसे वीरोंका अभिवादन करें। २९४ सबको जल देकर संतुष्ट करनेवाले वीर जनताके निकट आकर उन्हें संतुष्ट करें और वहीं पर जलती या धधकती हुई अँगीठीके समीप बैठ जायँ। २९५ जनताका हित हो इसलिए दुश्मनों को विनष्ट करनेवाला, कुशलतापूर्वक सभी राज्यशासनके कार्य करनेवाला नरेश राष्ट्रपतिकी हैसियतसे पदाधिकारी चुना जाता है। उसी प्रकार मुष्टियोधी महाबाहु वीर तथा अच्छे घोडे समीप रखनेवाला वीर भी राष्ट्रमें जन्म ले लेता है।

टिप्पणी- [२९३] (१) व्रत = शपथ, वचन, निश्चय, कृत्य, योजना। धुनि-व्रत = शत्रुदल को हिलाने का व्रत जिसने लिया हो। (२) दाति-वारः = (दातिः = देन, वारः = बडा प्रमाण, समूह) बडे पैमाने पर दान देनेवाला; (दा अवखण्डने) [दाति,] वध करके [वार] निवारक, शत्रुको हटानेवाला। [२९४] (१) उद-वाह = जल ढोनेवाला, मेघ, पानी पहुँचानेवाला। [२९५] (१) इर्य = प्रेरक, स्वामी, चपल, शक्तिमान्ः (शत्रुओंका) विनाश करनेहारा। (२) राजानं इर्यं = तेजस्वी राजा को (प्रभु को)। (३) विभ्व-तष्ट = (विभ्वः = कुशल, कारीगर, व्यापक); (तष्ट) = (तक्ष् तनूकरणे = बनाना,) कुशलतापूर्वक कार्य करनेहारा। (विभ्वैः) चतुर तथा निष्णात शिक्षकों द्वारा सिखाकर (तष्टः) तैयार किया हुआ।

(२९६) अराःऽइव । इत् । अचरमाः । अहाऽइव । प्रऽप्र । जायन्ते । अकवाः । महःऽभिः ।
पृश्नेः । पुत्राः । उपऽमासः । रभिष्ठाः । स्वया । मत्या । मरुतः । सम् । मिमिक्षुः ॥५॥
(२९७) यत् । प्र । अयासिष्ट । पृषतीभिः । अश्वैः । वीळुपविऽभिः । मरुतः । रथेभिः ।
क्षोदन्ते । आपः । रिणते । वनानि । अव । उस्रियः । वृषभः । क्रन्दतु । द्यौः ॥६॥
(२९८) प्रथिष्ट । यामन् । पृथिवी । चित् । एषाम् । भर्ताऽइव । गर्भम् । स्वम् । इत् । शवः । धुः ।
वातान् । हि । अश्वान् । धुरि । आऽयुयुज्रे । वर्षम् । स्वेदम् । चक्रिरे । रुद्रियासः ॥७॥

अन्वयः— २९६ अराःइव इत् अ-चरमाः अहाइव महोभिः अ-कवाः प्र प्र जायन्ते, उप-मासः रभिष्ठाः पृश्नेः पुत्राः स्वया मत्या सं मिमिक्षुः । २९७ (हे) मरुतः ! यत् पृषतीभिः अश्वैः वीळु-पविभिः रथेभिः प्र अयासिष्ट आपः क्षोदन्ते वनानि रिणते, उस्रियः वृषभः द्यौः अव क्रन्दतु । २९८ एषां यामन् पृथिवी चित् प्रथिष्ट, भर्ताइव गर्भं स्वं इत् शवः धुः, हि वातान् अश्वान् धुरि आयुयुज्रे रुद्रियासः स्वेदं वर्षं चक्रिरे ।

अर्थ— २९६ (अराःइव इत्) पहिये के आरों के समानही (अ-चरमाः) सभी समान दीख पडनेवाले तथा (अहाइव) दिवसतुल्य (महोभिः) वडे भारी तेजसे युक्त होकर (अ-कवाः) अवर्णनीय ठहरनेवाले ये वीर (प्र प्र जायन्ते) प्रकट होते हैं । (उप-मासः) लगभग समान कदके (रभिष्ठाः) अतिवेगवान ये (पृश्नेः पुत्राः) मातृभूमि के सुपुत्र (मरुतः) वीर मरुत् (स्वया मत्या) अपने मनसे ही (सं मिमिक्षुः) सब कोई मिलकर एकतापूर्वक विशेष कार्य का सृजन करते हैं ।

२९७ हे (मरुतः !) वीर मरुतो ! (यत्) जब (पृषतीभिः अश्वैः) धब्बेवाले घोडे जोते हुए (वीळु-पविभिः) दृढ तथा सामर्थ्यवान पहियोंसे युक्त (रथेभिः) रथोंसे तुम (प्र अयासिष्ट) जाने लगते हो तब (आपः क्षोदन्ते) सभी जलप्रवाह क्षुब्ध हो उठते हैं, (वनानि रिणते) वनोंका नाश होता है, तथा (उस्रियः वृषभः) प्रकाशयुक्त वर्षा करनेहारा, (द्यौः) आकाश तक (अव क्रन्दतु) भीषण शब्दसे गूँज उठता है ।

२९८ (एषां यामन्) इन वीरों के आक्रमण से (पृथिवी चित्) भूमितक (प्रथिष्ट) विख्यात हो चुकी है; (भर्ता इव) पति जैसे पत्नी में (गर्भं) गर्भ की स्थापना करता है, वैसे ही इन्होंने (स्वं इत्) अपनाही (शवः धुः) वल अपने राष्ट्र में प्रस्थापित किया (हि) और (वातान् अश्वान्) वेगवान् घोडों को (धुरि आ युयुज्रे) रथ के अगले भाग में जोत दिया और (रुद्रियासः) उन वीरोंने (स्वेदं वर्षं चक्रिरे) अपने पसीने की मानों वर्षासी की, पराक्रम की पराकाष्ठा कर दिखायी ।

भावार्थ- २९६ ये सभी वीर तुल्यरूप दीख पडते हैं और समान ढंगके तेजस्वी हैं । वे अपना कर्तव्य वेगसे पूर्ण कर देते हैं और अपनी मातृभूमिकी सेवामें मिलजुलकर अविषम भावसे विशिष्ट कार्यको संपन्न कर देते हैं । २९७ जब मरुत् शत्रुदल पर हमले चढाने लगते हैं, याने वायु बहने लगती है, उस समय जलप्रवाह बौखला उठते हैं, वन के पेड टूट गिरने लगते हैं और आकाश के वर्षा करनेहारे मेघ भी गरजने लगते हैं । २९८ इन वीरों के शत्रुदल पर होनेवाले आक्रमणों के फलस्वरूप मातृभूमि विख्यात हुई । इन्होंने अपना वल राष्ट्र में प्रस्थापित किया और घोडों से रथ संयुक्त करके जब ये चढाई करने लगे, तब (इस युद्ध में) पसीने से तर होने तक वीरतापूर्ण कार्य करते रहे ।

टिप्पणी- [२९६] (१) चरम = अंतिम, निम्न श्रेणीका (छोटासा, अल्प प्रमाण का) । अ-चरम = बडा, तुल्य, निम्न श्रेणीका नहीं । (२) अ-कवाः (कव् = वर्णन करना)= अवर्णनीय. अदुष्ट, अकुत्सित । (३) सं-मिह् = सं-मिक्ष् = मिलावट करना (To mix with). निर्माण करना (endow with, to prepare, to furnish) तयार करना, सुसज्ज बनाना । उपमासः रभिष्ठाः पृश्नेः पुत्राः स्वया मत्या संमिमिक्षुः = ये मातृभूमि के सुपुत्र वीर समानतापूर्ण वर्ताव करते हैं अविषम दशामें रहते हैं और अपने कर्तव्यको ऐक्यसे निभाते हैं । देखो मंत्र ३०५; ४५२; जिनमें साम्यभावका वर्णन किया है । [२९७] (१) उस्रियः=गौविषयक, बैलके बारेमें, बैल, प्रकाश, दूध, बछडा।

(२९९) हये । नरः । मरुतः । मृळत । नः । तुविऽमघासः । अमृताः । ऋतऽज्ञाः ।
सत्यऽश्रुतः । कवयः । युवानः । बृहत्ऽगिरयः । बृहत् । उक्षमाणाः ॥८॥
(ऋ० ५।५९।१-८)

(३००) प्र । वः । स्पट् । अक्रन् । सुविताय । दावने । अर्च । दिवे । प्र । पृथिव्यै । ऋतम् । भरे ।
उक्षन्ते । अश्वान् । तरुषन्ते । आ । रजः । अनु । स्वम् । भानुम् । श्रथयन्ते । अर्णवैः ॥१॥

(३०१) अमात् । एषाम् । भियसा । भूमिः । एजति । नौः । न । पूर्णा । क्षरति । व्यथिः । यती ।
दूरेऽदृशः । ये । चितयन्ते । एमऽभिः । अन्तः । महे । विदथे । येतिरे । नरः ॥२॥

अन्वयः— २९९ [ऋ० ५।५७।८; २९१ देखिए।] ३०० वः सुविताय दावने स्पट् प्र अक्रन्, दिवे अर्च, पृथिव्यै ऋतं प्र भरे, अश्वान् उक्षन्ते, रजः आ तरुषन्ते, स्वं भानुं अर्णवैः अनु श्रथयन्ते। ३०१ एषां अमात् भियसा भूमिः एजति, पूर्णा यती व्यथिः नौः न, क्षरति, दूरे-दृशः ये एमभिः चितयन्ते (ते) नरः विदथे अन्तः महे येतिरे।

अर्थ- २९९ [ऋ० ५।५७।८; २९१ देखिए।]

३०० (वः सुविताय) तुम्हारा अच्छा कल्याण हो तथा (दावने) अच्छा दान दिया जा सके, इसलिए (स्पट्) याजक इस कर्म का (प्र अक्रन्) उपक्रम या प्रारंभ कर रहा है; तूभी (दिवे अर्च) प्रकाशक देव की, द्युलोककी पूजा कर और मैं भी (पृथिव्यै) मातृभूमि के लिए (ऋतं प्र भरे) स्तोत्र का गायन करता हूँ। वे वीर (अश्वान् उक्षन्ते) अपने घोडों को बलवान बनाते हैं तथा (रजः आ तरुषन्ते) अन्तरिक्षसे भी परे चले जाते हैं और (स्वं भानुं) अपने तेजको (अर्णवैः) समुद्रों से-समुद्रपर्यटनोंद्वारा-समुद्रमें से भी (अनु श्रथयन्ते) फैला देते हैं।

३०१ (एषां) इनके (अमात् भियसा) बलके डरसे (भूमिः एजति) पृथ्वी काँप उठती है और (पूर्णा) वस्तुओं से भरी होने के कारण (यती) जाते समय (व्यथिः नौः न) पीडित होनेवाली नौका के समान यह (क्षरति) आन्दोलित, स्पन्दित हो उठती है। (दूरे-दृशः) दूरसे दिखाई देनेवाले, (ये) जो (एमभिः) वेगयुक्त गतियों से (चितयन्ते) पहचाने जाते हैं, वे (नरः) नेता वीर (विदथे अन्तः) युद्ध में रहकर (महे) बडप्पन पाने के लिए (येतिरे) प्रयत्न करते हैं।

भावार्थ- [२९९ ऋ० ५।५७।८; २९१ देखिए।] ३०० सबका भला हो और सबको सहायता पहुँचे, इस हेतु से याजक इस यज्ञका प्रारम्भ करता है। प्रकाशके देवताकी पूजा करो और मातृभूमिके सूक्तोंका गायन करो। वीर अपने घोडों को किसी भी भूभाग पर चढाई करनेके लिये सज्ज दशामें रखते हैं और (विमान पर चढकर) अन्तरिक्षमें संचार करते हैं, (तथा नौका एवं जहाजों परसे समुद्रयात्रा करके सुदूरवर्ती देशोंमें अपना तेज फैला देते हैं।) ३०१ इन वीरोंमें भारी बल विद्यमान है, इस कारणसे भूमंडल परके देश मारे डरके काँपने लगते हैं। लदी हुई परिपूर्ण नौका जिस तरह पवनके कारण हिलनेडोलने लगी, तो तनिक भय प्रतीत होने लगता है, ठीक उसी प्रकार सभी लोग इनकी शीघ्रगामिता के परिणामस्वरूप कुछ अंश में भयभीत हो जाते हैं। चूँकि इनका धावा विद्युत्गति से हुआ करता है, अतः इन वीरों को सभी पहचानते हैं। जब ये रणक्षेत्र में शत्रुदल से जूझते हैं, तब इनके मनमें एक ही विचार तथा ख्याल जागृत रहता है कि, यथासंभव बडप्पन प्राप्त करना ही चाहिए।

टिप्पणी- [२९९] [ऋ० ५।५७।८; २९१ देखिए।] [३००] (१) तरुषः = जीतनेवाला, तरुष्यति = चढाई करना, तरुस् = लडाई, श्रेष्ठत्व, हमला करना। (२) स्पट् (स्पश्)= स्रष्टा, होता, याजक, निरीक्षक। स्वं भानुं अर्णवैः अनु श्रथयन्ते = अपना तेज समुद्रोंके परे के जाकर फैला देते हैं। [३०१] (१) दूरे-दृशः = दूरसे दीख पडनेवाले, दूरदर्शिता से कार्य करनेवाले, दूरदर्शी।

(३०२) गवाम्ऽइव । श्रियसे । शृङ्गम् । उत्ऽतमम् । सूर्यः । न । चक्षुः । रजसः । विऽसर्जने ।
अत्याःऽइव । सुऽभ्वः । चारवः । स्थन । मर्याःऽइव । श्रियसे । चेतथ । नरः ॥३॥
(३०३) कः । वः । महान्ति । महताम् । उत् । अश्नवत् । कः । काव्या । मरुतः । कः । ह । पौंस्या ।
यूयम् । ह । भूमिम् । किरणम् । न । रेजथ । प्र । यत् । भरध्वे । सुवितायं । दावने ॥४॥

अन्वयः— ३०२ (हे) नरः ! गवांइव उत्तमं शृङ्गं श्रियसे; रजसः विसर्जने, सूर्यः न, चक्षुः; अत्याःइव सु-भ्वः चारवः स्थन; मर्याःइव, श्रियसे चेतथ।

३०३ (हे) मरुतः ! महतां वः महान्ति कः उत् अश्नवत्, कः काव्या, कः ह पौंस्या, यत् सुविताय दावने प्र भरध्वे यूयं ह, किरणं न, भूमिं रेजथ।

अर्थ- ३०२ हे (नरः !) नेता वीरो ! (गवांइव उत्तमं शृङ्गं) गौओं के अच्छे सींग के तुल्य (श्रियसे) शोभा के लिए तुम सुन्दर शिरोवेष्टन धारण करते हो, तथा (रजसः विसर्जने) अँधेरा दूर हटाने के लिए (सूर्यः न चक्षुः) सूर्य की नाईं तुम लोगों के नेत्र वनते हो। (अत्याःइव) तुम शीघ्रगामी घोडों के समान स्वयमेव (सु-भ्वः) उत्तम वने हुए एवं (चारवः) दर्शनीय (स्थन) हो और (मर्याःइव) मर्त्यों के समान (श्रियसे चेतथ) ऐश्वर्यप्राप्ति के लिए तुम सचेष्ट वने रहते हो।

३०३ हे (मरुतः !) वीर मरुतो ! (महतां वः) तुम जैसे महान सैनिकों की (महान्ति) महानता या वडप्पन की (कः उत् अश्नवत्) भला कौन वरावरी करता है ? (कः काव्या ?) कौन भला तुम्हारे काव्य रचने की स्फूर्ति पाता है ? (कः ह पौंस्या) किसे भला तुम्हारे तुल्य सामर्थ्य प्राप्त हुए ? (यत्) जव (सुविताय दावने) अत्यन्त उच्च कोटिके दान देनेके लिए तुम (प्र भरध्वे) पर्याप्त धन पाते हो, तव (यूयं ह) तुम सचमुच (किरणं न) एकाध धूलिकणके समान (भूमिं रेजथ) पृथ्वीको भी हिला देते हो।

भावार्थ- ३०२ ये वीर शोभा के लिए माथों पर शिरोवेष्टन धर देते हैं। जैसे सूर्य अँधेरे को हटाता है, वैसे ही ये वीर जनता की उदासीनता को दूर भगा देते हैं और उसे उमंग एवं हौसले से भर देते हैं। घुडदौड के लिए तैयार किये हुए घोडे जैसे सुन्दर प्रतीत होते हैं, वैसे ही ये मनोहर स्वरूपवाले होते हैं और हमेशा अपनी प्रगति तथा वैभवशालिता करने के लिए प्रयत्न करते रहते हैं।

३०३ इस अवनीतल पर भला ऐसा कौन है, जो इन वीरोंके समकक्ष वन सके? इनके अतिरिक्त क्या कोई ऐसा है, जिसके विषयमें वीररसपूर्ण काव्योंका सृजन कोई करे? इनमें जो वीरता है, जो पुरुषार्थ है, भला वह किसी दूसरेमें पाये भी जाते हैं ? जिस समय ये भूरि भूरि दान देनेके लिए प्रचुर धन वटोरनेकी चेष्टामें संलग्न रहते हैं, अर्थात् भीषण एवं लोमहर्षण युद्ध छेड देते हैं, तव समूची पृथ्वी विचलित हो उठती है, सारा भू-मंडल स्पंदित हो जाता है।

टिप्पणी- [३०२] (१) रजस् = धूलि, पराग, किरण, अँधेरा, मानसिक अज्ञान, अन्तरिक्ष, मेघ। (२) मर्यः = मर्त्य, मानव, युवक, दूल्हा (Suitor)। मर्याः इव श्रियसे चेतथ = दुल्हे के समान शोभा के लिए तुम प्रयत्न करते हो।

[३०३] (१) किरण = किरण, धूलिकण, किरणपथ में दीख पडनेवाला कण।

(३०४) अश्वाःऽइव । इत् । अरुषासः । सऽबन्धवः । शूराःऽइव । प्रऽयुधः । प्र । उत । युयुधुः ।
मर्याःऽइव । सुऽवृधः । ववृधुः । नरः । सूर्यस्य । चक्षुः । प्र । मिनन्ति । वृष्टिऽभिः ॥५॥

(३०५) ते । अज्येष्ठाः । अकनिष्ठासः । उत्ऽभिदः ।
अमध्यमासः । महसा । वि । ववृधुः ।
सुऽजातासः । जनुषा । पृश्निऽमातरः ।
दिवः । मर्याः । आ । नः । अच्छ । जिगातन ॥६॥

अन्वयः— ३०४ अश्वाःइव इत् अरुषासः स-बन्धवः उत शूराःइव प्र-युधः प्र युयुधुः, नरः मर्याःइव सु-वृधः ववृधुः, वृष्टिभिः सूर्यस्य चक्षुः प्र मिनन्ति ।

३०५ ते अ-ज्येष्ठाः अ-कनिष्ठासः अ-मध्यमासः उत्-भिदः महसा वि ववृधुः, जनुषा सु-जातासः पृश्नि-मातरः दिवः मर्याः नः अच्छ आ जिगातन ।

अर्थ- ३०४ वे वीर (अश्वाःइव इत्) घोडोंके समान ही (अरुषासः) तनिक लाल वर्णके हैं (स-बन्धवः) एक दूसरे से भाईचारे का बर्ताव रखनेवाले हैं (उत) और उसी प्रकार (शूराःइव) शूरों के समान (प्र-युधः) अच्छे योद्धा हैं, इसलिए वे (प्र युयुधुः) भली भाँति लडते हैं। (नरः) वे नेता वीर (मर्याः-इव) मानवोंके समान (सु-वृधः) अच्छी तरह बढनेवाले हैं, अतएव (ववृधुः) यथेष्ट बढते हैं। वे अपनी (वृष्टिभिः) वर्षाओं से (सूर्यस्य चक्षुः) सूर्य के तेज को भी (प्र मिनन्ति) घटा देते हैं।

३०५ (ते) उनमें कोई (अ-ज्येष्ठाः) श्रेष्ठ नहीं, कोई (अ-कनिष्ठासः) कनिष्ठ भी नहीं और कोई (अ-मध्यमासः) मँझली श्रेणीका भी नहीं, वे सभी समान हैं, [साम्यवाद को कार्यरूप में परिणत करनेवाले हैं।] वे (उत्-भिदः) उन्नति के लिए शत्रुका भेदन कर ऊपर उठनेवाले हैं, अतएव वे अपने (महसा) तेजसे (वि ववृधुः) विशेष ढंगसे वृद्धिगत होते हैं। वे (जनुषा) जन्म से (सु-जातासः) प्रतिष्ठित परिवार में उत्पन्न अर्थात् कुलीन तथा (पृश्नि-मातरः) भूमि को माता माननेवाले, (दिवः) स्वर्गीय (मर्याः) मानव ही हैं। वे (नः अच्छ) हमारी ओर (आ जिगातन) आ जायँ।

भावार्थ- ३०४ ये वीर तेजस्वी हैं, तथा पर्याप्त भ्रातृभाव भी इनमें विद्यमान है। अच्छे, कुशल सैनिक होते हुए वे भली भाँति लडकर युद्धों में विजयी बनते हैं। वे पूर्णरूप से बढते हुए अपने तेज से सूर्य को भी मानों परास्तसा कर देते हैं।

३०५ इन वीरों में कोई भी ऊँचा, मँझला या नीचा नहीं है ,इस तरह का भेदभाव नहीं के बराबर है। क्योंकि वे सभी समान हैं और उन्नति के लिए मिलजुलकर प्रयत्न करते हैं। सभी कुलीन हैं और भूमि को मातृवत् आदरभरी निगाह से देखते हैं। वे मानों स्वर्ग से भूमि पर उतरनेवाले मानव ही हैं। हमारी लालसा है कि वे हमारे मध्य आकर निवास कर लें।

टिप्पणी-[३०४] (१) चक्षुः = आँख, दृष्टि, तेज। (२) मी = (गतौ हिंसायां च) वध करना, कष्ट पहुँचाना, कम करना, बदलना, नष्ट होना, भटकना।

[३०५] (१) उत्-भिद् = (उत्) ऊपर उठने के लिए (भिद्) शत्रु का भेदन करनेवाले; शत्रु के मोर्चे को तोडकर बाहर आनेवाले, ऊपर उठनेवाले।

(३०६) वयः । न । ये । श्रेणीः । पप्तुः । ओजसा । अन्तान् । दिवः । बृहतः । सानुनः । परि ।
अश्वासः । एषाम् । उभये । यथा । विदुः । प्र । पर्वतस्य । नभनून् । अचुच्यवुः ॥७॥
(३०७) मिमातु । द्यौः । अदितिः । वीतये । नः । सम् । दानुऽचित्राः । उषसः । यतन्ताम् ।
आ । अचुच्यवुः । दिव्यम् । कोशम् । एते । ऋषे । रुद्रस्य । मरुतः । गृणानाः ॥८

(ऋ० ५।६१।१-४; ११-१६)

(३०८) के । स्थ । नरः । श्रेष्ठऽतमाः । ये । एकःऽएकः । आऽयय ।
परमस्याः । पराऽवतः ॥१॥

अन्वयः— ३०६ ये वयः न, श्रेणीः ओजसा दिवः अन्तान् बृहतः सानुनः परि पप्तुः, यथा उभये विदुः एषां अश्वासः पर्वतस्य नभनून् प्र अचुच्यवुः।

३०७ द्यौः अदितिः नः वीतये मिमातु, दानु-चित्राः उषसः सं यतन्तां, (हे) ऋषे! गृणानाः एते रुद्रस्य मरुतः दिव्यं कोशं आ अचुच्यवुः।

३०८ (हे) श्रेष्ठ-तमाः नरः! के स्थ? ये एकः-एकः परमस्याः परावतः आयय।

अर्थ— ३०६ (ये) जो वीर (वयः न) पंछियों की तरह (श्रेणीः) पंक्तिरूपमें-समूह में (ओजसा) वेगसे (दिवः अन्तान्) आकाश के दूसरे छोरतक तथा (बृहतः) बडे बडे (सानुनः) पर्वतों के शिखर पर भी (परि पप्तुः) चारों ओरसे पहुँचते हैं। (यथा) जैसे एक दूसरेका बल (उभये विदुः) परस्पर जान लेते हैं, वैसे ही ये कर्म करते हैं। (एषां अश्वासः) इनके घोडे (पर्वतस्य नभनून्) पहाड के टुकडे करके (प्र अचुच्यवुः) नीचे गिरा देते हैं।

३०७ (द्यौः) द्युलोक तथा (अदितिः) भूमि (नः वीतये) हमारे सुखसमाधानके लिए (मिमातु) तैयारी कर लें, (दानु-चित्राः) दानद्वारा आश्चर्यचकित कर डालनेवाले (उषसः) उषःकाल हमारे लिए (सं यतन्तां) भली भाँति प्रयत्न करें। हे (ऋषे!) ऋषिवर! (गृणानाः) प्रशंसित हुए (एते) ये (रुद्रस्य मरुतः) वीरभद्र के वीर मरुत् (दिव्यं कोशं) दिव्य कोश या भाण्डार को (आ अचुच्यवुः) सभी ओर से उण्डेल देते हैं।

३०८ हे (श्रेष्ठ-तमाः नरः!) अति उच्च कोटि के तथा नेता के पदपर अधिष्ठित वीरो! तुम (के स्थ) कौन हो? (ये) जो तुम (एकः-एकः) अकेले अकेले (परमस्याः परावतः) अति सुदूर देश से यहाँ पर (आयय) आते हो।

भावार्थ- ३०६ ये वीर पंक्ति में रहकर समान रूप से पग उठाते एवं धरते हुए चलने लगते हैं और इनकी वेगवान गति के कारण दर्शक यों समझने लगता है कि, मानों ये आकाश के अंतिम छोर तक इसी भाँति जाते रहेंगे। पर्वतश्रेणियों पर भी ठीक इसी प्रकार ये चढ जाते हैं। एक दूसरे की शक्ति से परिचित वीर जैसे लडते हों, वैसे ही ये जूझते हैं और इनके घोडे पहाडों तक को चकनाचूर कर आगे निकल जाते हैं। ३०७ द्युलोक तथा भूलोक हमारे सुख को बढावें। उषःकाल का प्रारम्भ होते ही देन देने का प्रारम्भ हो जाय। ये सराहनीय वीर विजय पाकर धनका बृहदाकार खजाना ले आएँ और उस द्रविणभाण्डार को हमारे सामने उण्डेल दें। ३०८ अत्यन्त सुदूरवर्ती प्रदेशमें से बिना थकावट के आनेवाले वीर भला तुम कौन हो?

टिप्पणी-- [३०६] (१) नभनु = (नभ् = कष्ट देना, तोडमरोड देना) क्षति पहुँचानेवाला, नदी, टूटाफूटा विभाग। [३०७] (१) दिव्य = स्वर्गीय, आश्चर्यकारक। (२) च्यु = (गतौ) बटोरना, गिर जाना। (३) मा (माने) = मापना, समाना, तैयार करना, बाँधना, दर्शाना। (४) वीतिः = जाना, उत्पन्न करना, उत्पत्ति, उपभोग, खाना, तेज।

(३०९) क्व॑ । वः॒ । अश्वाः॑ । क्व॑ । अ॒भीश॑वः । क॒थम् । शे॒क॒ । क॒था । य॒य॒ ।
पृ॒ष्ठे । सदः॑ । न॒सोः । यम॑ः ॥२॥

(३१०) ज॒घने॑ । चोद॑ः । ए॒षा॒म् । वि । स॒क्थानि॑ । नरः॑ । य॒मुः॒ ।
पु॒त्र॒ऽकृ॒थे । न । जन॑यः ॥३॥

(३११) परा॑ । वी॒रा॒सः॒ । इ॒त॒न॒ । मर्या॑सः । भद्र॑ऽजानयः ।
अ॒ग्नि॒ऽतप॑ः । यथा॑ । अस॑थ ॥४॥

अन्वयः— ३०९ वः अश्वाः क्व ? अभीशवः क्व ? कथं शेक ? कथा यय ? पृष्ठे सदः नसोः यमः ।
३१० एषां जघने चोदः, पुत्र-कृथे जनयः न, नरः सक्थानि वि यमुः ।
३११ हे वीरासः मर्यासः भद्र-जानयः अग्नि-तपः ! यथा असथ परा इतन ।

अर्थ- ३०९ (वः अश्वाः क्व ?) तुम्हारे घोडे किधर हैं ? (अभीशवः क्व ?) उनके लगाम कहाँ हैं ? (कथं शेक ?) किसके आधार से या कैसे तुम सामर्थ्यवान हुए हो ? और तुम (कथा यय ?) भला कैसे जाते हो ? उनकी (पृष्ठे सदः) पीठपर की काठी, जीन [पर्याण] एवं (नसोः यमः) नथुनेमें डाली जानेवाली रस्सी कहाँ धर दिये हैं ?

३१० जब (एषां) इन घोडों की (जघने) जाँघों पर (चोदः) चाबुक लगता है, तब (पुत्र-कृथे) पुत्रप्रसूति के समय (जनयः न) स्त्रियाँ जैसे गोदोंको तानती हैं, वैसे ही वे (नरः) नेता वीर सक्थानि) उन घोडों की जाँघों का (वि यमुः) विशेष ढंगसे नियमन करते हैं ।

३११ हे (वीरासः) वीर, (मर्यासः) जनता के हितकर्ता, (भद्र-जानयः) उत्तम जन्म पाये हुए और (अग्नि-तपः!) अग्नि-तुल्य तेजस्वी वीरो ! (यथा असथ) जैसे तुम अब हो, वैसे ही (परा इतन) इधर आओ ।

भावार्थ- ३०९ इन वीरों के घोडे लगाम, पर्याण, अन्य वस्तुएँ कहाँ हैं और कैसी हैं ?

३१० घुडसवार होने पर ये वीर जब अश्वजंघापर कोडे लगाना शुरु करते हैं, तब वे घोडे अपनी जंघाओंको विस्तृत करने लगते हैं, पर ये वीर सैनिक उन्हें नियमित करते अर्थात् रोक देते हैं। (अपनी जंघाओंसे घोड़ों को दृढ धरते हैं, हिलने नहीं देते हैं ।)

३११ वीर हमारे निकट आ जायँ ।

टिप्पणी- [३०९] (१) सदस् = घर, आसन, बैठ जाने का साधन, जीन । " नसोः यमः ? = क्या घोडों के नथुनों में रस्सी डालते थे ? आजकल घोडे के मुँह में लौहमय शलाका डाल कर उसे लगाम लगा देते हैं । इस मंत्र में ' अश्वाः ' पद पाया जाता है और अन्त में (नसोः यमः) ' नथुनेमें रस्सी ' रखने का निर्देश है। यह प्रयोग विचार करनेयोग्य है ।

[३१०] (१) नरः सक्थानि वि यमुः = वीर घोडे पर अचल, अटल, अडिग हो बैठे, ताकि वह घोडे पर से न गिर जाय ।

(३१२) ये । ईम् । वहन्ते । आशुऽभिः । पिबन्तः । मदिरम् । मधु ।
अत्र । श्रवांसि । दधिरे ॥११॥

(३१३) येषाम् । श्रिया । अधि । रोदसी इति । विऽभ्राजन्ते । रथेषु । आ ।
दिवि । रुक्मःऽइव । उपरि ॥१२॥

(३१४) युवा । सः । मारुतः । गणः । त्वेषऽरथः । अनेद्यः ।
शुभम्ऽयावा । अप्रतिऽस्कुतः ॥१३॥

अन्वयः— ३१२ ये मदिरं मधु पिबन्तः आशुभिः ईं वहन्ते अत्र श्रवांसि दधिरे ।
३१३ येषां श्रिया रोदसी अधि, उपरि दिवि रुक्मःइव, रथेषु आ विभ्राजन्ते ।
३१४ सः मारुतः गणः युवा त्वेष-रथः अ-नेद्यः शुभं-यावा अ-प्रति-स्कुतः ।

अर्थ- ३१२ (ये) जो (मदिरं मधु) मिठासभरा सोमरस (पिबन्तः) पीनेवाले वीर (आशुभिः) वेगवान घोडों के साथ (ईं वहन्ते) शीघ्र चले जाते हैं, वे (अत्र) यहाँ पर (श्रवांसि दधिरे) बहुतसा धन दे देते हैं।

३१३ (येषां श्रिया) जिन की शोभासे (रोदसी) द्युलोक तथा भूलोक (अधि) अधिष्ठित -सुशोभित- हुए हैं, वे वीर (उपरि दिवि) ऊपर आकाश में (रुक्मःइव) प्रकाशमान सूर्य के तुल्य (रथेषु आ विभ्राजन्ते) रथों में द्योतमान होते हैं।

३१४ (सः) वह (मारुतः गणः) वीर मरुतों का संघ (युवा) तरुण, (त्वेष-रथः) तेजस्वी रथ में बैठनेवाला, (अ-नेद्यः) अनिंदनीय, (शुभं-यावा) शुभ कार्य के लिए ही हलचलें करनेवाला और (अ-प्रति-स्कुतः) अपराजित- सदैव विजयी है।

भावार्थ- ३१२ अच्छे अन्नपान का सेवन करना चाहिए और वेगवान वाहनों द्वारा शत्रुसेनापर आक्रमण करना उचित है, क्योंकि ऐसा करनेसे उच्च कोटि का धन मिलता है।

३१३ रथों में बैठकर वीर सैनिक जब कार्य करने लगते हैं, तब वे अतीव सुहाने लगते हैं।

३१४ वीरों का समुदाय सत्कर्म करनेमें निरत, निष्पाप, हमेशा विजयी तथा नवयुवकवत् उमंग एवं उत्साह से परिपूर्ण रहता है।

टिप्पणी- [३१२] (१) श्रवस् = सुनना, कीर्ति, धन, मंत्र, प्रशंसनीय कृत्य। यहाँ पर 'श्रवांसि' बहुवचनान्त पद है, इसलिए 'यश' अर्थ लेने की अपेक्षा 'धन' अर्थ करना, ठीक प्रतीत होता है. क्योंकि यश का अनेक होनेका संभव नहीं, लेकिन धन विविध प्रकार के हुआ करते हैं, अतः बहुवचनी प्रयोग किये जानेपर 'श्रवांसि' का अर्थ धनसमूह करनाही ठीक है।

[३१३] रुक्मः = सुवर्णका टुकडा, मुहर, प्रकाशमान। दिवि रुक्मः = आकाश में प्रकाशमान (सूर्य।)

[३१४] स्कु = कूदना, उठा लेना, व्याप्त होना। प्रतिष्कु = ढकना (पराभूत करना) अ-प्रतिष्कुतः = विजयी, जो कभी न हारा हुआ हो।

(३१५) कः । वेद । नूनम् । एषाम् । यत्र । मदन्ति । धूतयः ।
ऋतऽजाताः । अरेपसः ॥१४॥

(३१६) यूयम् । मर्तम् । विपन्यवः । प्रऽनेतारः । इत्था । धिया ।
श्रोतारः । यामऽहूतिषु ॥१५॥

(३१७) ते । नः । वसूनि । काम्या । पुरुऽचन्द्राः । रिशादसः ।
आ । यज्ञियासः । ववृत्तन ॥१६॥

अन्वयः— ३१५ धूतयः ऋत-जाताः अ-रेपसः यत्र मदन्ति एषां कः नूनं वेद ?

३१६ (हे) वि-पन्यवः ! यूयं इत्था मर्तं प्र-नेतारः याम-हूतिषु धिया श्रोतारः ।

३१७ पुरु-चन्द्राः रिश-अदसः यज्ञियासः ते नः काम्या वसूनि आ ववृत्तन ।

अर्थ- ३१५ (धूतयः) शत्रुओं को हिलानेवाले, (ऋत-जाताः) सत्य के लिए जन्मे हुए और (अ-रेपसः) निष्पाप ये वीर (यत्र मदन्ति) जहाँ आनन्द का उपभोग लेते हैं, वह (एषां) इनका ठौर (कः नूनं वेद) सचमुच कौन भला जानता है ?

३१६ हे (वि-पन्यवः!) प्रशंसनीय वीरो ! (यूयं) तुम (इत्था) इस प्रकारसे (मर्तं प्र-नेतारः) मानवों को उत्कृष्ट प्रेरणा देनेवाले हो और (याम-हूतिषु) शत्रुदल पर चढाई करते समय पुकारने पर तुम (धिया) मनःपूर्वक बडी लगनसे उस प्रार्थना को (श्रोतारः) सुन लेते हो ।

३१७ हे (पुरु-चन्द्राः) अत्यन्त आह्लाददायक, (रिश-अदसः) शत्रुदल के विनाशकर्ता (यज्ञियासः !) तथा पूज्य वीरो ! (ते) ऐसे प्रसिद्ध तुम (नः काम्या) हमारे अभीष्ट (वसूनि) धन हमें (आ ववृत्तन) वापिस लौटा दो ।

भावार्थ- ३१५ कौनसा स्थान वीरों को आनन्द देता है ?

३१६ शत्रु पर चढाई करते वक्त मददके लिए बुलाया जाय, तो ये वीर सैनिक तुरन्त उस प्रार्थना पर ध्यान देते हैं, सहायार्थी की पुकार सुन लेते हैं ।

३१७ वीरों की सहायता से हमें सभी प्रकारके धन मिलें । [यदि शत्रुने उन्हें छीन लिया हो, तो वह सारी सम्पदा हमें पुनः वापस मिले ।]

टिप्पणी- [३१५] (१) ऋत-जात = सत्य के लिए पैदा हुआ, सीधा कार्य करने के लिए ही जो अपने जीवन का बलिदान देता है । (२) रेपस् = हीन, टेढा, क्रूर, कलंक, पाप । अ-रेपस् = ऊंचा, सरल, शान्त, निष्कलंक, पापरहित ।

[३१६] (१) यामः = दुश्मनों पर किया जानेवाला आक्रमण, हमला । (२) हूतिः = पुकार, बुलावा । याम-हूतिः = शत्रुओं पर हमले चढाते समय की हुई पुकार ।

अत्रिपुत्र एवयामरुत् ऋषि (ऋ० ५।८७।१-९)

(३१८) प्र । वः । महे । मतयः । यन्तु । विष्णवे । मरुत्वते । गिरिऽजाः । एवयामरुत् । प्र । शर्धाय । प्रऽयज्यवे । सुऽखादये । तवसे । भन्दत्ऽइष्टये । धुनिऽव्रताय । शवसे ॥१॥

(३१९) प्र । ये । जाताः । महिना । ये । च । नु । स्वयम् । प्र । विद्मना । ब्रुवते । एवयामरुत् । क्रत्वा । तत् । वः । मरुतः । न । आऽधृषे । शवः । दाना । मह्ना । तत् । एषाम् । अधृष्टासः । न । अद्रयः ॥२॥

अन्वयः- ३१८ एवयामरुत् गिरि-जाः मतयः वः मरुत्-वते महे विष्णवे प्र यन्तु, प्र-यज्यवे सु-खादये तवसे भन्दत्-इष्टये धुनि-व्रताय शवसे शर्धाय प्र।

३१९ ये महिना प्र जाताः, ये च नु स्वयं विद्मना प्र, एवयामरुत् ब्रुवते, (हे) मरुतः ! वः तत् शवः क्रत्वा न आ-धृषे, एषां तत् दाना मह्ना, अद्रयः न, अ-धृष्टासः ।

अर्थ- ३१८ (एवयामरुत्) मरुतों के अनुसरण करनेवाले ऋषि की (गिरि-जाः) वाणी से निकले हुए (मतयः) विचार एवं काव्यमय श्लोक (वः) तुम्हारे (मरुत्-वते) मरुतों से युक्त (महे विष्णवे) बडे व्यापक देव के पास (प्र यन्तु) पहुँचें । तुम्हारे (प्र-यज्यवे) अत्यन्त पूजनीय, (सु-खादये) अच्छे कडे, वलय धारण करनेहारे, (तवसे) बलवान, (भन्दत्-इष्टये) अच्छी आकांक्षा करनेवाले, (धुनि-व्रताय) शत्रु को हटा देने का व्रत लेनेहारे (शवसे) वेगपूर्वक जानेवाले (शर्धाय) बल के लिए ही तुम्हारे विचार एवं काव्यप्रवाह (प्र यन्तु) प्रवर्तित हो चलें ।

३१९ (ये) जो अपनी निजी (महिना) महत्त्व से (प्र जाताः) प्रकट हुए, (ये च) और जो (नु) सचमुच (स्वयं विद्मना) अपनी निजी विद्या से (प्र) प्रसिद्ध हुए, उन वीरों का (एवयामरुत् ब्रुवत) एवयामरुत् ऋषि वर्णन करता है। हे (मरुतः !) वीर मरुतो ! (वः तत् शवः) तुम्हारा वह बल (क्रत्वा) कृति से युक्त होने के कारण (न आ-धृषे) पराभूत नहीं हो सकता है, (एषां तत्) ऐसे तुम वीरों का वह बल (दाना) दानसे (मह्ना) तथा महत्त्व से युक्त है । तुम तो (अद्रयः न) पर्वतों के समान (अ-धृष्टासः) किसी से परास्त न होनेवाले हो ।

भावार्थ- ३१८ ऋषि सर्वव्यापक ईश्वर के सम्बन्ध में विचार करते हैं, उसके स्तोत्रों का गायन करते हैं और उन की प्रतिभा-शक्ति परमात्मा की ओर मुड जाती है । उसी प्रकार, बल बढा कर शत्रु को मटियामेट करने के गुरुतर कार्य की ओर भी उनकी मनोवृत्ति झुक जाय ।

३१९ तुम्हारी विद्या एवं महत्ता असाधारण कोटिकी है। तुम्हारा बल इतना विशाल है कि, कोई तुम्हें पद-दलित तथा पराभूत या परास्त नहीं कर सकता है । तुम्हारा दान भी बहुत बडा है और जैसे पर्वत अपनी जगह स्थिर रहा करता है, वैसे ही तुम जिधर कहीं रहते हो, उधर भले ही दुश्मन भीषण हमले कर डाले, लेकिन तुम अपने स्थान पर अचल, अटल तथा अडिग रह कर उसे हटा देते हो।

टिप्पणी- [३१८] (१) भन्द् = सुदैवी होना, उत्तम होना, आनन्दित करना, सम्मान देना, पूजा करना । (२) इष्टिः = इच्छा- आकांक्षा, विनंति, इष्ट वस्तु, यज्ञ । (३) एवया = संरक्षण करना, मार्ग परसे जाना, निश्चित राह परसे चलना । एवया-मरुत् = मरुतों के पथ से जानेहारा, मरुतों का अनुगामी, ऋषि (सा० भा०) ।

[३१९] (१) क्रतु = यज्ञ, बुद्धि, स्थानापन, शक्ति, निश्चय, आयोजना, इच्छा । (२) शवस् = बल, शत्रु का नाश करने में समर्थ बल । (३) अधृष्ट = अकम्पित ।

(३२०) प्र । ये । दिवः । बृहतः । शृण्विरे । गिरा । सुऽशुक्वानः । सुऽभ्वः । एवयामरुत् । न । येषाम् । इरी । सधऽस्थे । ईष्टे । आ । अग्नयः । न । स्वऽविद्युतः । प्र । स्पन्द्रासः । धुनीनाम् ॥३॥

(३२१) सः । चक्रमे । महतः । निः । उरुऽक्रमः । समानस्मात् । सदसः । एवयामरुत् । यदा । अयुक्त । त्मना । स्वात् । अधि । स्नुऽभिः । विऽस्पर्धसः । विऽमहसः । जिगाति । शेऽवृधः । नृऽभिः ॥४॥

अन्वयः— ३२० सु-शुक्वानः सु-भ्वः ये बृहतः दिवः प्र शृण्विरे, एवयामरुत् गिरा, येषां सध-स्थे इरी न आ ईष्टे, अग्नयः न, स्व-विद्युतः, धुनीनां प्र स्पन्द्रासः।

३२१ यदा एवयामरुत् स्नुभिः नृभिः त्मना स्वात् अधि अयुक्त, (तदा) उरु-क्रमः सः समानस्मात् महतः सदसः निः चक्रमे, वि-महसः शे-वृधः वि-स्पर्धसः जिगाति।

अर्थ- ३२० (सु-शुक्वानः) अत्यन्त तेजस्वी तथा (सु-भ्वः) उत्तम ढंग से रहनेहारे (ये) जो वीर (बृहतः) विशाल (दिवः) अन्तरिक्ष में से जाते समय जनता की की हुई स्तुतियाँ (प्र शृण्विरे) सुनते हैं, उनकी ही (एवयामरुत् गिरा) एवयामरुत् ऋषि अपनी वाणीद्वारा स्तुति करता है। (येषां सध-स्थे) जिनके प्रदेश में उनके (इरी) प्रेरक की हैसियत से उनपर (न आ ईष्टे) कोई भी प्रभुत्व नहीं प्रस्थापित करता है; वे (अग्नयः न) अग्नि के तुल्य (स्व-विद्युतः) स्वयंप्रकाशी वीर (धुनीनां) गर्जना करनेहारे शत्रुओं को भी (प्र स्पन्द्रासः) अत्यन्त विकम्पित कर डालनेवाले हैं।

३२१ (यदा एवयामरुत्) जब एवयामरुत् ऋषि अपने (स्नुभिः नृभिः) वेगवान लोगों के साथ (त्मना) स्वयं ही (स्वात्) अपने निवासस्थान के समीप (अधि अयुक्त) अश्व जोतकर तैयार हुआ, तब (उरु क्रमः सः) बडा भारी आक्रमण करनेहारा वह मरुतों का संघ (समानस्मात्) सब के लिए समान ऐसे (सदसः) अपने निवासस्थान से (निः चक्रमे) बाहर निकल पडा और (वि-महसः) विलक्षण तेजस्वी एवं (शे-वृधः) सुख बढानेवाले वे वीर (वि-स्पर्धसः) विना किसी स्पर्धा से तुरन्त उधर (जिगाति) आ पहुँचे।

भावार्थ- ३२० ये वीर तेजस्वी तथा अच्छा आचरण रखनेवाले हैं। ये स्वयं-शासित हैं, इन पर अन्य किसी की प्रभुता नहीं प्रस्थापित है। ये स्वयंप्रकाशी होते हुए गरजनेवाले बडे बडे वीर दुश्मनों को भी भयभीत कर देते हैं, जिस से वे काँपने लगते हैं।

३२१ जब ऋषि इन वीरों का सुस्वागत करने के लिए तैयार हुआ, तब ये वीर उस अपने निवासस्थल से, जो सब के लिए समान था, निकलकर स्वयं ही उस के समीप जा पहुँचे। ये वीर बडे ही तेजस्वी एवं जनता का सुख बढानेवाले थे।

टिप्पणी- [३२०] (१) धुनि (ध्वन् शब्दे) = गरजनेवाला, दहाड मारनेवाला, (धूञ् कम्पने) हिलानेवाला। (२) सु-भू = बलवान, सर्वोत्कृष्ट, अच्छे ढंग से रहनेवाले। (३) शुक्वन् = (शुच् = प्रकाशना) = प्रकाशमान, तेजस्वी। 'येषां इरी न ईष्टे' = जिन का दूसरा कोई भी प्रेरक नहीं होता है, अर्थात् जो स्वयं-शासक हैं। (मंत्र ६८, २९२, ३९८, देखिए।)

[३२१] (१) समानं सदः = सब के लिए समान रूप से खुला हुआ निवासस्थान, सैनिकों के बैरक (Barracks), (मंत्र ११७, ३४५, ४४७ देखिए।) (२) वि-स्पर्धस् = विशेष स्पर्धा करनेहारे, स्पर्धारहित। (३) शे-वृधः = (शं=सुख, शस्त्र) = सुख में बढे हुए, शस्त्रों में बढे हुए- निष्णात, पारंगत। (शेव = सुख, संपत्ति, ऊँचाई+वृधः) सुख-संपदा बढानेहारे।

(३२२) स्वनः । न । वः । अमऽवान् । रेजयत् । वृषा । त्वेषः । ययिः । तविषः । एवयामरुत् । येन । सहन्तः । ऋञ्जत । स्वऽरोचिषः । स्थाःऽरश्मानः । हिरण्ययाः । सुऽआयुधासः । इष्मिणः ॥५॥

(३२३) अपारः । वः । महिमा । वृद्धऽशवसः । त्वेषम् । शवः । अवतु । एवयामरुत् । स्थातारः । हि । प्रऽसितौ । संऽदृशि । स्थन । ते । नः । उरुष्यत । निदः । शुशुक्वांसः । न । अग्नयः ॥६॥

अन्वयः— ३२२ वः अम-वान् वृषा त्वेषः ययिः तविषः स्वनः एवयामरुत् न रेजयत्, येन सहन्तः स्व-रोचिषः स्थाः-रश्मानः हिरण्ययाः सु-आयुधासः इष्मिणः ऋञ्जत ।

३२३ (हे) वृद्ध-शवसः! वः महिमा अ-पारः, त्वेषं शवः एवयामरुत् अवतु, प्रसितौ हि संदृशि स्थातारः स्थन, अग्नयः न, शुशुक्वांसः ते नः निदः उरुष्यत ।

अर्थ- ३२२ (वः अम-वान्) तुम्हारा बलवान (वृषा) समर्थ, (त्वेषः) तेजस्वी, (ययिः) वेग से जानेहारा एवं (तविषः स्वनः) प्रभावशाली शब्द (एवयामरुत् न रेजयत्) एवयामरुत् ऋषि को कंपित या भयभीत न करे। (येन) जिससे (सहन्तः) शत्रुओंका प्रतिकार करनेहारे (स्व-रोचिषः) अपने तेजसे युक्त, (स्थाः-रश्मानः) स्थायी तेज धारण करनेहारे, (हिरण्ययाः) सुवर्णालंकार पहननेवाले, (सु-आयुधासः) अच्छे हथियार रखनेवाले तथा (इष्मिणः) अन्न का संग्रह समीप रखनेवाले तुम वीर प्रगति के लिए (ऋञ्जत) प्रयत्न करते हो।

३२३ हे (वृद्ध-शवसः!) प्रबल सामर्थ्यवान वीरो! (वः महिमा) तुम्हारा बडप्पन सचमुच (अ-पारः) असीम एवं अमर्याद है। तुम्हारा (त्वेषं शवः) तेजस्वी बल इस (एवयामरुत् अवतु) एवयामरुत् ऋषि का रक्षण करे। शत्रु का (प्रसितौ) आक्रमण होने पर भी (संदृशि) दृष्टिपथ में ही तुम (स्थातारः स्थन) स्थिर रहते हो। (अग्नयः न) अग्नितुल्य (शुशुक्वांसः) तेजस्वी (ते) ऐसे तुम (नः) हमें (निदः उरुष्यत) निन्दक से बचाओ।

भावार्थ- ३२२ तुम्हारी ध्वनि में सामर्थ्य है, पर यह ऋषि उस गम्भीर दहाड से भयभीत नहीं होता है, क्योंकि इस के साथ तुम अच्छे शस्त्र लेकर सब की उन्नति के लिए सचेष्ट रहा करते हो।

३२३ इन वीरों की महिमा असीम है और उन के सामर्थ्य से ऋषियों का रक्षण होता है। दुश्मनों की चढाई हो, तो वे समीप ही रहते हैं, इसलिए शीघ्र आकर जनताकी मदद करते हैं। हमारी इच्छा है कि, वे हमें निन्दकों से बचायें।

टिप्पणी- [३२२] (१) अमः = बल, जोश, भय, धाक, अनुयायी। (२) ऋञ्ज् = वेग से दौडना, घुसना, प्रयत्न करना, शोभा लाना। (३) सह् = सहन करना, धारण करना, पराभव करना, प्रतिकार करना।

[३२३] (१) प्रसिति = जाला, बंधन, हमला, शक्ति, सत्ता। (२) उरुष्यु = रक्षा करने की इच्छा करनेहारा। (उरुष्यति) प्रतिकार करना, रक्षा करना।

(३२४) ते । रुद्रासः । सुऽमखाः । अग्नयः । यथा । तुविऽद्युम्नाः । अवन्तु । एवयामरुत् । दीर्घम् । पृथु । पप्रथे । सद्म । पार्थिवम् । येषाम् । अज्मेषु । आ । महः । शर्धांसि । अद्भुतऽएनसाम् ॥७॥

(३२५) अद्वेषः । नः । मरुतः । गातुम् । आ । इतन । श्रोत । हवम् । जरितुः । एवयामरुत् । विष्णोः । महः । सऽमन्यवः । युयोतन । स्मत् । रथ्यः । न । दंसना । अप । द्वेषांसि । सनुतरिति ॥८॥

(३२६) गन्त । नः । यज्ञम् । यज्ञियाः । सुऽशमि । श्रोत । हवम् । अरक्षः । एवयामरुत् । ज्येष्ठासः । न । पर्वतासः । विऽओमनि । यूयम् । तस्य । प्रऽचेतसः । स्यात । दुःऽधर्तवः । निदः ॥९॥

अन्वयः— ३२४ सु-मखाः, अग्नयः यथा तुवि-द्युम्नाः, ते रुद्रासः एवयामरुत् अवन्तु, दीर्घं पृथु पार्थिवं सद्म पप्रथे, अद्भुत-एनसां येषां अज्मेषु महः शर्धांसि आ। ३२५ (हे) मरुतः! अ-द्वेषः गातुं नः आ इतन, जरितुः एवयामरुत् हवं श्रोत, (हे) स-मन्यवः! विष्णोः महः युयोतन, रथ्यः न स्मत्, दंसना सनुतः द्वेषांसि अप। ३२६ (हे) यज्ञियाः! सु-शमि नः यज्ञं गन्त, अ-रक्षः एवयामरुत् हवं श्रोत, वि-ओमनि, पर्वतासः न, ज्येष्ठासः, प्र-चेतसः यूयं तस्य निदः दुर्-धर्तवः स्यात।

अर्थ- ३२४ (सु-मखाः) उच्च कोटि के यज्ञ करनेहारे, (अग्नयः यथा) अग्नि के तुल्य (तुवि-द्युम्नाः) अति तेजस्वी (ते रुद्रासः) वे शत्रु को रुलानेवाले वीर (एवयामरुत् अवन्तु) एवयामरुत् ऋषि का संरक्षण करें। (दीर्घं) विस्तीर्ण तथा (पृथु) भव्य (पार्थिवं सद्म) भूमंडल पर का निवासस्थान उन्हीं के कारण (पप्रथे) विख्यात हो चुका है। (अद्भुत-एनसां) पापरहित ऐसे (येषां) जिन वीरों के (अज्मेषु) आक्रमणों के समय (महः शर्धांसि) बडे बडे बल उनके साथ (आ) आते हैं।

३२५ हे (मरुतः!) वीर मरुतो! (अ-द्वेषः) द्वेष न करनेहारे तुम वीरों के (गातुं) काव्य का गायन करने के समय तुम (नः आ इतन) हमारे समीप आओ। (जरितुः एवयामरुत्) स्तुति करनेवाले, एवयामरुत् ऋषि की यह प्रार्थना (श्रोत) सुन लो। हे (स-मन्यवः!) उत्साही वीरो! तुम (विष्णोः महः) व्यापक देव की शक्तियों से (युयोतन) एकरूप बनो। तुम (रथ्यः न) रथमें जोतनेयोग्य घोडे के समान (स्मत्) प्रशंसा के योग्य हो, इसलिए (दंसना) अपने पराक्रम से, कर्म से (सनुतः द्वेषांसि) गुप्त शत्रुओं को (अप) दूर हटाओ। ३२६ हे (यज्ञियाः!) पूज्य वीरो! (सु-शमि) अच्छे शान्त ढंगसे (नः यज्ञं) हमारे यज्ञकी ओर (गन्त) आओ। (अ-रक्षः) अराक्षित ऐसे (एवयामरुत्) एवयामरुत् ऋषि की (हवं) यह प्रार्थना (श्रोत) सुनो। (वि-ओमनि) विशेष रक्षण के कार्य में तुम (पर्वतासः न) पहाडों के तुल्य (ज्येष्ठासः) श्रेष्ठ हो। (प्र-चेतसः) उत्कृष्ट ढंग से विचार करनेहारे तुम (तस्य निदः) उस निन्दक के लिए (दुर्-धर्तवः) दुर्धर्ष-अजिंक्य (स्यात) बनो।

भावार्थ- ३२४ ये वीर अच्छे कर्म करनेहारे हैं। ये ऋषियोंका संरक्षण करते हैं। इन्हींके कारण पृथ्वीपर विद्यमान स्थान विख्यात हुआ है। ये पापरहित वीर जब शत्रु पर हमले करते हैं, तब इनकी अनेक शक्तियाँ व्यक्त हुआ करती हैं। ३२५ हम वीरोंके काव्यका गायन करते हैं, उसे वे आकर सुन लें। परमात्माकी शक्तिसे युक्त होकर अपने अपने अनवरत उद्यम से सभी शत्रुओं को दूर करें। ३२६ वीर यज्ञमें आ जाएँ और काव्यगायन सुन लें। रक्षा करते समय स्थिर रूप से प्रजाओं की रक्षा करें। विचारपूर्वक निन्दकों को हटाकर शत्रुसेना के लिए स्वयं अजिंक्य बनने की चेष्टा करें।

टिप्पणी [३२४] (१) मखः = पूज्य, चपल, दर्शनीय, आनन्दी। (२) अद्भुत = (न भूतं अभूतं) न हुआ। [३२५] (१) स्मत् = प्रशस्त, ठीक। (२) सनुतः = गुप्त, दूर, एक छोरपर। [३२६] (१) शम् = कल्याण,

बृहस्पतिपुत्र शंयुऋषि (तृणपाणि) (ऋ० ६।४८।११-१५;२०-२१)

(३२७) आ। सखायः। सबःऽदुघाम्। धेनुम्। अजध्वम्। उप। नव्यसा। वचः।
सृजध्वम्। अनपऽस्फुराम् ॥११॥

(३२८) या। शर्धाय। मारुताय। स्वऽभानवे। श्रवः। अमृत्यु। धुक्षत।
या। मृळीके। मरुताम्। तुराणाम्। या। सुम्नैः। एवऽयावरी ॥१२॥

(३२९) भरत्ऽवाजाय। अव। धुक्षत। द्विता।
धेनुम्। च। विश्वऽदोहसम्। इषम्। च। विश्वऽभोजसम् ॥१३॥

अन्वयः— ३२७ (हे) सखायः! नव्यसा वचः सबर्-दुघां धेनुं उप आ अजध्वं. अन्-अप-स्फुरां सृजध्वं।

३२८ या स्व-भानवे मारुताय शर्धाय अ-मृत्यु श्रवः धुक्षत. या तुराणां मरुतां मृळीके, या सुम्नैः एवया-वरी।

३२९ भरत्-वाजाय द्विता अव धुक्षत, विश्व-दोहसं च धेनुं विश्व-भोजसं इषं च।

अर्थ- ३२७ हे (सखायः!) मित्रो! (नव्यसा वचः) नया काव्यगायन सुनते हुए (सबर्-दुघां) विपुल दूध देनेहारी (धेनुं उप) गाय के निकट (आ अजध्वं) आओ और उस (अन्-अप-स्फुरां) स्थिर गौ को (सृजध्वं) बंधन में से छोड दो।

३२८ (या) जो (स्व-भानवे) स्वयंप्रकाशी (मारुताय शर्धाय) वीर मरुतों के बल के लिए दुग्धरूप (अ-मृत्यु) कभी नष्ट न होनेवाली (श्रवः) सम्पत्ति का (धुक्षत) उत्पादन करती है, (या) जो (तुराणां मरुतां) वेगवान वीर मरुतों को (मृळीके) आनन्द देने के लिए तत्पर दीख पडती है, (या) जो (सुम्नैः) अनेक सुखों के साथ (एवया-वरी) आकर इच्छा की पूर्ति करती है।

३२९ हे वीरो! (भरत्-वाजाय) ऋषि भरद्वाज को (द्विता) दो दान (अव धुक्षत) दे दो; एक तो (विश्व दोहसं धेनुं) सब के लिए दूध देनेहारी गाय और दूसरा (विश्व-भोजसं) सब के भरणपोषण के लिए पर्याप्त (इषं च) अन्न।

भावार्थ- ३२७ नये काव्य का गायन करते हुए सहर्ष गौ-शाला में जाकर यथेष्ट दूध देनेहारी तथा दुहते समय निश्चल खडी रहनेवाली गौ के समीप चलकर उसे पहले बंधन से उन्मुक्त करना चाहिए।

३२८ गौ अपने जीवनवर्धक दूध से वीरों को वृद्धिंगत करती है। वह उन्हें हर्ष देती है और कई प्रकार के सुखों को साथ लेकर उन के निकट जाकर इच्छाओं की पूर्ति करती है।

३२९ प्रचुर मात्रा में दूध देनेहारी गौ तथा यथेष्ट अन्न का सृजन करनेवाली भूमि दो वस्तुएँ समीप हों, तो जीवननिर्वाह की कठिन समस्या हल होती है और आजीविका की सुविधा हुआ करती है।

सुख, वैभव, आरोग्य, शांति। (२) अ-रक्षः = (नास्ति रक्षा यस्य) अरक्षित। (३) वि+ओमन् = (विशेष) संरक्षण, कृपा, दया। [३२७] (१) स्फुर् = हिलना। अनपस्फुर् = स्थिर तथा नचल रूपसे खडे रहना। अन्-अप-स्फुरा = दूध दुहते समय न हिलते हुए शांतता से खडी होनेवाली (गाय।) [३२८] (१) एवया = रक्षा करना, वेगपूर्वक जाना, इच्छापूर्ति करना। (२) अ-मृत्यु-श्रवः = मृत्यु को दूर हटानेवाला यश, तुरन्त निचोडा हुआ धारोष्ण दूध। [३२९] भरत्-वाज = एक ऋषि का नाम, (जो अन्न, बल एवं सम्पत्ति की समृद्धि करता हो।)

(३३०) तम् । वः । इन्द्रम् । न । सुऽक्रतुम् । वरुणम्ऽइव । मायिनम् ।
अर्यमणम् । न । मन्द्रम् । सृप्रऽभोजसम् । विष्णुम् । न । स्तुषे । आऽदिशे ॥१४॥
(३३१) त्वेषम् । शर्धः । न । मारुतम् । तुविऽस्वनि । अनर्वाणम् । पूषणम् । सम् । यथा । शता ।
सम् । सहस्रा । कारिषत् । चर्षणिऽभ्यः । आ । आविः । गूळ्हा । वसु । करत् ।
सुऽवेदा । नः । वसु । करत् ॥१५॥
(३३२) वामी । वामस्य । धूतयः । प्रऽनीतिः । अस्तु । सूनृता ।
देवस्य । वा । मरुतः । मर्त्यस्य । वा । ईजानस्य । प्रऽयज्यवः ॥२०॥

अन्वयः— ३३० इन्द्रं न सु-क्रतुं, वरुणंइव मायिनं, अर्यमणं न मन्द्रं, विष्णुं न सृप्र-भोजसं वः तं आ-दिशे स्तुषे । ३३१ न त्वेषं तुवि-स्वनि अन्-अर्वाणं पूषणं मारुतं शर्धः यथा चर्षणिभ्यः शता सं सहस्रा सं आ कारिषत्, गूळ्हा वसु आविः करत्, नः वसु सु-वेदा करत् । ३३२ (हे) धूतयः प्र-यज्यवः मरुतः ! देवस्य वा ईजानस्य मर्त्यस्य वा वामस्य प्र-नीतिः वामी सूनृता अस्तु ।

अर्थ— ३३० (इन्द्रं न) इन्द्रके समान (सु-क्रतुं) अच्छे कर्म करनेहारे, (वरुणंइव) वरुण की नाईं (मायिनं) कुशल कारीगर, (अर्यमणं न) अर्यमाके तुल्य (मन्द्रं) आनन्ददायक, (विष्णुं न) विष्णु के जैसे (सृप्र-भोजसं) पर्याप्त अन्न देनेवाले, पालनपोषण करनेहारे (वः तं) तुम्हारे उन वीरोंके संघकी, हमें (आ-दिशे) मार्ग दर्शाये, इसलिए (स्तुषे) सराहना करता हूँ ।

३३१ (न) अब (त्वेषं) तेजस्वी, (तुवि-स्वनि) महान् आवाज करनेहारे, (अन्-अर्वाणं) शत्रु-रहित तथा (पूषणं) पोषण करनेवाले (मारुतं शर्धः) उन वीर मरुतोंका सांघिक बल (यथा) जैसे (चर्षणीभ्यः) मानवों को (शता सं) सौ प्रकार के धन या (सहस्रा सं) हजारों ढंग के धन एकही समय (आ कारिषत्) समीप लाये और (गूळ्हा वसु) गुप्त धनको (आविः करत्) प्रकट करे, उसी प्रकार (नः) हमें (वसु) धन (सु-वेदा) सुगमतापूर्वक प्राप्त हो सके, ऐसा करे ।

३३२ हे (धूतयः) शत्रुसेनाको हिला देनेवाले तथा (प्र-यज्यवः) अत्यन्त पूजनीय (मरुतः!) वीर मरुतो! (देवस्य वा) देवकी या (ईजानस्य मर्त्यस्य वा) यज्ञ करनेवाले मानवकी (वामस्य प्र-नीतिः) धन पानेकी प्रणाली (वामी) प्रशंसनीय तथा (सूनृता) सत्यपूर्ण (अस्तु) हो जाए ।

भावार्थ— ३३० अच्छे कर्म करनेहारे, कुशल, आनन्दप्रद एवं पर्याप्त अन्नपानीय देनेवाले वीरों के काव्य का गायन हम प्रवर्तित करते हैं, क्योंकि उस के कारण सम्भव है कि, हमें उचित पथ का ज्ञान हो जाय । [इन मरुतों में इंद्र का पराक्रम, वरुण की कुशलता, अर्यमा का सुखदायित्व और विष्णु का प्रजापालकत्व समाया हुआ है ।] ३३१ अजात-शत्रु एवं महाबलवान वीर मरुत् अपने बल से सभी मानवोंको विभिन्न ढंग के धन दे चुके हैं और उसी प्रकार वह मुझे भी मिल सके, ऐसा वे करें । ३३२ मानव न्यायपूर्वक धन प्राप्त करें ।

टिप्पणी- [३३०] (१) भोजस् = खानपान, अन्न । (२) सृप्र-भोजस् = भरपेट अन्न देनेवाला । (सृप् = धीरेधीरे आना, सरकते हुए जाना, भुज् = रक्षा करना, उपभोग लेना, सत्ताप्रदर्शन करना) = शरण आये हुए लोगों की रक्षा करनेवाला, शत्रु पर सत्ता प्रस्थापित करनेवाला । (३) आ-दिश् = दर्शाना, पथप्रदर्शक होना, आज्ञा देना, लक्ष्यवेध करना । [३३१] (१) गूळ्हं वसु = भूमि में पड़ा हुआ धन, (खनिज संपत्ति ?), गुप्त धन । (२) आ+कृ (To bring near) समीप लाना, बटोरना, पूर्ण रूपसे बनाना । (३) अर्व् = (गतौ हिंसायां च) अर्वन् = गतिमान, घोडा, हिंसक दुश्मन । अनर्वा = अ-शत्रु, अजातशत्रु, जिस के समीप घोडा न हो । [मंत्र ६

(३३३) सद्यः । चित् । यस्य॑ । चर्कृ॑तिः । परि॑ । द्याम् । दे॒वः । न । एति॑ । सूर्यः॑ ।
त्वे॒षम् । शवः॑ । द॒धि॒रे॒ । नाम॑ । य॒ज्ञिय॑म् । म॒रुतः॑ । वृ॒त्र॒ऽहम् । शवः॑ । ज्येष्ठ॑म् ।
वृ॒त्र॒ऽहम् । शवः॑ ॥२१॥

बृहस्पतिपुत्र भरद्वाज ऋषि (ऋ० ६।६६।१-११)

(३३४) वपुः॑ । नु । तत् । चि॒कि॒तुषे॑ । चि॒त् । अ॒स्तु॒ । स॒मा॒नम् । नाम॑ । धे॒नु । पत्य॑मानम् ।
मर्ते॑षु । अ॒न्यत् । दो॒हसे॑ । पी॒पाय॑ । स॒कृत् । शु॒क्रम् । दु॒दु॒हे॒ । पृश्निः॑ । ऊधः॑ ॥१॥

(३३५) ये । अ॒ग्नयः॑ । न । शोशु॑चन् । इ॒धा॒नाः । द्विः । यत् । त्रिः । म॒रुतः॑ । व॒वृ॒धन्त॑ ।
अ॒रे॒णवः॑ । हि॒र॒ण्यया॑सः । ए॒षा॒म् । सा॒कम् । नृ॒म्णैः । पौंस्ये॑भिः । च॒ । भू॒व॒न् ॥२॥

अन्वयः— ३३३ यस्य चर्कृतिः देवः सूर्यः न, सद्यः चित् द्यां परि एति, मरुतः त्वेषं शवः यज्ञियं नाम दधिरे, शवः वृत्र-हं वृत्र-हं शवः ज्येष्ठं। ३३४ तत् धेनु समानं नाम पत्यमानं वपुः नु चित् चिकितुषे अस्तु, अन्यत् मर्तेषु दोहसे पीपाय, शुक्रं सकृत् पृश्निः ऊधः दुदुहे। ३३५ ये मरुतः, इधानाः अग्नयः न, शोशुचन्, यत् द्विः त्रिः ववृधन्त, एषां अ-रेणवः हिरण्ययासः नृम्णैः पौंस्येभिः च साकं भूवन्।

अर्थ— ३३३ (यस्य) जिनका (चर्कृतिः) कर्म (देवः सूर्यः न) प्रकाशमान सूर्य के तुल्य (सद्यः चित्) तुरन्त (द्यां परि एति) द्युलोकमें चारों ओर फैलता है, उन (मरुतः) वीर मरुतोंने (त्वेषं शवः) तेजस्वी बल तथा (यज्ञियं नाम) पूजनीय यश (दधिरे) प्राप्त किया। उनका वह (शवः) बल (वृत्र-हं) वृत्रका वध करनेवाला था और सचमुच वह (वृत्र-हं शवः ज्येष्ठं) वृत्रविनाशक बल उच्च कोटिका था।

३३४ (तत्) वह जो (धेनु समानं नाम) धेनु एकही नाम है, (पत्यमानं) उसे धारण करनेवाला (वपुः) स्वरूप (नु चित्) सचमुचही (चिकितुषे) ज्ञानी पुरुषोंको परिचित (अस्तु) रहे। (अन्यत्) उनमेंसे एक रूप (मर्तेषु) मानवोंमें-मर्त्य लोकमें (दोहसे) दूध का दोहन करने के लिए गोरूप से (पीपाय) पुष्ट होता रहता है और (शुक्रं) दूसरा तेजस्वी रूप (सकृत्) एक वारही (पृश्निः) अन्तरिक्ष के मेघरूपी (ऊधः) दुग्धाशय से (दुदुहे) दोहन किया हुआ है।

३३५ (ये मरुतः) जो मरुत्-वीर (इधानाः) प्रज्वलित (अग्नयः न) अग्निके तुल्य (शोशुचन्) द्योतमान हुआ करते हैं और (यत्) जो (द्विः त्रिः) दुगुनी या तिगुनी मात्रामें वलिष्ठ होकर (ववृधन्त) बढते हैं (एषां) इनके रथ (अ-रेणवः) निर्मल (हिरण्य-यासः) स्वर्णरञ्जित हैं, और वे वीर (नृम्णैः) बुद्धि तथा (पौंस्येभिः च साकं) बलके साथ (भूवन्) प्रकट होते हैं।

भावार्थ– ३३३ जैसे सूर्य का प्रकाश द्युलोक में फैलता है, उसी प्रकार मरुतोंका यश तथा बल चतुर्दिक् प्रसृत होता है और घेरनेवाले शत्रु को कुचल देता है। ३३४ दो प्रसिद्ध गौएँ 'धेनु' नाम से विख्यात हैं। एक धेनु नामवाली गोमाता मानवोंके पोषणार्थ दूध देती है और दूसरी अन्तरिक्षमें रहनेवाली (मेघरूपी माता) वर्षमें एक बार जलकी यथेष्ट वर्षा करके सबको तृप्त करती है। ३३५ वीर सैनिक अपने बलको दुगुना, तिगुना बढाते हैं और अत्यधिक बडे हो जाते हैं। इन के रथ साफसुथरे तथा स्वर्णसे विभूषित हैं। अपनी बुद्धि तथा बलको व्यक्त करके ये वीर विख्यात बनते हैं।

टिप्पणी देखिए।] [३३२] (१) वाम = धन। (२) नीतिः = वर्ताव रखने के नियम। (३) प्र-नीतिः = मार्गदर्शकता, वर्ताव। (४) सूनृत = रमणीय, सत्यपूर्ण, मनःपूर्वक, सौम्य, विनयशील। [३३३] (१) वृत्रः = (वृणोति इति) ढकनेवाला, वेष्टनकर्ता, शत्रु, वृत्र राक्षस। (२) चर्कृतिः = कृति, कर्म, वारंवार की जानेवाली कृति, यश, कीर्ति। (३) यज्ञियं नाम=मन्त्र १ तथा १४९ टिप्पणी देखिए। [३३४] (१) वपुः = शरीर, सुन्दर, आकृति,

(३३६) रुद्रस्य॑। ये । मीळ्हुषः । सन्ति॑ । पुत्राः । यान् । चो इति॑ । नु । दाधृवि॑ः । भरध्यै॑ ।
विदे । हि । माता । महः । मही । सा । सा । इत् । पृश्निः । सुऽभ्वे॑ । गर्भ॑म् । आ । अधात् ॥३॥
(३३७) न । ये । ईषन्ते । जनुषः । अया । नु । अन्तरिति॑ । सन्तः । अवद्यानि॑ । पुनानाः ।
निः । यत् । दुहे । शुचयः । अनु । जोष॑म् । अनु । श्रिया । तन्व॑म् । उक्षमाणाः ॥४॥
(३३८) मक्षु । न । येषु । दोहसे॑ । चित् । अयाः । आ । नाम॑ । धृष्णु । मारुतम् । दधानाः ।
न । ये । स्तौनाः । अयासः । मह्ना । नु । चित् । सुऽदानुः । अव॑ । यासत् । उग्रान् ॥ ५ ॥

अन्वयः— ३३६ ये मीळ्हुषः रुद्रस्य पुत्राः सन्ति, दाधृविः यान् चो नु भरध्यै, महः हि माता मही विदे, सा पृश्निः सु-भ्वे इत् गर्भं आ अधात्। ३३७ अन्तः सन्तः अवद्यानि पुनानाः ये नु अया जनुषः न ईषन्ते, यत् श्रिया तन्वं अनु उक्षमाणाः शुचयः जोषं अनु निः दुहे। ३३८ येषु धृष्णु मारुतं नाम आ दधानाः न दोहसे चित् मक्षु अयाः, सु-दानुः न ये अयासः स्तौनाः उग्रान् नु चित् मह्ना अव यासत्।

अर्थ— ३३६ (ये) जो वीर (मीळहुषः रुद्रस्य) स्नेहयुक्त रुद्रके (पुत्राः सन्ति) सुपुत्र हैं; (दाधृविः) सबका धारण करनेवाली पृथ्वी (यान् चो नु) जिनके सचमुचही (भरध्यै) पालनपोषणके लिए है और जो (महः हि) महान वीरोंकी (माता) माता होनेके कारण (मही) बडी (विदे) समझी जाती है, (सा पृश्निः वह मातृभूमि (सु-भ्वे इत्) जनताका कल्याण हो, इसीलिये (गर्भं आ अधात्) गर्भ धारण कर चुकी है। ३३७ (अन्तः सन्तः) अन्दर रहकर (अवद्यानि) दोषोंको, पापोंको (पुनानाः) पवित्र करते हुये (ये नु) जो वीर सचमुचही (अया) अपनी गतिसे (जनुषः) जनतासे (न ईषन्ते) दूर नहीं जाते हैं, तथा (यत्) जो (श्रिया) अपनी आभासे (तन्वं) शरीरको (अनु) अनुकूलतासे (उक्षमाणाः) बलवान करते हैं वे (शुचयः) पवित्र वीर (जोषं अनु) इच्छाके अनुकूल दान (निः दुहे) देते रहते हैं। ३३८ (येषु) जिनमें वीर (धृष्णु) शत्रुसेनाका धर्षण करनेहारा (मारुतं नाम) मरुतोंका नाम (आ दधानाः) धारण करते हैं और जो (दोहसे चित्) जनताके पोषणके लिए (मक्षु) तुरन्त (अयाः) अग्रगामी बनते हैं वे (सु-दानुः) अच्छे दानी वीर (न) अभी (ये) जो (अयासः) भटकनेवाले (स्तौनाः) चोर हैं उन्हें (उग्रान् नु चित्) भीषण डाकुओंको भी (अव यासत्) परास्त कर देते हैं।

भावार्थ— ३३६ ये वीर सैनिक वीरभद्रके सुपुत्र हैं। सारी पृथ्वी इनका पोषण करती है। यही कारण है कि पृथ्वीका बडप्पन चहुँओर विख्यात है। लोककल्याणके लिए पृथ्वी धान्यरूपी गर्भका धारण करती है। ३३७ ये वीर समाजमेंही रहते हैं और दोषोंको दूर हटाकर पवित्रतापूर्ण वातावरण फैला देते हैं। वे कभी जनताका परित्याग करके दूर नहीं जाते हैं। और अपना तेज बढाकर सबको अनुकूलतापूर्वक दान देते रहते हैं। ३३८ जिन्होंने शूरका नाम धारण किया है और जो जनताके पुष्ट्यर्थ प्रयत्नशील बने रहते हैं वे प्रबल डाकुओंको भी दूर हटाते हैं।

रूप। (२) अन्यत्= दूसरा, बदला हुआ, अलग, अनूठा। (३) चिकित्वस्= जाननेवाला, परिचित, अनुभविक, ज्ञानी। [३३५] (१) रेणुः = धूलि, मल; अ-रेणवः = निर्मल (निष्पाप)। [३३६] (१) मीळ्हुष् = (मीढ्वस्) स्नेहयुक्त, उदार, प्रभावी, ऐश्वर्यसंपन्न, सिंचन करनेहारा। (२) दाधृविः =(धृ धारणे) सदैव धारण करनेहारी (पृथ्वी)। (३) भरधिः = (भृ धारणपोषणयोः) पालनपोषण। [महः माता मही] = महान् पुरुषोंकी माता है, क्या इसीलिये पृथ्वीको 'मही' नाम दिया गया है। [३३७] (१) अया = गति। (२) ईष् = उड जाना, देना, देखना, चढाई करना, वध करना, चुपकेसे चले जाना, सटक जाना। (३) जनुस् = उत्पत्ति, प्राणी, जीव, जन्मभूमि। (४) जोष = समाधान, सुख, आनन्द, उपभोग। (५) [अन्तः सन्तः अवद्यानि पुनानाः]= शरीरके

(३३९) ते । इत् । उग्राः । शवसा । धृष्णुऽसेनाः । उभे इति । युजन्त । रोदसी इति ।
सुमेके इति सुऽमेके ।
अध । स्म । एषु । रोदसी । स्वऽशोचिः ।
आ । अमवत्ऽसु । तस्थौ । न । रोकः ॥६॥

(३४०) अनेनः । वः । मरुतः । यामः । अस्तु । अनश्वः । चित् । यम् । अजति । अरथीः ।
अनवसः । अनभीशुः । रजःऽतूः ।
वि । रोदसी इति । पथ्याः । याति । साधन् ॥७॥

अन्वयः— ३३९ ते शवसा उग्राः धृष्णु-सेनाः सुमेके उभे रोदसी युजन्त इत्, अध स्म एषु अम-वत्सु रोदसी स्व-शोचिः, रोकः न आ तस्थौ ।

३४० (हे) मरुतः ! वः यामः अन्-एनः अस्तु, अन्-अश्वः अ-रथीः चित् यं अजति, अन्-अवसः अन्-अभीशुः रजस्-तूः साधन् रोदसी पथ्याः वि याति ।

अर्थ— ३३९ (ते) वे (शवसा) अपने बलसे (उग्राः) उग्र प्रतीत होनेवाले, और (धृष्णु-सेनाः) साहसी सेनासे युक्त वीर (सुमेके) सुहानेवाले (उभे रोदसी) भूलोक एवं द्युलोकमें (युजन्त इत्) सुसज्ज बने रहते हैं । (अध स्म) और (अम-वत्सु) बलवान (एषु) इन वीरोंके तैयार रहते समय (रोदसी) आकाश तथा पृथ्वी (स्व-शोचिः) अपने तेजसे युक्त होते हैं और पश्चात् (रोकः) उन्हें किसी रुकावटसे (न आ तस्थौ) मुठभेड नहीं करनी पडती है !

३४० हे (मरुतः !) वीर मरुतो ! (वः यामः) तुम्हारा रथ (अन्-एनः) दोषरहित (अस्तु) रहे, उसे (अन्-अश्वः) घोडे न जोते हों, तोभी (अ-रथीः) रथपर न बैठनेवाला भी (यं अजति) जिसे चलाता है । (अन् अवसः) जिसमें रक्षाका साधन नहीं तथा (अन्-अभीशुः) लगाम नहीं और (रजस्-तूः) धूल उडानेवाला हो तथापि वह (साधन्) इच्छापूर्ति करता हुआ (रोदसी) आकाश एवं पृथ्वी परके (पथ्याः) मार्गोंसे (वि याति) विविध प्रकारोंसे जाता है ।

भावार्थ— ३३९ ये वीर तथा इनकी साहसपूर्ण सेना सदैव तैयार रहती है, अतः इनकी राहमें कोई रुकावट खडी नहीं रहती है । इसी कारणसे बिना किसी कठिनाई या विघ्नके ये अपना कर्तव्य पूरा करते हैं ।

३४० मरुतोंके रथमें दोष नहीं है । उसमें घोडे नहीं जोते हैं । जो मनुष्य रथ चलानेमें अनभ्यस्त है, वह भी उसे चला सकता है । युद्धके समय उपयोग दे सके, ऐसा कोई रक्षाका साधन उसपर नहीं है और खींचनेके लिए लगाम भी नहीं है । यह रथ जब चलने लगता है, तब धूल या गर्द उडाता हुआ भूमिपरसे जाता है और उसी प्रकार अन्तरिक्षमेंसे भी जाता है ।

अन्दर रहकर शारीरिक दोष दूर हटाकर उसे पवित्र करनेहारे (अध्यात्मपक्षमें मरुत्-प्राण) । [३३८] (१) धृष्णु नाम = ऐसा नाम कि जिससे शत्रुके दिलमें भय उत्पन्न हो । (२) स्तेन = डाकू, चोर, उचक्का । (३) यस् = प्रयत्न करना । अव+यस् = दूर करना, हटाना । [३३९] (१) रोकः = तेजस्विता, दीप्ति । [३४०] (१) अवस = अन्न, संबल, संरक्षण, धन, गति, यश, समाधान, इच्छा, आकांक्षा । (२) रजस्-तूः = अन्तरिक्षमेंसे त्वरापूर्वक वेगसे जानेवाला । (३) रोदसी पथ्याः याति = अन्तरिक्षमेंसे रथ जाता है । (देखो मंत्र ६२;८०) ।

(३४१) न । अस्य । वर्ता । न । तरुता । नु । अस्ति ।
मरुतः । यम् । अवथ । वाजऽसातौ ।
तोके । वा । गोषु । तनये । यम् । अप्ऽसु ।
सः । व्रजं । दर्ता । पार्ये । अध । द्योः ॥८॥

(३४२) प्र । चित्रम् । अर्कम् । गृणते । तुराय । मारुताय । स्वऽतवसे । भरध्वम् ।
ये । सहांसि । सहसा । सहन्ते । रेजते । अग्ने । पृथिवी । मखेभ्यः ॥९॥

अन्वयः- ३४१ मरुतः ! वाज-सातौ यं अवथ अस्य वर्ता न, तरुता नु न अस्ति, अध तोके तनये गोषु अप्सु वा यं सः पार्ये द्योः व्रजं दर्ता ।

३४२ (हे) अग्ने ! ये सहसा सहांसि सहन्ते, मखेभ्यः पृथिवी रेजते, गृणते तुराय स्व-तवसे मारुताय चित्रं अर्कं प्र भरध्वं ।

अर्थ— ३४१ हे (मरुतः !) वीर मरुतो ! (वाज-सातौ) संग्राममें (यं अवथ) जिसकी रक्षा तुम करते हो, (अस्य) उसका (वर्ता न) घेरनेवाला कोई नहीं है, या उसका (तरुता) विनाशक भी कोई (नु न अस्ति) नहीं रहता है। (अध) उसी प्रकार (तोके) पुत्रोंमें, (तनये) पौत्रोंमें, (गोषु) गौओंमें या (अप्सु) जलमें रहनेवाले (यं) जिस मानवका संरक्षण तुम करते हो, (सः) वह (पार्ये) युद्धमें (द्योः) तेजस्वी द्युलोककी (व्रजं) गोशालाका भी (दर्ता) विदारण करता है, अपने अधीन करता है।

३४२ हे (अग्ने!) अग्ने ! तथा अग्निके अनुयायी लोगों ! (ये) जो अपने (सहसा) बलसे (सहांसि) शत्रुओंके आक्रमणों को (सहन्ते) बरदाश्त करते हैं, उन (मखेभ्यः) बडे वीरोंके वेगसे (पृथिवी रेजते) भूमितक दहल उठती है; उन (गृणते) स्तोत्रपाठ करनेहारे, (तुराय) शीघ्र जानेवाले एवं (स्व-तवसे) अपने निजी बलसे युक्त (मारुताय) वीर मरुतों के संघ के लिए (चित्रं) आश्चर्य-कारक, (अर्कं) पूजनीय तथा प्रशंसनीय अन्न (प्र भरध्वं) पर्याप्त मात्रामें दे दो।

भावार्थ— ३४१ ये वीर जिसके संरक्षणका बीडा उठाते हैं, वह कभी पराभूत या विनष्ट नहीं होता है। पुत्रपौत्रों, पशुओं या जलप्रवाहोंके मध्य रहनेवाले जिन अनुयायियोंका संरक्षण ये वीर करने लगते हैं वे स्वर्गके तमाम शत्रुओंका विध्वंस कर सकते हैं, (ऐसी दशामें वे भूमंडलपर विचरनेवाले शत्रुओंकी धज्जियाँ उडानेकी क्षमता रखें, तो कोई आश्चर्यकी बात नहीं)।

३४२ इन वीरोंके आक्रमण के समय पृथ्वी भी विकंपित हो उठती है। ऐसे इन वीरोंके संघ को सभी तरह का अन्न दे दो और इन्हें संतुष्ट रखो।

टिप्पणी— [३४१] (१) वर्तृ=(वृणोतेः) आवरक, घेरनेवाला, वेष्टनकर्ता। (२) वाजः= लडाई, शब्द, अन्न, जल, यज्ञ, बल। वाज-सातिः= अन्न पानेके लिए की हुई चढाऊपरी। (३) सातिः= देना, स्वीकारना, देन, मदद, विनाश, सम्पत्ति। (४) तरुतृ= जीतनेवाला, आक्रामक, पार ले चलनेवाला। (५) व्रजः= गोष्ठ, गौशाला; (६) द्योः व्रजः = स्वर्गकी गोशाला। [३४२] (१) मखः= (मख् गतौ= जाना, हिलना, हिलाना) वेगसे जानेहारा, हिलनेवाला, हिलानेवाला, पूज्य, रमणीय, आनंदी, चपल, महान्, बडा। (२) अर्कः= सूर्य, अग्नि, प्रकाशकिरण, तेज, पूज्य, अर्चनीय।

(३४३) त्विषिऽमन्तः । अध्वरस्यऽइव । दिद्युत् । तृषुऽच्यवसः । जुह्वः । न । अग्नेः ।
अर्चत्रयः । धुनयः । न । वीराः । भ्राजत्ऽजन्मानः । मरुतः । अधृष्टाः ॥ १० ॥

(३४४) तम् । वृधन्तम् । मारुतम् । भ्राजत्ऽऋष्टिम् । रुद्रस्य । सूनुम् । हवसा । आ । विवासे ।
दिवः । शर्धाय । शुचयः । मनीषाः । गिरयः । न । आपः । उग्राः । अस्पृध्रन् ॥ ११ ॥

मित्रावरुणपुत्र वसिष्ठऋषि (ऋ० ७।५६।१-२५)

(३४५) के । ईम् । विऽअक्ताः । नरः । सऽनीळाः ।
रुद्रस्य । मर्याः । अध । सुऽअश्वाः ॥ १ ॥

अन्वयः— ३४३ मरुतः अ-ध्वरस्यइव त्विषि-मन्तः तृषु-च्यवसः, अग्नेः जुह्वः न, दिद्युत् अर्चत्रयः, वीराः न धुनयः, भ्राजत्-जन्मानः अ-धृष्टाः । ३४४ तं वृधन्तं भ्राजत्-ऋष्टिं रुद्रस्य सूनुं मारुतं हवसा आ विवासे, दिवः शर्धाय उग्राः शुचयः मनीषाः, गिरयः आपः न, अस्पृध्रन् । ३४५ अध रुद्रस्य स-नीळाः मर्याः सु-अश्वाः व्यक्ताः नरः ईं के ?

अर्थ- ३४३ (मरुतः) वे वीर मरुत् (अ-ध्वरस्यइव) अहिंसायुक्त कर्मके समान (त्विषि-मन्तः) तेजस्वी, (तृषु-च्यवसः) वेगपूर्वक बाहर निकलनेवाले, (अग्नेः जुह्वः न) अग्नि की लपटों के तुल्य (दिद्युत्) प्रकाशमान, (अर्चत्रयः) पूजनीय, (वीराः न) वीरोंके समान (धुनयः) शत्रुओंके हिलानेवाले, (भ्राजत्-जन्मानः) तेजस्वी जीवन धारण करनेहारे हैं तथा (अ-धृष्टाः) इनका पराभव दूसरे कभी नहीं कर सकते हैं। ३४४ (तं वृधन्तं) उस बढनेवाले तथा (भ्राजत्-ऋष्टिं) तेजस्वी भाले धारण करनेहारे (रुद्रस्य सूनुं) वीरभद्रके सुपुत्र (मारुतं) वीर मरुतों के संघका मैं (आ विवासे) सभी तरहसे स्वागत करता हूँ। उसी प्रकार (दिवः शर्धाय) दिव्य बलकी प्राप्ति के लिए हमारी (उग्राः शुचयः) उग्र तथा पवित्र (मनीषाः) इच्छाएँ (गिरयः आपः न) पर्वत से बहनेवाली जलधाराओं के समान (अस्पृध्रन्) स्पर्धा करती हैं। ३४५ (अध) और (रुद्रस्य स-नीळाः मर्याः) महावीरके, एक घरमें रहनेहारे वीर मर्त्य (सु-अश्वाः व्यक्ताः नरः) उत्कृष्ट घोडे समीप रखनेवाले, सबको परिचित एवं नेता (ईं के) भला सचमुच कौन हैं ?

भावार्थ— ३४३ ये वीर तेजस्वी, वेगसे धावा करनेवाले, शत्रुदलको हटानेवाले हैं, अतएव इनका पराभव होना कदापि संभव नहीं।

३४४ मैं इन शस्त्रास्त्रोंसे सुसज्ज वीरोंका सुस्वागत करता हूँ। हम अपनी पवित्र आकांक्षाओंको उनके निकट बडी स्पर्धासे भेजते हैं, ताकि हमें दिव्य बल प्राप्त हो जाय और इस विषयमें सचेष्ट रहते हैं कि अधिकाधिक बल हमें प्राप्त हो जाय।

३४५ हे लोगो ! जो महावीरके सैनिक, जनताके हितकर्ता एवं अच्छे घोडे समीप रखनेवाले होनेके कारण सबको परिचित हैं, भला वे कौन हैं ?

टिप्पणी— [३४३] (१) तृषु= प्यासा, शीघ्र-वेगसे जानेवाला। (२) च्यु= बाहर निकलना, गिर पडना, टपकना। [३४५] (१) व्यक्त = साफ दिखाई देनेवाला, प्रकट हुआ, अलंकृत, स्वच्छ, सबको ज्ञात, सयाना। (२) मर्याः= (मर्त्येभ्यो हिताः। सायणभाष्य) मानवोंका हित करनेहारे। रुद्रस्य मर्याः= महावीरके वीर सैनिक (३) स-नीळाः= एक घरमें (Barrack में) रहनेवाले। (देखिये मंत्र ११७,३२१,४४७।)

(३४६) नकिः । हि । एषाम् । जनूंषि । वेद । ते । अङ्ग । विद्रे । मिथः । जनित्रम् ॥२॥
(३४७) अभि । स्वऽपूभिः । मिथः । वपन्त । वातऽस्वनसः । श्येनाः । अस्पृध्रन् ॥४॥
(३४८) एतानि । धीरः । निण्या । चिकेत । पृश्निः । यत् । ऊधः । मही । जभार ॥४॥
(३४९) सा । विट् । सुऽवीरा । मरुत्ऽभिः । अस्तु । सनात् । सहन्ती । पुष्यन्ती । नृम्णम् ॥५॥
(३५०) यामम् । येष्ठाः । शुभा । शोभिष्ठाः । श्रिया । सम्ऽमिश्लाः । ओजःऽभिः । उग्राः ॥ ६

अन्वयः— ३४६ एषां जनूंषि नकिः हि वेद, ते मिथः जनित्रं अङ्ग विद्रे ।
३४७ स्व-पूभिः मिथः अभि वपन्त, वात-स्वनसः श्येनाः अस्पृध्रन् ।
३४८ धी-रः एतानि निण्या चिकेत, यत् मही पृश्निः ऊधः जभार ।
३४९ सा विट् मरुद्भिः सु-वीरा, सनात् सहन्ती, नृम्णं पुष्यन्ती अस्तु ।
३५० यामं येष्ठाः, शुभा शोभिष्ठाः, श्रिया सं-मिश्लाः, ओजोभिः उग्राः ।

अर्थ— ३४६ (एषां) इन वीरोंके (जनूंषि) जन्म (नकिः हि वेद) कोईभी नहीं जानता है। (ते) वे वीर ही (मिथः) एक दूसरेका (जनित्रं) जन्मस्थान (अङ्ग) सचमुच (विद्रे) जानते हैं। ३४७ वे वीर जब (स्व-पूभिः) अपने पवित्रता करनेहारे साधनोंके साथ (मिथः अभि वपन्त) एकत्र जुड जाते हैं, तब (वात-स्वनसः) पवनके तुल्य वडा भारी शब्द करनेवाले वे वीर (श्येनाः) वाज पंछियोंकी नाईं वेगमें (अस्पृध्रन्) स्पर्धा करते हैं।

३४८ (धी-रः) बुद्धिमान पुरुष इन ही वीरों के (एतानि निण्या) ये गुप्त कार्यकलाप (चिकेत) जान सकता है। (यत्) जिन्हें (मही) महान (पृश्निः) गौने अपने (ऊधः) दुग्धाशयमें से दूध पिलाकर (जभार) पुष्ट किया है।

३४९ (सा विट्) वह प्रजा (मरुद्भिः) वीर मरुतों के सहायता से (सु-वीरा) अच्छे वीरों से युक्त होकर (सनात्) हमेशा ही (सहन्ती) शत्रुका पराभव करनहारी तथा (नृम्णं पुष्यन्ती) वलका संवर्धन करनेहारी (अस्तु) वने।

३५० वे वीर शत्रु पर (यामं) हमले करनेके (येष्ठाः) प्रयत्न करनेहारे, (शुभा शोभिष्ठाः) अलंकारों से सुहानेवाले, (श्रिया) कांति से (सं-मिश्लाः) जुड जानेवाले तथा (ओजाभिः उग्राः) शारीरिक सामर्थ्य से उग्र स्वरूपवाले प्रतीत होते हैं।

भावार्थ— ३४६ किसीकोभी इनका जन्मवृतान्त ज्ञात नहीं; शायद वेही अपना जन्म जानते हों। ३४७ वीर सैनिक अपनी शक्ति वडानेके कार्यमें चढाऊपरी करते हैं, होड लगाते हैं। ३४८ इन वीरोंके शूरतापूर्ण कार्य केवल बुद्धिमान पुरुषकोही विदित हैं। इन वीरोंका पोषण गौने अपने दुग्धके प्रदानसे किया है। [ये गौको अपनी माता समझनेवाले हैं।] ३४९ समूची प्रजा शूर एवं वीर वने, वह अपना वल वढाती रहे और शत्रुका पराभव करती रहे। ३५० ये वीर शत्रुपर हमले चढानेमें तत्पर, शोभायमान, तेजस्वी, एवं सामर्थ्यवान हैं।

टिप्पणी— [३४७] (१) वप्= बोना, फैलाना, फेंकना, उत्पन्न करना। अभि-वप् = फैलाना, बोना, ढकना। (२) पू= (पवने) पवित्र करना, स्वच्छ करना, उन्मुक्त करना, [३४८] (१) निण्य=ढका हुआ, गुप्त, आश्चर्यजनक। [३५०] (१) येष्ठ= (येष्= प्रयत्न करना, चेष्टा करना, कोशिश करना + स्थ= स्थिर रहना) कोशिश करते हुए अटल खड रहनेवाल। या= जाना, (या+इष्ठ) अत्यन्त वेगसे जानेवाले (अर्थात् शत्रुपर चढाई करते समय वेगसे जानेवाला।)

(३५१) उग्रम् । वः । ओजः । स्थिरा । शवांसि । अध । मरुत्ऽभिः । गणः । तुविष्मान् ॥ ७
(३५२) शुभ्रः । वः । शुष्मः । क्रुध्मी । मनांसि । धुनिः । मुनिःऽइव । शर्धस्य । धृष्णोः ॥ ८
(३५३) सनेमि । अस्मत् । युयोत । दिद्युम् । मा । वः । दुःऽमतिः । इह । प्रणक् । नः ॥ ९
(३५४) प्रिया । वः । नाम । हुवे । तुराणाम् ।
आ । यत् । तृपत् । मरुतः । वावशानाः ॥ १० ॥

अन्वयः— ३५१ वः ओजः उग्रं, शवांसि स्थिरा, अध मरुद्भिः गणः तुविष्मान् । ३५२ वः शुष्मः शुभ्रः, मनांसि क्रुध्मी, धृष्णोः शर्धस्य धुनिः मुनिःइव । ३५३ स-नेमि दिद्युं अस्मत् युयोत, वः दुर्-मतिः इह नः मा प्रणक् । ३५४ (हे) मरुतः ! तुराणां वः प्रिया नाम आ हुवे, यत् वावशानाः तृपत् ।

अर्थ— ३५१ (वः ओजः) तुम्हारा शारीरिक सामर्थ्य (उग्रं) उग्र स्वरूप का है और तुम्हारे (शवांसि स्थिरा) सभी बल स्थिर हैं । (अध) और (मरुद्भिः) वीर मरुतोंके कारणही (गणः) तुम्हारा संघ (तुविष्मान्) सामर्थ्यवान हो चुका है । ३५२ (वः शुष्मः) तुम्हारा बल (शुभ्रः) निष्कलंक है, तुम्हारे (मनांसि) मन शत्रुओंके बारेमें (क्रुध्मी) क्रोधसे भरे होते हैं और (धृष्णोः) शत्रुका धर्षण करने की तुम्हारे (शर्धस्य) सामर्थ्यका (धुनिः) वेग (मुनिःइव) मुनिकी तरह मननपूर्वक होनेवाला है । ३५३ वह तुम्हारा (स-नेमि) अत्यन्त तीक्ष्ण धाराका (दिद्युं) तेजस्वी हथियार (अस्मत् युयोत) हमसे दूर हटाओ । (वः) तुम्हारी शत्रुको दूर करनेहारी बुद्धि (इह) यहाँपर (नः) हमें (मा प्रणक्) विनष्ट न करे । ३५४ हे (मरुतः !) वीर मरुतो ! (तुराणां वः) त्वरित कार्य करनेवाले तुम्हारे (प्रिया नाम) प्यारे नामसे तुम्हें मैं (आ हुवे) बुलाता हूँ । (यत्) जिसकीही (वावशानाः) इच्छा करनेहारे तुम (तृपत्) तृप्त हो ।

भावार्थ— ३५१ इन वीरोंकी शक्ति कभी घटती नहीं, इतनाही नहीं अपितु वह हमेशा बढतीही है ।

३५२ वीरोंका बल निष्कलंक है अतः वह, सबका कल्याण करनेके लिए जो कार्य करना है, उसमें उपयुक्त ठहरेगा । जो शत्रु है उसपरही क्रोध करना उचित है और विचारशील मनुष्यके तुल्य, आक्रमण का वेग निश्चित करते समय सावधानीसे काम करना चाहिए ।

३५३ वीरोंका हथियार एवं उनकी वह शत्रुको कुचलनेकी आयोजना केवल शत्रुपरही प्रयुक्त होवे । स्वकीय जनतापर उसका प्रयोग न होने पाय । (जो शस्त्र शत्रुपर प्रयोग करनेके लिए हैं, उनका उपयोग अपनेही बांधवों तथा लोगोंपर नहीं करना चाहिए ।)

३५४ वीर सैनिक अपना कार्य शीघ्रतासे करते हैं और जब अपने यशका वर्णन सुन लेते हैं तब संतुष्ट हो जाते हैं ।

टिप्पणी— [३५१] (१) शवांसि स्थिरा=स्थायी बल अर्थात् शत्रु चाहे जैसे आक्रमण कर ले तोभी या चाहे जैसी आपत्तियां उठ खडी हों, तथापि इन बलोंमें न्यूनता न दीख पडे । (२) गणः तुविष्मान्= समूचा संघ बलवान, बुद्धिवान एवं सतत वर्धिष्णु रहनेवाला । (३) तुविस्= वृद्धि, बल, ज्ञान । [३५२] (१) मुनिः इव धृष्णोः शर्धस्य धुनिः= मनन करनेहारे मानवकी हलचलके तुल्य, शत्रुका विध्वंस करनेके लिए काममें आनेवाले सामर्थ्यका वेग बडी सतर्कतासे निर्धारित करना चाहिए । अविचारवश या उतावलेपनसे व्यर्थही धींगाधींगी नहीं मचानी चाहिए । (२) शुभ्र = (शुभ्-र) साफसुथरा, निर्मल, शुभ, निष्कलंक । (३) शुष्मः-ष्म = (सूर्य, अग्नि, वायु) शक्ति, बल, तेज । शुष्मन् = बल, शक्ति, तेज, अग्नि । [३५३] (१) सनेमि = (सन-एमि) बहुत प्राचीन (सायण) । स-नेमि= (नेमि =परिध, धारा, वर्तुलका छोर) अतिशय तीव्र धारासे युक्त ।

(३५५) सुऽआयुधासः । इष्मिणः । सुऽनिष्काः । उत । स्वयम् । तन्वः । शुम्भमानाः ॥११॥
(३५६) शुची । वः । हव्या । मरुतः । शुचीनाम् । शुचिम् । हिनोमि । अध्वरम् । शुचिऽभ्यः ।
ऋतेन । सत्यम् । ऋतऽसापः । आयन् । शुचिऽजन्मानः । शुचयः । पावकाः ॥१२॥
(३५७) अंसेषु । आ । मरुतः । खादयः । वः । वक्षःऽसु । रुक्माः । उपऽशिश्रियाणाः ।
वि । विऽद्युतः । न । वृष्टिऽभिः । रुचानाः । अनु । स्वधाम् । आयुधैः । यच्छमानाः ॥१३॥

अन्वयः— ३५५ सु-आयुधासः इष्मिणः सु-निष्काः उत स्वयं तन्वः शुम्भमानाः। ३५६ (हे) मरुतः! शुचीनां वः शुची हव्या, शुचिभ्यः शुचिं अध्वरं हिनोमि, ऋत-सापः शुचि-जन्मानः शुचयः पावकाः ऋतेन सत्यं आयन्। ३५७ (हे) मरुतः! वः अंसेषु खादयः आ, वक्षःसु रुक्माः उप-शिश्रियाणाः, विद्युतः न, रुचानाः वृष्टिभिः आयुधैः स्व-धां अनु यच्छमानाः।

अर्थ- ३५५ वे वीर (सु-आयुधासः) अच्छे हथियार समीप रखनेहारे, (इष्मिणः) वेगसे जानेहारे, (सु-निष्काः) सुन्दर मुहरोंके हार धारण करनेवाले (उत) और वे (स्वयं) अपनेही (तन्वः) शरीरोंको (शुम्भमानाः) सुशोभित करनेहारे हैं।

३५६ हे (मरुतः!) वीर मरुतो! (शुचीनां वः) पवित्र ऐसे तुम्हें (शुची हव्या) शुद्ध ही हविष्यान्न हम देते हैं, (शुचिभ्यः) विशुद्ध ऐसे तुम्हारे लिए (शुचिं अध्वरं) पवित्र यज्ञको ही (हिनोमि) मैं करता हूँ। (ऋत-सापः) सत्यकी उपासना करनेहारे, (शुचि-जन्मानः) विशुद्ध जन्मवाले, कुलीन (शुचयः) स्वयं पवित्र होते हुए दूसरोंको (पावकाः) पवित्र करनेवाले तुम (ऋतन) सत्यकी सहायतासे (सत्यं) अमरपनको (आयन्) पाते हो।

३५७ हे (मरुतः!) वीर मरुतो! (वः अंसेषु) तुम्हारे कंधोंपर (खादयः आ) आभूषण तथा (वक्षःसु रुक्माः) छातीपर स्वर्णमुद्राओंके हार (उप-शिश्रियाणाः) लटकते रहते हैं। (विद्युतः न) बिजलियोंके तुल्य (रुचानाः) चमकनेवाले तुम (वृष्टिभिः आयुधैः) वर्षा करनेवाले हथियारोंकी सहायतासे (स्व-धां) धारकशक्ति बढानेवाला पुष्टिकारक अन्न हमें (अनु यच्छमानाः) देते रहो।

भावार्थ— ३५५ वीर सैनिकोंके हथियार अच्छे हैं और वे वेगसे हमला करनेवाले एवं धनाढ्य हैं। वे वस्त्रों एवं आभूषणोंसे अपने शरीर को सुशोभित करते हैं। ३५६ वीर पुरुष स्वयमेव विशुद्ध हैं और उनका बर्ताव निर्दोष है। वे शुद्ध अन्नका सेवन करते हैं और सत्यका पालन करते हैं। वे स्वयं पवित्र जीवन बिताते हुए दूसरों को पवित्र करते हैं। सत्यकी राहपर चलते हुए वे अमृतत्वको प्राप्त कर लेते हैं। ३५७ वीर सैनिकोंके कंधोंपर तथा वक्षस्थलोंपर आभूषण दीख पडते हैं। दामिनीकी दमकके तुल्य उनके हथियार चमक उठते हैं। इन अपने हथियारोंसे वे शत्रुदलकी धज्जियाँ उडा देते हैं और हमें पौष्टिक एवं श्रेष्ठ कोटिके अन्न दिया करते हैं।

टिप्पणी— [३५५] (१) निष्क = सुवर्ण, सोनेकी मुद्रा, स्वर्णका अलंकार। [तन्वः शुम्भमानाः उत सु-निष्काः] = ये वीर शारीरिक दृष्ट्या सुन्दर हैं और अलंकारोंसे भी शोभा एवं चारुताको बढाते हैं। इष्मिन् = इष्ट अन्न तथा धनसे युक्त। [३५६] (१) ऋत = (Right) सरलता। (२) सत्य = (Sooth) सत्य। (३) सप् = (समवाये) प्राप्त होना। (४) ऋत-सापः = (ऋत = सत्य; सप् = सम्मान देना, जोडना, पूजा करना) सत्यकी उपासना करनेवाले (Observers of law)। [३५७] (१) खादि = आभूषण, वलय, कँगन। (२) वृष्टि = (वृष् = बलवान होना) बल, वर्षा (किसी भी वस्तुकी यथेष्ट समृद्धि या विपुलता)। (३) रुचानाः = (रुच् = प्रकाशित होना, सुन्दर दीख पडना, प्रिय होना) प्रकाशमान।

(३५८) प्र । बुध्न्या । वः । ईरते । महांसि । प्र । नामानि । प्रऽयज्यवः । तिरध्वम् ।
सहस्रियम् । दम्यम् । भागम् । एतम् । गृहऽमेधीयम् । मरुतः । जुषध्वम् ॥१४॥
(३५९) यदि । स्तुतस्य । मरुतः । अधिऽइथ । इत्था । विप्रस्य । वाजिनः । हवीमन् ।
मक्षु । रायः । सुऽवीर्यस्य । दात । नु । चित् । यम् । अन्यः । आऽदभत् । अरावा ॥१५॥
(३६०) अत्यासः । न । ये । मरुतः । सुऽअञ्चः । यक्षऽदृशः । न । शुभयन्त । मर्याः ।
ते । हर्म्येऽस्थाः । शिशवः । न । शुभ्राः । वत्सासः । न । प्रऽक्रीळिनः । पयःऽधाः ॥१६॥

अन्वयः— ३५८ (हे) प्र-यज्यवः मरुतः ! वः बुध्न्या महांसि प्र ईरते, नामानि प्र तिरध्वं, एतं सहस्रियं दम्यं गृह-मेधीयं भागं जुषध्वं। ३५९ (हे) मरुतः ! वाजिनः विप्रस्य हवीमन् स्तुतस्य यदि इत्था अधीथ, सु-वीर्यस्य रायः मक्षु दात, अन्यः अ-रावा नु चित् यं आदभत्। ३६० ये मरुतः अत्यासः न सु-अञ्चः, यक्ष-दृशः मर्याः न शुभयन्त, ते हर्म्येष्ठाः शिशवः न शुभ्राः, पयो-धाः वत्सासः न प्र-क्रीळिनः।

अर्थ- ३५८ हे (प्र-यज्यवः मरुतः !) पूज्य वीर मरुतो ! (वः) तुम्हारे (बुध्न्या महांसि) मौलिक आन्तरीय सामर्थ्य तथा बल (प्र ईरते) प्रकट होते हैं। तुम अपने (नामानि) यशोंको (प्र तिरध्वं) पर तटको ले चलो, बढा दो। (एतं) इस (सहस्रियं) सहस्रावधि गुणोंसे युक्त (दम्यं) घरके (गृह-मेधीयं) गृहयज्ञके (भागं) विभागका तुम (जुषध्वं) सेवन करो।

३५९ हे (मरुतः !) वीर मरुतो ! (वाजिनः) अन्नयुक्त (विप्रस्य) ज्ञानी पुरुषकी (हवीमन्) हविष्यान्न प्रदान करते समय की हुई (स्तुतस्य) स्तुतिको (यदि) अगर (इत्था) इस प्रकार तुम (अधीथ) जानते हो, तो (सु-वीर्यस्य) अच्छी वीरतासे युक्त (रायः) धन (मक्षु) तुरन्तही उसे (दात) दे दो। नहीं तो (अन्यः) दूसरा कोई (अ-रावा) शत्रु (नु चित्) सचमुचही (यं) उसे (आदभत्) विनष्ट कर डालेगा।

३६० (ये मरुतः) जो वीर मरुत् (अत्यासः न) घुडदौडके घोडोंके तुल्य (सु-अञ्चः) उत्तम ढंगसे शीघ्रतया जानेवाले हैं, (यक्ष-दृशः) यज्ञका दर्शन लेने आये हुए (मर्याः न) लोगोंके तुल्य जो (शुभयन्त) अपने आपको शोभायमान करते हैं, (ते) वे वीर (हर्म्य-स्थाः) राजप्रासादमें रहनेवाले (शिशवः न) बालकों के समान (शुभ्राः) सुहानेवाले हैं और (पयो-धाः वत्सासः न) दूधपर पले जानेवाले बालकों के समान (प्र-क्रीळिनः) अत्यधिक खिलाडीपनसे परिपूर्ण हैं।

भावार्थ- ३५८ वीरोंमें जो बल छिपे पडे हैं वे प्रकट हों और उनका यश दशदिशाओंमें प्रसृत हो। गृहयज्ञके समय उनके लिए दिये हुए भागका वे सेवन करें। ३५९ अन्नदान करते समय दानीकी प्रार्थनाको यदि ये वीर समझ लें, तो वे उसे तुरन्त शूरतासे पूर्ण धन दे डालें। अगर ऐसा न हुआ तो दूसरा कोई शत्रु उस सम्पत्तिको दबा बैठेगा।

३६० ये वीर सैनिक गतिमान, सुशोभित, सुन्दर तथा खिलाडी हैं।

टिप्पणी— [३५८] (१) प्र-तिर् = संकटोंके पार चले जाना, पैलतीर पहुँचना। (२) बुध्न्य = शरीर, आकाश, मौलिक, अपना, अंतर्यामी। (३) दमः-मं = घर, स्वनियंत्रण, घरेलू बनाना, बुरे कर्मसे मनको परावृत्त करानेवाली शक्ति। दम्य = घरपर किया हुआ। (४) गृह-मेध = घरमें किया हुआ यज्ञ, गृहस्थका कर्तव्य यज्ञ, गृहस्थ। गृह-मेधीय = गृहस्थका दिया हुआ, घरके यज्ञका। [३५९] (१) अरावा = (अ-रावा) दान न देनेवाला कृपण, दुष्टात्मा (दुष्ट लोग, शत्रु)। (२) दभ् (दम्भ्) = दुखाना (नाश करना) ठगाना, जाना, दबाना। [३६०] (१) यक्ष = (यक्ष् पूजायां) पूजा, यज्ञ, यक्षजातिका वीर।

(३६१) दुशस्यन्तः । नः । मुरुतः । मृळन्तु । वरिवस्यन्तः । रोदसी इति । सुमेके इति सुऽमेके ।
आरे । गोऽहा । नृऽहा । वधः । वः । अस्तु । सुम्नेभिः । अस्मे इति । वसवः । नमध्वम् ॥१७

(३६२) आ । वः । होता । जोहवीति । सत्तः । सत्राचीम् । रातिम् । मरुतः । गृणानः ।
यः । ईवतः । वृषणः । अस्ति । गोपाः । सः । अद्वयावी । हवते । वः । उक्थैः ॥१८

(३६३) इमे । तुरम् । मरुतः । रमयन्ति । इमे । सहः । सहसः । आ । नमन्ति ।
इमे । शंसम् । वनुष्यतः । नि । पान्ति । गुरु । द्वेषः । अररुषे । दधन्ति ॥१९॥

अन्वयः— ३६१ दशस्यन्तः सुमेके रोदसी वरिवस्यन्तः मरुतः नः मृळन्तु. (हे) वसवः ! गो-हा नृ-हा वः वधः आरे अस्तु, सुम्नेभिः अस्मे नमध्वं। ३६२ (हे) वृषणः मरुतः ! सत्तः सत्राचीं रातिं गृणानः होता वः आ जोहवीति, यः ईवतः गोपाः अस्ति सः अ-द्वयावी वः उक्थैः हवते। ३६३ इमे मरुतः तुरं रमयन्ति, इमे सहः सहसः आ नमन्ति, इमे शंसं वनुष्यतः नि पान्ति, अररुषे गुरु द्वेषः दधन्ति।

अर्थ— ३६१ शत्रुओंका (दशस्यन्तः) विनाश करनेहारे तथा (सुमेके रोदसी) सुस्थिर द्यावापृथ्वीको (वरिवस्यन्तः) आश्रय देनेहारे (मरुतः) वीर मरुत् (नः मृळन्तु) हमें सुखी बना दें। हे (वसवः !) बसानेवाले वीरो ! (गो-हा) गोवध करनेहारा (नृ-हा) तथा शत्रुदलमें विद्यमान वीरोंको मार गिरानेवाला (वः वधः) तुम्हारा आयुध हमसे (आरे अस्तु) दूर रहे; तुम (सुम्नेभिः) अनेक सुखोंके साथ (अस्मे नमध्वं) हमारी ओर आनेके लिए निकल पडो। ३६२ हे (वृषणः मरुतः !) बलवान वीर मरुतो ! (सत्तः) अपने स्थानपर बैठा हुआ तथा (सत्रा-अर्चीं) सभी जगह पहुँचनेवाले (रातिं) दानकी (गृणानः) स्तुति करनेहारा एवं (होता) बुलानेवाला याजक (वः आ जोहवीति) तुम्हें बुला रहा है, (यः) जो (ईवतः गोपाः) प्रगति करनेवालोंका संरक्षक (अस्ति) है, (सः) वह (अ-द्वयावी) अनन्यभावसे युक्त होकर (वः) तुम्हारी (उक्थैः) स्तोत्रोंसे (हवते) प्रार्थना करता है। ३६३ (इमे मरुतः) ये वीर मरुत् (तुरं) त्वराशील वीरोंको (रमयन्ति) आनन्द देते हैं। (इमे) ये अपनी (सहः) सहनशक्तिके सहारे (सहसः) विजयश्रीको (आ नमन्ति) झुकाते हैं, पाते हैं। (इमे) ये (शंसं) स्तोत्रका (वनुष्यतः) आदर करनेहारे भक्तोंकी (नि पान्ति) रक्षा करते हैं। (अररुषे) शत्रुओं पर अपना (गुरु द्वेषः) बडा भारी द्वेष (दधन्ति) करते हैं।

भावार्थ— ३६१ समूचे विश्वको सुख देनेहारे तथा शत्रुका नाश करनेवाले ये वीर हमें सुख दें। इनके जो हथियार शत्रुदलके संहारक हैं, वे हमपर न गिर पडें। उनके कारण हम मौतके मुँहमें न चले जायँ। हमें ये सभी प्रकारके सुख दे दें। ३६२ याजक इन वीरोंको यज्ञमें बुला लेता है और वह प्रगतिशील मानवोंका संरक्षण करता है। वह छल-कपटपूर्ण बर्ताव न करता हुआ वीरोंके काव्यका गायन करता है। ३६३ जो शीघ्र कर्म करते हैं, उन्हें वीर पुरुष आनन्दित करते हैं, अपने पौरुषसे विजयी बनते हैं, भक्तोंका संरक्षण करते हैं और शत्रुओं परही अपना सारा क्रोध डालते हैं।

टिप्पणी— [३६१] (१) सु-मेकः= सुस्थिर। (२) दशस्यन्तः= (दंश्= चबाचबाकर खाना, काट खाना, [नाश करना] विनाशक। (३) वरिवस्यन् = स्थान देनेहारा, विश्राम देनेवाला। वरिवस्= स्थान, विश्राम, सुख। [३६२] (१) सत्तः= (सद्= बैठना) स्थानापन्न हुआ, अपनी जगह बैठनेवाला। (२) रातिः= दान, उदार, मित्र, कृपा। (३) ईवत्= जानेवाला, (प्रगति करनेहारा) अत्यन्त बडा-भव्य। (४) अ-द्वयाविन्= द्विधा भाव जिसमें नहीं (अनन्यभावसे प्रेरित), अन्दर एक बाहर अन्यही कुछ यों आचरण न करनेवाला। (५) गो-पाः=गौका संरक्षक, संरक्षक। [३६३] (१) तुरः = वेगवान, शक्तिमान, अग्रगामी, प्रगतिशील, घायल, वेग। (२) सहस् = बल, वेग, तेज, जल, विजय। (३) नम् = झुकना, मुडना, (पाना) (४) वन् = (शब्दयाचनसंभक्तिषु) = सम्मान देना, पूजा

(३६४) इमे । रध्रम् । चित् । मरुतः । जुनन्ति ।
भृमिम् । चित् । यथा । वसवः । जुषन्त ।
अप । बाधध्वम् । वृषणः । तमांसि ।
धत्त । विश्वम् । तनयम् । तोकम् । अस्मे इति ॥२०॥

(३६५) मा । वः । दात्रात् । मरुतः । निः । अराम ।
मा । पश्चात् । दध्म । रथ्यः । विऽभागे ।
आ । नः । स्पार्हे । भजतन । वसव्ये ।
यत् । ईम् । सुऽजातम् । वृषणः । वः । अस्ति ॥२१॥

अन्वयः— ३६४ इमे वसवः मरुतः यथा रध्रं चित् जुनन्ति भृमिं चित् जुषन्त, (हे) वृषणः ! तमांसि अप बाधध्वं, अस्मे विश्वं तोकं तनयं धत्त।

३६५ (हे) रथ्यः मरुतः ! वः दात्रात् मा निः अराम, वि-भागे पश्चात् मा दध्म, (हे) वृषणः ! वः सु-जातं यत् ईं अस्ति स्पार्हे वसव्ये नः आ भजतन।

अर्थ- ३६४ (इमे) ये (वसवः) बसानेहारे (मरुतः) वीर मरुत् (यथा) जैसे (रध्रं चित्) समृद्धिशाली मानवके निकट (जुनन्ति) जाते हैं, उसी प्रकार (भृमिं चित्) भटकनेवाले भीखमँगेके समीप भी वे (जुषन्त) जाते रहते हैं; हे (वृषणः!) बलिष्ठ वीरो! (तमांसि अप बाधध्वं) अँधेरे को दूर हटा दो और (अस्मे) हमारे लिए (विश्वं तनयं तोकं) सभी पुत्रपौत्रों-संतानों-को (धत्त) दे दो।

३६५ हे (रथ्यः मरुतः!) रथपर बैठनेवाले वीर मरुतो! (वः) तुम्हारे (दात्रात्) दानके स्थानसे हम (मा निः अराम) बहुत दूर न रहें। (वि-भागे) धनका बँटवारा होते समय (पश्चात् मा दध्म) हमें सबके पीछे न रखो। हे (वृषणः!) बलिष्ठ वीरो! (वः) तुम्हारा (सु-जातं) उच्चकोटिका (यत् ईं) जो कुछ धन (अस्ति) है, उस (स्पार्हे वसव्ये) स्पृहणीय धनमें (नः) हमें (आ भजतन) सब प्रकारसे अंशभागी करो।

भावार्थ-- ३६४ वीर सैनिक जिस प्रकार धनाढ्योंका संरक्षण करते हैं, उसी प्रकार वे निर्धनोंकाभी संरक्षण करते हैं। वीरोंको उचित है कि वे जिधरभी चले जायँ उधर अँधियारी दूर करके सबको प्रकाशका मार्ग बतला दें। हमारे पुत्रपौत्रोंको सुरक्षित रख दें।

३६५ हमें धनका बँटवारा ठीक समयपर मिल जाय।

करना, उच्चार करना, ढूँढना, प्रिय होना। (५) अररुस् = जानेवाला, हिलनेवाला, शत्रु, शस्त्र (अ-प्रयच्छन्, सायनः।) रा = देना; ररुस् = देनेवाला; अ--ररुस् = न देनेहारा, जो दान न देता हो-- (कंजूस, कृपण।)

[३६४] (१) रध्र = (राध् संसिद्धौ) = धनिक, उदार, सुखी, दुःख देनेवाला, पूजा करनेहारा। (२) भृमि = (भ्रम् चलने = भटकना) झंझावात, शीघ्रता, इधर उधर घूमनेवाला (भीखमँगा)। (३) जुन् (गतौ) = जाना, हिलना।

[३६५] (१) दात्रं = काटनेका हथियार, दान, दानका स्थान। दा+त्रं = जिस दानसे त्राण-रक्षण होता हो, वह दान।

(३६६) सम् । यत् । हनन्त । मन्युऽभिः । जनासः ।
शूराः । यह्वीषु । ओषधीषु । विक्षु ।
अध । स्म । नः । मरुतः । रुद्रियासः । त्रातारः । भूत । पृतनासु । अर्यः ॥२२॥

(३६७) भूरि । चक्र । मरुतः । पित्र्याणि ।
उक्थानि । या । वः । शस्यन्ते । पुरा । चित् ।
मरुत्ऽभिः । उग्रः । पृतनासु । साळ्हा ।
मरुत्ऽभिः । इत् । सनिता । वाजम् । अर्वा ॥२३॥

अन्वयः- ३६६ (हे) रुद्रियासः अर्यः मरुतः ! यत् शूराः जनासः यह्वीषु ओषधीषु विक्षु मन्युभिः सं हनन्त अध पृतनासु नः त्रातारः भूत स्म ।

३६७ (हे) मरुतः ! पित्र्याणि भूरि उक्थानि चक्र, वः या पुरा चित् शस्यन्ते, उग्रः मरुद्भिः पृतनासु साळ्हा, मरुद्भिः इत् अर्वा वाजं सनिता ।

अर्थ- ३६६ हे (रुद्रियासः) महावीरके (अर्यः) पूज्य (मरुतः!) वीर मरुतो ! (यत्) जब तुम्हारे (शूराः जनासः) शूर लोग (यह्वीषु) नदियों में (ओषधीषु) अरण्य में-वृक्षकुंजमें (विक्षु) प्रजा में (मन्युभिः) उत्साह-पूर्वक शत्रुपर (सं हनन्त) मिलकर हमला करते हैं (अध) तब इन ऐसे (पृतनासु) युद्धों में (नः) हमारे (त्रातारः भूत स्म) संरक्षक बने रहो ।

३६७ हे (मरुतः!) वीर मरुतो ! तुम (पित्र्याणि) पितरों के संबंध में (भूरि) बहुतसे (उक्थानि) स्तोत्र (चक्र) कर चुके हो; (वः) तुम्हारे (या) इन स्तोत्रों की (पुरा चित्) पहलेसे (शस्यन्ते) प्रशंसा होती है । (उग्रः) उग्र स्वरूपवाला वीर (मरुद्भिः) मरुतोंकी सहायतासे (पृतनासु) युद्धों में शत्रुओं का (साळ्हा) पराभव करता है; (मरुद्भिः इत्) वीर मरुतोंकी प्रेरणासे (अर्वा) घोडा भी (वाजं) युद्धक्षेत्रके (सनिता) अपने कार्य पूर्ण करता है ।

भावार्थ— ३६६ वीर सैनिक जब उत्साहपूर्वक शत्रुपर हमले करते हैं, तब उनकी लडाइयाँ नदियोंमें, अरण्योंमें विद्यमान घने निकुंजोंमें तथा जनताके मध्य हुआ करती हैं । ऐसे युद्धोंमें वे हमारी रक्षा करें ।

३६७ वीर मरुत् कवि हैं । उनके काव्योंकी प्रशंसा सभी करते हैं और इनकी सहायतासे वीर सैनिक शत्रुओंको परास्त करते हैं तथा घोडे भी युद्धमें अपना कार्य ठीक प्रकारसे निभाते हैं ।

टिप्पणी— [३६६] (१) यह्व= बडा, शक्तिमान, चपल, चंचल । यह्वी=नदी, आकाश, पृथ्वी, प्रातःकाल का-सायंकालका दिनका-रात्रिका भाग । युद्ध तीन स्थलोंमें हुआ करते हैं । (१) यह्वीषु= नदियोंके स्थलमें, नदी लाँघते समय हमले होते हैं । (२) ओषधीषु=जंगलोंमें, सघन वृक्षनिकुञ्जोंमें छिपे ढंगसे बैठकर शत्रुपर चढाई की जाती हैं और (३) विक्षु= जनतामें, नगरोंमें बनी बस्तियों के मध्य, नगर कब्जेमें लेनेके लिए । इस भाँति तीन प्रकारके समरोंमें वे वीर हमें बचायें । (२) ओषधी= (दोषधी, निरुक्त) शरीरके दोष हटानेके लिए उपयुक्त औषधिः (ओष) तेज (धी) धारण करनेहारी वनस्पति, जंगल, कुंज, अरण्य । [३६७] (१) उक्थं=वाक्य, श्लोक, स्तोत्र, यज्ञ । (२) वाजं=अन्न, युद्ध, जल, बल । (३) साळ्हा= (सह्= पराभव करना, जीतना) पराभव करनेहारा, विजेता । (४) सन् = (संभक्तौ) विभाग करना, सेवन करना, पाना, प्रिय होना, सम्मान देना । मरुतोंके कवि होनेके सम्बन्धमें उल्लेख २२९; २९१; २९४; २०९; ३९३ मन्त्रोंमें देखिए ।

(३६८) अस्मे इति । वीरः । मरुतः । शुष्मी । अस्तु । जनानाम् । यः । असुरः । विऽधर्ता ।
अपः । येन । सुऽक्षितये । तरेम । अध । स्वम् । ओकः । अभि । वः । स्याम ॥२४॥
(३६९) तत् । नः । इन्द्रः । वरुणः । मित्रः । अग्निः । आपः । ओषधीः । वनिनः । जुषन्त ।
शर्मन् । स्याम । मरुताम् । उपऽस्थे । यूयम् । पात । स्वस्तिऽभिः । सदा । नः ॥२५॥

(ऋ० ७।५७।१-७)

(३७०) मध्वः । वः । नाम । मारुतम् । यजत्राः । प्र । यज्ञेषु । शवसा । मदन्ति ।
ये । रेजयन्ति । रोदसी इति । चित् । उर्वी इति । पिन्वन्ति । उत्सम् । यत् । अयासुः । उग्राः ॥१॥

अन्वयः—३६८ (हे) मरुतः ! यः असु-रः जनानां विधर्ता अस्मे वीरः शुष्मी अस्तु, येन सु-क्षितये अपः तरेम, अध वः स्वं ओकः अभि स्याम। ३६९ इन्द्रः मित्रः वरुणः अग्निः आपः ओषधीः वनिनः नः तत् जुषन्त, मरुतां उप-स्थे शर्मन् स्याम, यूयं स्वस्तिभिः सदा नः पात। ३७० (हे) यजत्राः! वः मारुतं नाम मध्वः यज्ञेषु शवसा प्र मदन्ति, यत् उग्राः अयासुः, ये उर्वी चित् रोदसी रेजयन्ति, उत्सं पिन्वन्ति।

अर्थ- ३६८ हे (मरुतः !) वीर मरुतो ! (यः) जो अपना (असु-रः) जीवन देकर (जनानां वि-धर्ता) लोगों का विशेष ढंगसे धारण करता है वह (अस्मे वीरः) हमारा वीर (शुष्मी अस्तु) बलिष्ठ रहे। (येन) जिनकी सहायतासे हम (सु-क्षितये) उत्तम निवास करने के लिए (अपः) समुद्रको भी (तरेम) तैरकर चले जाते हैं; (अध) और (वः) तुम्हारे मित्र बनकर हम (स्वं ओकः) अपने निजी घरमें (अभि स्याम) सुखपूर्वक निवास करते हैं।

३६९ (इन्द्रः) इन्द्र, (मित्रः) मित्र, (वरुणः) वरुण, (अग्निः) अग्नि, (आपः) जल, (ओषधीः) ओषधियाँ तथा (वनिनः) वनके पेड (नः तत्) हमारा वह स्तोत्र (जुषन्त) प्रीतिपूर्वक सेवन करते हैं। (मरुतां उप-स्थे) वीर मरुतों के निकटतम सहवास में हम (शर्मन् स्याम) सुखसे रहें। हे वीरो ! (यूयं) तुम (स्वस्तिभिः) कल्याणकारक उपायों से (सदा) हमेशा (नः पात) हमारी रक्षा करो।

३७० हे (यजत्राः !) पूज्य वीरो ! (वः मारुतं नाम) तुम वीर मरुतों का नाम सचमुचही (मध्वः) मिठासका द्योतक है। ये वीर (यज्ञेषु) यज्ञों में (शवसा) बलके कारण (प्र मदन्ति) अतीव हर्षित एवं संतुष्ट हो उठते हैं। (यत्) जब ये (उग्राः) उग्र वीर (अयासुः) शत्रुओंपर चढाई करने जाने लगते हैं तब (ये) वे (उर्वी चित्) बडी विस्तीर्ण (रोदसी) आकाश एवं पृथ्वी को भी (रेजयन्ति) विचलित, प्रकम्पित कर डालते हैं और (उत्सं पिन्वन्ति) जलप्रवाहको भी बहा देते हैं।

भावार्थ- ३६८ अपने जीवनका बलिदान करके समूची जनताका संरक्षण करनेहारा हमारा पुत्र बलवान वीर बने। हमारा निवास सुखमय हो, इसलिए हम बीचकी सभी कठिनाइयाँ दूर करेंगे और वीरोंके मित्र बनकर अपने स्थानमें सुखसे रहेंगे। ३६९ हमारे स्तोत्रका सेवन सभी देव कर लें। वीरोंके समीप हम सहर्ष जीवनयात्रा बितायें। वीर कल्याणवर्धक साधनों से हमारी रक्षा करें। ३७० यशके कारण हर्षित होनेवाले ये वीर यज्ञमें अपनी सामर्थ्यसे प्रसन्नचेता हो जाते हैं। जब वे वीर शत्रुओंपर आक्रमण कर बैठते हैं तब समूची पृथ्वी दहल उठती है और उस समय वे जलप्रवाहोंको भूमिपर प्रवर्तित कर देते हैं। इनके वेगपूर्ण तथा विद्युत्गति से चलाये हमलोंके फलस्वरूप संसारभरमें कँपकँपी पैदा हो जाती है और जलप्रवाह बहने लगते हैं।

टिप्पणी— [३६८] (१) अपः = जलप्रवाह, जल, कर्म, यज्ञ। (२) तॄ = तैर जाना, हावी बनना, जीतना, नाश करना, किसी के जालसे छट जाना। [३७०] (१) नाम = नाम, यश, कीर्ति।

(३७१) नि॒ऽचे॒तारः॑ । हि । म॒रु॒तः॒ । गृ॒णन्त॑म् । प्र॒ऽने॒तारः॑ । यज॑मानस्य । मन्म॑ ।
अ॒स्माक॑म् । अ॒द्य । वि॒दथे॑षु । ब॒र्हिः । आ । वी॒तये॑ । स॒द॒त॒ । पि॒प्रि॒या॒णाः ॥२॥
(३७२) न । ए॒ताव॑त् । अ॒न्ये । म॒रुतः॑ । यथा॑ । इ॒मे । भ्राज॑न्ते । रु॒क्मैः । आयु॑धैः । त॒नूभिः॑ ।
आ । रोद॑सी॒ इति॑ । वि॒श्व॒ऽपिशः॑ । पि॒शा॒नाः । स॒मा॒नम् । अ॒ञ्जि । अ॒ञ्ज॒ते॒ । शु॒भे । कम् ॥३॥
(३७३) ऋध॑क् । सा । वः॒ । म॒रु॒तः॒ । दि॒द्युत् । अ॒स्तु॒ । यत् । वः॒ । आगः॑ । पु॒रु॒षता॑ । करा॑म ।
मा । वः॒ । तस्या॑म् । अपि॑ । भू॒म॒ । य॒ज॒त्राः॒ । अ॒स्मे इति॑ । वः॒ । अ॒स्तु॒ । सु॒ऽम॒तिः । चनि॑ष्ठा ॥४॥

अन्वयः- ३७१ (हे) मरुतः ! गृणन्तं नि-चेतारः हि, यजमानस्य मन्म प्र-नेतारः पिप्रियाणाः अद्य अस्माकं विदथेषु वीतये बर्हिः आ सदत। ३७२ इमे मरुतः रुक्मैः आयुधैः तनूभिः यथा भ्राजन्ते, न एतावत् अन्ये, विश्व-पिशः रोदसी पिशानाः शुभे समानं अञ्जि कं आ अञ्जते। ३७३ (हे) यजत्राः मरुतः! यत् वः आगः पुरुषता कराम सा वः दिद्युत् ऋधक् अस्तु, वः तस्यां अपि मा भूम, अस्मे वः चनिष्ठा सु-मतिः अस्तु।

अर्थ- ३७१ हे (मरुतः!) वीर मरुतो! तुम (गृणन्तं) काव्यका सृजन करनेवालोंको (नि-चेतारः हि) इकट्ठे करते हो और (यजमानस्य) याजक के (मन्म) मननीय काव्यका (प्र-नेतारः) निर्माता भी हो। (पिप्रियाणाः) सदा हर्षित एवं प्रसन्न रहनेवाले तुम (अद्य) आज (अस्माकं विदथेषु) हमारे यज्ञमें (वीतये) हविष्यान्नका सेवन करनेके लिए इस (बर्हिः) कुशासनपर (आ सदत) आकर बैठो।

३७२ (इमे मरुतः) ये वीर मरुत् (रुक्मैः) स्वर्णमुद्राओंके हारोंसे (आयुधैः) हथियारोंसे तथा (तनूभिः) अपने शरीरोंसे भी (यथा भ्राजन्ते) जिस भाँति जगमगाते हैं (न एतावत् अन्ये) उस प्रकार दूसरे कोई नहीं प्रकाशमान हो उठते हैं। (विश्व-पिशः) सबको तेजस्वी बनानेहारे तथा (रोदसी) द्युलोक एवं भूलोकको भी (पिशानाः) सँवारते हुए वे वीर (शुभे) शोभाके लिए (समानं अञ्जि) सदृश वीरभूषण या गणवेश (कं आ अञ्जते) सुखपूर्वक पहनते हैं, प्रकाशमान होते हैं।

३७३ हे (यजत्राः मरुतः!) पूज्य वीर मरुतो! (यत्) यद्यपि हमसे (वः आगः) तुम्हारा अपराध (पुरुष-ता कराम) मानवताको भूलें करना, अपराध करना, स्वाभाविक होनेसे हुआ हो, तो भी (सा वः) वह तुम्हारा (दिद्युत्) चमकनेवाला खड्ग हमसे (ऋधक् अस्तु) दूर रहे; (वः) तुम्हारे (तस्यां) उस आयुधके समीप हम (अपि) तनिकभी (मा भूम) न रहें। (अस्मे) हमारे लिए अनुकूल (वः) तुम्हारी (चनिष्ठा) अन्न देनेकी (सु-मतिः अस्तु) अच्छी बुद्धि हो।

भावार्थ— ३७१ ये वीर काव्य बनानेवालोंको एकत्रित करनेवाले तथा स्वयंभी काव्यकी रचना करनेवाले हैं। अतः हमारे यज्ञमें वे आ जायँ और आसनपर बैठ हविष्यान्नका ग्रहण तथा सेवन कर लें। ३७२ ये वीर आभूषण एवं हाथियार धारण करके बडे ही अनूठे ढंगसे अपने आपको सँवारते हैं और दूसरे लोगोंकोभी सुशोभित करते हैं। ये सभी वीर समान अलंकार या गणवेश पहनते हैं। ३७३ हमसे भूलें, गलतियाँ होना स्वाभाविक है, क्योंकि हम मानव ही हैं। अतः अगर हमसे इन वीरोंका कोई अपराध हुआ हो, तोभी ये कृपया हमपर हथियार न चलायँ। हाँ, हमें यथेष्ट अन्न प्रदान करनेकी इनकी सद्बुद्धि हमेशा हमारी ओर मुड जाए।

टिप्पणी— [३७१] (१) नि+चि= ढूँढना, इकट्ठा करना, बटोरना। (२) मन्म= इच्छा, स्तोत्र, मनन करने योग्य काव्य। (३) प्र+नी=ले चलना, प्रवृत्त करना, आधार देकर चलाना। प्रणेता= निर्माण करनेहारा नेता, पथप्रदर्शक। [३७२] (१) अञ्ज्=स्वभावदर्शन करवाना, दर्शाना, सम्मान देना, अलंकृत करना, (मंत्र ७ देखिये)। अञ्जि- सैनिक

(३७४) कृते । चित् । अत्र । मरुतः । रणन्त । अनवद्यासः । शुचयः । पावकाः ।
प्र । नः । अवत । सुमतिऽभिः । यजत्राः ।
प्र । वाजेभिः । तिरत । पुष्यसे । नः ॥ ५ ॥

(३७५) उत । स्तुतासः । मरुतः । व्यन्तु । विश्वेभिः । नामऽभिः । नरः । हवींषि ।
ददात । नः । अमृतस्य । प्रऽजायै ।
जिगृत । रायः । सूनृता । मघानि ॥ ६ ॥

अन्वयः- ३७४ अन्-अवद्यासः शुचयः पावकाः मरुतः अत्र कृते चित् रणन्त, (हे) यजत्राः! सु-मतिभिः प्र अवत, नः वाजेभिः पुष्यसे प्र तिरत।

३७५ उत विश्वेभिः स्तुतासः नरः मरुतः हवींषि व्यन्तु, नः प्रजायै अ-मृतस्य ददात, सूनृता रायः मघानि जिगृत।

अर्थ-- ३७४ (अन्--अवद्यासः) अनिंदनीय (शुचयः) स्वयं पवित्र होते हुए दूसरोंको (पावकाः) पवित्र करनेहारे ये (मरुतः) वीर मरुत् (अत्र कृते चित्) यहाँपर हमारे चलाये हुए कर्ममें--यज्ञमें (रणन्त) रममाण हों; हे (यजत्राः !) पूजनीय वीरो ! (नः) हमारी तुम (सु--मतिभिः) अच्छी बुद्धियोंसे (प्र अवत) भली भाँति रक्षा करो। (नः) हम (वाजेभिः) अन्नोंसे (पुष्यसे) पुष्ट हों, इस लिए हमें संकटोंसे (प्र तिरत) परे ले चलो।

३७५ (उत) निश्चयपूर्वक (विश्वेभिः नामभिः) सभी नामोंसे (स्तुतासः) प्रशंसित ये (नरः मरुतः) नेता वीर मरुत् (हवींषि व्यन्तु) हविष्यान्न प्राप्त करें। हे वीरो ! (नः प्रजायै) हमारी प्रजाको (अ--मृतस्य) अमरपनका (ददात) प्रदान करो और (सूनृता रायः) आनन्ददायक धन तथा (मघानि) सुखोंकोभी (जिगृत) दे दो।

भावार्थ-- ३७४ ये वीर निष्कलंक, विशुद्ध तथा पवित्रता करनेहारे हैं। हम जिस कार्यका सूत्रपात करने चले हैं, उसमें ये रममाण हों। यह कार्य उन्हें अच्छा लगे। ये हमारी रक्षा करें और अच्छे अन्नसे हमारा पोषण हो, इसलिए हमें संकटोंसे छुडा दें।

३७५ प्रशंसनीय वीर सभी प्रकारके उत्तम अन्न प्राप्त कर लायँ। समूची प्रजाको अविछिन्न सुख प्रदान करें और सभी भाँतिके धन एवं सम्पत्ति प्राप्त कर देवें।

अपने शरीरोंपर (समानं अञ्जि Uniform) समानरूपका वेश धर देते हैं। (२) पिश् = आकार देना, सजाना, व्यवस्थित होना, प्रकाशमान होना, तैयार रहना, अलंकृत करना।

[३७३] (१) ऋधज्- (क्) = पृथक्, दूर। (२) चनिष्ठा = (चनस्--स्थ) बहुतसा अन्न देनेहारी, दातृत्वगुणमें स्थिर। [आगः पुरुषता कराम- भूलें करना मानवी स्वभावके अनुकूल है-- To err is human]

[३७४] (१) प्र--तिर् = परले तटपर जाना, उस पार चले जाना। (२) कृत = कृत्य, कर्म, ध्येय, सेवा, परिणाम।

[३७५] (१) वी = (गति--व्याप्ति--प्रजनन--कान्ति--असन--खादनेषु) = लाना, उत्पन्न करना, पाना, खाना। (२) सूनृत = सत्यपूर्ण, आनन्ददायक, मंगल, प्रिय। (३) मघ = सुख, दान, सम्पत्ति। (४) गृ = देना।

(३७६) आ । स्तुतासः । मरुतः । विश्वे । ऊती । अच्छ । सूरीन् । सर्वऽताता । जिगात ।
ये । नः । त्मना । शतिनः । वर्धयन्ति । यूयम् । पात । स्वस्तिऽभिः । सदा । नः ॥७॥
(ऋ० ७।५८।१-६)

(३७७) प्र । साकम्ऽउक्षे । अर्चत । गणाय । यः । दैव्यस्य । धाम्नः । तुविष्मान् ।
उत । क्षोदन्ति । रोदसी इति । महिऽत्वा । नक्षन्ते । नाकम् । निःऽऋतेः । अवंशात् ॥१॥
(३७८) जनूः । चित् । वः । मरुतः । त्वेष्येण । भीमासः । तुविऽमन्यवः । अयासः ।
प्र । ये । महःऽभिः । ओजसा । उत । सन्ति । विश्वः । वः । यामन् । भयते । स्वःऽदृक् ॥२

अन्वयः— ३७६ (हे) स्तुतासः मरुतः! विश्वे सर्व-ताता सूरीन् अच्छ ऊती आ जिगात, ये त्मना शतिनः नः वर्धयन्ति, यूयं स्वस्तिभिः सदा नः पात। ३७७ यः दैव्यस्य धाम्नः तुविष्मान् साकं-उक्षे गणाय प्र अर्चत, उत अवंशात् निर्ऋतेः क्षोदन्ति, महित्वा रोदसी नाकं नक्षन्ते। ३७८ (हे) भीमासः तुवि-मन्यवः अयासः मरुतः! वः जनूः त्वेष्येण चित्, उत ये महोभिः ओजसा प्र सन्ति, वः यामन् स्वर्-दृक् विश्वः भयते।

अर्थ— ३७६ हे (स्तुतासः मरुतः!) प्रशंसनीय वीर मरुतो! तुम (विश्वे) सभी लोग उस (सर्व-ताता) सभी जगह फैलनेवाले यज्ञकर्म में काम करनेवाले (सूरीन् अच्छ) विद्वानोंकी ओर (ऊती) संरक्षक शक्तियों के साथ (आ जिगात) आओ। (ये) जो तुम (त्मना) स्वयंही (शतिनः नः) हम जैसे सैकडों मानवोंको (वर्धयन्ति) वढाते हैं। (यूयं) तुम (स्वस्तिभिः) कल्याणकारक उपायोंद्वारा (सदा) सदैवके लिए (नः पात) हमारी रक्षा करो। ३७७ (यः) जो (दैव्यस्य धाम्नः) दिव्य स्थान का (तुविष्मान्) ज्ञाता है, उस (साकं-उक्षे) संघ के वलको धारण करनेहारे (गणाय) वीरों के समूह की (प्र अर्चत) पूजा करो। (उत) क्योंकि वे वीर (अवंशात्) वंश के विनाशरूपी (निर्ऋतेः) आपत्ति को (क्षोदन्ति) चकनाचूर कर देते हैं, विनष्ट करते हैं, और (महित्वा) वडप्पनसे (रोदसी) आकाश एवं पृथ्वी तथा (नाकं) स्वर्ग के मध्य (नक्षन्ते) जा पहुँचते हैं, व्याप्त होते हैं। ३७८ हे (भीमासः) भीषण रूपधारी, (तुवि-मन्यवः) अत्यंत उत्साह से परिपूर्ण एवं (अयासः मरुतः!) वेगवान वीर मरुतो! (वः जनूः) तुम्हारा जन्म (त्वेष्येण चित्) तेजस्वितासे युक्त है, (उत) उसी प्रकार (ये महोभिः) जो महत्त्वोंसे तथा (ओजसा) शारीरिक वलसे (प्र सन्ति) प्रसिद्ध हैं, ऐसे (वः) तुम्हारे (यामन्) शत्रुदलपर हमले करते समय (स्वर्-दृक्) आकाश की ओर दृष्टि देकर (विश्वः भयते) समूचा प्राणिसमूह भयभीत हो उठता है।

भावार्थ— ३७६ ये वीर सैकडों मानवोंका संवर्धन करते हैं। इस यज्ञकर्ममें जो विद्वान कार्यमें निरत हुए हैं, उनकी रक्षाका भार ये वीर उठावें और कल्याण करनेके सभी साधनोंसे हम सबकी रक्षा करें। ३७७ ये वीर उस दिव्य स्थानको जानते हैं, जहां पहुँचनेकी इच्छा सबके मनमें उठ खडी होती है। इन वीरोंमें सांघिक वल विद्यमान है, इसीलिए इनका सत्कार करो। ये वंशनाशकी घोर आपत्ति से वचाते हैं और अपने वडप्पनसे भूमंडल, आकाश एवं स्वर्गमें भी अप्रतिहत संचार करते हैं। ३७८ ये वीर सैनिक वडेही उत्साही एवं प्रभावी हैं। उनका जन्मही तेजकी वृद्धि करनेके लिए है। अपने वलसे तथा प्रभावसे वे सभी जगह प्रसिद्ध हैं। जब वे शत्रुपर आक्रमण कर बैठते हैं, तब उनके प्रचण्ड वेगसे सभी जीवजन्तु भयभीत हो जाते हैं।

टिप्पणी— [३७६] (१) सर्व-ताता= यज्ञ, जिसका परिणाम सभी जगह फैल सके ऐसा अच्छा कर्म। (२) ताति= वंश, फैलनेवाला। [३७७] (१) तुविस्= वृद्धि, शक्ति, ज्ञान। (२) निर्ऋतिः= नाश, विपत्ति, संकट,

(३७९) बृहत् । वयः । मघवत्ऽभ्यः । दधात । जुजोषन् । इत् । मरुतः । सुऽस्तुतिम् । नः ।
गतः । न । अध्वा । वि । तिराति । जन्तुम् । प्र । नः । स्पार्हाभिः । ऊतिऽभिः । तिरेत ॥३॥
(३८०) युष्माऽऊतः । विप्रः । मरुतः । शतस्वी । युष्माऽऊतः । अर्वा । सहुरिः । सहस्री ।
युष्माऽऊतः । सम्ऽराट् । उत । हन्ति । वृत्रम् । प्र । तत् । वः । अस्तु । धूतयः । देष्णम् ॥४॥

अन्वयः— ३७९ (हे) मरुतः! मघ-वद्भ्यः बृहत् वयः दधात, नः सु-स्तुतिं जुजोषन् इत्, गतः अध्वा जन्तुं न वि तिराति, नः स्पार्हाभिः ऊतिभिः प्र तिरेत।

३८० (हे) मरुतः! युष्मा-ऊतः विप्रः शतस्वी सहस्री, युष्मा-ऊतः अर्वा सहुरिः, उत युष्मा-ऊतः सम्-राट् वृत्रं हन्ति, (हे) धूतयः! वः तत् देष्णं प्र अस्तु।

अर्थ— ३७९ हे (मरुतः!) वीर मरुतो! (मघ-वद्भ्यः) धनिकोंके लिए (बृहत् वयः) बहुत आरोग्य एवं सुदीर्घ जीवन (दधात) दे दो। (नः सु-स्तुतिं) हमारी अच्छी सराहना का तुम (जुजोषन् इत्) सेवन करो। तुम (गतः अध्वा) जिस राहपरसे जा चुके हो, वह मार्ग (जन्तुं) प्राणी को बिलकुल (न तिराति) विनष्ट नहीं करेगा। उसी प्रकार (नः) हमारा (स्पार्हाभिः ऊतिभिः) स्पृहणीय संरक्षक शक्तियों से (प्र तिरेत) संवर्धन करो।

३८० हे (मरुतः!) वीर मरुतो! (युष्मा-ऊतः) तुमसे सुरक्षित हुआ, (विप्रः) ज्ञानी मनुष्य (शतस्वी सहस्री) सैकडों तथा हजारों प्रकार के धनसे युक्त होता है। (युष्मा-ऊतः) जिसकी रक्षा एवं देखभाल तुमने की हो, ऐसा (अर्वा) घोडातक (सहु-रिः) सहनशक्तिसे युक्त होता है- विजयी बनता है। (युष्मा-ऊतः) तुम्हारी सहायतासे सुरक्षित बना हुआ (सम्-राट्) सार्वभौम नरेश (वृत्रं) निरोधक दुश्मनोंको (हन्ति) मार डालता है। हे (धूतयः!) शत्रुओंको हिलानेवाले वीरो! (वः तत्) तुम्हारा वह (देष्णं) दान हमें (प्र अस्तु) पर्याप्त मात्रामें उपलब्ध हो।

भावार्थ— ३७९ जो धनिक हैं, उन्हें उत्तम आरोग्य तथा दीर्घ जीवन मिले। जिस राहपरसे वीर पुरुष चले हैं, उसपर उनके अच्छे प्रबंधके कारण अब किसीको भी कुछ कष्ट नहीं उठाना पडता है और इनकी संरक्षक शक्ति उधर काम कर रही है, अतः सभी की उत्तम रक्षा हो रही है।

३८० यदि ये वीर किसी मानव के संरक्षण का बीडा उठा लें, तो वह अवश्यही धनाढ्य, विजयी, एवं सार्वभौम बनता है।

शाप, पृथ्वीका तल। (३) क्षुद् (गतौ संपेषणे च)= जाना, कुचलना, चकनाचूर करना। (४) नक्ष् (गतौ)= समीप आना, पहुँचना। (५) अ-वंश= निर्वंश होना, वंशनाश। अ-वंशात् निर्ऋतिः= निर्वंश हो जानेका भय। यह बडा खतरनाक है, क्योंकि संततिसातत्यसे अमरपन की प्राप्ति होती है। (देखिए-प्रजाभिः अमृतत्वं। ऋग्वेद ५।४।१०)। [३७८] (१) अयः= गति, वेग, चढाई, हमला। (२) यामन्= गति, जाना, आक्रमण, हमला। (३) स्वर्-दृक्= (स्वः) अपने आत्मिक (र्) प्रकाशकी ओर दृष्टिपात करनेहारा, स्वर्ग का विचार करनेहारा, आकाश की ओर टकटकी लगाकर देखनेवाला। [३७९] (१) मघ= सुख, दान, संपत्ति। (२) वयस्= अन्न, आयुष्य, यौवन, शक्ति, हविष्यान्न, आरोग्य। (प्रायः देखा जाता है कि धनिक लोग रोगी, क्षीण, अल्पायु तथा संतानविहीन होते हैं, इसीलिए यहाँपर जो यह प्रतिपादन किया है कि धनाढ्य पुरुषोंको दीर्घ जीवन एवं आरोग्य मिले, वह बिलकुल उचित है।) [३८०] (१) सहु-रिः (सह् मर्षणे तृप्तौ च)= बरदाश्त करनेहारा, पराभव करनेवाला, विजयी, पृथ्वी, सूर्य। (२) वृत्र= (वृञ् आवरणे) शत्रु, मेघ, अँधेरा, आवाज, घेरनेवाला दुश्मन। (३) देष्णं= दान, देन।

(३८१) तान् । आ । रुद्रस्य । मीळ्हुषः । विवासे । कुवित् । नंसन्ते । मरुतः । पुनः । नः ।
यत् । सस्वर्ता । जिहीळिरे । यत् । आविः । अव । तत् । एनः । ईमहे । तुराणाम् ॥५॥
(३८२) प्र । सा । वाचि । सुऽस्तुतिः । मघोनाम् । इदम् । सुऽउक्तम् । मरुतः । जुषन्त ।
आरात् । चित् । द्वेषः । वृषणः । युयोत । यूयम् । पात । स्वस्तिऽभिः । सदा । नः ॥६॥
(ऋ० ७।५८।१-११)

(३८३) यम् । त्रायध्वे । इदम्ऽइदम् । देवासः । यम् । च । नयथ ।
तस्मै । अग्ने । वरुण । मित्र । अर्यमन् । मरुतः । शर्म । यच्छत ॥१॥

अन्वयः— ३८१ मीळ्हुषः रुद्रस्य तान् आ विवासे, मरुतः नः कुवित् पुनः नंसन्ते, यत् सस्वर्ता यत् आविः जिहीळिरे तुराणां तत् एनः अव ईमहे।

३८२ मघोनां सु-स्तुतिः सा वाचि प्र, मरुतः इदं सूक्तं जुषन्त, (हे) वृषणः! द्वेषः आरात् चित् युयोत, यूयं स्वस्तिभिः सदा नः पात।

३८३ (हे) देवासः! यं इदं-इदं त्रायध्वे यं च नयथ, तस्मै (हे) अग्ने! वरुण! मित्र! अर्यमन्! मरुतः! शर्म यच्छत।

अर्थ— ३८१ (मीळ्हुषः) बलिष्ठ (रुद्रस्य तान्) रुद्रके उन वीरोंकी (आ विवासे) मैं सेवा करता हूँ। (मरुतः) वे वीर मरुत् (नः) हमें (कुवित्) अनेक वार तथा (पुनः) वारंवार (नंसन्ते) सहायता पहुँचाते हैं, हममें सम्मिलित होते हैं। (यत् सस्वर्ता) जिन गुप्त या (यत् आविः) प्रकट पापोंके कारण वे (जिहीळिरे) हमपर क्रोध प्रकट करते आये हैं, उन (तुराणां) शीघ्रतासे अपना कर्तव्य करनेवालों के संबंधमें किया हुआ वह (एनः) पाप हम अपनेसे (अव ईमहे) दूर हटाते हैं।

३८२ (मघोनां) धनाढ्य वीरोंकी यह (सु-स्तुतिः) उत्कृष्ट सराहना है, (सा) वह सदैव हमारे (वाचि प्र) संभाषणमें निवास करे। (मरुतः) वीर मरुत् (इदं सूक्तं) इस सूक्तका (जुषन्त) सेवन करें। हे (वृषणः!) बलिष्ठ वीरो! हमारे (द्वेषः) द्वेष्टाओं को (आरात् चित्) जब तक वे दूर हैं, तभीतक हमसे (युयोत) दूर करो। (यूयं) तुम (स्वस्तिभिः) कल्याणकारक उपायोंद्वारा (सदा) हमेशा (नः पात) हमारी रक्षा करो!

३८३ हे (देवासः!) देवो! (यं) जिसे तुम (इदं-इदं) इस भाँति (त्रायध्वे) सुरक्षित रखते हो (यं च) और जिसे अच्छी राहसे (नयथ) ले चलते हो, (तस्मै) उसे हे (अग्ने!) अग्ने! हे (वरुण!) वरुण! हे (मित्र!) मित्र! हे (अर्यमन्!) अर्यमन्! तथा हे (मरुतः!) वीर मरुतो! (शर्म यच्छत) सुख दे दो।

भावार्थ— ३८१ हम इन वीरोंकी सेवा करते हैं, इसलिए वे वारंवार हमारी मदद करते हैं। पाप करनेसे उन्हें क्रोध आता है, अतः हम पापी विचारधाराको बहुत दूर हटाते हैं।

३८२ इन वीरोंके संबंधमें यह काव्य हमारे मुँहसे सदैव रहने पाय। जबलौं हमारे शत्रु सुदूर स्थानोंमें हैं, तभीतक उनका नाश ये वीर सैनिक करें और हमारी रक्षाका अच्छा प्रबंध करके कल्याण करें।

३८३ जिसकी रक्षाका भार वीर अपने ऊपर ले लेते हैं, वह सुखी बनता है।

टिप्पणी— [३८१] (१) नस्= पहुँचना, समीप जाना, झुकना, नम्र होना, सामने खडा होना। (२) एनस्= पाप, अपराध, दोष, त्रुटि। (३) जिहीळिरे = (हेड् अनादरे) अनादर दर्शाया, धिक्कार किया, दुतकारा।

(३८४) युष्माकम् । देवाः । अवसा । अहनि । प्रिये । ईजानः । तरति । द्विषः ।
प्र । सः । क्षयम् । तिरते । वि । महीः । इषः । यः । वः । वराय । दाशति ॥२॥
(३८५) नहि । वः । चरमम् । चन । वसिष्ठः । परिऽमंसते ।
अस्माकम् । अद्य । मरुतः । सुते । सचा । विश्वे । पिबत । कामिनः ॥३॥
(३८६) नहि । वः । ऊतिः । पृतनासु । मर्धति । यस्मै । अराध्वम् । नरः ।
अभि । वः । आ । अवर्त् । सुऽमतिः । नवीयसी । तूयम् । यात । पिपीषवः ॥४॥

अन्वयः— ३८४ (हे) देवाः ! युष्माकं अवसा प्रिये अहनि ईजानः द्विषः तरति, यः वः वराय महीः इषः वि दाशति, सः क्षयं प्र तिरते।

३८५ (हे) मरुतः ! वसिष्ठः वः चरमं चन नहि परिमंसते, अद्य अस्माकं सुते कामिनः विश्वे सचा पिबत।

३८६ (हे) नरः ! यस्मै अराध्वं, वः ऊतिः पृतनासु नहि मर्धति, वः नवीयसी सु-मतिः अभि अवर्त्, पिपीषवः तूयं आ यात।

अर्थ— ३८४ हे (देवाः !) प्रकाशमान वीरो ! (युष्माकं अवसा) तुम्हारी रक्षासे सुरक्षित हो (प्रिये अहनि) अभीष्ट दिन (ईजानः) यज्ञ करनेहारा (द्विषः तरति) द्वेष्टा लोगोंको लाँध जाता है, शत्रुओंका पराभव करता है। (यः) जो (वः वराय) तुम जैसे श्रेष्ठ पुरुषोंको (महीः इषः) बहुत सारा अन्न (वि दाशति) प्रदान करता है, (सः) वह (क्षयं) अपने निवासस्थान को (प्र तिरते) निर्भय बना देता है।

३८५ हे (मरुतः !) वीर मरुतो ! (वसिष्ठः) यह वसिष्ठ ऋषि (वः चरमं चन) तुममेंसे अंतिमका भी (नहि परिमंसते) अनादर नहीं करता है, सबकी बराबर सराहना करता है। (अद्य अस्माकं) आज दिन हमारे यहाँ (सुते) सोमरसके निचोड चुकनेपर उसे पीनेके लिए (कामिनः) अपनी चाह व्यक्त करनेवाले तुम (विश्वे) सभी (सचा) मिलजुलकर उस रसको (पिबत) पी लो।

३८६ हे (नरः !) नेता वीरो ! तुम (यस्मै) जिसे संरक्षण (अराध्वं) देते हो, वह (वः ऊतिः) तुम्हारी संरक्षणक्षम शक्ति (पृतनासु) युद्धोंमें उसका (नहि मर्धति) विनाश नहीं करती है। (वः) तुम्हारी (नवीयसी) नाविन्यपूर्ण (सु-मतिः) अच्छी बुद्धि (अभि अवर्त्) हमारी ओर मुड जाए। (पिपीषवः) सोमपान करनेकी इच्छा करनेहारे तुम (तूयं आ यात) शीघ्रही इधर आओ।

भावार्थ— ३८४ वीरोंकी सहायता पाकर मानव सुरक्षित बनें, यज्ञ करें, अन्नदान करें और निर्भय बन सुखपूर्वक कालक्रमणा करें।

३८५ वीरोंका आदर करना चाहिए, उन्हें सोमरस पीनेके लिए देना चाहिए और वीर भी उसे ग्रहण कर सेवन करें।

३८६ जिन्हें वीरोंका संरक्षण प्राप्त हुआ, वे सदैव सुरक्षित रहते हैं।

टिप्पणी— [३८४] (१) वरः= चुनाव, इच्छा, विनंति, दान, वर, श्रेष्ठ, उत्तम। [३८५] (१) मन्= (ज्ञाने, अवबोधने स्तम्भे च) मानना, पूजा करना, आदर करना। परि-मन् = विपरीत ढंगसे मानना, अनादर करना, घृणा के भाव दर्शाना। (२) वसिष्ठः (वासयति इति) = जो कि सबका निवास सुखपूर्वक हो, इसलिये प्रयत्नशील रहता है, एक ऋषि। [३८६] (१) तूयं = शीघ्र।

(३८७) ओ इतिं । सु । घृष्विऽराधसः । यातनं । अन्धांसि । पीतयें ।
इमा । वः । हव्या । मरुतः । ररे । हि । कम् । मो इतिं । सु । अन्यत्रं । गन्तन ॥५॥
(३८८) आ । च । नः । बर्हिः । सदंत । अवित । च । नः । स्पार्हाणि । दातवे । वसुं ।
अस्रेधन्तः । मरुतः । सोम्ये । मधौं । स्वाहां । इह । मादयाध्वै ॥६॥
(३८९) सस्वरितिं । चित् । हि । तन्वः । शुम्भमानाः । आ । हंसासः । नीलऽपृष्ठाः । अपप्तन् ।
विश्वम् । शर्धः । अभितः । मा । नि । सेद । नरः । न । रण्वाः । सवने । मदन्तः ॥७॥

अन्वयः— ३८७ (हे) घृष्वि-राधसः मरुतः ! अन्धांसि पीतये सु ओ यातन, हि वः इमा हव्या ररे, अन्यत्र मो सु गन्तन।

३८८ स्पार्हाणि वसु दातवे नः अवित च, नः बर्हिः आ सदत च, (हे) अ-स्रेधन्तः मरुतः! इह मधौ सोम्ये स्वाहा मादयाध्वै।

३८९ सस्वः चित् हि तन्वः शुम्भमानाः नील-पृष्ठाः हंसासः सवने मदन्तः रण्वाः नरः न आ अपप्तन्, विश्वं शर्धः मा अभितः नि सेद।

अर्थ— ३८७ हे (घृष्वि-राधसः मरुतः!) संघर्षमें सिद्धि पानेवाले वीर मरुतो! (अन्धांसि पीतये) अन्नरस पीनेके लिए (सु ओ यातन) अच्छी व्यवस्थासे आओ। (हि) क्योंकि (वः) तुम्हें (इमा हव्या) ये हविष्यान्न मैं (ररे) प्रदान कर रहा हूँ, अतः तुम (अन्यत्र) दूसरी ओर कहीं भी (मो सु गन्तन) बिलकुल न जाओ।

३८८ (स्पार्हाणि) स्पृहणीय (वसु) धन (दातवे) देनेके लिए (नः) हमारी ओर (अवित च) आओ और (नः बर्हिः) हमारे इन आसनोंपर (आ सीदत च) बैठ जाओ। हे (अ-स्रेधन्तः मरुतः!) अहिंसक वीर मरुतो! (इह) यहाँके (मधौ) मिठास से पूर्ण (सोम्ये) सोमरस के (स्वाहा) भागका, स्वीकार कर (मादयाध्वै) आनन्दित हो जाओ।

३८९ (सस्वः चित् हि) गुप्त जगह रहनेपरभी (तन्वः शुम्भमानाः) अपने शरीरों को सुशोभित करनेवाले ये वीर (नील-पृष्ठाः हंसासः) नीलवर्ण-काली पीठसे युक्त हंसों की नाईं या (सवने मदन्तः) यज्ञमें आनंदित होनेवाले (रण्वाः नरः न) रमणीय नेताओं के तुल्य (आ अपप्तन्) हमारे समीप आ जायँ और इनका (विश्वं शर्धः) समूचा बल (मा) मेरे (अभितः नि सेद) चारों ओर रहे।

भावार्थ— ३८७ वीर हमारे समीप आ जायँ और इस खाद्यपेयसामग्रीका सेवन करें, तथा इस संघर्षमें यश मिलनेतक सहायक बनें।

३८८ अच्छा धन प्रदान करो। यहाँपर पधारकर मिठासभरे अन्नका सेवन करके प्रसन्नचेता बनो।

३८९ गुप्त स्थानपर-दुर्गमें-रहते हुए भी अपने आपको सजाते-सँवारते हुए ये वीर सैनिक अपने सारे बलोंके साथ हममें आकर निवास कर लें। जैसे हंस पंक्तियोंमें, कतारोंमें उडने लगते हैं, वैसेही ये वीर कतारमें चलने लगें, और जिस प्रकार यज्ञमें उपस्थित रहनेके लिए यात्रा करनेवाले नेतागण बन-ठनके प्रस्थान करते हैं, उसी प्रकार ये वीर शोभायमान होते हुए सभी कार्यकलाप निभायँ।

टिप्पणी— [३८७] (१) घृष्वि= संघर्षमें चतुर, राधस्= सिद्धि, दान, यश। घृष्वि-राधस्= संघर्षमें सफलता पानेवाला। (२) अन्धस्= अन्न, सोम, सोमरस। [३८८] (१) स्रिध्= दुखाना, विनाश करना, वध करना, (२) स्वाहा = हविर्भाग, अन्नभाग। [३८९] (१) सस्वः= अन्तर्हित, ढका हुआ, गुप्त (निघंटु ३।२५)।

(३९०) यः । नः । मरुतः । अभि । दुःऽहृणायुः । तिरः । चित्तानि । वसवः । जिघांसति ।
द्रुहः । पाशान् । प्रति । सः । मुचीष्ट । तपिष्ठेन । हन्मना । हन्तन । तम् ॥८॥

(३९१) सांऽतपनाः । इदम् । हविः । मरुतः । तत् । जुजुष्टन ।
युष्माक । ऊती । रिशादसः ॥९॥

(३९२) गृहऽमेधासः । आ । गत । मरुतः । मा । अप । भूतन ।
युष्माक । ऊती । सुऽदानवः ॥१०॥

(३९३) इहऽइह । वः । स्वऽतवसः । कवयः । सूर्यऽत्वचः ।
यज्ञम् । मरुतः । आ । वृणे ॥११॥

अन्वयः— ३९० (हे) वसवः मरुतः ! दुर्हृणायुः तिरः यः नः चित्तानि अभि जघांसति सः द्रुहः पाशान् प्रति मुचीष्ट तं तपिष्ठेन हन्मना हन्तन।

३९१ (हे) सान्तपनाः रिश-अदसः मरुतः ! इदं तत् हविः जुजुष्टन, युष्माक ऊती।

३९२ (हे) गृह-मेधासः सु-दानवः मरुतः ! युष्माक ऊती आ गत, मा अप भूतन।

३९३ (हे) स्व-तवसः कवयः सूर्य-त्वचः मरुतः ! इह-इह यज्ञं वः आ वृणे।

अर्थ- ३९० हे (वसवः मरुतः !) बसानेवाले वीर मरुतो ! (दुर्हृणायुः) अतीव क्रोधी तथा (तिरः) तिरस्करणीय (यः) जो दुरात्मा (नः चित्तानि) हमारे दिलका (अभि जिघांसति) नाश करना चाहता है, (सः) वह (द्रुहः पाशान्) द्रोहके फंदों को (प्रति मुचीष्ट) हमपर डाल देगा; तब (तं) उस हत्यारे को (तपिष्ठेन हन्मना) अति तप्त आयुधसे (हन्तन) मार डालो।

३९१ हे (सान्तपनाः) शत्रुओंको परिताप देनेवाले तथा (रिश-अदसः) हिंसकों को विनष्ट करनेहारे (मरुतः !) वीर मरुतो ! तुम (इदं तत् हविः) इस उस हविष्यान्नका (जुजुष्टन) सेवन करो और (युष्माक ऊती) तुम्हारी संरक्षणशक्ति बढाओ।

३९२ (गृह-मेधासः) गृहस्थधर्म को निभाते हुए (सु-दानवः) उत्तम दान करनेहारे (मरुतः !) वीर मरुतो ! तुम (युष्माक ऊती) अपनी संरक्षक शक्तियों के साथ (आ गत) हमारे समीप आओ; हमसे (मा अप भूतन) दूर न चले जाओ।

३९३ (स्व-तवसः) अपने निजी बलसे युक्त होनेवाले, (कवयः) ज्ञानी और (सूर्य-त्वचः) सूर्यवत् तेजस्वी (मरुतः !) वीर मरुतो ! (इह-इह) अब यहाँ (यज्ञं) यज्ञ करके (वः) तुम्हें मैं (आ वृणे) संतुष्ट करता हूँ।

भावार्थ— ३९० दुरात्मा शत्रु हमारे मनमें विद्यमान सुविचारोंको नष्ट करके, हमसे द्वेषपूर्ण व्यवहार करके, हमें परतन्त्र भी करना चाहते हैं। ऐसे लोगों का सभी जगह तिरस्कार हो और तीक्ष्ण हथियारोंसे उनका विनाश किया जाए।

३९१ जनताको उचित है कि वह वीरोंके लिए अन्न दें और उससे वे अपनी संरक्षक शक्ति बढा दें।

३९२ वीर पुरुष हमारे समीप रहें और हमारी रक्षा करें। वे कभी हमसे दूर न हों।

३९३ यज्ञमें वीर सैनिकों एवं पुरुषोंको बुलवाकर उनका सम्मान करना चाहिए।

टिप्पणी— [३९०] (१) दुर्-हृणायुः=(हृणीयते; हृ लज्जायां रोषणे च); (हृणायुः=क्रोधी)– बहुत क्रोध करनेवाला, बहुत निंदा करनेवाला। (२) तपिष्ठ= (तप् संतापे) तपाया हुआ, विनाशक। (३) द्रुह् = द्वेष करना, विरोध करना। [३९३] (१) वृण् (प्रीणने) = संतुष्ट करना, सुख-आनन्द देना। आ+वृण्= अपनाना करना, स्वीकारना।

(ऋ० ७।१०४।१८)

(३९४) वि । तिष्ठध्वम् । मरुतः । विक्षु । इच्छत । गृभायत । रक्षसः । सम् । पिनष्टन ।
वयः । ये । भूत्वी । पतयन्ति । नक्तऽभिः । ये । वा । रिपः । दधिरे । देवे । अध्वरे ॥१८॥

विंदु या अङ्गिरसपुत्र पूतदक्षऋषि । (ऋ० ८।९४।१-१२)

(३९५) गौः । धयति । मरुताम् । श्रवस्युः । माता । मघोनाम् । युक्ता । वह्निः । रथानाम् ॥१॥
(३९६) यस्याः । देवाः । उपऽस्थे । व्रता । विश्वे । धारयन्ते । सूर्यामासा । दृशे । कम् ॥२॥

अन्वयः— ३९४ (हे) मरुतः! विक्षु वि तिष्ठध्वं, ये वयः भूत्वी नक्तभिः पतयन्ति, ये वा देवे अध्वरे रिपः दधिरे रक्षसः इच्छत, गृभायत, सं पिनष्टन। ३९५ रथानां वह्निः युक्ता श्रवस्युः मघोनां मरुतां माता गौः धयति। ३९६ यस्याः उप-स्थे विश्वे देवाः व्रता धारयन्ते, सूर्या-मासा दृशे कं।

अर्थ— ३९४ हे (मरुतः !) वीर मरुतो ! तुम (विक्षु) प्रजाओं में (वि तिष्ठध्वं) रहो । (ये) जो (वयः भूत्वी) वलिष्ठ बनकर (नक्ताभिः) रात्री के समय (पतयन्ति) टूट पडते हैं, (ये वा) अथवा जो (देवे अध्वरे) दिव्य यज्ञमें (रिपः दधिरे) हिंसा करते हैं, उन (रक्षसः) राक्षसों को (इच्छत) तुम ढूँढ निकालो, (गृभायत) पकड लो और उनको (सं पिनष्टन) पूरी तरह कुचल दो । ३९५ (रथानां वह्निः) रथों को खींचनेवाली, (युक्ता) योग्य, (श्रवस्युः) यशकी इच्छा करनेहारी (मघोनां मरुतां माता) धनाढ्य वीर मरुतोंकी माता (गौः) गाय या पृथ्वी उन्हें (धयति) दूध पिलाती है । ३९६ (यस्याः उप-स्थे) जिसके समीप रहकर (विश्वे देवाः) सभी देवता अपने अपने (व्रता धारयन्ते) कर्तव्य उचित ढंगसे निभाते हैं । (सूर्या-मासा) सूर्य तथा चंद्रभी जनताको (दृशे कं) प्रकाश देनेके लिए जिसके समीप रहते हैं ।

भावार्थ— ३९४ जनतामें वीर भाँतिभाँतिके रूप धारण कर निवास करें । जो प्रजापर विभिन्न ढंगोंसे हमले करते हैं, टूट पडते हैं और जनता से माल, धन छीन लेते हैं, या लूटमारके कार्यमें लगे रहते हैं, उन्हें पकडकर कारागृहमें रखें या उनका समूल नाशही कर डालें । ३९५ रथोंको जोती हुई मरुतोंकी माता गौ उन्हें दूध पिलाती है और वह चाहती है कि मरुतोंका यश प्रतिपल बढे । ३९६ समूचे देवता तथा सूर्यचन्द्र भी गौ (पृथ्वी) के निकट रहकर अपने अपने कर्तव्य करते हैं । (गौकी रक्षा करते हैं । अर्थात् यहाँपर गौमाताका बडप्पन बतलाया है ।)

टिप्पणी— [३९४] (१) विक्षु वि तिष्ठध्वं= प्रजाओंमें गुप्त रूपसे विविधरूपधारी होकर प्रजाका रक्षण करनेके लिए निवास करें । (२) रिप् = (रिप्र= बुरा, अशुद्धि, दुर्गन्धी, पाप, हिंसा) अशुद्धि करना, बदबू करना, हिंसा करना । (३) इष् = ढूँढना, पानेका प्रयत्न करना, चाहना । (४) गृभ्= पकडना । (५) वयः = शरीरसे दृढ, बल, आरोग्य, आयु, पंछी । [३९५] (१) चूँकि वीर सैनिक मरुत् गोदुग्ध का यथेष्ट पान करके पुष्ट एवं बलिष्ठ होते हैं, इसलिए यहाँपर बतलाया है कि, गौ उनकी मानो माता है । यह सुतरां स्वाभाविक है कि माता अपने पुत्रोंके यशके सम्बन्धमें सचित रहे । (रथानां वह्निः युक्ता गौः) इस मन्त्रमें कहा है कि, रथसे संयुक्त गौही (धयति) दूध पिलाती है। यह विचार करनेयोग्य बात है, क्योंकि साधारणतया ऐसी धारणा प्रचलित है कि जो गाय बोझ ढोने जैसे परिश्रमसाध्य कठिन कर्म करती है, वह धीरे धीरे कम दूध देने लगती है । यह असंभवसा दीख पडता है कि वंध्या गौ के अतिरिक्त अन्य गायों को रथमें जोतते हों । ऐसी वंध्या गौओं को अगर वाहनोंमें जोत लें, तो वे प्रजननक्षम हो दुधारु बनती हैं, ऐसी कुछ लोगोंकी धारणा है, पर शास्त्रज्ञ निर्धारित करें, उसमें वैज्ञानिकता कहाँतक है । (२) युक्त = (युज् योगे संयमने च) जुडा हुआ, कुशल, योग्य (कर्म में कुशल) । (३) वह्निः (वह् प्रापणे)= ढोनेवाला, धारण करनेहारा, अग्नि । [३९६] (१) उप-स्थ = समीप, मध्य-भाग ।

(३९७) तत् । सु । नः । विश्वे । अर्यः । आ । सदा । गृणन्ति । कारवः ।
मरुतः । सोमऽपीतये ॥३॥
(३९८) अस्ति । सोमः । अयम् । सुतः । पिबन्ति । अस्य । मरुतः ।
उत । स्वऽराजः । अश्विना ॥४॥
(३९९) पिबन्ति । मित्रः । अर्यमा । तना । पूतस्य । वरुणः ।
त्रिऽसधस्थस्य । जाऽवतः ॥५॥
(४००) उतो इति । नु । अस्य । जोषम् । आ । इन्द्रः । सुतस्य । गोऽमतः ।
प्रातः । होताऽइव । मत्सति ॥६॥

अन्वयः- ३९७ नः अर्यः विश्वे कारवः सदा सु आ तत् गृणन्ति, (हे) मरुतः ! सोम-पीतये ।
३९८ अयं सोमः सुतः अस्ति, अस्य स्व-राजः मरुतः उत अश्विना पिबन्ति ।
३९९ मित्रः अर्यमा वरुणः त्रि-सध-स्थस्य तना पूतस्य जा-वतः पिबन्ति ।
४०० उतो इन्द्रः नु प्रातः होताइव गो-मतः अस्य सुतस्य जोषं मत्सति ।

अर्थ- ३९७ (नः) हमारे (अर्यः) अत्यन्त पूज्य (विश्वे कारवः) सभी कवि, काव्यरचनामें कुशल, (सदा) हमेशा तुम्हारे (तत्) उस बलकी (सु आ गृणन्ति) भली भाँति स्तुति करते हैं । हे (मरुतः !) वीर मरुतो ! (सोम-पीतये) सोमपान करनेके लिए तुम इधर आओ।

३९८ (अयं सोमः) यह सोमरस (सुतः अस्ति) पूर्णतया निचोडा जा चुका है । (अस्य) इसका (स्व-राजः मरुतः) स्वयंतेजस्वी मरुत्-वीर (उत) उसी प्रकार (अश्विना) अश्विनी-देव भी (पिबन्ति) पान करते हैं।

३९९ (मित्रः अर्यमा वरुणः) मित्र, अर्यमा एवं वरुण (त्रि-सध-स्थस्य) तीन स्थानोंमें रखे हुए (तना पूतस्य) छलनी से पवित्र किए हुए एवं (जा-वतः) सभी जनोंके सेवनके योग्य सोमरसको (पिबन्ति) पी लेते हैं ।

४०० (उतो) और (इन्द्रः नु) इन्द्र भी (प्रातः होताइव) प्रातःकालके समय होताकी नाईं (गो-मतः) गोदुग्धके मिलावटसे तैयार किये हुए (अस्य) इस (सुतस्य) निचोडे हुए सोमका (जोषं) सेवन करके (मत्सति) हर्षित हो उठता है।

भावार्थ— ३९७ सभी कवि काव्यका सृजन करके वीरोंके इस बलकी सराहना करते हैं। इसी लिए सोम पीनेके लिए वे इधर अवश्य आ जाएँ।
३९८ यह सोमरस पूर्णरूपेण सिद्ध है । तेजस्वी वीर एवं अश्विनी-देव इसका ग्रहण करें ।
३९९ तीन स्थानोंमें विद्यमान तीन छलनियोंमेंसे शुद्ध किए हुए सोमरस का सेवन ये सभी वीर करते हैं। कारण यही है कि सोमरस सबके पीनेके लिए योग्य है ।
४०० इन्द्र भी सोमरसमें दूध मिलाकर उस पेय का सेवन करता है और प्रसन्नचेता बनता है।

टिप्पणी— [३९७] (१) अर्यः=(ऋ गतौ-अरिः अर्यः)= गतिशील, पूज्य, श्रेष्ठ । [३९८] (१) स्व-राजः = (राज् दीप्तौ-प्रकाशना, शासन करना, प्रमुख होना) सब मिलकर शासन करनेहारे-स्वयंशासक (देखिए मंत्र ६८, २९२ तथा ३९८)। [३९९] (१) जा = माता, जाति, देवरानी ।

(४०१) कत् । अत्विषन्त । सूरयः । तिरः । आपःऽइव । स्रिधः ।
अर्षन्ति । पूतऽदक्षसः ॥७॥
(४०२) कत् । वः । अद्य । महानाम् । देवानाम् । अवः । वृणे ।
त्मना । च । दस्मऽवर्चसाम् ॥८॥
(४०३) आ । ये । विश्वा । पार्थिवानि । पप्रथन् । रोचना । दिवः ।
मरुतः । सोमऽपीतये ॥९॥
(४०४) त्यान् । नु । पूतऽदक्षसः । दिवः । वः । मरुतः । हुवे ।
अस्य । सोमस्य । पीतये ॥१०॥

अन्वयः— ४०१ सूरयः स्रिधः तिरः आपःइव अत्विषन्त, पूत-दक्षसः कत् अर्षन्ति ?
४०२ त्मना च दस्म-वर्चसां देवानां महानां वः अवः अद्य कत् वृणे ?
४०३ ये विश्वा पार्थिवानि दिवः रोचना आ पप्रथन्, मरुतः सोम-पीतये ।
४०४ (हे) मरुतः ! पूत-दक्षसः दिवः त्यान् वः नु अस्य सोमस्य पीतये हुवे ।

अर्थ- ४०१ वे (सूरयः) ज्ञानी तथा (स्रिधः) शत्रुविनाशक वीर (तिरः) टेढी राहसे जानेवाले (आपःइव) जलप्रवाहोंकी नाईं (अत्विषन्त) प्रकाशमान होते हैं और वे (पूत-दक्षसः) पवित्र बल धारण करनेहारे वीर (कत्) भला कब हमारी ओर (अर्षन्ति) पधारेंगे ?

४०२ (त्मना च) स्वाभाविक ढंगसे (दस्म-वर्चसां) सुन्दर आकारवाले (देवानां) तेजस्वी एवं (महानां) बडे महनीय (वः) तुम जैसे सैनिकोंसे (अवः) संरक्षणकी (अद्य कत्) आज भला कब मैं (वृणे) याचना करूँ ?

४०३ (ये) जो (विश्वा पार्थिवानि) सभी भूमंडलस्थ वस्तुओं को और (दिवः रोचना) द्युलोकके तेजस्वी पदार्थोंको (आ पप्रथन्) विस्तृत कर चुके, उन (मरुतः) वीर मरुतों को (सोम-पीतये) सोमपान करनेके लिए मैं बुलाता हूँ।

४०४ हे (मरुतः !) वीर मरुतो ! (पूत-दक्षसः) पवित्र बलसे युक्त और (दिवः) तेजस्वी (त्यान् वः) ऐसे तुम्हें (नु) अभी (अस्य सोमस्य पीतये) इस सोमरस के पान के लिए (हुवे) बुलाता हूँ।

भावार्थ- ४०१ जैसे ढलती जगहसे गिरनेवाला जलप्रवाह चमकने लगता है, वैसेही ये ज्ञानी वीर अपने पराक्रमसे जगमगाने लगते हैं। पवित्र कार्य के लिए अपने बलका उपयोग करनेवाले वे वीर सैनिक हमारे यज्ञमें आ जायँ।

४०२ ये तेजस्वी एवं शक्तिशाली वीर हमारी रक्षा करनेका बीडा उठावें।

४०३ आकाशस्थ एवं भूमंडलस्थ सभी वस्तुओं को मरुतोंने विस्तृत किया है, इसीलिए मैं उन्हें सोमपान करनेके लिए बुलाता हूँ।

४०४ बलवान एवं तेजस्वी वीरोंको आदरपूर्वक बुलाकर अन्नपानके प्रदानसे उनका सत्कार करना चाहिए।

टिप्पणी— [४००] (१) मत्सति= (मदि स्तुतिमोदमदस्वप्नकान्तिगतिषु) हर्षित होता है। [४०१] (१) दक्ष= योग्यता, बल, बौद्धिक शक्ति। (२) स्रिध्= विनाश करना, दुःख देना। (३) ऋष् (गतौ)= बह जाना, फिसलना, (आना)। [४०२] (१) दस्म = (दस् = उपक्षये) विनाशक, सुन्दर, आश्चर्यकारक, याजक, चोर, दुष्ट, अग्नि। (२) वर्चस् = शक्ति, तेज, आकार, सौंदर्य, वीर्य, विष्ठा। (३) अद्य= आज, आजकल, अब।

(४०५) त्यान् । नु । ये । वि । रोदसी इति । तस्तभुः । मरुतः । हुवे ।
अस्य । सोमस्य । पीतये ॥११॥

(४०६) त्यम् । नु । मारुतम् । गणम् । गिरिऽस्थाम् । वृषणम् । हुवे ।
अस्य । सोमस्य । पीतये ॥१२॥

भृगुपुत्र स्यूमरश्मिऋषि (ऋ० १०।७७।१-८)

(४०७) अभ्रऽप्रुषः । न । वाचा । प्रुष । वसु । हविष्मन्तः । न । यज्ञाः । विऽजानुषः ।
सुऽमारुतम् । न । ब्रह्माणम् । अर्हसे । गणम् । अस्तोषि । एषाम् । न । शोभसे ॥१॥

अन्वयः— ४०५ ये मरुतः रोदसी वि तस्तभुः त्यान् नु अस्य सोमस्य पीतये हुवे।

४०६ त्यं गिरि-स्थां वृषणं मारुतं गणं नु अस्य सोमस्य पीतये हुवे।

४०७ अभ्र-प्रुषः न, वाचा वसु प्रुष, हविष्मन्तः यज्ञाः न वि-जानुषः, ब्रह्माणं न, सु-मारुतं गणं अर्हसे अस्तोषि एषां शोभसे न।

अर्थ- ४०५ (ये मरुतः) जो वीर मरुत् (रोदसी) आकाश एवं भूलोक को (वि तस्तभुः) विशेष ढंगसे आधार दे चुके, (त्यान् नु) उन्हें अभी (अस्य सोमस्य पीतये) इस सोमका सेवन करनेके लिए (हुवे) मैं बुलाता हूँ।

४०६ (त्यं) उस (गिरि-स्थां) पर्वतपर रहनेवाले, (वृषणं) बलवान (मारुतं गणं) वीर मरुतों के समुदायको (नु) अभी (अस्य सोमस्य पीतये) इस सोमरसको पीनेके लिए (हुवे) बुलाता हूँ।

४०७ (अभ्र-प्रुषः न) मेघोंकी वर्षा के तुल्य ये वीर (वाचा) आशीर्वचनोंके साथ (वसु प्रुष) द्रव्यका दान करें। (हविष्मन्तः यज्ञाः न) हविष्यान्नसे युक्त यज्ञोंके समान वे (वि-जानुषः) सब कुछ जाननेवाले वीर सबको सुख दें। (ब्रह्माणं न) ज्ञानीके समान (सु-मारुतं गणं) उत्तम वीर मरुतों के समुदायकी (अर्हसे) आवभगत करनेके लिए ही (अस्तोषि) मैंने स्तुति की; केवल (एषां) इनकी (शोभसे) शोभा देखकरही सराहना (न) नहीं की।

भावार्थ- ४०५ सबको आधार देनेका कार्य वीर करते हैं, इसलिए उन्हें सोमपानमें सम्मिलित होनेके लिए बुलाना चाहिए।

४०६ पर्वतपर रहकर सबका संरक्षण करनेहारे वीरोंको सोमरसका ग्रहण करनेके लिए बुलाना चाहिए।

४०७ मेघसे जिस प्रकार गर्जना के साथ वर्षा होने लगती है, उसी प्रकार ये वीर पर्याप्त धन दे देते हैं और साथही साथ शुभ आशीर्वाद भी दे डालते हैं। जैसे विपुल अन्नसंतर्पणपूर्वक किये हुए यज्ञ सुख देते हैं, वैसेही ये वीर भी स्वयं ज्ञानी होनेके कारण भाँति भाँति के उपायोंद्वारा जनताके सुख बढानेके प्रकार जानते हैं। जिस तरह ज्ञानी पुरुषकी सब जगह सराहना हुआ करती है, उसी प्रकार इन वीरोंके संघकी मैं प्रशंसा करता हूँ। ध्यानमें रहे कि उनके गुणोंको जानकरही मैंने यह प्रशंसा की है, न कि केवल उनके बाहरी डामडौल या टीमटाम अथवा बनाव-सिंगारको देखकर या उससे प्रभावित होकर।

टिप्पणी- [४०५] (१) स्तम्भ्=(रोधने धारणे प्रतिबन्धने च) स्थिर करना, आश्रय देना। [४०६] गिरिः= पर्वत, पहाडपर बँधा हुआ दुर्ग। [४०७] (१) प्रुष् (दाहे, स्नेहनस्वेदनपूरणेषु च) = जलाना, भस्मसात् करना, गीला करना, सींचना, पूर्ण करना।

(४०८) श्रिये । मर्यासः । अञ्जीन् । अकृण्वत । सुऽमारुतम् । न । पूर्वीः । अति । क्षपः ।
दिवः । पुत्रासः । एताः । न । येतिरे । आदित्यासः । ते । अक्राः । न । वृधुः ॥२॥
(४०९) प्र । ये । दिवः । पृथिव्याः । न । बर्हणा । त्मना । रिरिच्रे । अभ्रात् । न । सूर्यः ।
पाजस्वन्तः । न । वीराः । पनस्यवः । रिशादसः । न । मर्याः । अभिऽद्यवः ॥३॥
(४१०) युष्माकम् । बुध्ने । अपाम् । न । यामनि । विथुर्यति । न । मही । श्रथर्यति ।
विश्वऽप्सुः । यज्ञः । अर्वाक् । अयम् । सु । वः । प्रयस्वन्तः । न । सत्राचः । आ । गत ॥४॥

अन्वयः— ४०८ मर्यासः श्रिये अञ्जीन् अकृण्वत, पूर्वीः क्षपः सु-मारुतं न अति, दिवः पुत्रासः एताः न येतिरे, आदित्यासः ते अक्राः न ववृधुः। ४०९ ये त्मना बर्हणा दिवः पृथिव्याः न, अभ्रात् सूर्यः न, प्र रिरिच्रे; पाजस्वन्तः वीराः न, पनस्यवः रिश-अदसः मर्याः न, अभिद्यवः। ४१० अपां यामनि न, युष्माकं बुध्ने मही न विथुर्यति श्रथर्यति, अयं विश्व-प्सुः यज्ञः वः सु अर्वाक्, प्रयस्वन्तः न, सत्राचः आ गत।

अर्थ- ४०८ (मर्यासः) मानवोंके हितकर्ता ये वीर (श्रिये) शोभाके लिए (अञ्जीन्) वीरभूषण या गणवेश (अकृण्वत) पहन लेते हैं। (पूर्वीः) पहलेसे (क्षपः) विनाशकारिणी शत्रुसेनाएँ भी (सु-मारुतं) अच्छे वीर मरुतोंके गण या संघको (न अति) पराभूत नहीं कर सकती हैं। (दिवः पुत्रासः) द्युलोकके सुपुत्र ये वीर (एताः न) कृष्णसारों या [बारह सींगों]के तुल्य लंबी छलांगें मारकर विजयके लिए (येतिरे) प्रयत्न करते हैं और (आदित्यासः ते) सूर्यवत् तेजस्वी प्रतीत होनेवाले ये वीर (अक्राः न) गढ या दुर्गके तटकी नाईं (ववृधुः) बढते रहते हैं। ४०९ (ये) जो (त्मना) अपने (बर्हणा) महत्त्वसे (दिवः पृथिव्याः न) द्युलोक जिस तरह पृथ्वीसे, (अभ्रात्) मेघोंसे (सूर्यः न) जैसे सूर्य ऊँचाईपर रहता है, वैसेही (प्र रिरिच्रे) बडे हुए हैं, वे (पाजस्वन्तः वीराः न) बलवान वीरोंके समान (पनस्यवः) प्रशंसनीय और (रिश-अदसः मर्याः न) हिंसक शत्रुओंको मार डालनेवाले मानवी वीरों के तुल्य (अभि-द्यवः) अति तेजस्वी हैं। ४१० (अपां यामनि न) जैसे जलप्रवाहके नीचेकी उसी प्रकार (युष्माकं बुध्ने) तुम्हारी हलचल के नीचे विद्यमान (मही) पृथ्वी (न विथुर्यति) केवल पीडितही होती है, सो बात नहीं पर वह (श्रथर्यति) ढीली तक बन जाती है। (अयं) यह (विश्व-प्सुः यज्ञः) सर्वस्वदानसे संपन्न होनेवाला यज्ञ (वः सु अर्वाक्) तुम्हारे सामने ही हो जाए, तुम्हें लाभ पहुँचानेवाला हो जाय। (प्रयस्वन्तः न) अन्नदान करनेवालोंके समान तुम (सत्राचः) सभी वीर इकट्ठे होकर इस यज्ञमें (आ गत) पधारो।

भावार्थ— ४०८ मानवोंके हित करनेमें लगे हुए ये वीर समान पहनावा पहनकर विभूषित हो घूमते हैं। जो शत्रुसेना पहलेसे विध्वंस करनेपर तुली हुई थी, वह भी इन वीरोंके सम्मुख परास्त हो जाती है; भला इन वीरोंका पराभव कौन कर सके, किसकी इतनी मजाल कि इन वीरोंको पछाड दें। दिव्य शक्तिसे युक्त ये वीर कृष्णसारोंकी नाईं फुर्तीले बन छलांगें मारकर प्रगतिके लिए सचेष्ट रहा करते हैं और दुर्गतटोंके समान चहुँ ओरसे जनताकी रक्षा करते हैं। ४०९ अपनी सामर्थ्यके कारण ये वीर द्यावापृथिवीकी अपेक्षा अत्यधिक बडे हुए हैं। ये वीर सैनिक बलिष्ट हैं, अतः सराहनीय और शत्रुविध्वंसक होनेके कारण बडे तेजस्वी हैं। ४१० ये वीर जहाँपर जाते हैं, उधरही इनके आन्दोलनों एवं हलचलोंसे भूमि विकम्पित हो उठती है। इनकी हलचल इस भाँति अतीव प्रभावशालिनी है। जिसमें सभी अन्नोंका दान दिया जाता है, ऐसा यह यज्ञ इन्हें प्राप्त हो। इस यज्ञमें सभी वीर मिलकर आ जायँ और अपना अपना भाग ले लें।

टिप्पणी— [४०८] (१) पूर्व = पहला, उत्कृष्ट, प्रस्थापित। (२) क्षपः= (क्षप् क्षेप प्रेरणे च) = विनाशकारिणी (शत्रुसेना)। (३) अक्रः = (अ-क्रः) = स्थिर, कर्महीन, व्यर्थ, निराधार, प्राकार, दुर्गकी दीवार, पताका, (Banner)। (४) मर्यासः = [सायणः - मर्यासः, पूर्वं मनुष्याः सन्तः पश्चात् सुकृतविशेषेण अमरा आसन्।]

(४११) यूयम् । धूःऽसु । प्रऽयुजः । न । रश्मिऽभिः । ज्योतिष्मन्तः । न । भासा । विऽउष्टिषु ।
श्येनासः । न । स्वऽयशसः । रिशादसः ।
प्रवासः । न । प्रऽसितासः । परिऽप्रुषः ॥५॥

(४१२) प्र । यत् । वहध्वे । मरुतः । पराकात् । यूयम् । महः । संऽवरणस्य । वस्वः ।
विदानासः । वसवः । राध्यस्य ।
आरात् । चित् । द्वेषः । सनुतः । युयोत ॥६॥

अन्वयः- ४११ यूयं रश्मिभिः धूर्षु प्र-युजः न, व्युष्टिषु ज्योतिष्मन्तः न भासा, श्येनासः न स्व-यशसः, रिशा-अदसः परि-प्रुषः, प्र-वासः न, प्रसितासः ।

४१२ (हे) वसवः मरुतः ! यूयं यत् पराकात् प्र वहध्वे महः संवरणस्य राध्यस्य वस्वः वि-दानासः सनुतः द्वेषः आरात् चित् युयोत ।

अर्थ- ४११ (यूयं) तुम (रश्मिभिः) लगामोंसे (धूर्षु) धुराओंमें (प्र-युजः न) जोते हुए घोडोंके समान वेगवान, (व्युष्टिषु) प्रातःकालीन (ज्योतिष्मन्तः न) आदित्यों के समान (भासा) तेजसे युक्त, (श्येनासः न) बाज पंछियोंकी नाईं (स्व-यशसः) स्वयंही अन्न पानेहारे, (रिशा-अदसः) हिंसकों का वध करनेहारे और (परि-प्रुषः) सभी प्रकारसे पोषण करनेहारे बनकर (प्र-वासः न) प्रवासियों या यात्रियोंके समान (प्रसितासः) सदा सिद्ध हो।

४१२ हे (वसवः मरुतः !) बसानेवाले वीर मरुतो ! (यूयं) तुम (यत्) जब (पराकात्) सुदूर देशसे (प्र वहध्वे) वेगपूर्वक आते हो, तब (महः) विपुल, (संवरणस्य) स्वीकारनेयोग्य तथा (राध्यस्य) सिद्धियुक्त (वस्वः) धनका (वि-दानासः) दान देनेवाले तुम (सनुतः द्वेषः) दूरसे आनेवाले द्वेष्टाओं-को (आरात् चित्) दूरसेही (युयोत) दूर करो, हटा दो।

भावार्थ-- ४११ ये वीर वेगसे कर्म करनेवाले, तेजस्वी, अपने प्रयत्नसे अन्नकी प्राप्ति करके शत्रुओंका वध करनेहारे और अपनी पुष्टि करनेवाले हैं, तथा यात्रियोंके समान सदैव सिद्ध हैं।

४१२ ये वीर जब दूर देशसे अतिवेगपूर्वक आते हैं, तब वे विपुल धन साथ ले आते हैं और पधारतेही सब लोगोंको वह प्रचुर धनराशि बाँट देते हैं। हमारी यह इच्छा है कि आते समय राहमें ही ये वीर हमारे शत्रुओंको दूर रहते रहतेही विनष्ट कर डालें।

मर मिटनेके लिए तैयार हो लडनेवाले वीर, मर्त्य। [४०९] (१) बर्हणा= (बर्ह्-परिभाषणहिंसाप्रदानेषु) प्रमुख ढंगसे, दानसे, प्रमुख स्थान पानेसे। बर्हण- बलवान, शक्तिमान। (२) रिच्= (विरेचने, वियोजनसंपर्चनयोः)= सूना करना, अलग करना, छोडना, मिलना। प्र+रिच्= विशेष होना, बडा होना, विशेष ढंगसे समर्थ बनना। [४१०] (१) बुध्न = तल, शरीर। (२) प्सु= अन्न (प्सा= खाना) विश्व-प्सु= सर्व अन्नमय। विश्वप्सुः यज्ञः= सारे के सारे अन्नके प्रदानसे होनेवाला यज्ञ। (३) सबाचः= सब मिलकर एक विशिष्ट चालसे जानेवाले। [४११] (१) प्रसित = बद्ध, निरत, मार्गस्थ, संबद्ध, तैयार। (२) यशस् = यश, सुन्दरता, तेज, कृपा, धन, अन्न, जल। स्व-यशसः = अपने पराक्रमसे यश पानेवाले। [४१२] (१) पराकात् (पराके = कुछ दूरीपर, अंतरपर) = सुदूर देशसे, दूरसेही। (२) सनुतः = दूरसे, गुप्त ढंगसे।

(४१३) यः । उत्ऽऋचि । यज्ञे । अध्वरेऽस्थाः ।
मरुत्ऽभ्यः । न । मानुषः । ददाशत् ।
रेवत् । सः । वयः । दधते । सुऽवीरम् ।
सः । देवानाम् । अपि । गोऽपीथे । अस्तु ॥७॥

(४१४) ते । हि । यज्ञेषु । यज्ञियासः । ऊमाः ।
आदित्येन । नाम्ना । शम्ऽभविष्ठाः ।
ते । नः । अवन्तु । रथऽतूः । मनीषाम् ।
महः । च । यामन् । अध्वरे । चकानाः ॥८॥

अन्वयः—४१३ अध्वरे-स्थाः यः मानुषः यज्ञे उत्-ऋचि मरुद्भ्यः न ददाशत्, सः रे-वत् सु-वीरं वयः दधते, देवानां अपि गो-पीथे अस्तु।

४१४ ते हि ऊमाः यज्ञेषु यज्ञियासः आदित्येन नाम्ना शं-भविष्ठाः, रथ-तूः अध्वरे यामन् महः चकानाः च ते नः मनीषां अवन्तु।

अर्थ— ४१३ (अध्वरे-स्थाः) यज्ञमें स्थिर रहनेवाला; यज्ञ करनेहारा (यः मानुषः) जो मनुष्य (यज्ञे उत्-ऋचि) यज्ञसमाप्ति के उपरान्त (मरुद्भ्यः न) वीर मरुतों को दिया जाता है, उसी भाँति (ददाशत्) दान देता है, (सः) वह (रे-वत्) धनयुक्त एवं (सु-वीरं) अच्छे वीरों से युक्त (वयः) अन्न (दधते) धारण करता है, अपने समीप रखता है और वह (देवानां अपि) देवों के भी (गो-पीथे) गोरसपान के समय उपस्थित (अस्तु) रहता है।

४१४ (ते हि) वे वीर सचमुचही सबकी (ऊमाः) रक्षा करनेहारे हैं, अतः (यज्ञेषु) यज्ञोंमें (यज्ञियासः) पूजनीय हैं; उसी प्रकार वे (आदित्येन नाम्ना) आदित्यके रूपसे सबको (शं-भविष्ठाः) सुख देनेवाले हैं। (रथ-तूः) रथमें बैठकर वेगसे जानेवाले वे वीर (अध्वरे यामन्) यज्ञमें जाकर (महः चकानाः च) महत्त्व प्राप्त करने की इच्छा करते हैं। वे (नः मनीषां) हमारी आकांक्षाओं को (अवन्तु) सुरक्षित करें।

भावार्थ— ४१३ यज्ञसमाप्तिके समय जैसे दान दिया जाता है, वैसेही जो दान देने लगता हैं, वह एक तरह से अपने समीप विद्यमान अन्न को बढाता है और इसी कारणसे उसे पर्याप्त मात्रामें वीर संतान प्राप्त होती है तथा देवोंके सोमरस या गोरसपान के मौकेपर वहाँ उपस्थित होनेका गौरव एवं सम्मान भी उसे मिल जाता है।

४१४ ये वीर सबके संरक्षक हैं, इसलिए यह अत्यन्त उचित है कि, यज्ञमें उनका सम्मान हो। सूर्यवत् बन वे सबको सुखी करते हैं। रथमें बैठकर वे यज्ञोंमें उपस्थित होते हैं और वहाँपर हविर्भाग का आदान करना चाहते हैं। ऐसे ये वीर हमारी आकांक्षाओंकी भली भाँति रक्षा करें।

टिप्पणी— [४१३] (१) गो-पीथ= गोरक्षण, पवित्र स्थान, रक्षा, सोमरस पीनेका स्थान, गोदुग्ध सेवन करनेकी जगह। (२) उत्-ऋच्= बडी आवाजमें कही जानेवाली ऋचा, श्रेष्ठ ऋचा। [४१४] (१) नामन्= नाम, कीर्ति, चिन्ह, जल, आकृति, स्वरूप। (२) चकान= (कन्= संतुष्ट होना, प्रीति करना) संतुष्ट बननेहारे, संतुष्ट होनेवाले, प्यार करनेवाले।

(ऋ० १०।७८।१-८)

(४१५) विप्रा॑सः । न । मन्म॑ऽभिः । सु॒ऽआ॒ध्यः॑ । दे॒व॒ऽअ॒व्यः॑ । न । य॒ज्ञैः । सु॒ऽअप्न॑सः ।
राजा॑नः । न । चि॒त्राः । सु॒ऽसं॒दृशः॑ ।
क्षि॒ती॒नाम् । न । मर्याः॑ । अ॒रे॒पसः॑ ॥१॥

(४१६) अ॒ग्निः । न । ये । भ्राज॑सा । रु॒क्मऽव॑क्षसः ।
वाता॑सः । न । स्व॒ऽयुजः॑ । स॒द्यःऽऊ॑तयः ।
प्र॒ऽज्ञा॒तारः॑ । न । ज्येष्ठाः॑ । सु॒ऽनी॒तयः॑ ।
सु॒ऽशर्मा॑णः । न । सोमाः॑ । ऋ॒तम् । य॒ते ॥२॥

अन्वयः- ४१५ विप्रासः न, मन्मभिः सु-आध्यः, देवाव्यः न, यज्ञैः सु-अप्नसः, राजानः न चित्राः सु-संदृशः, क्षितीनां मर्याः न अ-रेपसः।

४१६ ये, अग्निः न, भ्राजसा रुक्म-वक्षसः, वातासः न स्व-युजः, सद्य-ऊतयः, प्र-ज्ञातारः न ज्येष्ठाः, सोमाः न सु-शर्माणः, ऋतं यते सु-नीतयः।

अर्थ- ४१५ वे वीर (विप्रासः न) ज्ञानी पुरुषों के समान (मन्मभिः) मननीय काव्यों से (सु-आध्यः) उत्कृष्ट विचार प्रकट करनेहारे, (देवाव्यः न) देवोंको संतुष्ट करनेहारे भक्तों के तुल्य (यज्ञैः सु-अप्नसः) बहुतसे यज्ञ करके अच्छे कार्य करनेवाले, (राजानः न) नरेशों के समान (चित्राः) आश्चर्यकारक कर्म करनेवाले और (सु-संदृशः) अतिशय सुन्दर स्वरूपवाले हैं तथा (क्षितीनां) अपने गृहमें ही संतुष्ट रहनेवाले (मर्याः न) मानवों के समान (अ-रेपसः) पापरहित हैं।

४१६ (ये) जो (अग्निः न) अग्नितुल्य (भ्राजसा) तेजसे युक्त (रुक्म-वक्षसः) स्वर्णमुद्राओंके हार वक्षःस्थलपर धारण करनेहारे, (वातासः न) वायुप्रवाहके समान (स्व-युजः) स्वयंही काममें जुट जानेवाले, (सद्य-ऊतयः) तुरन्त रक्षा करनेहारे, (प्र-ज्ञातारः न) उत्कृष्ट ज्ञानियोंके तुल्य (ज्येष्ठाः) श्रेष्ठ, (सोमाः न) सोमों के समान (सु-शर्माणः) अत्यन्त सुखदायक तथा (ऋतं यते) सत्यकी ओर जानेवाले के लिए (सु-नीतयः) उत्तम पथप्रदर्शक हैं।

भावार्थ— ४१५ ये वीर ज्ञानी लोगोंके समान मननीय काव्योंसे सुविचारों का प्रचार करनेवाले, यज्ञरूपी सत्कर्मोंसे देवताओं को संतुष्ट करनेहारे, नरेशों की नाईं अनूठे एवं सराहनीय कार्यकलाप निभानेवाले और अपरिग्रह मनोवृत्तिके सज्जनोंके तुल्य निष्पाप हैं।

४१६ जगमगाते मुद्राहार पहननेके कारण द्योतमान, स्वेच्छा से कार्यमें निरत, ज्ञानी, श्रेष्ठ, शान्त, सुखदायी, तथा सन्मार्गपर से चलनेवाले मानवों के तुल्य दूसरों को अच्छी राह बतलानेवाले ये वीर सैनिक हैं।

टिप्पणी— ४१५ (१) स्वाध्य= [सु+आ+ध्य (ध्यै चिन्तायाम्) चिंतन करना, ध्यान करना, सोचना] भली भाँति सोचनेहारा। (२) देवाव्य= (देव+अव् प्रीतितृप्त्योः) देवों को संतुष्ट करनेहारा। (३) स्वप्नसः= (सु+ अप्न= कृत्य) अच्छे कृत्य करनेहारे, सत्कर्म करनेवाले। (४) क्षितिः= पृथ्वी, मनुष्य, स्वदेश। क्षि-ति= [क्षि निवासे, गृहे तिष्ठतीति। यथा प्रतिग्रहार्थं अन्यत्र अगत्वा स्वगृहे एव अनुतिष्ठन्तः निर्दोषाः भवन्ति तादृशाः (सा० भा०)] जो कुछ अपने घरपर मिलेगा, उसीमें संतुष्ट रहकर प्रतिग्रहके लिए घरघर न घूमनेवाला, अपरिग्रह मनोवृत्ति का।

(४१७) वातासः । न । ये । धुनयः । जिगत्नवः । अग्नीनाम् । न । जिह्वाः । विऽरोकिणः ।
वर्मण्ऽवन्तः । न । योधाः । शिमीऽवन्तः । पितॄणाम् । न । शंसाः । सुऽरातयः ॥३॥
(४१८) रथानाम् । न । ये । अराः । सऽनाभयः । जिगीवांसः । न । शूराः । अभिऽद्यवः ।
वरेऽयवः । न । मर्याः । घृतऽप्रुषः । अभिऽस्वर्तारः । अर्कम् । न । सुऽस्तुभः ॥४॥
(४१९) अश्वासः । न । ये । ज्येष्ठासः । आशवः । दिधिषवः । न । रथ्यः । सुऽदानवः ।
आपः । न । निम्नैः । उदऽभिः । जिगत्नवः । विश्वऽरूपाः । अङ्गिरसः । न । सामऽभिः॥५॥

अन्वयः— ४१७ ये, वातासः न धुनयः, जिगत्नवः, अग्नीनां जिह्वाः न विरोकिणः, वर्मण्वन्तः योधाः न शिमी-वन्तः, पितॄणां शंसाः न सु-रातयः। ४१८ ये, रथानां अराः न स-नाभयः, जिगीवांसः शूराः न अभि-द्यवः, वर-ईयवः मर्त्याः न घृत-प्रुषः, अर्कं अभि-स्वर्तारः न सु-स्तुभः। ४१९ ये, अश्वासः न, ज्येष्ठासः आशवः, दिधिषवः रथ्यः न, सु-दानवः, निम्नैः उदभिः, आपः न, जिगत्नवः, विश्व-रूपाः सामभिः अङ्गिरसः न।

अर्थ— ४१७ (ये) जो ये वीर (वातासः न) वायुके समान (धुनयः) शत्रुदलको हिला देनेवाले, (जिगत्नवः) वेगपूर्वक जानेहारे, (अग्नीनां जिह्वाः न) अग्नी की लपटों के तुल्य (विरोकिणः) देदीप्यमान, (वर्मण्वन्तः) कवचधारी (योधाः न) योद्धाओं के समान (शिमी-वन्तः) शूरतापूर्ण कार्य करनेहारे और (पितॄणां शंसाः न) पितरोंके आशीर्वादों के समान (सु-रातयः) अच्छे दान देनेवाले हैं।

४१८ (ये) जो वीर (रथानां अराः न) रथोंके पहियोंमें विद्यमान आरों के तुल्य (स-नाभयः) एकही केन्द्रमें रहनेवाले, (जिगीवांसः शूराः न) विजयेच्छु वीरोंके समान (अभि-द्यवः) सभी प्रकारसे तेजस्वी, (वर-ईयवः) अभीष्ट प्राप्त करनेहारे (मर्याः न) मानवोंके समान (घृत-प्रुषः) घृत आदि पौष्टिक वस्तुओंकी समृद्धि करनेवाले, (अर्कं) पूज्य देवताके (अभि-स्वर्तारः न) स्तोत्र पढनेवाले के समान (सु-स्तुभः) भली प्रकार काव्यगायन करनेवाले हैं।

४१९ (ये) जो (अश्वासः न) घोडोंके समान (ज्येष्ठासः) श्रेष्ठ हैं, तथा (आशवः) शीघ्र गति-से जानेवाले हैं, (दिधिषवः) विपुल धन समीप रखनेवाले (रथ्यः न) रथोंसे संपन्न होनेवाले महारथि-योंके समान (सु-दानवः) अच्छे दानशूर, (निम्नैः उदभिः) ढलती जगह की ओर जानेवाले जलप्रवाहोंके (आपः न) जलोंकी नाई (जिगत्नवः) वडे वेगसे जानेवाले, (विश्व-रूपाः) भाँति भाँतिके रूप धारण करनेहारे और (सामभिः) सामगानों से (अङ्गिरसः न) अंगिरसोंके तुल्य ये वीर अच्छे गायक हैं।

भावार्थ- ४१७ ये वीर शत्रुको जड मूलसे उखाड फेंक देनेवाले, अग्निवत् तेजस्वी, कवचधारी बनकर लडनेवाले तथा शूरता दर्शानेवाले हैं और इनके दान पितरोंके आशीर्वादोंके समान बहुतही सहायक हैं। ४१८ ये वीर एक उद्देश्यसे प्रभावित हो कार्य करनेवाले, विजय पानेकी चाह रखनेवाले, तेजस्वी, शूर, सबको समृद्धि प्रदान करनेहारे तथा पूजनीय वीरोंके काव्यका गायन करनेवाले हैं। ४१९ ये वीर घोडोंके समान वेगसे जानेहारे, महारथियोंके समान उदार, उचित मौकेपर विभिन्न स्वरूप धारण कर कार्य करनेमें बडेही कुशल, जलौघोंके समान निम्न स्थलमें पहुँचकर शान्ति प्रदान करनेहारे और सामगान करनेमें बिलकुल अंगिरसोंके समान कुशल हैं।

टिप्पणी— [४१८] (१) नाभिः = पहियेकी नाभि, केन्द्र, नेता, प्रमुख। (२) अभि-स्वर्तृ = (स्वृ = शब्दोपतापयोः) आवाज करनेहारा, उच्चार करनेहारा, (स्तुति करनेवाला)। (अराः न) जिस भाँति चक्रके आरे समान होते हैं, वैसेही ये सभी वीर सैनिक समान हैं। (देखिए मंत्र ९५; ३०५; ४५३।)

(४२०) ग्रावा॑णः । न । सू॒रय॑ः । सिन्धु॑ऽमातरः । आ॒ऽद॒र्दि॒रास॑ः । अद्र॑यः । न । वि॒श्वहा॑ । शि॒शूला॑ः । न । क्री॒ळय॑ः । सु॒ऽमा॒तर॑ः । म॒हा॒ऽग्रा॒मः । न । याम॑न् । उ॒त । त्वि॒षा ॥ ६ ॥

(४२१) उ॒षसा॑म् । न । के॒तव॑ः । अ॒ध्व॒र॒ऽश्रिय॑ः । शु॒भ॒म्ऽयव॑ः । न । अ॒ञ्जिऽभि॑ः । वि । अ॒श्वि॒त॒न् । सिन्ध॑वः । न । य॒यिय॑ः । भ्राज॑त्ऽऋष्टयः । प॒रा॒ऽवत॑ः । न । योज॑नानि । म॒मि॒रे ॥७॥

(४२२) सु॒ऽभा॒गान् । न॒ः । दे॒वा॒ः । कृ॒णु॒त । सु॒ऽरत्ना॑न् । अ॒स्मान् । स्तो॒तॄन् । म॒रु॒तः । व॒वृ॒धा॒नाः । अधि॑ । स्तो॒त्रस्य॑ । स॒ख्यस्य॑ । गा॒त । स॒नात् । हि । व॒ः । र॒त्न॒ऽधेया॑नि । सन्ति॑ ॥८॥

अन्वयः— ४२० सूरयः, ग्रावाणः न सिन्धु-मातरः, आ-दर्दिरासः अद्रयः न विश्व-हा, सु-मातरः शिशूलाः न क्रीळयः, उत महा-ग्रामः न यामन् त्विषा। ४२१ उषसां केतवः न, अध्वर-श्रियः, शुभं-यवः न, अञ्जिभिः वि अश्वितन्, सिन्धवः न ययियः, भ्राजत्-ऋष्टयः, परावतः न योजनानि ममिरे। ४२२ (हे) देवाः ववृधानाः मरुतः! अस्मान् नः स्तोतॄन् सु-भागान् सु-रत्नान् कृणुत, सख्यस्य स्तोत्रस्य अधि गात, हि वः रत्न-धेयानि सनात् सन्ति।

अर्थ— ४२० (सूरयः) ये ज्ञानी वीर (ग्रावाणः न) मेघोंके समान (सिन्धु-मातरः) नदियोंके बनानेहारे, (आ-दर्दिरासः) सभी प्रकारसे शत्रुका विनाश करनेहारे (अद्रयः न) वज्रोंके तुल्य (विश्व-हा) सभी शत्रुओंका संहार करनेहारे, (सु-मातरः) उत्तम माताओंके (शिशूलाः न) निरोगी पुत्र-संतानों के समान (क्रीळयः) खिलाडी (उत) और (महा-ग्रामः न) बडे संग्राम-चतुर योद्धाके समान शत्रुपर (यामन्) हमला करते समय (त्विषा) तेजस्वी दीख पडते हैं।

४२१ ये वीर (उषसां केतवः न) उषःकालीन किरणोंके समान तेजस्वी, (अध्वर-श्रियः) यज्ञके कारण सुहानेवाले, (शुभं-यवः न) कल्याणप्राप्तिके लिए प्रयत्न करनेवाले वीरोंके समान (अञ्जिभिः) वीरभूषणों या गणवेशोंसे (वि अश्वितन्) विशेष ढंगसे प्रकाशित हो रहे हैं। ये (सिन्धवः न) नदियोंके समान (ययियः) वेगपूर्वक जानेहारे, (भ्राजत्-ऋष्टयः) तेजस्वी हाथियार धारण करनेहारे तथा (परावतः न) दूर जानेहारे प्रवासियोंके समान (योजनानि) कई योजन (ममिरे) पार कर चले जाते हैं।

४२२ हे (देवाः) प्रकाशमान तथा (ववृधानाः) बढनेवाले (मरुतः!) मरुतो! (अस्मान्) हमें और (नः स्तोतॄन्) हमारे सभी कवियोंको (सु-भागान्) अच्छे भाग्यवान एवं (सु-रत्नान्) उत्तम रत्नोंसे युक्त (कृणुत) करो। (सख्यस्य स्तोत्रस्य) हमारी मित्रताके काव्यका (अधि गात) गायन करो। (हि) क्योंकि (वः) तुम्हारे (रत्न-धेयानि) रत्नोंके दान (सनात्) चिरकालसे (सन्ति) प्रचलित हैं।

भावार्थ- ४२० ये वीर जनताके सहायक, शस्त्रों के तुल्य शत्रुनाशक, उत्तम माताके आरोग्यसंपन्न बच्चोंकी नाईं खिलाडी और युद्धकुशल योद्धाके जैसे शत्रुदलपर टूट पडते समय प्रसन्नचेता बननेवाले हैं। ४२१ ये वीर तेजस्वी, अपने शरीरोंको सँवारनेवाले, वेगपूर्वक दौडनेवाले, आभामय हथियार रखनेवाले, शीघ्र पहुँच जानेकी इच्छा करनेवाले यात्रियोंके समान कई योजन थकावट न दर्शाते हुए जानेवाले हैं। ४२२ हे वीरो! हमें तथा हमारे सभी कवियोंको प्रचुर मात्रामें धन एवं रत्न दे दो, क्योंकि तुम्हारा धनदानका कार्य लगातार प्रचलित रहता है। मित्रदृष्टि हर स्थानपर पनपने लगे, इसीलिए इस काव्यका गायन करो और मित्रतापूर्ण दृष्टिको बढाओ।

टिप्पणी— [४२०] (१) ग्रावन् = पत्थर, मेघ, पर्वत। (२) आ-दर्दिर = (आ + दृ = फोडना, नाश करना) विनाशक। [४२१] (१) पर+अवत् = दूर जानेवाला। [४२२] (१) धेयं = बटोरना, लेना, पोषण करना। (२) स्तोता = कवि। (३) सख्यस्य स्तोत्रं = मित्रत्व बढानेके लिए किया हुआ काव्य, सभी जगह मित्रभाव बढे, इस हेतुसे रचा हुआ काव्य।

(वा० यजु० ३।४४)

(४२३) प्रघासिनऽइति प्रऽघासिनः । हवामहे । मरुतः । च । रिशादसः ।
करम्भेण । सजोषसऽइति सऽजोषसः ॥४४॥

(वा० यजु० ७।३६)

(४२४) उपयामगृहीत इत्युपयामऽगृहीतः । असि । इन्द्राय । त्वा । मरुत्वते । एषः । ते ।
योनिः । इन्द्राय । त्वा । मरुत्वते । उपयामगृहीत इत्युपयामऽगृहीतः । असि । मरुताम् । त्वा ।
ओजसे ॥३६॥

(वा० यजु० १७।८०-८६)

(४२४) शुक्रज्योतिश्च चित्रज्योतिश्च सत्यज्योतिश्च ज्योतिष्माँश्च । शुक्रश्चऽऋतपाश्चात्यंहाः ॥८०॥

[१] शुक्रज्योतिरिति शुक्रऽज्योतिः । च । चित्रज्योतिरिति चित्रऽज्योतिः । च । सत्यज्यो-तिरिति सत्यऽज्योतिः । च । ज्योतिष्मान् । च ।
शुक्रः । च । ऋतपाऽइत्यृतऽपाः । च । अत्यंहा इत्यतिऽअंहाः ॥८०॥

अन्वयः— ४२३ प्र-घासिनः रिश-अदसः करम्भेण स-जोषसः च मरुतः हवामहे । ४२४ उपयाम-गृहीतः असि, मरुत्वते इन्द्राय त्वा, एष ते योनिः, मरुत्वते इन्द्राय उपयाम-गृहीतः असि, मरुतां ओजसे त्वा । ४२४ (१) शुक्र-ज्योतिः च चित्र-ज्योतिः च सत्य-ज्योतिः च ज्योतिष्मान् च शुक्रः च ऋत-पाः च अत्यंहाः [हे *मरुतः ! यूयं अस्मिन् यज्ञे एतन] ।

अर्थ— ४२३ (प्र-घासिनः) उत्तम अन्नका सेवन करनेहारे, (रिश-अदसः) हिंसकोंका वध करनेहारे और (करम्भेण स-जोषसः च) दहीआटेको सब मिलकर सेवन करनेवाले (मरुतः हवामहे) वीर मरुतों को हम बुलाते हैं । ४२४ तू (उपयाम--गृहीतः असि) उपयाम वर्तनमें धरा हुआ सोम है, (मरुत्वते इन्द्राय) वीर मरुतोंके साथ रहनेवाले इन्द्रके लिए (त्वा) तू है । (एषः ते योनिः) यह तेरा उत्पत्तिस्थान है । (मरुतां ओजसे) वीर मरुतोंके तुल्य बल प्राप्त हो जाय, इसीलिए हम (त्वा) तुझे अर्पित करते हैं या तेरा ग्रहण करते हैं । ४२४ (१) (शुक्र--ज्योतिः च) अति शुभ्र तेजसे युक्त, (चित्र-ज्योतिः च) आश्चर्यजनक तेजसे पूर्ण, (सत्य--ज्योतिः च) सत्यके तेजसे भरा हुआ, (ज्योतिष्मान् च) पर्याप्त मात्रामें प्रकाशमान, (शुक्रः च) पवित्र, (ऋत--पाः च) सत्यका संरक्षण करनेहारा और (अत्यंहाः) पापसे दूर रहनेवाला [इस भाँति नाम धारण करनेहारे वीर मरुतो ! इस हमारे यज्ञमें तुम पधारो]

भावार्थ— ४२३ शत्रुविनाशक तथा सब इकट्ठे होकर अन्नका सेवन करनेवाले मरुतोंको हम अपने समीप बुलाते हैं । ४२४ उपयामनामक पात्रसें सोमरस उंडेलकर इन्द्र तथा मरुतोंको दिया जाता है और ऐसा करनेसे मरुतोंके समान बल प्राप्त हो, ऐसी प्रार्थना उपासक करता है तथा वह उस सोमरसका ग्रहण एवं दान करता है । ४२४(१) १ शुक्रज्योति, २ चित्रज्योति, ३ सत्यज्योति, ४ ज्योतिष्मान्, ५ शुक्र, ६ ऋतपाः ७ अत्यंहाः ये सात मरुत् हैं । यह मरुतोंकी पहली पंक्ति है ।

टिप्पणी— [४२३] (१) प्र-घासिन् = (घस् अदने = खाना; घासः = अन्न) उत्तम अन्नको खानेवाले, पर्याप्त अन्नका सेवन करनेवाले । (२) करम्भ = सत्तूका आटा दहीमें मिलाकर तैयार किया हुआ खाद्य पदार्थ । दही-भात, कोईभी अन्न दहीमें मिला देनेपर सिद्ध होनेवाली खानेकी चीज । [४२४ (१)] (१) अत्यंहस् = (अति + अंहस्-) पापसे दूर रहनेवाला । [हे *मरुतः ! —— यह अध्याहार मंत्र ४२५ में से लिया है ।

(४२४) ईदृङ् चान्यादृङ् च सदृङ् च प्रतिसदृङ् च। मितश्च सम्मितश्च सभराः ॥८१॥

[२] ईदृङ्। च। अन्यादृङ्। च। सदृङ् ।सदृङिति सऽदृङ्। च। प्रतिसदृङिति प्रतिऽसदृङ्। च। मितः। च। सम्मितऽइति सम्ऽमितः। च। सभराऽइति सऽभराः ॥८१॥

(४२४) ऋतश्च सत्यश्च ध्रुवश्च धरुणश्च। धर्ता च विधर्ता च विधारयः ॥८२॥

[३] ऋतः। च। सत्यः। च। ध्रुवः। च। धरुणः। च। धर्ता। च। विधर्तेति विऽधर्ता। च। विधारयऽइति विऽधारयः ॥ ८२ ॥

(४२४) ऋतजिच्च सत्यजिच्च सेनजिच्च सुषेणश्च। अन्तिमित्रश्च दूरेऽअमित्रश्च गणः ॥८३॥

[४] ऋतजिदित्यृतऽजित्। च। सत्यजिदिति सत्यऽजित्। च। सेनजिदिति सेनऽजित्। च। सुषेणः। सुसेनऽइति सुऽसेनः। च।
अन्तिमित्रऽइत्यन्तिऽमित्रः। च। दूरेऽअमित्रऽइति दूरेऽअमित्रः। च। गणः ॥ ८३ ॥

अन्वयः— ४२४ (२) ई--दृङ् च अन्या--दृङ् च स-दृङ् च प्रति--सदृङ् च मितः च सं--मितः च स-भराः [हे मरुतः ! यूयं अस्मिन् यज्ञे एतन ।] ४२४ (३) ऋतः च सत्यः च ध्रुवः च धरुणः च धर्ता च वि--धर्ता च वि--धारयः [हे मरुतः ! यूयं अस्मिन् यज्ञे एतन]। ४२४ (४) ऋत-जित् च सत्य-जित् च सेन-जित् च सु-षेणः च अन्ति-मित्रः च दूरेऽअ-मित्रः च गणः [हे मरुतः ! यूयं अस्मिन् यज्ञे एतन]।

अर्थ— ४२४ (२) (ई-दृङ् च) समीप की वस्तुपर दृष्टि रखनेवाला, (अन्या-दृङ् च) दूसरी ओर निगाह डालनेवाला, (स-दृङ् च) सबको सम दृष्टिसे देखनेवाला, (प्रति-संदृङ् च) प्रत्येकको एक विशिष्ट दृष्टिसे देखनेहारा, (मितः च) संतुलित भावसे वर्ताव रखनेवाला, (सं-मितः च) सबसे समरस होनेवाला, (स-भराः) सभी कामोंका बोझ अपने सरपर उठानेवाला- [इन नामोंसे प्रख्यात वीर मरुतो ! इस हमारे यज्ञमें आ जाओ। ४२४ (३) (ऋतः च) सरल व्यवहार करनेहारा, (सत्यः च) सत्याचरणी, (ध्रुवः च) अटल एवं अडिग भावसे पूर्ण, (धरुणः च) सबको आश्रय देनेवाला, (धर्ता च) धारकशक्तिसे युक्त, (वि-धर्ता च) विविध ढंगोंसे धारण करनेमें समर्थ और (वि-धार-यः) विशेष रीतिसे धारण कर प्रगतिशील बननेवाला- [इन नामोंसे विख्यात वीर मरुतो ! हमारे यज्ञमें पधारो।] ४२४ (४) (ऋत-जित् च) सरल राहसे चलकर यशस्वी होनेवाला, (सत्य-जित् च) सत्यसे जीतनेवाला, (सेन-जित् च) शत्रुसेनापर विजय पानेवाला, (सु-षेणः च) अच्छी सेना समीप रखनेवाला, (अन्ति-मित्रः च) मित्रोंको समीप करनेवाला, (दूरेऽअ--मित्रः च) शत्रुको दूर हटानेवाला और (गणः) गिनती करनेवाला-- [इन नामोंसे विभूषित वीरो ! हमारे इस यज्ञमें आओ]

भावार्थ— ४२४ (२) ८ ईदृङ्, ९ अन्यादृङ्, १० सदृङ्, ११ प्रतिसंदृङ्, १२ मित, १३ संमित तथा १४ सभर इन सात मरुतोंका उल्लेख यहाँपर किया है। यह मरुतोंकी दूसरी कतार है। ४२४ (३) १५ ऋत, १६ सत्य, १७ ध्रुव, १८ धरुण, १९ विधर्ता, २० धर्ता, २१ विधारय ऐसे सात मरुतोंका उल्लेख यहाँपर है। यह मरुतोंकी तीसरी पंक्ति है। ४२४ (४) २२ ऋतजित्, २३ सत्यजित्, २४ सेनजित्, २५ सुषेण, २६ अन्तिमित्र, २७ दूरेऽमित्र, २८ गण इन सात मरुतोंका निर्देश यहाँपर किया है। यह मरुतोंकी चतुर्थ कतार है।

टिप्पणी— [४२४ (३)] (१) ऋत = सरल, विश्वासार्ह, पूज्य, प्रदीप्त, सत्य, यज्ञ, सत्कर्म। (२) धरुण = ढोनेवाला, ले जानेवाला, आश्रय देनेहारा। [४२४ (४)] (१) गणः = (गण् परिसंख्याने) गिनती करनेहारा, चतुर्दिक् ध्यान देनेहारा, चौकन्ना।

(४२५) ईदृक्षास॒ः । ए॒तादृ॑क्षास॒ः । ऊँ॒ऽस्यू॒ँ । सु । न॒ः । स॒दृक्षा॑स॒ इति॑ स॒ऽदृक्षा॑सः । प्रति॑सदृक्षास॒ऽइति॒ प्रति॑ऽसदृक्षासः । आ । इ॒त॒न॒ । मि॒तास॑ः । च॒ । साम्मि॑ता॒स॒ऽइति॒ सम्ऽमि॑तासः । न॒ः । अ॒द्य । सभ॑रस॒ऽइति॒ स॒ऽभ॑रसः । म॒रु॒त॒ः । य॒ज्ञे । अ॒स्मिन् ॥८४॥

(४२६) स्वत॑वा॒निति॒ स्वऽत॑वान् । च॒ । प्र॒घा॒सीति॑ प्र॒ऽघा॒सी । च॒ । सा॒न्त॒प॒न॒ऽइति॑ सा॒म्ऽत॒प॒नः । च॒ । गृ॒ह॒मे॒धीति॑ गृ॒ह॒ऽमे॒धी । च॒ । क्री॒डी । च॒ । शा॒की । च॒ । उ॒ज्जे॒षीत्यु॑त्ऽजे॒षी ॥८५॥

[(४२६) उ॒ग्रश्च॑ भी॒मश्च॒ ध्वान्त॑श्च॒ धुनि॑श्च । सा॒स॒ह्वाँश्चा॑भियु॒ग्वा च॑ वि॒क्षिपः॒ स्वाहा॑ । (वा०य०३९।७)

[१] उ॒ग्रः । च॒ । भी॒मः । च॒ । ध्वा॒न्त॒ःऽइति॒ धुऽआ॒न्तः । च॒ । धुनि॑ः । च॒ । सा॒स॒ह्वान् । स॒स॒ह्वानिति॑ स॒स॒ह्वान् । च॒ । अ॒भि॒ऽयु॒ग्वेत्य॑भि॒ऽयु॒ग्वा । च॒ । वि॒क्षि॒प॒ऽइति॑ वि॒ऽक्षि॒पः॑ । स्वाहा॑ ॥७॥]

(४२७) इन्द्र॑म् । दैवी॑ः । वि॒श॑ः । म॒रुत॑ः । अनु॑वर्त्मा॒न॒ऽइत्यनु॑ऽवर्त्मानः । अ॒भ॒व॒न् । यथा॑ । इन्द्र॑म् । दैवी॑ः । वि॒श॑ः । म॒रुत॑ः । अनु॑वर्त्मा॒न॒ इत्यनु॑ऽवर्त्मानः । अ॒भ॒व॒न् । ए॒वम् । इ॒मम् । यज॑मानम् । दैवी॑ः । च॒ । वि॒श॑ः । मा॒नु॒षीः॑ । च॒ । अनु॑वर्त्मा॒न॒ऽइत्यनु॑ऽवर्त्मानः । भ॒व॒न्तु॒ ॥८६॥

अन्वयः— ४२५ ई-दृक्षासः एता-दृक्षासः ऊ स-दृक्षासः प्रति-सदृक्षासः सु-मितासः सं-मितासः नः स-भरसः (हे) मरुतः ! अद्य नः अस्मिन् यज्ञे एतन । ४२६ स्व-तवान् च प्र-घासी च सान्तपनः च गृह-मेधी च क्रीडी च शाकी च उत्-जेपी च [हे मरुतः ! यूयं अस्मिन् यज्ञे एतन] । ४२६(१)उग्रः च भीमः च ध्वान्तः च धुनिः च सासह्वान् च अभि-युग्वा च विक्षिपः स्वाहा । ४२७ दैवीः विशः मरुतः इन्द्रं अनु-वर्त्मानः अभवन् (यथा दैवीः०००० अभवन्) एवं दैवीः मानुषीः च विशः इमं यजमानं अनु-वर्त्मानः भवन्तु ।

अर्थ- ४२५ (ई-दृक्षासः) इन समीपस्थ वस्तुओंपर विशेष दृष्टि रखनेहारे, (एता-दृक्षासः) उन सुदूर वर्ती चीजोंपर विशेष ध्यान केन्द्रित करनेवाले, (ऊ स-दृक्षासः) सब मिलकर एक विचारसे देखनेहारे, (प्रति-सदृक्षासः) प्रत्येककी ओर विशेष ध्यान देनेवाले, (सु-मितासः) अच्छे ढंगसे प्रमाणबद्ध, (सं-मितासः) मिलजुलकर काम करनेहारे तथा (नः) हमारा (स-भरसः) समान अनुपातमें पोषण करनेवाले हे (मरुतः !) वीर मरुतो ! (अद्य) आज दिन (नः अस्मिन् यज्ञे) हमारे इस यज्ञमें (एतन) आओ।

४२६ (स्व-तवान्) अपने निजी बलके सहारे खडा हुआ, (प्र-घासी च) भली भाँति अन्न तैयार करनेवाला, (सान्तपनः च) शत्रुओंको परिताप देनेवाला, (गृह-मेधी च) गृहस्थधर्म का पालन करनेवाला, (क्रीडी च) खिलाडी, (शाकी च) सामर्थ्ययुक्त तथा (उत्-जेपी च) दुश्मनोंपर अच्छी विजय पानेहारा [इस भाँति नाम धारण करनेहारे वीर मरुतो ! इस हमारे यज्ञमें आओ ।]

४२६ (१) (उग्रः च) उग्र, (भीमः च) भीषण, (ध्वान्तः च) शत्रुओं के आँखों में अँधियारी छा जाय ऐसा कार्य करनेहारा, (धुनिः च) शत्रुदलको हिला देनेवाला, (सासह्वान् च) सहनशक्तिसे युक्त, (अभि-युग्वा च) शत्रुदलसे सामने जूझनेवाला, (वि-क्षिपः च) विविध ढंगोंसे शत्रुओं को भगानेवाला-इस भाँति नाम धारण करनेहारे वीर मरुतोंको ये हविष्यान्न (स्वाहा) अर्पित हों।

४२७ (दैवीः विशः मरुतः) ये वीर मरुत् दैवी प्रजाजन हैं और वे (इन्द्रं अनु-वर्त्मानः) इन्द्र के अनुयायी (अभवन्) हुए हैं। (एवं) इसी भाँति (दैवीः मानुषीः च विशः) देवलोक एवं मनुष्यलोक के प्रजाजन (इमं यजमानं) इस यज्ञ करनेहारे के (अनु-वर्त्मानः भवन्तु) अनुयायी हों।

भावार्थ— ४२५ २९ ईदृक्षासः, ३० एतादृक्षासः, ३१ सदृक्षासः, ३२ प्रतिसदृक्षासः, ३३ सुमितासः, ३४ संमितासः, ३५ सभरसः इन सात मरुतों का उल्लेख इस मन्त्रमें है। यह मरुतोंकी पंचम पंक्ति है।

४२६ ३६ स्वतवान्, ३७ प्रघासी, ३८ सान्तपन, ३९ गृहमेधी, ४० क्रीडी, ४१ शाकी, ४२ उज्जेषी इन सात मरुतोंका निर्देश यहाँ है। यह मरुतोंकी छठी पंक्ति है।

४२६ (१) ४३ उग्र, ४४ भीम, ४५ ध्वान्त, ४६ धुनि, ४७ सासह्वान्, ४८ अभियुग्वा, ४९ विक्षिप; इस भाँति सात मरुतोंकी संख्या यहाँपर निर्दिष्ट है। यह मरुतोंकी सप्तम पंक्ति है।

टिप्पणी— [४२६ (१)] (१) ध्वान्तः = (ध्वन् शब्दे) शब्दकारी, अँधेरा। (२) सासह्वान् = (स-आ-[सह् मर्षणे]+वत्) सहनशक्तिसे युक्त। [ऋ० ८.९६.८ मंत्रमें "त्रिः षष्टिस्त्वा मरुतो वावृधाना" अर्थात् समूचे मरुतोंकी संख्या ६३ है, ऐसा स्पष्ट कहा है। उसी मंत्रपर की हुई सायणाचार्यजी की टीकामें यों लिखा है- "त्रिः त्रयः। षष्टिरित्युत्तरसंख्याकाः मरुतः। ते च तैत्तिरीयके 'ईदृङ् चान्यादृङ् च' (तै० सं० ४।६।५।५) इत्यादिना नवसु गणेषु सप्त सप्त प्रतिपादिताः। तत्रादितः पञ्च गणाः संहितायामाम्नायन्ते। 'स्वतवांश्च प्रघासी च सान्तपनश्च गृहमेधी च क्रीडी च शाकी चोज्जेषी' (वा० सं० १७।८५) इति खैलिकः षष्ठो गणः। ततो 'धुनिश्च ध्वान्तश्च' (तै० आ० ४।२४) इत्याद्यास्त्रयोऽरण्येऽनुवाक्याः। इत्थं त्रयःषष्टिसंख्याकाः-"

तैत्तिरीय संहिताका परिगणन इस भाँति है--

	संख्या	
(१) ईदृङ् च—	७	(वा० यजु० मंत्रसंख्या १७।८१)
(२) शुक्रज्योतिश्च-	७	(" " " ८०)
(३) ऋतजिच्च-	७	(" " " ८३)
(४) ऋतश्च-	७	(" " " ८२)
(५) ईदृक्षासः-	७	(" " " ८४)
	३५	

टीकाके अनुसार देखना हो तो--

(६) स्वतवान्--	७	(वा० य० १७।८५)
(७) धुनिश्च ध्वान्तश्च--	७	(तै० आ० ४।२४)
(८) उग्रश्च धुनिश्च--	१२	" "
	१९	

टीकामें 'धुनिश्च इत्याद्यास्त्रयः' यों कहा है, परन्तु ७×३ = २१ मरुत् स्वतंत्र रीतिसे नहीं पाये गये हैं। केवल १९ हैं। जिनमेंसे ५ पुनरुक्त हैं। सब मिलाकर तै० सं ३५+वा० य० ७+तै० आ० १४ = ५६ मरुतोंकी गिनती पाई जाती है। (वा० य० ३९।७) 'उग्रश्च भीमश्च' गिनतीकोभी इसीसे संयुक्त करें और उसमेंसेभी पुनरुक्त ४ नाम हटा दें तो (पहले के ५६+) शेष ३ मिलानेपर कुल ५९ संख्याही दीख पडती है। शेष ४ नामोंका अनुसन्धान जिज्ञासुओंको करना चाहिए। 'एकोनपञ्चाशत्संख्याकाः मरुतः' ऐसा वर्णन अनेक स्थानोंपर पाया जाता है, उस प्रकार (वा० य० १७।८० से ८५ और ३९।७) तक ४९ मरुतोंकी गणना स्पष्ट है।

अब (वा० य० १७।८० से ८५ और ३९।७); (तै० सं० ४।६।५।५) और (तै० आ० ४।२४) इन सभी मंत्रोंकी गणना निम्नलिखित ढंगकी है—

[वा. य. १७।८० – ८५ व ३९।७]—

	१	२	३	४	५	६	७
१	शुक्रज्योति	चित्रज्योति	सत्यज्योति	ज्योतिष्मान्	शुक्र	ऋतप	अत्यंहस्
२	ईदृङ्	अन्यादृङ्	सदृङ्	प्रतिसदृङ्	मित	संमित	सभरस्
३	ऋत	सत्य	ध्रुव	धरुण	धर्ता	विधर्ता	विधारय
४	ऋतजित्	सत्यजित्	सेनजित्	सुषेण	अन्तिमित्र	दूरेऽमित्र	गण
५	ईदृक्षासः	एतादृक्षासः	सदृक्षासः	प्रतिसदृक्षासः	सुमितासः	संमितासः	सभरसः
६	स्वतवान्	प्रघासी	सान्तपन	गृहमेधी	क्रीडी	शाकी	उज्जेषी
७	उग्र	भीम	ध्वान्त	धुनि	सासह्वान्	अभियुग्वा	विक्षिप

(पंचम पंक्तिमें '**संमितासः**' तथा '**सभरसः**' का एकवचन लिया जाय तो '**संमित**' तथा '**सभरस्**' दोनों नाम दूसरी पंक्तिमें पाये जाते हैं यह विचार करने योग्य बात है।)

(तै. सं. ४।६।५।५)

	१	२	३	४	५	६	७
१	ईदृङ्	अन्यादृङ्	एतादृङ्	प्रतिसदृङ्	मित	संमित	समरस्
२	शुक्रज्योति	चित्रज्योति	सत्यज्योति	ज्योतिष्मान्	सत्य	ऋतप	अत्यंहस्
३	ऋतजित्	सत्यजित्	सेनजित्	सुषेण	अन्ति-अमित्र	दूरेऽमित्र	गण
४	ऋत	सत्य	ध्रुव	धरुण	धर्ता	विधर्ता	विधारय
५	ईदृक्षासः	एतादृक्षासः	सदृक्षासः	प्रतिसदृक्षासः	मितासः	संमितासः	सभरसः

(तै. आ. ४।२४)—

	१	२	३	४	५	६	७
१	धुनि	ध्वान्त	ध्वन	ध्वनयन्	निलिम्प	विलिम्प	विक्षिप
२	उग्र	धुनि	ध्वान्त	ध्वन	ध्वनयन्	सहसह्वान्	सहमान
३	सहस्वान्	सहीयान्	एत्य	प्रेत्य	विक्षिप	×	×

यह समूची गणना १०३ हुई। इसमेंसे ४० पुनरुक्त हटा दें, तो ६३ शेष रहते हैं। इस प्रकार (ऋ. ८।९६।८) परकी टीकामें जो ६३ संख्या बतलायी है, वह सुसंगत प्रतीत होती है।

इससे ऐसा जान पडता है कि इन ६३ मरुतोंकी रचना यों बतलायी जा सकती है --

```
×   o o o o o o o   ×
×   o o o o o o o   ×
×   o o o o o o o   ×
×   o o o o o o o   ×
×   o o o o o o o   ×
×   o o o o o o o   ×
×   o o o o o o o   ×
७ पार्श्व-रक्षक  |____ ४९ मरुत् ____|  ७ पार्श्व-रक्षक
                                   = कुल ६३ मरुत्
```

ध्यानमें रहे कि इन मरुतोंकी सेनामें छोटेसे छोटा समुदाय (Unit) ६३ सैनिकोंका माना जाता है। इसका चित्र अगले पृष्ठपर देखिये।

मरुतोंका एक संघ
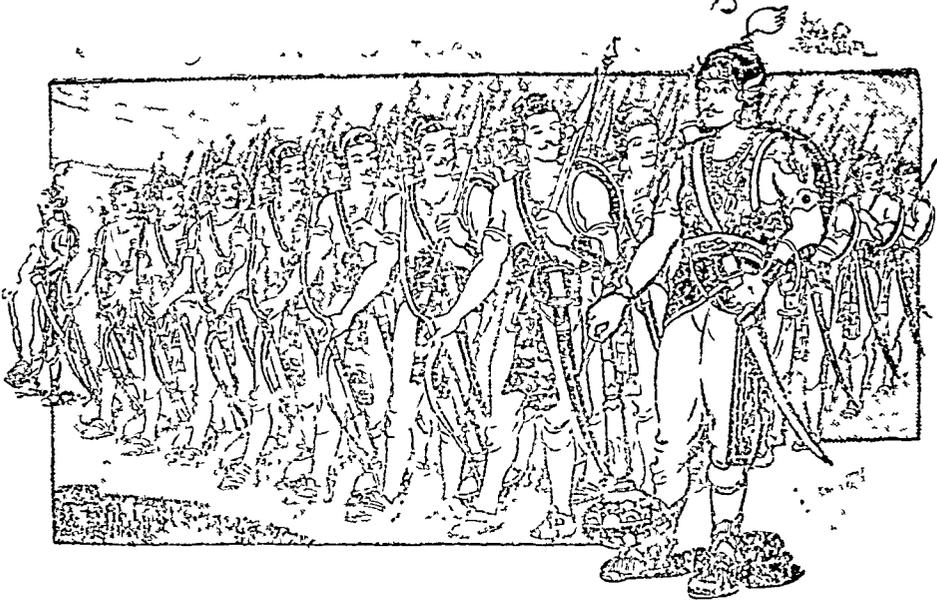
पार्श्वरक्षकोंकी पंक्ति ७ मरुत्	मरुतोंकी सात पंक्तियाँ ४९ मरुत्	पार्श्वरक्षकोंकी पंक्ति ७ मरुत्

७ पार्श्वरक्षक + ४९ मरुत् + ७ पार्श्वरक्षक= कुल ६३ मरुतोंका एक संघ.

(वा० यजु० २५।२०)

(४२८) पृषदश्वा इति पृषत्ऽअश्वाः । मरुतः । पृश्निमातर इति पृश्निऽमातरः ।
शुभंयावान इति शुभम्ऽयावानः । विदथेषु । जग्मयः ।
अग्निजिह्वा इत्यग्निऽजिह्वाः । मनवः । सूरचक्षस इति सूरऽचक्षसः ।
विश्वे । नः । देवाः । अवसा । आ । अगमन् । इह ॥२०॥

अत्रिपुत्र श्यावाश्व ऋषि (साम० ३५६)

(४२९) यदि । वहन्ति । आशवः । भ्राजमानाः । रथेषु । आ ।
पिबन्तः । मदिरम् । मधु । तत्र । श्रवांसि । कृण्वते ॥५॥

ब्रह्मा ऋषि (अथर्व० १।२६।३-४)

(४३०) यूयम् । नः । प्रऽवतः । नपात् । मरुतः । सूर्यऽत्वचसः ।
शर्म । यच्छाथ । सऽप्रथाः ॥३॥

अन्वयः— ४२८ पृषत्-अश्वाः पृश्नि-मातरः शुभं-यावानः विदथेषु जग्मयः अग्नि-जिह्वाः मनवः सूर-चक्षसः मरुतः विश्वे देवाः अवसा नः इह आगमन्।

४२९ यदि आशवः रथेषु भ्राजमानाः मधु मदिरं पिबन्तः आ वहन्ति तत्र श्रवांसि कृण्वते ।

४३० (हे) सूर्य-त्वचसः मरुतः ! प्रवतः नपात् ! यूयं नः स-प्रथाः शर्म यच्छाथ ।

अर्थ— ४२८ रथों को (पृषत्-अश्वाः) धब्बेवाले घोडे जोतनेवाले, (पृश्नि-मातरः) भूमि एवं गौको माता माननेहारे, (शुभं-यावानः) लोककल्याण के लिए हलचल करनेवाले, (विदथेषु जग्मयः) युद्धोंमें जानेवाले, (अग्नि-जिह्वाः) अग्निकी लपटों की नाईं तेजस्वी, (मनवः) विचारशील, (सूर-चक्षसः) सूर्यवत् प्रकाशमान (मरुतः) वीर मरुत् और (विश्वे देवाः) सभी देव (अवसा) संरक्षक शक्तियोंके साथ (नः इह) हमारे यहाँ (आगमन्) आ जायँ ।

४२९ (यदि) जहाँ जहाँ ये (आशवः) वेगपूर्वक जानेहारे, (रथेषु भ्राजमानाः) रथोंमें चमकनेहारे तथा (मधु मदिरं पिबन्तः) मीठा सोमरस पीनेवाले वीर (आ वहन्ति) चले जाते हैं (तत्र) वहाँ वहाँपर (श्रवांसि कृण्वते) विपुल धन पाते हैं ।

४३० हे (सूर्य-त्वचसः मरुतः !) सूर्यवत् तेजस्वी वीर मरुतो ! और (प्रवतः नपात्) अग्ने ! (यूयं) तुम सभी मिलकर (नः) हमें (स-प्रथाः) विपुल (शर्म) सुख (यच्छाथ) दे दो ।

भावार्थ— ४२८ (भावार्थ स्पष्ट है ।) ४२९ जिधर ये वीर सैनिक चले जाते हैं, उधर वे भाँति भाँतिके धन कमाते हैं । ४३० हमें इन देवों की कृपासे सुख मिले ।

टिप्पणी— [४३०] (१) प्रवत्= सुगम मार्ग, ढाल । (२) नपात्= पोता, पुत्र (न-पात्) जिसका पतन न होता हो। प्रवतो नपात्= (Son of the heavenly height i.e. Agni); सीधी राहसेले जाकर न गिरानेवाला । (३) स-प्रथाः= (प्रथस्=विस्तार) विस्तारसे युक्त, विशाल, विपुल ।

(४३१) सुसूदत । मृडत । मृडय । नः । तनूभ्यः । मयः । तोकेभ्यः । कृधि ॥४॥

(अथर्व० ५।२६।५)

(४३२) छन्दांसि । यज्ञे । मरुतः । स्वाहा ।
मातांऽइव । पुत्रम् । पिपृत । इह । युक्ताः ॥५॥

(अथर्व० १३।१।३)

(४३३) यूयम् । उग्राः । मरुतः । पृश्निऽमातरः । इन्द्रेण । युजा । प्र । मृणीत । शत्रून् ।
आ । वः । रोहितः । शृणवत् । सुऽदानवः ।
त्रिऽसप्तासः । मरुतः । स्वादुऽसंमुदः ॥३॥

अन्वयः— ४३१ सु-सूदत मृडत मृडय नः तनूभ्यः तोकेभ्यः मयः कृधि।

४३२ (हे) मरुतः ! युक्ताः इह यज्ञे माताइव पुत्रं छन्दांसि पिपृत, स्वाहा।

४३३ (हे) पृश्नि-मातरः उग्राः मरुतः ! यूयं इन्द्रेण युजा शत्रून् प्र मृणीत, (हे) सु-दानवः स्वादु-सं-मुदः त्रि-सप्तासः मरुतः ! वः रोहितः आ शृणवत्।

अर्थ— ४३१ हमारे शत्रुओं को (सु-सूदत) विनष्ट करो। हमें (मृडत) सुखी करो; हमें (मृडय) सुखी करो। (नः तनूभ्यः) हमारे शरीरों को और (तोकेभ्यः) पुत्रपौत्रोंको (मयः) सुखी (कृधि) करो।

४३२ हे (मरुतः !) वीर मरुतो ! (युक्ताः) हमेशा तैयार रहनेवाले तुम (इह यज्ञे) इस यज्ञमें (माताइव पुत्रं) माता जैसे पुत्रका पालनपोषण करती है, उसी प्रकार हमारे (छन्दांसि) मन्त्रों का, इच्छाओं का (पिपृत) संगोपन करो। (स्वाहा) ये हविष्यान्न तुम्हें अर्पित हों।

४३३ हे (पृश्नि-मातरः) भूमिको माता माननेवाले, (उग्राः) शूर (मरुतः !) वीर मरुतो ! (यूयं) तुम (इन्द्रेण युजा) इन्द्रसे युक्त होकर (शत्रून् प्र मृणीत) शत्रुओंका संहार करो। हे (सु-दानवः) दानी, (स्वादु-सं-मुदः) मीठे अन्नसे अच्छा आनन्द पानेहारे तथा (त्रि-सप्तासः) इक्कीस विभागोंमें बँटे हुए (मरुतः !) वीर मरुतो ! (वः रोहितः) तुम्हारा लाल रंगवाला हरिण (आ शृणवत्) तुम्हारी बात सुन ले, तुम्हारी आज्ञामें रहे।

भावार्थ— ४३१ हमारे शत्रुओंका विनाश होकर हमें सुख प्राप्त हो।

४३२ हमारी आकांक्षाओंका भली भाँति संगोपन हो और वह वीरोंके प्रयत्नसे हो, अतः इन वीरोंको हम यह अर्पण कर रहे हैं।

४३३ वीर सैनिक अपने प्रमुख सेनापतिकी आज्ञामें रहकर शत्रुदलकी धज्जियाँ उडा दें। अच्छा अन्न प्राप्त करके आनन्द प्राप्त करें। अपने सभी सेनाविभागोंकी सुव्यवस्था रखकर हरएक वीर, प्रमुखकी आज्ञाके अनुसार, कार्य करता रहे, ऐसा अनुशासनका प्रबंध रहे।

टिप्पणी— [४३१] (१) सूद् (क्षरणे)= विनाश करना, वध करना, दुःख देना, दूर फेंक देना, रखना।

[४३२] (१) छन्दस्= इच्छा, स्तुति, वेद।

[४३३] (१) स्वादु = मीठा, (मिठासभरी खाद्य वस्तु, सोमरस)। (२) सप्त= (सप्= सम्मान देना) सात, सम्मानित।

अथर्वा ऋषि (अथर्व० ३।१।२, ६)

(४३४) यूयम् । उग्राः । मरुतः । ईदृशे । स्थ । अभि । प्र । इत । मृणत । सहध्वम् ।
अमीमृणन् । वसवः । नाथिताः । इमे । अग्निः । हि । एषाम् । दूतः । प्रतिऽएतु । विद्वान् ॥२॥

(४३४)इन्द्रः सेनां मोहयतु मरुतो घ्नन्त्वोजसा । चक्षूंष्यग्निरा दत्तां पुनरेतु पराजिता ॥६॥

[१] इन्द्रः । सेनाम् । मोहयतु । मरुतः । घ्नन्तु । ओजसा ।
चक्षूंषि । अग्निः । आ । दत्ताम् । पुनः । एतु । पराऽजिता ॥६॥

(अथर्व० ३।२।६)

(४३५) असौ । या । सेना । मरुतः । परेषाम् । अस्मान् । आऽएति । अभि । ओजसा । स्पर्धमाना ।
ताम् । विध्यत । तमसा । अपऽव्रतेन । यथा । एषाम् । अन्यः । अन्यम् । न । जानात् ॥६॥

अन्वयः— (हे) उग्राः मरुतः ! यूयं ईदृशे स्थ, अभि प्र इत, मृणत सहध्वं, इमे नाथिताः वसवः अमीमृणन्, एषां विद्वान् दूतः अग्निः हि प्रत्येतु। ४३४ (१) इन्द्रः सेनां मोहयतु, मरुतः ओजसा घ्नन्तु, अग्निः चक्षुः आ दत्तां, पराजिता पुनः एतु। ४३५ (हे) मरुतः ! असौ परेषां या सेना ओजसा स्पर्धमाना अस्मान् अभि आ-एति तां अप-व्रतेन तमसा विध्यत यथा एषां अन्यः अन्यं न जानात् ।

अर्थ— ४३४ हे (उग्राः मरुतः !) उग्र स्वरूपवाले वीर मरुतो ! (यूयं) तुम (ईदृशे) ऐसे समरमें (स्थ) स्थिर रहो और शत्रुओंपर (अभि प्र इत) आक्रमण करो। शत्रुओंके वीरोंको (मृणत) मारकर (सहध्वं) उनका पराभव करो। उसी प्रकार (इमे) ये (नाथिताः) प्रशंसित और (वसवः) वसानेवाले वीर हमारे शत्रुओंको (अमीमृणन्) विनष्ट कर डालें। (एषां विद्वान् दूतः) इनका ज्ञानी दूत (अग्निः हि) अग्निभी (प्रत्येतु) हर शत्रुपर चढाई करे। ४३४ (१) (इन्द्रः) इन्द्र (सेनां) शत्रुसेनाको (मोहयतु) मोहित कर डाले, (मरुतः) वीर मरुत् (ओजसा) अपने बलसे विरोधी पक्षके लोगोंको (घ्नन्तु) मार डालें; (अग्निः) अग्नि उनकी (चक्षुः) दृष्टिको (आ दत्तां) निकाल ले और इस ढंगसे (पराजिता) परास्त हुई शत्रुसेना (पुनः एतु) फिर एक वार पीछे हटकर लौट जाय। ४३५ हे (मरुतः !) वीर मरुतो ! (असौ) यह (परेषां या सेना) शत्रुओंकी जो सेना (ओजसा) अपने बलके आधारसे (स्पर्धमाना) स्पर्धा करती हुई, होड लगाती हुईसी (अस्मान् अभि आ-एति) हमपर चढाई करती हुई आती है, (तां) उसे (अप-व्रतेन) जिसमें कुछ भी नहीं किया जा सकता है, ऐसा (तमसा) अंधेरा फैलाकर, उससे उस सेनाको (विध्यत) विंध डालो, इस भाँति (यथा) कि (एषां) इनमें से (अन्यः अन्यं न जानात्) एक दूसरे को जान नहीं सके।

भावार्थ— ४३४ युद्ध छिड जानेपर वीर सैनिक अपनी जगह डटकर खडे रहें और दुश्मनोंपर टूट पडें। शत्रुओंको गाजरमूलीकी तरह काट देना चाहिए और दुश्मनोंकी चढाईके फलस्वरूप अपना स्थान छोडकर भागना नहीं चाहिए, क्योंकि ऐसा करनेसे स्वयं अपनेको परास्त होना पडेगा। ४३४ (१) शत्रुदल परास्त हो जाय, उसे शिकस्त खानी पडे। ४३५ शत्रुदलपर इस भाँति आक्रमण कर देना चाहिए कि, सभी शत्रुसैनिक पूर्ण रूपसे भ्रांतचेता हो उठें। अँधेरा उत्पन्न करनेवाले (तमस्)-अस्त्र का प्रयोग करके दुश्मनोंकी सेनाको अकिंचित्कर बनाया जाय।

टिप्पणी— [४३४] (१) मृण् = (हिंसायाम्) वध करना, नाश करना। (२) वसु= उपनिवेश बसानेमें सहायता करनेहारा, (वासयतीति)। [४३५](१)अप-व्रत (व्रत=कर्म, कर्तव्य)=जिससे कर्तव्यका विनाश हुआ हो। अपव्रतं तमः= यह एक अस्त्र है। शत्रुसेनामें तीव्र अँधियारी फैलती है, धुएँ के मारे सैनिकों को श्वास लेना दूभर प्रतीत होता है, दम घुटने लगता है। उन्हें ज्ञात नहीं होता कि, क्या किया जाय। जो करना सो नहीं करते और अभिष्ट से वन जाने के कारण नहीं करना है, वही कर बैठते हैं। ' अपव्रततम ' नामक अस्त्रका प्रभाव इसी भाँति बडा अनूठा है।

(अथर्व० ५।२४।६)

(४३६) मुरुतः । पर्वतानाम् । अधिऽपतयः । ते । मा । अवन्तु ।
अस्मिन् । ब्रह्मणि । अस्मिन् । कर्मणि । अस्याम् । पुरःऽधायाम् । अस्याम् । प्रतिऽस्थायाम् ।
अस्याम् । चित्त्याम् । अस्याम् । आऽकूत्याम् । अस्याम् । आऽशिषि । अस्याम् । देवऽ-
हूत्याम् । स्वाहा ॥६॥

शन्ताति ऋषि । (अथर्व० ४।१३।४)

(४३७) त्रायन्ताम् । इमम् । देवाः । त्रायन्ताम् । मरुताम् । गणाः ।
त्रायन्ताम् । विश्वा । भूतानि । यथा । अयम् । अरपाः । असत् ॥४॥

(अथर्व० ६।२२।२-३)

(४३८) पयस्वतीः । कृणुथ । अपः । ओषधीः । शिवाः । यत् । एजथ । मरुतः । रुक्मऽवक्षसः ।
ऊर्जम् । च । तत्र । सुऽमतिम् । च । पिन्वत । यत्र । नरः । मरुतः । सिञ्चथ । मधु ॥२॥

अन्वयः— ४३६ पर्वतानां अधिपतयः ते मरुतः अस्मिन् ब्रह्मणि अस्मिन् कर्मणि अस्यां पुरो-धायां अस्यां प्र-तिष्ठायां अस्यां चित्त्यां अस्यां आकूत्यां अस्यां आशिषि अस्यां देव-हूत्यां मा अवन्तु स्वाहा ।

४३७ देवाः इमं त्रायन्तां, मरुतां गणाः त्रायन्तां, विश्वा भूतानि यथा अयं अ-रपाः असत् त्रायन्तां ।

४३८ (हे) रुक्म-वक्षसः मरुतः ! यत् एजथ पयस्वतीः अपः शिवाः ओषधीः कृणुथ, (हे) नरः मरुतः ! यत्र मधु सिञ्चथ तत्र ऊर्जं च सु-मतिं च पिन्वत ।

अर्थ— ४३६ (पर्वतानां अधिपतयः) पहाडों के स्वामी (ते मरुतः) वे वीर मरुत् (अस्मिन् ब्रह्मणि) इस ज्ञानमें, (अस्मिन् कर्मणि) इस कर्म में, (अस्यां पुरो-धायां) इस नेतृत्व में, (अस्यां प्र-तिष्ठायां) इस अच्छी प्रकारकी स्थिरतामें, (अस्यां चित्त्यां) इस विचारमें, (अस्यां आकूत्यां) इस अभिप्रायमें, (अस्यां आशिषि) इस आशीर्वादमें (अस्यां देव-हूत्यां) और इस देवोंकी प्रार्थनामें (मां अवन्तु) मेरी रक्षा करें। (स्वाहा) ये हविष्यान्न उनके लिए अर्पित हैं ।

४३७ (देवाः) देवतागण (इमं त्रायन्तां) इसका संरक्षण करें, (मरुतां गणाः) वीर मरुतों के संघ इसकी (त्रायन्तां) रक्षा करें । (विश्वा भूतानि) समूचे जीवजन्तु भी (यथा) जिस भाँति (अयं अ-रपाः असत्) यह निर्दोष, निष्पाप, निरोगी हो, उसी ढंगसे इसे (त्रायन्तां) बचायें ।

४३८ हे (रुक्म-वक्षसः मरुतः!) वक्षःस्थलपर स्वर्णमुद्राके हार धारण करनेवाले वीर मरुतो ! (यत् एजथ) जब तुम चलने लगते हो तब (पयस्वतीः अपः) बलवर्धक जल तथा (शिवाः ओषधीः) कल्याणकारक वनस्पतियां (कृणुथ) उत्पन्न करते हो और हे (नरः मरुतः !) नेतापदपर अधिष्ठित वीरो-सैनिको ! (यत्र मधु सिञ्चत) जहाँपर तुम मीठासभरे अन्नकी समृद्धि करते हो, (तत्र) वहींपर (ऊर्जं च सुमतिं च) बल एवं उत्तम बुद्धि को (पिन्वत) निर्मित करते हो ।

भावार्थ— ४३८ पवन बहती है, मेघ वर्षा करने लगते हैं, वनस्पतियाँ बढती हैं और मिठासभरे फल खानेके लिए मिलते हैं । इस अन्नसे बुद्धि की वृद्धि होनेमें बडी भारी सहायता मिलती है ।

टिप्पणी- [४३६] (१) चित्तिः= विचार, मनन, ज्ञान, भक्ति, कीर्ति ।

(४३९) उद्ऽप्रुतः । मरुतः । तान् । इयर्त । वृष्टिः । या । विश्वाः । निऽवतः । पृणाति । एजाति । ग्लहा । कन्याऽइव । तुन्ना । एरुम् । तुन्दाना । पत्याऽइव । जाया ॥३॥

मृगार ऋषि । (अथर्व ४।२७।१-७)

(४४०) मरुताम् । मन्वे । अधि । मे । ब्रुवन्तु । प्र । इमम् । वाजम् । वाजऽसाते । अवन्तु । आशून्ऽइव । सुऽयमान् । अह्वे । ऊतये । ते । नः । मुञ्चन्तु । अंहसः ॥१॥

(४४१) उत्सम् । अक्षितम् । विऽअश्चन्ति । ये । सदा । ये । आऽसिञ्चन्ति । रसम् । ओषधीषु । पुरः । दधे । मरुतः । पृश्निऽमातॄन् । ते । नः । मुञ्चन्तु । अंहसः ॥२॥

अन्वयः- ४३९ (हे) मरुतः! उद्-प्रुतः तान् इयर्त, या वृष्टिः विश्वाः निवतः पृणाति, तुन्दाना ग्लहा, तुन्ना कन्याइव, एरुं पत्याइव जाया एजाति। ४४० मरुतां मन्वे, मे अधि ब्रुवन्तु, वाज-साते इमं वाजं अवन्तु, आशूनइव सु-यमान् ऊतये अह्वे, ते नः अंहसः मुञ्चन्तु। ४४१ ये सदा अ-क्षितं उत्सं वि-अश्चन्ति, ये ओषधीषु रसं आसिञ्चन्ति, पृश्नि-मातॄन् मरुतः पुरः दधे, ते नः अंहसः मुञ्चन्तु।

अर्थ— ४३९ हे (मरुतः!) वीर मरुतो! (उद्-प्रुतः तान्) जलको गति देनेवाले उन मेघोंको (इयर्त) प्रेरित करो। उनसे हुई (या वृष्टिः) जो बारिश (विश्वाः निवतः) सभी दरीकंदराओंको (पृणाति) परिपूर्ण कर देती है, उस समय (तुन्दाना ग्लहा) दहाडनेवाली बिजली (तुन्ना कन्याइव) उपवर कन्या (एरुं) नवयुवक को प्राप्त करती है, उस समयकी तरह तथा (पत्याइव जाया) पतिके आलिंगनमें रही नारीकी नाईं (एजाति) विकम्पित हो उठती है। ४४० (मरुतां) वीर मरुतोंको मैं (मन्वे) सम्मान देता हूँ; वे (मे) मुझे (अधि ब्रुवन्तु) उपदेश दें, पथप्रदर्शन करें और (वाज-साते) युद्धके अवसरपर (इमं) इस मेरे (वाजं) बलकी (अवन्तु) रक्षा करें। (आशूनइव) वेगवान घोडोंके तुल्य अपना (सु-यमान्) अच्छा नियमन भली प्रकार करनेवाले उन वीरोंको हमारे (ऊतये) संरक्षणार्थ (अह्वे) मैं बुलाता हूँ। (ते) वे (नः) हमें (अंहसः) पापसे (मुञ्चन्तु) छुडा दें। ४४१ (ये) जो (सदा) हमेशा (अ-क्षितं) कभी न न्यून होनेवाले (उत्सं) जलप्रवाहको (वि-अश्चन्ति) विशेष ढंगसे प्रवर्तित करते हैं, (ये) जो (ओषधीषु) औषधियोंपर (रसं आसिञ्चन्ति) जलका छिडकाव करते हैं, उन (पृश्नि-मातॄन् मरुतः) भूमिको माता समझनेवाले वीर मरुतोंको मैं (पुरः दधे) अग्रभागमें रख देता हूँ। (ते) वे वीर (नः अंहसः मुञ्चन्तु) हमें पापोंसे बचायँ।

भावार्थ— ४३९ वायुप्रवाह मेघोंको प्रेरित कर तथा वर्षाका प्रारंभ करके समूची दरीकंदराओंको जलसे परिपूर्ण कर डालते हैं। उस समय विद्युत् मेघोंसे इस भाँति सम्मिलित हो जाती है, जैसे युवतियाँ अपने नवयुवक पतिदेवको गले लगाती हैं। ४४० वीर हमें योग्य मार्ग दर्शायँ, लोगोंके बलका संरक्षण करें तथा उसका दुरुपयोग होने न दें। सिखाये हुए घोडे जिस भाँति आज्ञानुवर्ती रहते हैं उसी प्रकार ये वीर हैं और वे हमें पापसे बचाकर सुरक्षित रखें। ४४१ वायुप्रवाहोंके कारण वर्षा हुआ करती है, भूमिपर जलके स्रोत एवं झरने बहते हैं, वनस्पतियोंमें रसकी वृद्धि होती है। पापसे बचनेमें वीर हमें सहायता दे दें।

टिप्पणी- [४३९] (१) निवत्= भूमिका निम्न विभाग, दरी। (२) ग्लहः = द्यूतक्रीडा, कितव। (३) तुन्ना = क्षतविक्षत, विकल, (कामबाधासे पीडित)। (तुद्- व्यथने = कष्ट देना, मारना, दुःख देना।) (४) एरु = जानेवाला, (प्राप्त करनेहारा)। [४४१] (१) पुरः दधे = हमेशा आँखोंके सामने धर देता हूं, अग्रभागमें रखता हूं, मार्गदर्शक समझता हूं।

❀

(४४२) पयः । धेनूनाम् । रसंम् । ओषधीनाम् । जवम् । अर्वताम् । कवयः । ये । इन्वथ ।
शग्माः । भवन्तु । मरुतः । नः । स्योनाः । ते । नः । मुञ्चन्तु । अंहसः ॥३॥

(४४३) अपः । समुद्रात् । दिवम् । उत् । वहन्ति । दिवः । पृथिवीम् । अभि । ये । सृजन्ति ।
ये । अत्ऽभिः । ईशानाः । मरुतः । चरन्ति । ते । नः । मुञ्चन्तु । अंहसः ॥४॥

(४४४) ये । कीलालेन । तर्पयन्ति । ये । घृतेन । ये । वा । वयः । मेदसा । सम्ऽसृजन्ति ।
ये । अत्ऽभिः । ईशानाः । मरुतः । वर्षयन्ति । ते । नः । मुञ्चन्तु । अंहसः ॥५॥

अन्वयः— ४४२ ये कवयः धेनूनां पयः ओषधीनां रसं अर्वतां जवं इन्वथ (ते) शग्माः मरुतः नः स्योनाः भवन्तु, ते नः अंहसः मुञ्चन्तु । ४४३ ये समुद्रात् अपः दिवं उत् वहन्ति, दिवः पृथिवीं अभि सृजन्ति, ये अद्भिः ईशानाः मरुतः चरन्ति, ते नः अंहसः मुञ्चन्तु । ४४४ ये कीलालेन ये घृतेन तर्पयन्ति, ये वा वयः मेदसा संसृजन्ति, ये अद्भिः ईशानाः मरुतः वर्षयन्ति, ते नः अंहसः मुञ्चन्तु ।

अर्थ— ४४२ (ये कवयः) जो ज्ञानी वीर (धेनूनां पयः) गौओंके दुग्धका तथा (ओषधीनां रसं) वनस्पतियोंके रसका सेवन करके (अर्वतां जवं) घोडोंके वेगको (इन्वथ) प्राप्त करते हैं, वे (शग्माः) समर्थ (मरुतः) वीर मरुत् (नः) हमारे लिए (स्योनाः भवन्तु) सुखकारक हों । (ते) वे (नः) हमें (अंहसः मुञ्चन्तु) पापोंसे बचायँ । ४४३ (ये) जो (समुद्रात्) समुन्दरमें से (अपः) जलोंको (दिवं उत् वहन्ति) अन्तरिक्षमें ऊपर ले चलते हैं और (दिवः) अन्तरिक्षसे (पृथिवीं अभि) भूमण्डलपर वर्षाके रूपमें (सृजन्ति) छोड देते हैं, और (ये) जो ये (अद्भिः) जलोंकी वजहसे (ईशानाः) संसारपर प्रभुत्व प्रस्थापित करनेवाले (मरुतः) वीर-मरुत् (चरन्ति) संचार करते हैं, (ते) वे (नः अंहसः मुञ्चन्तु) हमें पापोंसे रिहा कर दें । ४४४ (ये) जो (कीलालेन) जलसे तथा (ये) जो (घृतेन) घृतादि पौष्टिक पदार्थों से सबको (तर्पयन्ति) तृप्त करते हैं, (ये वा) अथवा जो (वयः) पंछियों को भी (मेदसा संसृजन्ति) मेदसे संयुक्त करते हैं, और (ये) जो (अद्भिः ईशानाः) जलकी वजह से विश्वपर प्रभुत्व प्रस्थापित करनेवाले (मरुतः वर्षयन्ति) वीर मरुत् वर्षा करते हैं (ते) वे (नः) हमें (अंहसः मुञ्चन्तु) पापसे छुडायें ।

भावार्थ— ४४२ वीर सैनिक गोदुग्ध तथा सोमसदृश वनस्पतियोंके रसके सेवनसे अपनी शक्ति बढाते हैं । ऐसे वीर हमें सुख दें और पापोंसे हमें सुरक्षित रखें । ४४३ वायुओंकी सहायतासे समुद्रमें विद्यमान अपार जलराशि भाफके रूपमें ऊपर उठ जाती है और मेघमंडल के रूप में परिवर्तित हो चुकनेपर वर्षाके रूपमें फिर पृथ्वीपर आ जाती है । इस भाँति ये वायुप्रवाह विशुद्ध जलके प्रदानसे सारे संसारको जीवन देनेवाले हैं, अतः येही सृष्टिके सच्चे अधिपति हैं । वे हमें पापोंके जालसे छुडायँ । ४४४ वायुओंके संचार से मेघ से वर्षा होती है और सभी वृक्षवनस्पतियोंमें भाँतिभाँतिके रसोंकी वृद्धि होती है, तथा गौ आदि पशुओंमें दूध आदि पुष्टिकारक रसोंकी समृद्धि होती है । इस भाँति ये मरुत् रससमृद्धि निष्पन्न कर समूची सृष्टिपर प्रभुत्व प्रस्थापित करते हैं । हम चाहते हैं कि वे हमें पापोंसे सुरक्षित रखें ।

टिप्पणी— [४४२] (१) इन्व् (व्याप्तौ) = जाना, व्याप्त होना, पकडना, कब्जा करना, आनन्द देना, भर देना, प्रभु होना । (२) शग्माः (शक्माः-शक् शक्तौ)= समर्थ । (३) स्योन = सुखदायक, सुन्दर । [४४४] (१) वयस्= पंछी, यौवन, अन्न, शक्ति, आरोग्य । वयः मेदसा संसृजन्ति= यौवनको मेद या मज्जासे युक्त कर देते हैं; शक्तिको मेद एवं मज्जासे जोड देते हैं, अर्थात् जैसे शरीरमें मेद को बढाते हैं, वैसेही अतुल शक्तिभी पर्याप्त मात्रामें निर्मित करते हैं ।

(४४५) यदि । इत् । इदम् । मरुतः । मारुतेन । यदि । देवाः । दैव्येन । ईदृक् । आर ।
यूयम् । ईशिध्वे । वसवः । तस्य । निःऽकृतेः । ते । नः । मुञ्चन्तु । अंहसः ॥६॥
(४४६) तिग्मम् । अनीकम् । विदितम् । सहस्वत् । मारुतम् । शर्धः । पृतनासु । उग्रम् ।
स्तौमि । मरुतः । नाथितः । जोहवीमि । ते । नः । मुञ्चन्तु । अंहसः ॥७॥

अङ्गिरा ऋषि (अथर्व० ७।८२।३)

(४४७) सम्ऽवत्सरीणाः । मरुतः । सुऽअर्काः । उरुऽक्षयाः । सऽगणाः । मानुषासः ।
ते । अस्मत् । पाशान् । प्र । मुञ्चन्तु । एनसः । साम्ऽतपनाः । मत्सराः । मादयिष्णवः ॥३॥

अन्वयः— ४४५ (हे) वसवः देवाः मरुतः ! यदि इदं मारुतेन इत्, यदि दैव्येन ईदृक् आर, यूयं तस्य निष्कृतेः ईशिध्वे, ते नः अंहसः मुञ्चन्तु । ४४६ तिग्मं अनीकं विदितं सहस्-वत् मारुतं शर्धः पृतनासु उग्रं, मरुतः स्तौमि, नाथितः जोहवीमि, ते नः अंहसः मुञ्चन्तु । ४४७ संवत्सरीणाः सु-अर्काः स-गणाः उरु-क्षयाः मानुषासः सान्तपनाः मत्सराः मादयिष्णवः ते मरुतः अस्मत् एनसः पाशान् प्र मुञ्चन्तु ।

अर्थ- ४४५ हे (वसवः) जनताको बसानेवाले (देवाः) द्योतमान (मरुतः !) वीर-मरुतो ! (यदि) अगर (इदं) यह पाप (मारुतेन इत्) मरुद्गणों के सम्बन्धमें या (यदि) अगर (दैव्येन) देवों के संबंधमें (ईदृक्) ऐसे (आर) उत्पन्न हुआ हो, तो (यूयं) तुम (तस्य निष्कृतेः) उस पापका विनाश करनेके लिए (ईशिध्वे) समर्थ हो। (ते) वे (नः) हमें (अंहसः मुञ्चन्तु) पापसे बचा दें।

४४६ (तिग्मं) प्रखर, अति तीव्र (अनीकं) सैन्यमें प्रकट होनेहारा, (विदितं) विख्यात तथा शत्रुओंका (सहस्-वत्) पराभव करनेमें समर्थ (मारुतं शर्धः) वीर मरुतोंका बल (पृतनासु) संग्रामोंमें, लडाइयोंमें (उग्रं) भीषण है; उन (मरुतः स्तौमि) वीर मरुतोंकी मैं सराहना करता हूँ। (नाथितः) कष्ट-से पीडित होता हुआ मैं (जोहवीमि) उनसे प्रार्थना करता हूँ, उन्हें पुकारता हूँ। (ते) वे (नः) हमें (अंहसः) पापसे (मुञ्चन्तु) छुडायें।

४४७ (संवत्सरीणाः) हर साल वारंवार आनेवाले, (सु-अर्काः) अत्यंत पूज्य, (स-गणाः) संघ बनाकर रहनेवाले, (उरु-क्षयाः) विस्तृत घरमें रहनेवाले, (मानुषासः) मानवोंके हित करनेवाले, (सान्तपनाः) शत्रुओंको परिताप देनेहारे, (मत्सराः) सोम पीनेवाले या आनन्दित होनेवाले तथा (मादयिष्णवः) दूसरोंको आनन्द देनेवाले (ते मरुतः) ये वीर मरुत् (अस्मत्) हमारे (एनसः) पापके (पाशान्) फंदोंको (प्र मुञ्चन्तु) तोड डालें।

भावार्थ— ४४५ देवोंकी कृपासे हम पापोंसे दूर रहें।

४४६ वीरोंका युद्धमें प्रकट होनेवाला प्रचंड एवं विख्यात बल सबको विदित है। शत्रुसे पीडा पहुँचने के कारण मैं इन वीरोंकी सराहना करता हूँ। ये वीर मुझे पापसे छुडायें। ४४७ बडे घरमें संघ बनाकर रहनेवाले, पूजनीय, तथा जनताका कल्याण करनेवाले वीर हमें पापोंसे बचा दें।

टिप्पणी— [४४६] (१) नाथितः = जिसे सहायताकी आवश्यकता है, पीडित; (नाथ् = नाध् = याच्ञो-पतापैश्वर्याशीःषु) समर्थ होना, आशीर्वाद देना, प्रार्थना करना, माँगना, कष्ट देना। (२) अनीकं = सैन्य, समूह, युद्ध, प्रमुख, तेज, अन्न। [४४७] (१) उरु-क्षय = बडा चौडा घर, बैरक, सैनिकोंके रहनेका स्थान। (मंत्र ११७,३२१ तथा ३४५ देखिए)। (२) मत्सरः (मद् + सरः) = सोमरस पीकर हर्षित हो आगे बढनेवाला- प्रगतिशील।

अत्रिपुत्र वसुश्रुत ऋषि (ऋ० ५।३।३)

(४४८) तव । श्रिये । मरुतः । मर्जयन्त । रुद्र । यत् । ते । जनिम । चारु । चित्रम् ।
पदम् । यत् । विष्णोः । उपऽमम् । निऽधायि ।
तेन । पासि । गुह्यम् । नाम । गोनाम् ॥३॥

अत्रिपुत्र श्यावाश्व ऋषि (ऋ० ५।६०।१-८)

(४४९) ईळे । अग्निम् । सुऽअवसम् । नमःऽभिः । इह । प्रऽसत्तः । वि । चयत् । कृतम् । नः ।
रथैःऽइव । प्र । भरे । वाजयत्ऽभिः ।
प्रऽदक्षिणित् । मरुताम् । स्तोमम् । ऋध्याम् ॥१॥

अन्वयः— ४४८ (हे) रुद्र ! तव श्रिये मरुतः मर्जयन्त, ते यत् जनिम चारु चित्रं, यत् उपमं विष्णोः पदं निधायि तेन गोनां गुह्यं नाम पासि ।

४४९ सु-अवसं अग्निं नमोभिः ईळे, इह प्र-सत्तः नः कृतं वि चयत्, वाजयद्भिः रथैःइव प्र भरे, प्र-दक्षिणित् मरुतां स्तोमं ऋध्यां ।

अर्थ— ४४८ हे (रुद्र !) भीषण वीर ! (तव श्रिये) तुम्हारी शोभा पानेके लिये (मरुतः) वीर मरुत् (मर्जयन्त) अपने आपको अत्यन्त पवित्र करते हैं। (ते यत् जनिम) तेरा जो जन्म है, वह सचमुच ही (चारु) सुन्दर तथा (चित्रं) आश्चर्यपूर्ण है । (यत्) क्योंकि (उपमं) सबमें अत्युच्च (विष्णोः पदं) विष्णुके स्थानमें-आकाशमें तेरा स्थान (निधायि) स्थिर हो चुका है । (तेन) उसी कारण से तू (गोनां) गौके, वाणियोंके (गुह्यं नाम) रहस्यपूर्ण यशको (पासि) सुरक्षित रखता है ।

४४९ (सु-अवसं) भली भाँति रक्षा करनेहारे (अग्निं) अग्नि की मैं (नमोभिः) नमनपूर्वक (ईळे) स्तुति करता हूं। (इह) यहाँपर (प्र-सत्तः) प्रसन्नतापूर्वक बैठा हुआ वह अग्नि (नः कृतं) हमारा यह कृत्य (वि चयत्) निष्पन्न करे, सिद्ध करे। (वाजयद्भिः) अन्नमय यज्ञोंसे, (रथैःइव) जैसे रथोंसे अभीष्ट जगह पहुँच जाते हैं, उसी प्रकार मैं अपने अभीष्टको (प्र भरे) पाता हूँ और (प्र-दक्षिणित्) प्रदक्षिणा करनेवाला मैं (मरुतां स्तोमं) वीर मरुतों के काव्यका गायन करके (ऋध्यां) समृद्धि पाता हूँ ।

भावार्थ— ४४८ शोभा बढानेके लिए ये वीर मरुत् अपनी तथा समीपस्थ वस्तुओंकी सफाई करते हैं। सभी हथियारोंको चमकीले बनाते हैं। इन वीरोंका जन्म सचमुच लोककल्याण के लिए है, अतः वह एक रहस्यमय बात है। विष्णुपद इन वीरोंका अटल एवं अडिग स्थान है ।

४४९ संरक्षणकुशल इस अग्निकी सराहना मैं करता हूँ। यह अग्नि हमारा यह यज्ञ पूर्ण करे। जिनमें अन्न-दान करना पडता है, वैसे यज्ञ प्रारंभ कर मैं अपनी इच्छा की पूर्ति करता हूँ। इस अग्निकी प्रदक्षिणा करते हुए मैं इन वीरोंके स्तोत्र का गायन करता हूँ ।

टिप्पणी— [४४८] (१) मृज् (शुद्धौ शौचालंकारयोश्च) = धोना, माँजना, शुद्ध करना, अलंकृत करना। (२) विष्णोः पदं= आकाश, अवकाश । (३) उपमं= ऊँचा, सर्वोपरि, उत्कृष्ट । (४) गुह्यं= गुप्त, आश्चर्यजनक, रहस्यमय ।

[४४९] (१) चि+चि (चयने)=विशेष सूक्ष्म निगाहसे देखना-जानना, इकट्ठा करना, जाँच करना, अलग करना, पसंद करना, नाश करना, साफ करना, बनाना, जोड देना । (२) ऋध् (वृद्धौ) = वैभव बढना, विजयी होना, बढना । (३) प्र-दक्षिणित् = प्रदक्षिणा करनेहारा, सतर्कतापूर्वक कार्य करनेहारा ।

(४५०) आ । ये । तस्थुः । पृषतीषु । श्रुतासु । सुऽखेषु । रुद्राः । मरुतः । रथेषु ।
वना । चित् । उग्राः । जिहते । नि । वः । भिया । पृथिवी । चित् । रेजते । पर्वतः ।
चित् ॥ २ ॥

(४५१) पर्वतः । चित् । महि । वृद्धः । बिभाय । दिवः । चित् । सानु । रेजत । स्वने । वः ।
यत् । क्रीळथ । मरुतः । ऋष्टिऽमन्तः । आपःऽइव । सध्र्यञ्चः । धवध्वे ॥३॥

(४५२) वराःऽइव । इत् । रैवतासः । हिरण्यैः । अभि । स्वधाभिः । तन्वः । पिपिश्रे ।
श्रिये । श्रेयांसः । तवसः । रथेषु । सत्रा । महांसि । चक्रिरे । तनूषु ॥४॥

अन्वयः— ४५० ये रुद्राः मरुतः श्रुतासु पृषतीषु सुखेषु रथेषु आ तस्थुः, (हे) उग्राः ! वः भिया वना चित् नि जिहते पृथिवी चित्, पर्वतः चित् रेजते। ४५१ (हे) मरुतः ! वः स्वने महि वृद्धः पर्वतः चित् बिभाय, दिवः सानु चित् रेजते, ऋष्टिमन्तः यत् सध्र्यञ्चः क्रीळथ आपःइव धवध्वे। ४५२ रैवतासः वराःइव इत् हिरण्यैः स्व-धाभिः तन्वः अभि पिपिश्रे, श्रेयांसः तवसः श्रिये रथेषु सत्रा तनूषु महांसि चक्रिरे।

अर्थ— ४५० (ये रुद्राः मरुतः) जो शत्रुदलको रुलानेवाले वीर मरुत् (श्रुतासु पृषतीषु) विख्यात धब्बेवाली हरिणियाँ जोते हुए (सुखेषु रथेषु) सुखकारक रथोंमें जब (आ तस्थुः) बैठते हैं, तब हे (उग्राः !) उग्र वीरो ! (वः भिया) तुम्हारे डरसे (वना चित्) वनतक (नि जिहते) विकंपित होते हैं; (पृथिवी चित्) भूमितक और (पर्वतः चित्) पहाडतक (रेजते) थरथर काँप उठते हैं।

४५१ हे (मरुतः !) वीर मरुतो ! (वः स्वने) तुम्हारी गर्जनाके उपरान्त (महि) बडा (वृद्धः) बढा हुआ (पर्वतः चित्) पर्वत भी (बिभाय) घबरा उठता है; (दिवः) द्युलोक का (सानु चित्) विभाग भी (रेजते) विकम्पित हो उठता है। (ऋष्टि-मन्तः) भाले लेकर तुम (यत्) जब (सध्र्यञ्चः) इकट्ठे होकर (क्रीळथ) खेलते हो, तब (आपःइव) जलप्रवाह के समान (धवध्वे) दौडते हो।

४५२ (रैवतासः वराःइव इत्) धनिक दूल्होंकी नाई (हिरण्यैः) सुवर्णालंकारों से विभूषित होते हुए ये वीर (स्व-धाभिः) पौष्टिक अन्नोंसे या धारक शक्तियोंसे अपने (तन्वः) शरीरोंको (अभि पिपिश्रे) सभी प्रकारोंसे सुन्दर सजाते हैं। (श्रेयांसः) श्रेष्ठ तथा (तवसः) बलवान वीर (श्रिये) यश-प्राप्तिके लिए जब (रथेषु) रथोंमें बैठते हैं, तब उन वीरोंने (सत्रा) एकत्रित होकर (तनूषु) अपने शरीरोंपर (महांसि चक्रिरे) बहुतहि तेज धारण किया।

भावार्थ— ४५० रथोंपर चढे हुए वीर जब शत्रुसेनापर हमला करनेके लिए निकल पडते हैं, तब पृथ्वी, पर्वत, एवं वन सभी दहल उठते हैं। क्योंकि इनका वेगही इतना प्रचंड है कि, उसके प्रभावसे कोई वस्तु पूर्णतया अप्रभावित नहीं रह सकती है। ४५१ इन वीरोंकी गर्जना होनेपर पहाड तथा शिखर काँपने लगते हैं। अपने हथियार लेकर जब ये एक जगह मिलकर रणभूमिमें युद्धक्रीडा करते हैं, तब इनका वेग इतना प्रचंड रहता है कि, मानों ये दौडतेही हैं, ऐसा प्रतीत होता है। ४५२ दूल्हे जब वधूके निकट जानेकी तैयारी करते हैं, तब जिस प्रकार सजावट करते हैं, उसी प्रकार ये वीर बनाव-सिंगार करते हैं, अतः दीखनेमें बडेही सुन्दर प्रतीत होते हैं। जब विजय पानेके लिए ये वीर रथपर बैठकर निकलते हैं, उस समय इनका तेज आँखोंको चौंधिया देता है।

टिप्पणी— [४५१] (१) धवध्वे = दौडते हो। (सा० भा०)

(४५३) अज्येष्ठासः । अकनिष्ठासः । एते । सम् । भ्रातरः । ववृधुः । सौभगाय ।
युवा । पिता । सुऽअपाः । रुद्रः । एषाम् । सुऽदुघा । पृश्निः । सुऽदिना । मरुत्ऽभ्यः ॥५॥
(४५४) यत् । उत्ऽतमे । मरुतः । मध्यमे । वा । यत् । वा । अवमे । सुऽभगासः । दिवि । स्थ ।
अतः । नः । रुद्राः । उत । वा । नु । अस्य । अग्ने । वित्तात् । हविषः । यत् । यजाम ॥६॥
(४५५) अग्निः । च । यत् । मरुतः । विश्वऽवेदसः । दिवः । वहध्वे । उत्ऽतरात् । अधि । स्नुऽभिः ।
ते । मन्दसानाः । धुनयः । रिशादसः । वामम् । धत्त । यजमानाय । सुन्वते ॥७॥

अन्वयः— ४५३ अ-ज्येष्ठासः अ-कनिष्ठासः एते भ्रातरः सौभगाय सं ववृधुः, एषां सु-अपाः युवा पिता रुद्रः सु-दुघा पृश्निः मरुद्भ्यः सु-दिना । ४५४ (हे) सु-भगासः रुद्राः मरुतः! यत् उत्तमे मध्यमे वा यत् वा अवमे दिवि स्थ अतः नः, उत वा (हे) अग्ने! यत् नु यजाम अस्य हविषः वित्तात् । ४५५ (हे) विश्व-वेदसः मरुतः! अग्निः च यत् उत्तरात् दिवः अधि स्नुभिः वहध्वे, ते मन्दसानाः धुनयः रिश-अदसः सुन्वते यजमानाय वामं धत्त ।

अर्थ— ४५३ ये वीर (अ-ज्येष्ठासः) श्रेष्ठ भी नहीं हैं और (अ-कनिष्ठासः) कनिष्ठ भी नहीं हैं, तो (एते) ये परस्पर (भ्रातरः) भाईपनसे वर्ताव रखते हुए (सौभगाय) उत्तम ऐश्वर्य पानेके लिए (सं ववृधुः) एकतापूर्वक अपनी वृद्धि करते हैं। (एषां) इनका (सु-अपाः) अच्छे कर्म करनेहारा (युवा) युवक (पिता) पिता (रुद्रः) महावीर है और (सु-दुघा) उत्तम दूध देनेहारी-अच्छे पेय देनेवाली (पृश्निः) गौ या भूमि इन (मरुद्भ्यः) वीर मरुतोंको (सु-दिना) अच्छे शुभ दिन दर्शाती है।

४५४ हे (सु-भगासः) उत्तम ऐश्वर्यसंपन्न (रुद्राः) शत्रुओं को रुलानेवाले (मरुतः!) वीर मरुतो! (यत्) जिस (उत्तमे) ऊपरके, (मध्यमे वा) मँझले (यत् वा अवमे) या नीचेके (दिवि) प्रकाश-स्थानमें तुम (स्थ) हो, (अतः) वहाँसे (नः) हमारी ओर आओ; (उत वा) और हे (अग्ने!) अग्ने! (यत् नु यजाम) जिसका आज हम यजन कर रहे हैं, (अस्य हविषः) वह हविष्यान्न (वित्तात्) तुम जान लो, अर्थात् उधर ध्यान दे दो।

४५५ हे (विश्व-वेदसः) सब धनोंसे युक्त (मरुतः!) वीर मरुतो! तुम (अग्निः च) तथा अग्नि (यत्) चूँकि (उत्तरात् दिवः) ऊपर विद्यमान द्युलोकके (स्नुभिः) ऊँचे स्थानके मार्गोंसेही (अधि वहध्वे) सदैव जाते हो, अतः (ते) वे (मन्दसानाः) प्रसन्न वृत्तिके, (धुनयः) शत्रुदलको हिला-नेवाले तथा (रिश-अदसः) हिंसकोंका वध करनेवाले तुम (सुन्वते यजमानाय) सोमरस तैयार करने-वाले याजकको (वामं) श्रेष्ठ धन (धत्त) दे दो।

भावार्थ— ४५३ ये वीर परस्पर समभावसे वर्ताव रखते हैं, इसीलिए इनमें कोईभी न कनिष्ठ या श्रेष्ठ पाया जाता है। भाईचारा इनमें विद्यमान है और ये एकतासे श्रेष्ठ पुरुषार्थ करके अपनी समृद्धि करते हैं। महावीर इनका पिता है और गाय या पृथ्वी इनकी माता है, जो इन्हें अच्छे दिन दर्शाती है। ४५४ वीर जिधरभी हों, उधरसे हमारे निकट चले आयँ और जो हविर्भाग हम दे रहे हैं, उसे भली भाँति देखकर स्वीकार कर लें। ४५५ ये वीर उच्च स्थानमें रहते हैं। उल्लसित मनोवृत्तिके और शत्रुदलको परास्त करनेवाले ये वीर याजकोंको धन देते हैं।

टिप्पणी— ४५३ (१) स्वपाः (सु+अपस्= कृत्य)= अच्छे कर्म निष्पन्न करनेहारा। (२) अ-ज्येष्ठासः ०००० (मंत्र ३०५ देखिए)। [४५४] (१) [यहाँपर द्युलोकके तीन भाग माने गये हैं, 'उत्तमे, मध्यमे, अवमे दिवि'।] [४५५] (१) वाम= सुन्दर, टेढा, बायाँ, धन, संपत्ति। (२) मन्दसानः (मद् हर्षे)= हर्षयुक्त।

(४५६) अग्ने । मरुत्ऽभिः । शुभयत्ऽभिः । ऋक्वऽभिः । सोमम् । पिब । मन्दसानः । गणश्रिऽभिः ।
पावकेभिः । विश्वम्ऽइन्वेभिः । आयुऽभिः । वैश्वानर । प्रऽदिवा । केतुना । सऽजूः ॥८॥

अथर्वा ऋषि (अथर्व० १।२०।१)

(४५७) अदारऽसृत् । भवतु । देव । सोम । अस्मिन् । यज्ञे । मरुतः । मृडत । नः ।
मा । नः । विदत् । अभिऽभाः । मो इति । अशस्तिः । मा । नः । विदत् । वृजिना । द्वेष्या । या ॥ १ ॥

(अथर्व० ४।१५।८)

(४५८) गणाः । त्वा । उप । गायन्तु । मारुताः । पर्जन्य । घोषिणः । पृथक् ।
सर्गाः । वर्षस्य । वर्षतः । वर्षन्तु । पृथिवीम् । अनु ॥ ४ ॥

अन्वयः- ४५६ (हे) वैश्वा-नर अग्ने! प्र-दिवा केतुना सजूः शुभयद्भिः ऋक्वभिः गण-श्रिभिः पावकेभिः विश्वं-इन्वेभिः आयुभिः मरुद्भिः मन्दसानः सोमं पिब। ४५७ (हे) देव सोम! अ-दार-सृत् भवतु, (हे) मरुतः! अस्मिन् यज्ञे नः मृडत, अभि-भाः नः मा विदत्, अ-शस्तिः मो, या द्वेष्या वृजिना नः मा विदत्। ४५८ (हे) पर्जन्य! घोषिणः मारुताः गणाः पृथक् त्वा उप गायन्तु, वर्षतः वर्षस्य सर्गाः पृथिवीं अनु वर्षन्तु।

अर्थ— ४५६ हे (वैश्वा-नर) विश्वके नेता (अग्ने!) अग्ने! (प्र-दिवा) प्रखर तेजसे तथा (केतुना) ज्वालाओं से (सजूः) युक्त होकर तू (शुभयद्भिः) शोभायमान, (ऋक्वभिः) सराहनीय, (गण-श्रिभिः) संघजन्य शोभासे युक्त, (पावकेभिः) पवित्र, (विश्वं-इन्वेभिः) सबको उत्साह देनेहारे तथा (आयुभिः) दीर्घ जीवन का उपभोग लेनेवाले (मरुद्भिः) वीर मरुतों के साथ (मन्दसानः) आनन्दित होकर (सोमं पिब) सोमरसका सेवन कर।

४५७ हे (देव सोम!) तेजस्वी सोम! हमारा शत्रु अपनी (अ-दार-सृत्) स्त्रीसे भी न मिलानेवाला (भवतु) हो जाय, अर्थात् मर जाए। हे (मरुतः!) वीर मरुतो! (अस्मिन् यज्ञे) इस यज्ञमें (नः मृडत) हमें सुखी करो। हमारा (अभि-भाः) तेजस्वी दुश्मन (नः मा विदत्) हमें न मिले, हमारी ओर न आ जाए। हमें (अ-शस्तिः मो) अपयश न मिले। (या द्वेष्या) जो निन्दनीय (वृजिना) पाप हैं, वे (नः मा विदत्) हमें न लगें।

४५८ हे (पर्जन्य!) पर्जन्य! (घोषिणः) गर्जना करनेहारे (मारुताः गणाः) मरुतों के संघ (पृथक्) विभिन्न ढंगसे (त्वा उप गायन्तु) तुम्हारी स्तुति का गायन करें। (वर्षतः वर्षस्य) बडे वेगसे होनेवाली धुआँधार वर्षा की (सर्गाः) धाराएँ (पृथिवीं अनु वर्षन्तु) भूमिपर लगातार गिरती रहें।

भावार्थ— ४५७ हमारा शत्रु विनष्ट होवे। (वह अपनी स्त्रीसे मिलकर संतान उत्पन्न करनेमें समर्थ न होवे।) हमारे शत्रु हमसे दूर हों और उनका आक्रमण हमपर न होने पाय। हम अपकीर्ति तथा पापसे कोसों दूर होकर सुखसे रहें।

टिप्पणी— [४५६] (१) विश्व-मिन्व=(मिन्व्- स्नेहने सेचने च) सबपर प्रेम करनेवाला, सभी जगह वर्षा करनेहारा। (२) सजुस्= युक्त। [४५७] (१) अ-दार-सृत्=स्त्रीके समीप न जानेवाला, घर न लौट जानेवाला (रणभूमिमें धराशायी होनेवाला)।

(अथर्व० ४।१५।५-१०)

(४५९) उत् । ईरयत । मरुतः । समुद्रतः । त्वेषः । अर्कः । नभः । उत् । पातयाथ ।
सहाऽऋषभस्य । नदतः । नभस्वतः । वाश्राः । आपः । पृथिवीम् । तर्पयन्तु ॥ ५ ॥

(४६०) अभि । क्रन्द । स्तनय । अर्दय । उदऽधिम् । भूमिम् । पर्जन्य । पयसा । सम् । अङ्धि ।
त्वया । सृष्टम् । बहुलम् । आ । एतु । वर्षम् । आशारऽएषी । कृशऽगुः । एतु ।
अस्तम् ॥ ६ ॥

(४६१) सम् । वः । अवन्तु । सुऽदानवः । उत्साः । अजगराः । उत ।
मरुत्ऽभिः । प्रऽच्युताः । मेघाः । वर्षन्तु । पृथिवीम् । अनु ॥७॥

अन्वयः— (हे) मरुतः ! समुद्रतः उत् ईरयथ, त्वेषः अर्कः नभः उत् पातयाथ, नदतः महा-ऋषभस्य नभस्वतः वाश्राः आपः पृथिवीं तर्पयन्तु ।

४६० (हे) पर्जन्य ! अभि क्रन्द स्तनय उदधिं अर्दय भूमिं पयसा सं अङ्धि, त्वया सृष्टं बहुलं वर्षं आ एतु, आशार-एषी कृश-गुः अस्तं एतु ।

४६१ (हे) सु-दानवः ! वः अजगराः उत उत्साः सं अवन्तु, मरुद्भिः प्र-च्युताः मेघाः पृथिवीं अनु वर्षन्तु ।

अर्थ— ४५९ हे (मरुतः !) मरुतो ! तुम (समुद्रतः) समुद्रके जलको (उत् ईरयथ) ऊपर ले चलो । (त्वेषः) तेजस्वी तथा (अर्कः) पूज्य (नभः) मेघको आकाशमें (उत् पातयाथ) इधरसे उधर घुमाओ । (नदतः महा-ऋषभस्य) दहाडते हुए वडे भारी वैल के समान प्रतीत होनेवाले (नभस्वतः) मेघों के (वाश्राः आपः) गरजते हुए जलसमूह (पृथिवीं तर्पयन्तु) भूमिको संतृप्त करें ।

४६० हे (पर्जन्य !) पर्जन्य ! (अभि क्रन्द) गरजते रहो, (स्तनय) दहाडना शुरु करो, (उदधिं) समुद्रमें (अर्दय) खलवली मचा दो, (भूमिं) पृथ्वी को (पयसा) जलसे (सं अङ्धि) भली प्रकार गीली करो। (त्वया सृष्टं) तुझसे निर्मित (वहुलं वर्षं) प्रचुर वर्षा (आ एतु) इधर आये तथा (आशार-एषी) वडी वर्षा की कामना करनेहारा (कृश-गुः) दुर्वल गौएँ साथ रखनेवाला कृषक (अस्तं एतु) घर चले जाकर आनन्दसे रहे ।

४६१ हे (सु-दानवः !) दानशूर वीरो ! (वः) तुम्हारे (अजगराः उत) अजगरके समान दीख पडनेवाले (उत्साः) जलप्रवाह (सं अवन्तु) हमारी भली भाँति रक्षा करें। (मरुद्भिः) मरुतों की ओर से वर्षाके रूपमें (प्र-च्युताः) नीचे टपके हुए (मेघाः) वादल (पृथिवीं अनु वर्षन्तु) भूमंडलपर लगातार वर्षा करें ।

टिप्पणी— [४६०] (१) आशार-एषी कृश-गुः अस्तं एतु = वर्षा कव होगी, इस आशासे आकाशकी ओर टकटकी बाँधकर देखनेवाला और कृश गायों को भी प्यार से समीप रखनेवाला किसान वर्षा होनेके पश्चात् सहर्ष अपने घर लौटकर आनन्द से दिन विताने लगे । (यदि वर्षा न हो, घासतिनका न मिले, तो कृषक अपने गोधनको साथ ले जहाँ जल पर्याप्त मात्रामें उपलब्ध होता है ऐसे स्थानपर जा वसते हैं, और वृष्टि की राह देखते रहते हैं। वर्षा होनेके उपरान्त तृणकी यथेष्ट समृद्धि होतेही वे अपने पूर्व निवासस्थानमें लौट आते हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि, इस मन्त्रमें इस प्रणाली का उल्लेख किया हो ।)

(४६२) आशाम्ऽआशाम् । वि । द्योतताम् । वाताः । वान्तु । दिशःऽदिशः ।
मरुत्ऽभिः । प्रऽच्युताः । मेघाः । सम् । यन्तु । पृथिवीम् । अनु ॥ ८ ॥

(४६३) आपः । विऽद्युत् । अभ्रम् । वर्षम् । सम् । वः । अवन्तु । सुऽदानवः । उत्साः । अजगराः । उत ।
मरुत्ऽभिः । प्रऽच्युताः । मेघाः । प्र । अवन्तु । पृथिवीम् । अनु ॥९॥

(४६४) अपाम् । अग्निः । तनूभिः । सम्ऽविदानः । यः । ओषधीनाम् । अधिऽपाः । बभूव । सः । नः । वर्षम् । वनुताम् । जातऽवेदाः । प्राणम् । प्रऽजाभ्यः । अमृतम् । दिवः । परि ॥१०॥

अग्निर्मरुतश्च । (अग्निदेवता मन्त्र २४३८ ते २४४६)

कण्वपुत्र मेधातिथि ऋषि (ऋ० १।१९।१-९)

४६५ प्रति त्यं चारुमध्वरं गोपीथाय प्र हूयसे । मरुद्भिरग्न आ गहि ॥१॥ [२४३८]

(४६५) प्रति । त्यम् । चारुम् । अध्वरम् । गोऽपीथाय । प्र । हूयसे । मरुत्ऽभिः । अग्ने । आ । गहि ॥१॥

अन्वयः— ४६२ आशां-आशां वि द्योततां, दिशः-दिशः वाताः वान्तु, मरुद्भिः प्र-च्युताः मेघाः पृथिवीं अनु वर्षन्तु । ४६३ (हे) सु-दानवः ! वः आपः विद्युत् अभ्रं वर्षं अजगराः उत उत्साः सं अवन्तु, मरुद्भिः प्र-च्युताः मेघाः पृथिवीं अनु प्र अवन्तु। ४६४ अपां तनूभिः संविदानः यः जात-वेदाः अग्निः ओषधीनां अधि-पाः बभूव सः नः प्रजाभ्यः दिवः परि अमृतं वर्षं प्राणं वनुतां। ४६५ त्यं चारुं अध्वरं प्रति गो-पीथाय प्र हूयसे, (हे) अग्ने ! मरुद्भिः आ गहि ।

अर्थ— ४६२ (आशां-आशां) हर दिशामें बिजली (वि द्योततां) चमक जाए। (दिशः-दिशः) सभी दिशाओंमें (वाताः वान्तु) वायु बहने लगें । (मरुद्भिः) मरुतों से (प्र-च्युताः) नीचे गिरे हुए मेघाः) बादल वर्षा के रूपमें (पृथिवीं अनु सं यन्तु) भूमिसे मिल जायँ ।

४६३ हे (सु-दानवः!) दानी वीरो ! (वः) तुम्हारा (आपः) जल, (विद्युत्) बिजली, (अभ्रं) मेघ, (वर्षं) बारिश तथा (अजगराः उत उत्साः) अजगर की नाईं प्रतीत होनेवाले झरने, जलप्रवाह सभी प्राणियोंको (सं अवन्तु) बराबर बचा दें । (मरुद्भिः प्र-च्युताः मेघाः) मरुतों से नीचे गिराये हुए मेघ (पृथिवीं अनु) भूमिको अनुकूल ढंगसे (प्र अवन्तु) ठीकठीक सुरक्षित रखें ।

४६४ (अपां तनूभिः) जलों के शरीरों से (सं-विदानः) तादात्म्य पाया हुआ (यः जात-वेदाः अग्निः) जो वस्तुमात्रमें विद्यमान अग्नि (ओषधीनां अधि-पाः) औषधियोंका संरक्षण करनेवाला है, (सः) वह (नः प्रजाभ्यः) हमारी प्रजाके लिए (दिवः परि) द्युलोकका (अमृतं) मानों अमृतही ऐसा (वर्षं) बारिशका पानी (प्राणं वनुता) प्राणशक्तिके साथ दे दे ।

४६५ (त्यं चारुं अ-ध्वरं प्रति) उस सुन्दर हिंसारहित यज्ञमें (गो-पीथाय) गोरस पीनेके लिए तुझे (प्र हूयसे) बुलाते हैं, अतः हे (अग्ने) अग्ने ! (मरुद्भिः) वीर मरुतोंके साथ इधर (आ गहि) आ जाओ।

भावार्थ— ४६४ आकाशमेंसे जो वर्षा होती है, उसीके साथ एक प्रकार का प्राणवायु भी पृथ्वीपर उतरता है । वह सभी प्राणियों को तथा वनस्पतियोंको सुख देता है ।

टिप्पणी— [४६५] (१) गो-पीथ (पा पाने रक्षणे च)= गोरसका पान, गौका संरक्षण ।

*

४६६ नहि देवो न मर्त्यो महस्तव क्रतुं परः । मरुद्भिरग्न आ गहि ॥२॥ [२४३९]

(४६६) नहि । देवः । न । मर्त्यः । महः । तव । क्रतुम् । परः । मरुत्ऽभिः । अग्ने । आ । गहि । ॥२॥

४६७ ये महो रजसो विदु-र्विश्वे देवासो अद्रुहः । मरुद्भिरग्न आ गहि ॥३॥ [२४४०]

(४६७) ये । महः । रजसः । विदुः । विश्वे । देवासः । अद्रुहः । मरुत्ऽभिः । अग्ने । आ । गहि ॥३॥

४६८ य उग्रा अर्कमानृचु-रनाधृष्टास ओजसा । मरुद्भिरग्न आ गहि ॥४॥ [२४४१]

(४६८) ये । उग्राः । अर्कम् । आनृचुः । अनाधृष्टासः । ओजसा । मरुत्ऽभिः । अग्ने । आ । गहि ॥४॥

अन्वयः— ४६६ तव महः क्रतुं नहि देवः न मर्त्यः परः, (हे) अग्ने ! मरुद्भिः आ गहि ।
४६७ ये विश्वे देवासः अ-द्रुहः महः रजसः विदुः मरुद्भिः (हे) अग्ने ! आ गहि ।
४६८ उग्राः ओजसा अन्-आ-धृष्टासः ये अर्कं आनृचुः, मरुद्भिः (हे) अग्ने ! आ गहि ।

अर्थ- ४६६ (तव महः क्रतुं) तेरे महान कर्तृत्वको लाँघनेके लिए, तुझसे विरोध करनेके लिए (नहि देवः) देवता समर्थ नहीं है तथा (न मर्त्यः परः) मानव भी समर्थ नहीं हैं। हे (अग्ने !) अग्ने ! (मरुद्भिः आ गहि) वीर मरुतों के संग इधर पधारो।

४६७ (ये) जो (विश्वे) सभी (देवासः) तेजस्वी तथा (अ-द्रुहः) विद्रोह न करनेवाले वीर हैं, वे (मह रजसः) विस्तीर्ण अन्तरिक्षको (विदुः) जानते हैं, उन (मरुद्भिः) वीर मरुतोंके साथ हे (अग्ने !) अग्ने ! तू (आ गहि) यहाँ आगमन कर।

४६८ (उग्राः) शूर, (ओजसा) शारीरिक बलके कारण (अन्-आ-धृष्टासः) शत्रुओंको अजिक्य ऐसे जो वीर (अर्कं आनृचुः) पूजनीय देवताकी उपासना करते हैं, उन (मरुद्भिः) वीर मरुतों के संघ के साथ हे (अग्ने !) अग्ने ! (आ गहि) इधर आ जा।

भावार्थ- ४६६ कर्तृत्व का उल्लंघन करना विरोध करनाही है।

४६७ ये वीर तेजस्वी हैं और वे किसीसे वैरभाव नहीं रखते हैं, न किसी को कष्टही पहुँचाते हैं। इस भूमंडलपर जिस भाँति वे संचार करते हैं, उसी प्रकार अन्तरिक्षमेंसे भी वे प्रयाण करते हैं। हर जगह घूमकर वे ज्ञान पाते हैं। [वीरोंको उचित है कि वे आवश्यक सभी जानकारी हस्तगत करें।]

४६८ वीर उग्र स्वरूपवाले, शूर एवं बलिष्ठ बने और सभी प्रकारके शत्रुओंके लिए अजेय बन जायँ।

टिप्पणी— [४६६] (१) परः= दूसरा, श्रेष्ठ, समर्थ, उस पार विद्यमान।

[४६७] रजस्= अन्तरिक्ष, धूलि, पृथ्वी। महः रजसः विदुः= बडी भारी पृथ्वी एवं विशाल तथा महान अन्तरिक्षको जानते हैं। [वीरोंको शत्रुसेनापर आक्रमण करने पडते हैं, अतः भूमंडल परके विभाग, पर्वत, नदियाँ ऊबडखाबड प्रदेश आदिकी जानकारी और उसी प्रकार आकाशपथसे परिचय प्राप्त करना चाहिए। क्योंकि विना इसके शत्रुदलका विध्वंस भली भाँति नहीं हो सकता।]

४६९ ये शुभ्रा घोरवर्पसः सुक्षत्रासो रिशादसः । मरुद्भिरग्न आ गहि ॥५॥ [२४४२]
(४६९) ये । शुभ्राः । घोरऽवर्पसः । सुऽक्षत्रासः । रिशादसः । मरुत्ऽभिः । अग्ने । आ । गहि ॥५॥

४७० ये नाकस्याधि रोचने दिवि देवास आसते । मरुद्भिरग्न आ गहि ॥६॥ [२४४३]
(४७०) ये । नाकस्य । अधि । रोचने । दिवि । देवासः । आसते । मरुत्ऽभिः । अग्ने । आ । गहि ॥६॥

४७१ य ईङ्खयन्ति पर्वतान् तिरः समुद्रमर्णवम् । मरुद्भिरग्न आ गहि ॥७॥ [२४४४]
(४७१) ये । ईङ्खयन्ति । पर्वतान् । तिरः । समुद्रम् । अर्णवम् । मरुत्ऽभिः । अग्ने । आ । गहि ॥७॥

४७२ आ ये तन्वन्ति रश्मिभिस्तिरः समुद्रमोजसा । मरुद्भिरग्न आ गहि ॥८॥ [२४४५]
(४७२) आ । ये । तन्वन्ति । रश्मिऽभिः । तिरः । समुद्रम् । ओजसा । मरुत्ऽभिः । अग्ने । आ । गहि ॥८॥

अन्वयः— ४६९ ये शुभ्राः घोर-वर्पसः सु-क्षत्रासः रिश-अदसः मरुद्भिः (हे) अग्ने ! आ गहि ।
४७० ये देवासः नाकस्य अधि रोचने दिवि आसते, मरुद्भिः (हे) अग्ने ! आ गहि ।
४७१ ये पर्वतान् ईङ्खयन्ति, अर्णवं समुद्रं तिरः, मरुद्भिः (हे) अग्ने ! आ गहि ।
४७२ ये रश्मिभिः ओजसा समुद्रं तिरः तन्वन्ति, मरुद्भिः (हे) अग्ने ! आ गहि ।

अर्थ- ४६९ (ये शुभ्राः) जो गौरवर्णवाले, (घोर-वर्पसः) देखनेवाले के दिलको तनिक स्तिमित कर सके, ऐसे बृहदाकार शरीरसे युक्त, (सु-क्षत्रासः) उच्च कोटिके क्षत्रिय हैं, अतः (रिश-अदसः) हिंसकों का वध करनेहारे हैं, उन (मरुद्भिः) वीर मरुतोंके झुंडके साथ हे (अग्ने!) अग्ने! इधर पधारो ।

४७० (ये देवासः) जो तेजस्वी होते हुए (नाकस्य अधि) सुखदायक स्थान में या (रोचने दिवि) प्रकाशयुक्त द्युलोकमें (आसते) रहते हैं, उन (मरुद्भिः) वीर मरुतों के साथ हे (अग्ने!) अग्ने! (आ गहि) इधर आओ ।

४७१ (ये) जो (पर्वतान्) पहाडों को (ईङ्खयन्ति) हिला देते हैं और जो (अर्णवं समुद्रं) प्रक्षुब्ध समुन्दरको भी (तिरः) तैरकर परे चले जाते हैं, उन (मरुद्भिः) वीर मरुतों के साथ हे (अग्ने!) अग्ने! (आ गहि) इधर आ जाओ ।

४७२ (ये) जो (रश्मिभिः) अपने तेजसे तथा (ओजसा) बलसे (समुद्रं) समुन्दरको (तिरः तन्वन्ति) लाँघकर परे जा पहुँचते हैं, उन (मरुद्भिः) वीर मरुतों के साथ हे (अग्ने!) अग्ने! (आ गहि) इधर आ जाओ ।

भावार्थ- ४६९ वीर सैनिक अपनी सामर्थ्य बढावें, शरीरको बलिष्ठ बना दें और शत्रुओंका हर ढंगसे पराभव करें ।

टिप्पणी—[४६९] (१) वर्पस्=मूर्ति, आकृति, शरीर । (२) सु-क्षत्रासः= अच्छे, उत्कृष्ट क्षत्रिय । [इस पदसे साफ साफ जाहिर होता है कि, मरुत् क्षत्रिय वीर हैं । ऋ० १।१६५।५ देखिए । वहाँ 'स्वक्षत्रेभिः' पद पाया जाता है ।]

[४७०] (१) नाक= (न-अ-क) क= सुख, अक = दुःख, नाक = सुखमय लोक ।

[४७१] (१) पर्वतान् ईङ्खयन्ति = (देखिए मरुद्देवता मंत्र १७,५०,५१ ।)

४७३ अभि त्वा पूर्वपीतये सृजामि सोम्यं मधु । मरुद्भिरग्न आ गहि ॥९॥ [२४४६]
(४७३) अभि । त्वा । पूर्वऽपीतये । सृजामि । सोम्यम् । मधु । मरुत्ऽभिः । अग्ने । आ । गहि ॥९॥

कण्वपुत्र सोभरि ऋषि (ऋ० ८।१०३।१४) (अग्निदेवता मंत्र २४४७)

४७४ आग्ने याहि मरुत्सखा रुद्रेभिः सोमपीतये । सोभर्या उप सुष्टुतिं मादयस्व स्वर्णरे ॥१४॥
(४७४) आ । अग्ने । याहि । मरुत्ऽसखा । रुद्रेभिः । सोमऽपीतये । सोभर्याः । उप । सुऽस्तुतिम् । मादयस्व । स्वःऽनरे । ॥१४॥ [२४४७]

इन्द्र-मरुतश्च । (इन्द्रदेवता मंत्र ३२४५-३२४६)
विश्वामित्रपुत्र मधुछन्दा ऋषि (ऋ० १।६।५,७)

४७५ वीळु चिदारुजत्नुभिर्गुहा चिदिन्द्र वह्निभिः । अविन्द उस्रिया अनु ॥५॥ [३२४५]
(४७५) वीळु । चित् । आरुजत्नुऽभिः । गुहा । चित् । इन्द्र । वह्निऽभिः । अविन्दः । उस्रियाः । अनु ॥५॥

अन्वयः— ४७३ त्वा पूर्व-पीतये मधु सोम्यं अभि सृजामि, (हे) अग्ने ! मरुद्भिः आ गहि । ४७४ (हे) अग्ने ! मरुत्-सखा रुद्रेभिः सोम-पीतये स्वर्-नरे आ याहि, सोभर्याः सु-स्तुतिं उप मादयस्व । ४७५ (हे) इन्द्र ! वीळु चित् आ-रुजत्नुभिः वह्निभिः (मरुद्भिः) गुहा चित् उस्रियाः अनु अविन्दः ।

अर्थ- ४७३ (त्वा) तुझे (पूर्व-पीतये) प्रारंभमें ही पीने के लिए यह (मधु सोम्यं) मीठा सोमरस (अभि सृजामि) मैं निर्माण कर दे रहा हूं; हे (अग्ने !) अग्ने ! (मरुद्भिः आ गहि) वीर मरुतोंके साथ इधर आओ।

४७४ हे (अग्ने !) अग्ने ! तू (मरुत्-सखा) वीर मरुतोंका मित्र है, अतः तू (रुद्रेभिः) शत्रुओं को रुलानेवाले इन वीरों के संग (सोम-पीतये) सोम पीनेके लिए (स्व-र्-नरे) अपने प्रकाश का जिससे विस्तार होता है, ऐसे इस यज्ञमें (आ याहि) पधारो और (सोभर्याः सु-स्तुतिं) इस सोभरि ऋषिकी अच्छी स्तुतिको सुनकर (मादयस्व) संतुष्ट बनो ।

४७५ हे (इन्द्र!) इन्द्र ! (वीळु चित्) अत्यन्त सामर्थ्यवान् शत्रुओंका भी (आ-रुजत्नुभिः) विनाश करनेहारे और (वह्निभिः) धन ढोनेवाले इन वीरोंकी सहायतासे शत्रुओंने (गुहा चित्) गुफामें या गुप्त जगह रखी हुई (उस्रियाः) गौओंको तू (अनु अविन्दः) पा सका, वापिस लेनेमें समर्थ हो गया।

भावार्थ— ४७५ ये वीर, दुश्मनोंके बडे बडे गढोंका निपात करके अपने अधीन करनेमें, बडेही सफल होते हैं। इन्हीं वीरोंकी मदद पाकर वह, शत्रुओंने बडी सतर्कतापूर्वक किसी गुप्त स्थानमें रखी हुई गौएँ या धनसंपदाका पता लगानेमें, सफलता पाता है । यदि ये वीर सहायता न पहुँचाते, तो किसी अज्ञात, दुर्गम तथा बीहड भूभागमें छिपी हुई गोसंपदाको पाना उसके लिये दूभर होता, इसमें क्या संशय ?

टिप्पणी— [४७४] (१) सोभर्याः (सोभरेः) [सोभरिः-सुभरिः] = सोभरिनामक ऋषि की, उत्तम ढंगसे पालनपोषण करनेहारे की (प्रशंसा) । (२) स्वर्णरे (स्व-र्-नरे)= (स्व) अपने (रा) प्रकाशका विस्तार करनेके कार्यमें-यज्ञमें। (स्वर्) अपना प्रकाश हो तथा (न-रम्) वैयक्तिक भोगलिप्सा न हो, ऐसा यज्ञ ।

[४७५] (१) आ-रुजत्नु= (आ+रुज् भङ्गे हिंसायां च)- तोडनेवाला, क्षति पैदा करनेवाला, विनाशक, टुकडे टुकडे करनेवाला, रोगपीडित । (२) उस्रिय (वस् निवासे)= रहनेवाला, बैल, गाय, बछडा, दूध, तेज, प्रकाश । (३) वह्निः (वह् प्रापणे)= ढोनेवाला, ले चलनेवाला अग्नि ।

४७६ इन्द्रे॑ण॒ सं हि दृक्ष॑से संज॒ग्मा॒नो अबि॑भ्युषा । म॒न्दू स॑मा॒नव॑र्चसा ॥७॥ [३२४६]
(४७६) इन्द्रे॑ण । सम् । हि । दृक्ष॑से । स॒म्ऽज॒ग्मा॒नः । अबि॑भ्युषा । म॒न्दू इति॑ । स॒मा॒नऽव॑र्चसा ॥७॥

मरुत्वानिन्द्रः । (इन्द्रदेवता मंत्र ३२४७–३२४९)
कण्वपुत्र मेधातिथि ऋषि (ऋ० १।२३।७–९)

४७७ म॒रुत्व॑न्तं हवामह॒ इन्द्र॒मा सोम॑पीतये । स॒जूर्ग॒णेन॑ तृम्पतु ॥७॥ [३२४७]
(४७७) म॒रुत्व॑न्तम् । ह॒वा॒म॒हे॒ । इन्द्र॑म् । आ । सोम॑ऽपीतये । स॒ऽजूः । ग॒णेन॑ । तृ॒म्प॒तु॒ ॥७॥
४७८ इन्द्र॑ज्येष्ठा॒ मरु॑द्गणा॒ देवा॑स॒ः पूष॑रातयः । विश्वे॒ मम॑ श्रुता॒ हव॑म् ॥८॥ [३२४८]
(४७८) इन्द्र॑ऽज्येष्ठाः । मरु॑त्ऽगणाः । देवा॑सः । पूष॑ऽरातयः । विश्वे॑ । मम॑ । श्रु॒त॒ । हव॑म् ॥८॥

अन्वयः— ४७६ (हे मरुत्-गण !) अ-विभ्युषा इन्द्रेण सं-जग्मानः सं दृक्षसे हि, समान-वर्चसा मन्दू (स्थः)।

४७७ मरुत्वन्तं इन्द्रं सोम-पीतये आ हवामहे, गणेन सजूः तृम्पतु।

४७८ (हे) देवासः पूष-रातयः इन्द्र-ज्येष्ठाः मरुत्-गणाः ! विश्वे मम हवं श्रुत।

अर्थ— ४७६ हे वीरो ! तुम सदैव (अ-बिभ्युषा इन्द्रेण) न डरनेवाले इन्द्रसे (सं-जग्मानः) मिलकर आक्रमण करनेहारे (सं दृक्षसे हि) सचमुच दीख पडते हो। तुम दोनों (समान-वर्चसा) सदृश तेज या उत्साहसे युक्त हो और (मन्दू) हमेशा प्रसन्न एवं उल्हसित बने रहते हो।

४७७ (मरुत्वन्तं) वीर मरुतों से युक्त (इन्द्रं) इन्द्रको (सोम-पीतये) सोमपान के लिए हम (आ हवामहे) बुलाते हैं। वह इन्द्र (गणेन सजूः) इन वीरोंके गणके साथ (तृम्पतु) तृप्त होवे।

४७८ हे (देवासः) तेजस्वी, (पूष-रातयः) सबके पोषणके लिए पर्याप्त हो. इस ढंगसे दान देनेहारे, तथा (इन्द्र-ज्येष्ठाः) इन्द्रको सर्वोपरि प्रमुख समझनेवाले (मरुत्-गणाः) वीर मरुतो ! (विश्वे) तुम सभी (मम हवं श्रुत) मेरी प्रार्थना सुनो।

भावार्थ— ४७६ हे वीरो ! तुम निडर इन्द्रके सहवास में सदैव रहते हो। इन्द्र को छोडकर तुम कभी छन भरभी नहीं रहते हो। तुममें एवं इन्द्रमें समान कोटिका तेज एवं प्रभाव विद्यमान हैं। तुम्हारा उत्साह कभी घटता नहीं है।

४७८ इन वीरोंमें सभी समान रूपसे तेजस्वी हैं और सबके लिए पर्याप्त अन्न एवं धन पाकर सब लोगोंमें बाँट देते हैं। ऐसे इन वीरोंका प्रभु एवं नेता इन्द्र है। ये सभी मेरी प्रार्थना सुन लेनेकी कृपा करें।

टिप्पणी— [४७६] (१) वर्चस्= शक्ति, बल, उत्साह, तेज, आकार। (२) मन्दुः= (मन्द् स्तुतिमोदमदस्वप्नकान्तिगतिषु) आनन्दित, स्तुति करनेहारा, निद्रासुख भोगनेवाला।

[४७७] (१) तृम्प्= (प्रीणने) तृप्त होना, समाधान पाना। (२) सजुस्= युक्त।

[४७८] (१) पूष-रातिः (पूष् वृद्धौ)= सबकी पुष्टि के लिये योग्य एवं पर्याप्त अन्न धन आदि का दान देनेवाला।

४७९ हृत वृत्रं सुंदानव इन्द्रेण सहसा युजा । मा नो दुःशंस ईशत ॥९॥ [३२४९]
(४७९) हृत । वृत्रम् । सुऽदानवः । इन्द्रेण । सहसा । युजा । मा । नः । दुःशंसः । ईशत ॥९॥

मित्रावरुणपुत्र अगस्त्य ऋषि (ऋ० १।१६५।१-१४) (इन्द्रदेवता मंत्र ३२५०-३२६३)

४८० कया शुभा सवयसः सनीळाः समान्या मरुतः सं मिमिक्षुः ।
कया मती कुत एतास एतेऽर्चन्ति शुष्मं वृषणो वसूया ॥१॥ [३२५०]
(४८०) कया । शुभा । सऽवयसः । सऽनीळाः । समान्या । मरुतः । सम् । मिमिक्षुः ।
कया । मती । कुतः । आऽइतासः । एते । अर्चन्ति । शुष्मम् । वृषणः । वसुऽया ॥१॥

अन्वयः— ४७९ (हे) सु-दानवः ! सहसा इन्द्रेण युजा वृत्रं हत, दुस्-शंसः नः मा ईशत ।
४८० स-वयसः स-नीळाः स-मान्या मरुतः कया शुभा सं मिमिक्षुः ? एते कुतः एतासः ? वृषणः वसु-या कया मती शुष्मं अर्चन्ति ?

अर्थ- ४७९ हे (सु-दानवः !) दानशूर वीरो ! तुम (सहसा) शत्रुको परास्त करनेकी सामर्थ्यसे युक्त (इन्द्रेण युजा) इन्द्रके साथ रहकर (वृत्रं हत) निरोधक दुश्मनका वध कर डालो । (दुस्-शंसः) दुष्कीर्तिसे युक्त वह शत्रु (नः मा ईशत) हमपर प्रभुत्व प्रस्थापित न करे ।

४८० (स-वयसः) समान उम्रवाले, (स-नीळाः) एकही घरमें निवास करनेहारे, (स-मान्या) समान रूपसे सम्माननीय (मरुतः) ये वीर मरुत् (कया शुभा) किस शुभ इच्छासे भला सभी (सं मिमिक्षुः) मिलजुलकर कार्य करते हैं ? (एते) ये (कुतः एतासः) किधरसे यहाँ आ गये और (वृषणः) बलवान होते हुए भी (वसु-या) धन पानेके लिए (कया मती) किस विचारसे ये (शुष्मं अर्चन्ति) बलकी पूजा करते हैं- अपनी सामर्थ्य बढाते ही रहते हैं ।

भावार्थ- ४७९ ये वीर बडे अच्छे दानी हैं और इन्द्रसदृश सेनापतिके नेतृत्वमें रहकर दुरात्मा दुश्मनोंका वध तथा विध्वंस करते हैं । ऐसे शत्रुओंका प्रभाव इन वीरोंके अथक परिश्रमसे कहींभी नहीं टिकने पाता । जो शत्रु हमपर अपना प्रभुत्व प्रस्थापित करनेकी लालसासे प्रेरित हों, उन्हें ये वीर धराशायी कर डालें और ऐसा प्रबंध करें कि, ये दुष्ट शत्रु अपना सर ऊँचा न उठा सकें तथा हम शत्रुसेनाके चँगुलमें न फँसें ।

४८० ये सभी वीर समान उम्रवाले हैं और वे एकही घरमें रहते हैं [सैनिक Barracks बैरकमें रहते हैं, सो प्रसिद्ध है ।] सभी उन्हें सम्माननीय समझते हैं और लोगोंका हित हो, इसलिए वे शत्रुओंपर एकत्रित रूप से आक्रमण कर बैठते हैं । सुदूरवर्ती दुश्मनोंपर भी वे विजय पाते हैं और समूची जनताका हित हो, इस हेतु धन कमानेके लिए अपना बल बढाते रहते हैं ।

टिप्पणी— [४७९] (१) शंसः (शंस् स्तुतौ दुर्गतौ च) = स्तुति, बुलाना, दुर्गति, सदिच्छा, दर्शानेहारा, आशीर्वाद, शाप । दुस्-शंसः = दुष्ट इच्छा रखनेवाला, बुरी लालसासे प्रेरित, अपकीर्तिसे युक्त । (२) सहस् = बल, सामर्थ्य, शत्रुका पराभव करनेकी शक्ति, शत्रुदलका आक्रमण बरदाश्त करते हुए अपनी जगह स्थायी रूप से टिकनेकी शक्ति । [४८०] (१) स-वयस् = (वयस् = वय, यौवन, अन्न, बल, पंछी, आरोग्य ।) अन्नयुक्त, बलवान, नवयुवक, आरोग्यसंपन्न, समान उम्रका । (२) वसु-या = धन पानेके लिए जानेहारे, चेष्टा करनेमें निरत । (३) शुभ्=शोभा, तेज, सुख, विजय, अलंकार, जल, तेजस्वी रथ । (४) मिक्ष् = मिलाना (Mix), तैयार करना, इकट्ठा करना । (५) स-नीळाः = एक घरमें रहनेवाले, (देखो मरुद्देवताके मंत्र ३२१, ३४५, ४४७) ।

४८१ कस्य ब्रह्माणि जुजुषुर्युवानः को अध्वरे मरुत आ ववर्त ।
श्येनाँइव ध्रजतो अन्तरिक्षे केन महा मनसा रीरमाम ॥२॥ [३२५१]
(४८१) कस्य । ब्रह्माणि । जुजुषुः । युवानः । कः । अध्वरे । मरुतः । आ । ववर्त ।
श्येनान्ऽइव । ध्रजतः । अन्तरिक्षे । केन । महा । मनसा । रीरमाम ॥२॥
४८२ कुतस्त्वमिन्द्र माहिनः सन्नेको यासि सत्पते किं त इत्था ।
सं पृच्छसे समराणः शुभानैर्वोचेस्तन्नो हरिवो यत् ते अस्मे ॥३॥ [३२५२]
(४८२) कुतः । त्वम् । इन्द्र । माहिनः । सन् । एकः । यासि । सत्ऽपते । किम् । ते । इत्था ।
सम् । पृच्छसे । सम्ऽअराणः । शुभानैः । वोचेः । तत् । नः । हरिऽवः । यत् । ते ।
अस्मे इति ॥३॥

अन्वयः— ४८१ युवानः कस्य ब्रह्माणि जुजुषुः ? कः मरुतः अ-ध्वरे आ ववर्त ? अन्तरिक्षे श्येनान्इव ध्रजतः (तान्) केन महा मनसा रीरमाम ? ४८२ (हे) सत् पते इन्द्र ! त्वं माहिनः एकः सन् कुतः यासि ? ते इत्था किं ? शुभानैः सं-अराणः सं पृच्छसे, (हे) हरि-व ! यत् ते अस्मे तत् वोचेः ।

अर्थ-४८१ ये (युवानः) वीर युवक इस समय (कस्य ब्रह्माणि जुजुषुः) भला किसके स्तोत्र सुनते होंगे? (कः) कौन इस समय (मरुतः) इन वीर मरुतोंको अपने (अ-ध्वरे) हिंसारहित यज्ञमें (आ ववर्त) आनेके लिए प्रवृत्त करता होगा? (अन्तरिक्षे) आकाशपथमेंसे (श्येनान्इव) बाज पंछी की नाई (ध्रजतः) वेगपूर्वक जानेहारे इन वीरोंको (केन महा मनसा) किस उदार मनोभावसे हम (रीरमाम) भला रममाण कर लें?

४८२ हे (सत्-पते इन्द्र!) सज्जनोंका पालन करनेहारे इन्द्र! (त्वं माहिनः) तू महान् होते हुए भी इस भाँति (एकः सन्) अकेलाही (कुतः यासि) किधर भला चला जा रहा है? (ते) तेरा (इत्था) इसी तरह वर्ताव (किं) भला किस लिए है? (शुभानैः) अच्छे कर्म करनेहारे वीरोंके साथ (सं-अराणः) शत्रुदलपर धावा करनेहारा तू 'सं पृच्छसे) हमसे कुशल प्रश्न पूछता है। हे (हरि-वः!) उत्तम अश्वोंसे युक्त इन्द्र! (यत् ते अस्मे) जो कुछ तुझे हमें बतलाना हो (तत् वोचेः) वह कह दे।

भावार्थ— ४८१ ये वीर युवकदशामें हैं और वे यज्ञमें जाकर काव्यगायनका श्रवण करते हैं, वीरगाथाओंका गायन सुनते हैं। वे (अपने वायुयानोंमें बैठ) अन्तरिक्षकी राहमेंसे वेगपूर्वक चले जाते हैं। हमारी चाह है कि वे हमारे इस हिंसारहित कर्ममें पधारें और शुभ कर्मका अवलोकन करके इधरही रममाण हों।

४८२ सज्जनोंका पालनकर्ता इन्द्र अकेला होने परभी कभी एकाध मौकेपर शत्रुसेनापर आक्रमण करने जाता है। प्रायः वह तेजस्वी वीरोंको साथ ले विरोधियोंसे जूझने प्रयाण करता है। प्रथम अपनी आयोजना उनसे कहकर और सबका एकत्रित कर्तव्य निर्धारित करके पश्चात्ही वह विद्युत्युद्धप्रणालीका अवलंब करता है, जिसके फलस्वरूप शत्रुसेना तितरबितर हुआ करती है।

टिप्पणी— [४८१] (१) ब्रह्मन् = ज्ञान, स्तोत्र, काव्य, बुद्धि, धन, सूर्य, अन्न। (२) मनस् = मन, विचार, कल्पना, युक्ति. हेतु, इच्छा। (३) ध्रज् (गतौ) = जाना, हिलना, हिलाना। (४) अन्तरिक्षे श्येनान् इव = (देखो मरुद्देवताके मंत्र ९१, १५१, ३८९)। [४८२] (१) माहिनः = बडा, प्रसन्नचेता, प्रशंसनीय। (२) शुभानः = शोभायमान, सुशोभित।

४८३ ब्रह्मा॑णि मे म॒तय॒: शं सु॒तास॒: शुष्म॑ इयर्ति॒ प्रभृ॑तो मे॒ अद्रि॑: ।
आ शा॑सते॒ प्रति॑ हर्यन्त्यु॒क्थे—मा हरी॑ वहत॒स्ता नो॒ अच्छ॑ ॥४॥ [३२५३]

(४८३) ब्रह्मा॑णि । मे॒ । म॒तय॑: । शम् । सु॒तास॑: । शुष्म॑: । इ॒यर्ति॒ । प्रऽभृ॑तः । मे॒ । अद्रि॑: ।
आ । शा॒स॒ते॒ । प्रति॑ । ह॒र्य॒न्ति॒ । उ॒क्था । इ॒मा । हरी॒ इति॑ । व॒ह॒तः॒ । ता । नः॒ ।
अच्छ॑ ॥४॥

४८४ अतो॑ व॒यम॑न्त॒मेभि॑र्यु॒जा॒नाः स्वक्ष॑त्रेभिस्त॒न्व१: शुम्भ॑मानाः ।
महो॑भि॒रेता॒ँ उप॑ युज्महे॒ न्वि—न्द्र॑ स्व॒धामनु॒ हि नो॑ ब॒भूथ॑ ॥५॥ [३२५४]

(४८४) अत॑: । व॒यम् । अ॒न्त॒मेभि॑: । यु॒जा॒नाः । स्वऽक्ष॑त्रेभिः । त॒न्व॑: । शुम्भ॑मानाः ।
महः॑ऽभि । ए॒तान् । उप॑ । यु॒ज्म॒हे॒ । नु । इन्द्र॑ । स्व॒धाम् । अनु॑ । हि । नः॒ । ब॒भूथ॑ ।
॥५॥

अन्वयः — ४८३ मे ब्रह्माणि मतयः सुतासः शं, प्र-भृतः मे शुष्मः अद्रिः इयर्ति, आ शासते, उक्थ प्रति हर्यन्ति, इमा हरी नः ता अच्छ वहतः ।

४८४ अतः वयं अन्तमेभिः स्व-क्षत्रेभिः युजानाः तन्वः शुम्भमानाः महोभिः एतान् नु उप युज्महे, हि (हे) इन्द्र ! नः स्व-धां अनु वभूथ ।

अर्थ— ४८३ (मे) मेरे (ब्रह्माणि) स्तोत्र, मेरे (मतयः) विचार तथा (सुतासः) निचोडे हुए सोमरस सभी (शं) सुखकारक हों। हाथमें (प्र-भृतः) सुदृढ ढंगसे पकडा हुआ (मे) यह मेरा (शुष्मः) शत्रुका शोषण करनेवाला प्रभावी (अद्रिः) वज्र (इयर्ति) शत्रुपर जा गिरता है और इसीलिए सभी लोक (आ शासते) मेरी प्रशंसा करते हैं तथा मेरे (उक्था) काव्योंकाभी (प्रति हर्यन्ति) गायन करते हैं। (इमा हरी) ये दो घोडे (नः) हमें (ता अच्छ) उन यज्ञस्थलोंतक (वहतः) ले चलते हैं।

४८४ (अतः) इसीलिए (वयं) हम (अन्तमेभिः) अपने समीपकी (स्व-क्षत्रेभिः) स्वकीय शूरताओं से (युजानाः) युक्त होकर (तन्वः शुम्भमानाः) शरीर सुशोभित करके इस (महोभिः) सामर्थ्य से पूर्ण (एतान्) कृष्णसारोंको अपने रथोंमें (नु उप युज्महे) जोतते हैं। (हि) क्योंकि हे (इन्द्र !) इन्द्र ! (नः स्व-धां) हमारी शक्तिका तुझे (अनु वभूथ) अनुभव ही है।

भावार्थ— ४८३ वीरोंके काव्य सुविचारको प्रोत्साहन देते हैं। वीर सैनिक मीठे एवं उत्साहवर्धक सोमरसका पान करें। जिधर वीरकाव्योंका गायन होता हो उधर जनता चली जाय, और उसे सुन ले। वीर अपने समीप ऐसे हथियार रखें कि, जो शत्रुके बलको शुष्क कर डालें तथा उनका विनाशभी कर दें।

४८४ वीर क्षत्रिय अपनी शूरतासे सुहाते हैं। मौका आतेही वे सज्ज होकर शत्रुओंपर धावा करनेके लिए रथोंको तैयार रखते हैं। उनका सेनापति भी उनकी शक्ति के अनुसार उन्हें कार्य देता है।

टिप्पणी- [४८४] (१) स्व-क्षत्रेभिः= अपने क्षत्रिय वीरोंके साथ, अपने क्षत्रियोचित साधनोंके साथ। (ऋ० १।१९।५ देखो।) इस पदसे स्पष्ट सूचना मिलती है कि, मरुत् क्षत्रियवीरही हैं।

४८५ क्वस्या वो मरुतः स्वधासीद् यन्मामेकं समधत्ताहिहत्ये।
अहं ह्युग्रस्तविषस्तुविष्मान् विश्वस्य शत्रोरनमं वधस्नैः ॥६॥ [३२५५]

(४८५) क्व । स्या । वः । मरुतः । स्वधा । आसीत् । यत् । माम् । एकम् । सम्ऽअधत्त । अहिऽहत्ये ।
अहम् । हि । उग्रः । तविषः । तुविष्मान् । विश्वस्य । शत्रोः । अनमम् । वधऽस्नैः ॥६॥

४८६ भूरि चकर्थ युज्येभिरस्मे समानेभिर्वृषभ पौंस्येभिः।
भूरीणि हि कृणवामा शविष्ठेन्द्र क्रत्वा मरुतो यद् वशाम ॥ ७॥ [३२५६]

(४८६) भूरि । चकर्थ । युज्येभिः । अस्मे इति । समानेभिः । वृषभ । पौंस्येभिः ।
भूरीणि । हि । कृणवाम । शविष्ठ । इन्द्र । क्रत्वा । मरुतः । यत् । वशाम ॥७॥

अन्वयः-४८५ (हे) मरुतः! अहि-हत्ये यत् मां एकं समधत्त स्या वः स्व-धा क्व आसीत्? अहं हि उग्रः तविषः तुविस्-मान् विश्वस्य शत्रोः वध-स्नैः अनमम्।

४८६ (हे) वृषभ! अस्मे युज्येभिः समानेभिः पौंस्येभिः भूरि चकर्थ, (हे) शविष्ठ इन्द्र! (वयं) मरुतः यत् वशाम, क्रत्वा भूरीणि कृणवाम हि।

अर्थ- ४८५ हे (मरुतः!) वीर मरुतो! (अहि-हत्ये) शत्रुको मारते समय (यत्) जो शक्ति (मां एकं) मेरे अकेले के निकट तुम (समधत्त) सब मिलकर एकत्रित कर चुके हो, (स्या) वह (वः) तुम्हारी (स्व-धा) शक्ति अब (क्व आसीत्) भला किधर है? (अहं हि) मैं भी (उग्रः) शूर, (तविषः) बलवान् तथा (तुविस्-मान्) वेगपूर्वक हमले करनेवाला हूँ, अतः (विश्वस्य शत्रोः) सभी शत्रुओंको (वध-स्नैः) वज्रके आघातों से (अनमं) झुका चुका हूँ, उनपर मैं विजयी बन चुका हूँ।

४८६ हे (वृषभ!) बलवान् इन्द्र! (अस्मे) हमारे लिए (युज्येभिः) योग्य एवं (समानेभिः) सदृश (पौंस्येभिः) प्रभावोत्पादक सामर्थ्यों से तू (भूरि चकर्थ) बहुत पराक्रम कर चुका है। हे (शविष्ठ इन्द्र!) बलिष्ठ इन्द्र! (मरुतः) हम वीर मरुत् (यत् वशाम) जिसे चाहते हैं उसे अपने निजी (क्रत्वा) कार्यक्षमता तथा पुरुषार्थ से हम अवश्यही (भूरीणि) अधिक गुण तथा विपुल (कृणवाम हि) करके दिखाते हैं।

भावार्थ— ४८५ वृद्धिंगत होनेवाले शत्रुपर धावा करते समय अपनी सारी शक्ति एकही स्थानमें केन्द्रित करनी चाहिए। संपूर्ण शक्ति एकत्रित कर शत्रुदलपर आक्रमण का सूत्रपात करना ठीक है। अपना बल, वीर्य, तथा शूरता बढाकर समस्त शत्रुओं को परास्त करना चाहिए।

४८६ सेनापति अपनी सामर्थ्य बढाकर अत्यधिक पराक्रम करे और सैनिक भी जो करना हो, उसे अपनी शक्तिसे करके बतलायँ। [यदि सैनिक तथा सेनापति दोनों इस भाँति उत्साही, पुरुषार्थी तथा पराक्रमी हों और यदि वे एक विचारसे प्रेरित हो कर्तव्यकर्म निभाने लगें, तो उनके विजयी होनेमें क्या संशय है?]

टिप्पणी— [४८५] (१) अ-हिः= जिसका बल घटता नहीं हो ऐसा बलिष्ठ शत्रु, वृत्र, निरोधन करनेवाला शत्रु। (२) वध-स्नैः (असनैः) (अस् क्षेपणे)= वज्रके आघात, शस्त्रके विभिन्न प्रयोग, अस्त्रप्रयोग।

[४८६] (१) क्रतुः= यज्ञ, बुद्धि, शक्ति, सामर्थ्य, युक्ति, इच्छा, स्वप्रेरणा, योग्यता। (२) युज्य= योग्य, जो ठीक हो।

✲

४८७ वधीं वृत्रं मरुत इन्द्रियेण स्वेन भामेन तविषो बभूवान्।
अहमेता मनवे विश्वश्चन्द्राः सुगा अपश्चकर वज्रबाहुः ॥८॥ [३२५७]

(४८७) वधीम्। वृत्रम्। मरुतः। इन्द्रियेण। स्वेन। भामेन। तविषः। बभूवान्।
अहम्। एताः। मनवे। विश्वऽचन्द्राः। सुऽगाः। अपः। चकर। वज्रऽबाहुः ॥८॥

४८८ अनुत्तमा ते मघवन्नकिर्नु न त्वावाँ अस्ति देवता विदानः।
न जायमानो नशते न जातो यानि करिष्या कृणुहि प्रवृद्ध ॥९॥ [३२५८]

(४८८) अनुत्तम्। आ। ते। मघऽवन्। नकिः। नु। न। त्वाऽवान्। अस्ति। देवता। विदानः।
न। जायमानः। नशते। न। जातः। यानि। करिष्या। कृणुहि। प्रऽवृद्ध ॥९॥

अन्वयः— ४८७ (हे) मरुतः ! स्वेन भामेन इन्द्रियेण तविषः बभूवान्, वज्र-बाहुः अहं वृत्रं वधीं, मनवे एताः विश्व-चन्द्राः अपः सु-गाः चकर।

४८८ (हे) मघवन् ! ते अनु-उत्तं नकिः नु आ, त्वावान् विदानः देवता न अस्ति, (हे) प्र-वृद्ध ! यानि करिष्या कृणुहि न जायमानः न जातः नशते।

अर्थ—४८७ हे (मरुतः !) वीर मरुतो ! (स्वेन भामेन इन्द्रियेण) अपने निजी तेजस्वी इन्द्रियों से (तविषः) बलवान् (बभूवान्) हुआ और (वज्र-बाहुः) हाथमें वज्र धारण करनेवाला (अहं) मैं (वृत्रं वधीं) घेरनेवाले शत्रुका वध करके (मनवे) मानवमात्रके लिए (एताः) ये (विश्व-चन्द्राः) सबको आल्हाद देनेवाले (अपः) जलौघ सबको (सु-गाः चकर) सुगमतापूर्वक मिलते जायँ, ऐसा प्रबंध कर चुका।

४८८ हे (मघवन् !) इन्द्र ! (ते) तुम्हारी (अनु-उत्तं) प्रेरणा के विना (नकिः नु आ) कुछ भी नहीं होने पाता। (त्वावान्) तुम्हारे समकक्ष (विदानः देवता) ज्ञाता देव (न अस्ति) दूसरा कोई विद्यमान नहीं है। हे (प्र-वृद्ध !) अत्यन्त महान् इन्द्र ! (यानि करिष्या) जो कर्तव्यकर्म तू (कृणुहि) निभाता है, उन्हें दूसरा कोई भी (न जायमानः [नशते]) जन्म लेनेवाला नहीं कर सकता, अथवा (न जातः नशते) उत्पन्न हुआ पुरुष भी नहीं कर सकता।

भावार्थ— ४८७ अपना इन्द्रियसामर्थ्य बढाकर वीर पुरुष हाथमें हथियार लेकर जलप्रवाहकी स्वच्छन्द गतिमें बाधा डालनेवाले शत्रु का वध करके सभी मानवोंके हितके लिये अत्यावश्यक जीवनोपयोगी जल हरएक को बडी आसानीसे मिल सके, ऐसी व्यवस्था कर दे। [इस भाँतिके लोकहितकारक कार्य करना बलिष्ठ वीरोंका कर्तव्यही है।]

४८८ वीर के लिए अजेय कुछ भी नहीं है। वीर जानकारी प्राप्त करके ज्ञानी बने और वह ऐसे कार्य शुरू कर दे कि, जिन्हें निष्पन्न करना अभी तक असम्भव हुआ हो या आगे चलकर कोई दूसरा कर लेगा, ऐसी संभावना न दीख पडती हो।

टिप्पणी— [४८७] (१) सुगाः अपः= (सु-गाः) सुगमतापूर्वक मिल सके ऐसे जलप्रवाह, जिसमें खलबली मचती हो, ऐसा प्रवाह।

[४८८] (१) अ नुत्त (नुद् प्रेरणे)= अप्रेरित, अजेय अनु-उत्त= (उद्-उन्द् क्लेदने) जो न भिगोया गया हो, जिसपर आक्रमण न हुआ हो। (२) विदानः (विद् ज्ञाने)= ज्ञानी। (३) प्र-वृद्ध= महान्, बलिष्ठ, अनुभवी।

४८९ एकस्य चिन्मे विभ्व१स्त्वोजो या नु दधृष्वान् कृणवै मनीषा।
अहं ह्यु१ग्रो मरुतो विदानो यानि च्यवमिन्द्र इदीश एषाम् ॥१०॥ [३२५९]

(४८९) एकस्य । चित् । मे । विऽभु । अस्तु । ओजः । या । नु । दधृष्वान् । कृणवै । मनीषा ।
अहम् । हि । उग्रः । मरुतः । विदानः । यानि । च्यवम् । इन्द्रः । इत् । ईशे । एषाम् ॥१०॥

४९० अमन्दन्मा मरुतः स्तोमो अत्र यन्मे नरः श्रुत्यं ब्रह्म चक्र।
इन्द्राय वृष्णे सुमखाय मह्यं सख्ये सखायस्तन्वे तनूभिः ॥११॥ [३२६०]

(४९०) अमन्दत् । मा । मरुतः । स्तोमः । अत्र । यत् । मे । नरः । श्रुत्यम् । ब्रह्म । चक्र ।
इन्द्राय । वृष्णे । सुऽमखाय । मह्यम् । सख्ये । सखायः । तन्वे । तनूभिः ॥११॥

अन्वयः— ४८९ मे एकस्य चित् ओजः विभु अस्तु, या मनीषा दधृष्वान् कृणवै नु, (हे) मरुतः! अहं हि उग्रः विदानः यानि च्यवं एषां इन्द्रः चित् ईशे।

४९० (हे) नरः मरुतः! अत्र स्तोमः मा अमन्दत्, यत् मे श्रुत्यं ब्रह्म चक्र, वृष्णे सु-मखाय मह्यं इन्द्राय, (हे) सखायः! सख्ये तनूभिः तन्वे।

अर्थ— ४८९ (मे एकस्य चित्) मेरे अकेलेकाही (ओजः) सामर्थ्य (विभु अस्तु) प्रभावशाली बनता रहे। (या मनीषा) जो इच्छा मैं (दधृष्वान्) अन्तःकरणमें धारण कर लूँगा, वह (कृणवै नु) सचमुचही पूर्ण करूँगा। हे (मरुतः!) वीर मरुतो! (अहं हि) मैं तो (उग्रः) शूर तथा (विदानः) ज्ञानी हूँ और (यानि च्यवं) जिनके समीप मैं जाऊँगा, (एषां) उनपर (इन्द्रः इत्) इन्द्रकी हैसियतमेंही (ईशे) प्रभुत्व प्रस्थापित कर लूँगा।

४९० हे (नरः मरुतः!) नेता वीर मरुत्! (अत्र) यहाँ तुम्हारा (स्तोमः) यह स्तोत्र (मा अमन्दत्) मुझे हर्षित कर रहा है। (यत्) जो यह तुम (मे) मेरा (श्रुत्यं ब्रह्म) यशस्वी स्तोत्र (चक्र) बना चुके हो, वह (वृष्णे) बलवान तथा (सु-मखाय) उत्तम सत्कर्म करनेहारे (मह्यं इन्द्राय) मुझ इन्द्रके लिएही किया है। हे (सखायः!) मित्रो! तुम सचमुच (सख्ये) मेरी मित्रता के लिए अपने (तनूभिः) शरीरों से मेरे (तन्वे) शरीरका संरक्षण करते हो।

भावार्थ— ४८९ वीरके अन्तस्तलमें यह महत्त्वाकांक्षा सदैव जागृत एवं ज्वलन्त रहे कि उसका बल परिणामकारक हो। वह जिस आयोजनाकी रूपरेषा निर्धारित करे, उसे लगनके साथ पूर्ण कर ले। अपना ज्ञान तथा शौर्य वृद्धिंगत करके जिधरभी चला जाय, उधरही प्रमुख तथा अग्रगन्ता बनकर अत्यन्त कर्मण्य बने।

४९० वीरोंके काव्यमें पाये जानेवाले यशोवर्णन को सुनकर वीर सैनिक अतीव प्रसन्न हो उठते हैं। वीरों को वीरोंकी सहायता अवश्य मिलती है।

टिप्पणी— [४८९] (१) विभु = शक्तिमान्, प्रबल, प्रमुख, समर्थ, स्थिर।

४९१ एवेदेते प्रति मा रोचमाना अनेद्यः श्रव एषो दधानाः ।
संचक्ष्या मरुतश्चन्द्रवर्णा अच्छान्त मे छदयाथा च नूनम् ॥१२॥ [३२६१]

(४९१) एव । इत् । एते । प्रति । मा । रोचमानाः । अनेद्यः । श्रवः । आ । इषः । दधानाः ।
सम्ऽचक्ष्य । मरुतः । चन्द्रऽवर्णाः । अच्छान्त । मे । छदयाथ । च । नूनम् ॥१२॥

४९२ को न्वत्र मरुतो मामहे वः प्र यातन सखीँरच्छा सखायः ।
मन्मानि चित्रा अपिवातयन्त एषां भूत नवेदा म ऋतानाम् ॥१३॥ [३२६२]

(४९२) कः । नु । अत्र । मरुतः । ममहे । वः । प्र । यातन । सखीन् । अच्छ । सखायः ।
मन्मानि । चित्राः । अपिऽवातयन्तः । एषाम् । भूत । नवेदाः । मे । ऋतानाम् ॥१३॥

अन्वयः— ४९१ (हे) चन्द्र--वर्णाः मरुतः ! एव इत् रोचमानाः अ--नेद्यः श्रवः इषः आ दधानाः एते मा प्रति सं--चक्ष्य मे नूनं अच्छान्त छदयाथ च ।

४९२ (हे) सखायः मरुतः ! अत्र कः नु वः ममहे ? सखीन् अच्छ प्र यातन, (हे) चित्राः ! मन्मानि अपि--वातयन्तः एषां मे ऋतानां नवेदाः भूत ।

अर्थ— ४९१ हे (चन्द्र-वर्णाः मरुतः !) चन्द्रमाके तुल्य वर्णवाले वीर मरुतो ! (एव इत्) सचमुचही (रोचमानाः) तेजस्वी, (अ-नेद्यः) अनिन्दनीय तथा (श्रवः इषः आ दधानाः) कीर्ति एवं अन्न धारण करनेहारे (एते) ये विख्यात वीर (मा प्रति) मेरी ओर (सं-चक्ष्य) भली भाँति निहारकर अपने यशोंद्वारा (मे नूनं) मुझे सचमुच (अच्छान्त) हर्षित कर चुके, उसी भाँति अब भी (छदयाथ च) प्रसन्न करो।

४९२ हे (सखायः मरुतः !) प्यारे मित्र मरुत्-वीरो ! (अत्र) यहाँ (कः नु) भला कौन (वः) तुम्हारा (ममहे) सम्मान कर रहा है ? तुम (सखीन् अच्छ) अपने मित्रोंकी ओर (प्र यातन) चले जाओ। हे (चित्राः !) आश्चर्य उत्पन्न करनेवाले वीरो ! तुम (मन्मानि) मननीय धनों के समीप (अपि-वातयन्तः) वेगपूर्वक जाकर पहुँच जानेवाले-श्रेष्ठ धन प्राप्त करनेवाले और (एषां मे ऋतानां) इन मेरे सत्कर्मों के (नवेदाः भूत) जाननेहारे बनो।

भावार्थ— ४९१ वीर मरुतों का वर्ण चन्द्रवत् आल्हाददायक है। वे तेजस्वी हैं और निर्दोष अन्नकी समृद्धि करते हुए निष्कलंक यश पाते हैं। कभी कभी उनका पराक्रम इतना उज्ज्वल रहता है कि उसीके फलस्वरूप वे अपने सेनापति का यश भी अपने यशोंसे ढकसे देते हैं और इसीसे उसे आनंदित भी करते हैं।

४९२ वीरोंका गौरव एवं सम्मान चतुर्दिक् होता रहे। वे अपने मित्रोंके निकट जाकर उनकी रक्षा करें। वे ऐसा पराक्रम कर दिखलाएँ कि जनता अचरभेमें आ जाय और निर्दोष ढंगसे धन कमाकर सरल मार्गोंसेही यशस्विता किस प्रकार पाई जा सकती है, सो भली प्रकार जान लें।

टिप्पणी— [४९१] (१) चन्द्र-वर्णाः= चन्द्रमाके तुल्य वर्णवाले, (चन्द्र=सुवर्ण; सुवर्णके रंगसे युक्त।) [मरुद्देवता मंत्र २०९ देखिए। वहाँ 'हिरण्य-वर्णान्' पद उपलब्ध है। ऋ० १।१००।८ में 'श्वित्नेभिः' पदसे मरुतोंके शुभ्र-गौर वर्ण की सूचना मिलती है। साधारणतया ऐसा जान पडता है कि वीर-मरुत् गौरपीत दीख पडते थे।] (२) अच्छान्त (छद् आच्छादने)= ढक दिया, आनन्द दिया। (३) चक्ष् (व्यक्तायां वाचि)= देखना, बोलना।

[४९२] (१) ऋत = सरल बर्ताव, सत्य, यज्ञ, पवित्र कार्य, प्रिय भाषण, सत्कर्म। (२) नवेदस्= जाननेहारा (सायणभाष्य) [मरुद्देवता मंत्र ५.५५।८; २७२ तथा ऋ० १०।३१।३ देखिए।]

४९३ आ यद् दुवस्याद् दुवसे न कारु—रस्माञ्चक्रे मान्यस्य मेधा।
ओ षु वर्त्त मरुतो विप्रमच्छे—मा ब्रह्माणि जरिता वो अर्चत् ॥१४॥ [३२६३]
(४९३) आ। यत्। दुवस्यात्। दुवसे। न। कारुः। अस्मान्। चक्रे। मान्यस्य। मेधा।
ओ इति। सु। वर्त्त। मरुतः। विप्रम्। अच्छ। इमा। ब्रह्माणि। जरिता। वः।
अर्चत् ॥१४॥

(ऋ० १।१७१।३-६) [इन्द्रदेवता मंत्र ३२६५-६८]

४९४ स्तुतासो नो मरुतो मृळयन्तू—त स्तुतो मघवा शंभविष्ठः।
ऊर्ध्वा नः सन्तु कोम्या वना—न्यहानि विश्वा मरुतो जिगीषा ॥३॥ [३२६५]
(४९४) स्तुतासः। नः। मरुतः। मृळयन्तु। उत। स्तुतः। मघऽवा। शम्ऽभविष्ठः।
ऊर्ध्वा। नः। सन्तु। कोम्या। वनानि। अहानि। विश्वा। मरुतः। जिगीषा
॥३॥

अन्वयः— ४९३ (हे) मरुतः! दुवस्यात् मान्यस्य कारुः मेधा न दुवसे अस्मान् आ चक्रे, विप्रं अच्छ ओ सु वर्त्त, जरिता वः इमा ब्रह्माणि अर्चत्।

४९४ स्तुतासः मरुतः नः मृळयन्तु, उत स्तुतः शं-भविष्ठः मघवा, (हे) मरुतः! नः अहानि कोम्या वनानि सन्तु जिगीषा ऊर्ध्वा।

अर्थ— ४९३ हे (मरुतः!) वीर मरुतो! तुम (दुवस्यात्) पूजनीय या संमाननीय हो, अतः (मान्यस्य) मान्य कवि की (कारुः मेधा) कुशल बुद्धि (न) अब तुम्हारा (दुवसे) सत्कार करने के लिए (अस्मान्) हमें (आ चक्रे) सभी प्रकारसे प्रेरणा करती है, इसलिए तुम इस (विप्रं अच्छ) ज्ञानी की ओर (ओ सु वर्त्त) प्रवृत्त हो जाओ-आओ। (जरिता) यह स्तोता-उपासक-(वः इमा ब्रह्माणि) तुम्हारे इन स्तोत्रों-काव्यों-का (अर्चत्) गायन करता आ रहा है।

४९४ (स्तुतासः मरुतः) सराहना करनेपर ये वीर मरुत् (नः मृळयन्तु) हमें सुख दें; (उत) और (स्तुतः) प्रशंसा करनेपर (शं-भविष्ठः) आनन्द देनेहारा (मघवा) इन्द्र भी हमें सुख दे। हे (मरुतः!) वीर मरुतो! (नः विश्वा अहानि) हमारे सभी दिन (कोम्या) काम्य, (वनानि) वनराजि के तुल्य आनन्ददायक (सन्तु) हों और हमारी (जिगीषा) विजयकी लालसा (ऊर्ध्वा) उच्च कोटिकी बनी रहे।

भावार्थ— ४९३ ये वीर सम्माननीय हैं, इसलिए कवियोंकी बुद्धि उनके समुचित वर्णन के लिए सचेष्ट रहा करती है। वीरभी ऐसे कवियोंका आदर करें और उनके काव्योंका श्रवण करें।

४९४ वीर मरुत् और इन्द्र हमें सुखी बना दें। हमारा प्रत्येक दिन उज्ज्वल, रमणीय तथा सत्कार्य में लगा हुआ होनेके कारण आनन्ददायक हो और हमारी विजयेच्छा अत्यन्त उच्च दर्जेकी हो जाय।

टिप्पणी— [४९३] (१) [दुवस्यात् (हतोः)= हेत्वर्थे पञ्चमी।] दुवस्यः= माननीय, पूजनीय। (२) जरिता (जॄ जरते= बुलाना, स्तुति करना)= स्तुति करनेहारा, स्तोता, उपासक।

[४९४] (१) कोम्य= कमनीय, स्पृहणीय, रमणीय, उज्ज्वल (Polished, lovely)। (२) वन्= सम्मान देना, इच्छा करना, चाहना। वन= इष्ट, इच्छा करनेके योग्य, वन।

४९५ अस्मादहं त॑विषादीषमाण इन्द्राद् भिया मरुतो रेजमानः।
युष्मभ्यं हव्या निशितान्यासन् तान्यारे चकृमा मृळता नः ॥४॥ [२२६६]
(४९५) अस्मात्। अहम्। तविषात्। ईषमाणः। इन्द्रात्। भिया। मरुतः। रेजमानः।
युष्मभ्यम्। हव्या। निऽशितानि। आसन्। तानि। आरे। चकृम। मृळत। नः।
॥४॥

४९६ येन मानासश्चितयन्त उस्रा व्युष्टिषु शवसा शश्वतीनाम्।
स नो मरुद्भिर्वृषभ श्रवो धा उग्र उग्रेभिः स्थविरः सहोदाः ॥५॥ [२२६७]
(४९६) येन। मानासः। चितयन्ते। उस्राः। विऽउष्टिषु। शवसा। शश्वतीनाम्।
सः। नः। मरुत्ऽभिः। वृषभ। श्रवः। धाः। उग्रः। उग्रेभिः। स्थविरः। सहःऽ
दाः ॥५॥

अन्वयः- ४९५ (हे) मरुतः! अस्मात् तविषात् इन्द्रात् भिया अहं ईषमाणः रेजमानः, युष्मभ्यं हव्या नि-शितानि आसन्, तानि आरे चकृम, नः मृळत।

४९६ मानासः उस्राः येन शवसा शश्वतीनां व्युष्टिषु चितयन्ते, उग्रेभिः मरुद्भिः (हे) वृषभ उग्र! स्थविरः सहो-दाः सः नः श्रवः धाः।

अर्थ— ४९५ हे (मरुतः!) वीर मरुतो! (अस्मात् तविषात् इन्द्रात्) इस बलिष्ठ इन्द्रके (भिया) भयसे (अहं) मैं भयभीत होकर (ईषमाणः) दौडने तथा (रेजमानः) कांपने लगा हूँ। (युष्मभ्यं) तुम्हारे लिए (हव्या) हविष्यान्न (नि-शितानि आसन्) भली भाँति तैयार कर रखे थे, पर (तानि) वे उसके भयसे (आरे) दूर (चकृम) कर दिये, वे उसे दिये जा चुके हैं, इसलिए अब (नः मृळत) हमें क्षमा करते हुए सुखी बनाओ।

४९६ (मानासः) माननीय (उस्राः) सूर्यकिरण (येन शवसा) जिस सामर्थ्य से (शश्वतीनां व्युष्टिषु) शाश्वतिक उषःकालों में जनताको (चितयन्ते) जागृत करते हैं, उसी सामर्थ्य से युक्त और (उग्रेभिः) शूर (मरुद्भिः) वीर मरुतों के साथ विद्यमान हे (वृषभ उग्र!) बलवान तथा शूर वीरश्रेष्ठ इन्द्र! (स्थविरः) वयोवृद्ध तथा (सहो-दाः) बल देनेवाला (सः) वह तू (नः) हमें (श्रवः धाः) कीर्ति तथा अन्न प्रदान कर।

भावार्थ— ४९५ वीरोंका पराक्रम तथा प्रभाव इस भाँति हो कि, परिचित लोगभी उसे निहारकर सहम जायँ; फिर शत्रु यदि डर जाएँ तो उसमें क्या आश्चर्य ?

४९६ इन वीरोंकी सहायता से हमें अन्न तथा यश मिले।

टिप्पणी— [४९५] (१) नि-शित (शो तनूकरणे)= तीक्ष्ण किया हुआ, तेज (हथियार)। (२) ईष् (गति-हिंसादर्शनेषु)= जाना, वध करना, देखना।

[४९६] (१) मानः= आदर, सम्मान, परिमाण। (२) चित्= चेतना देना, जागृत करना, देखना, निहारना, जानना। (३) उस्र (वस् निवासे)= बैल, गौ, किरण। (४) व्युष्टि=प्रभात, वैभवशालिता, स्तुति, ऐश्वर्य।

४९७ त्वं पाहीन्द्र सहीयसो नॄन् भवा मरुद्भिरवयातहेळाः ।
सुप्रकेतेभिः सासहिर्दधानो विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ॥६॥ [३२६८]

(४९७) त्वम् । पाहि । इन्द्र । सहीयसः । नॄन् । भव । मरुत्ऽभिः । अवयातऽहेळाः ।
सुऽप्रकेतेभिः । ससहिः । दधानः । विद्याम । इषम् । वृजनम् । जीरऽदानुम् ॥६॥

इन्द्रामरुतौ (इन्द्रदेवता मंत्र ३२६९) ।
अंगिरसपुत्र तिरश्ची या मरुत्पुत्र द्युतान ऋषि । (ऋ० ८।९६।१४)

४९८ द्रप्समपश्यं विषुणे चरन्तमुपह्वरे नद्यो अंशुमत्याः ।
नभो न कृष्णमवतस्थिवांसमिष्यामि वो वृषणो युध्यताजौ ॥१४॥ [३२६९]

(४९८) द्रप्सम् । अपश्यम् । विषुणे । चरन्तम् । उपऽह्वरे । नद्यः । अंशुऽमत्याः ।
नभः । न । कृष्णम् । अवतस्थिऽवांसम् । इष्यामि । वः । वृषणः । युध्यत । आजौ ॥१४॥

अन्वयः— ४९७ (हे) इन्द्र ! त्वं सहीयसः नॄन् पाहि, मरुद्भिः अवयात-हेळाः भव, सु-प्रकेतेभिः ससहिः दधानः. (वयं) इषं वृजनं जीर-दानुं विद्याम ।

४९८ अंशुमत्याः नद्यः उपह्वरे विषुणे द्रप्सं चरन्तं, नभः न कृष्णं, अपश्यम्, अवतस्थिवांसं इष्यामि, (हे) वृषणः ! वः आजौ युध्यत ।

अर्थ— ४९७ हे (इन्द्र !) इन्द्र ! (त्वं) तू (सहीयसः नॄन्) शत्रुओंका पराभव करने का बल प्राप्त करने वाले हमारे सदृश लोगों की (पाहि) रक्षा कर; (मरुद्भिः) वीर मरुतों के साथ हमपर (अवयात-हेळाः) क्रोध न करनेवाला बन और (सु-प्रकेतेभिः) अत्यन्त ज्ञानी वीरों के साथ (ससहिः) शत्रुदलके परास्त करनेकी सामर्थ्य (दधानः) धारण करके हमें (इषं) अन्न, (वृजनं) बल तथा (जीर-दानुं) शीघ्र विजयप्राप्ति (विद्याम) प्राप्त हो, ऐसा कर।

४९८ (अंशुमत्याः नद्यः) अंशुमती नामक नदीके समीप (उपह्वरे विषुणे) एकान्त में विद्यमान बीहड स्थानमें (द्रप्सं चरन्तं) शीघ्र गति से घूमनेवाले (नभः न कृष्णं) अंधेरे की नाईं बहुतही काले-कलूटे शत्रुको (अपश्यं) मैं देख चुका। ऐसी उस सुगुप्त जगह (अवतस्थिवांसं) रहनेवाले उस दुश्मन को (इष्यामि) मैं ढूंढ निकालता हूं। हे (वृषणः !) बलवान वीरो ! (वः) तुम उस शत्रुके साथ (आजौ) युद्धभूमि में (युध्यत) लडते रहो।

भावार्थ— ४९७ परमपिता परमात्मा उन लोगोंका परिपालन करता है जो अपनेमें शत्रुदलको परास्त करनेवाले बल का संवर्धन करते हैं। इस कार्यमें ज्ञानी वीरोंकी सहायता उसे बार बार होती है। उनके प्रचण्ड बलके सहारे समूची प्रजा अन्नसमृद्धि तथा बल एवं विजयका लाभ प्राप्त करती है।

४९८ प्रथम शत्रुके निवासस्थान तथा आश्रय आदिकी भली भाँति जानकारी उपलब्ध करनी चाहिए और पश्चात्‌ही उसपर धावा करना चाहिए।

टिप्पणी— [४९७] (१) प्रकेत (कित् ज्ञाने रोगापनयने च)=ज्ञान, बुद्धि, शोभा। सु-प्रकेत= दर्शनीय, ज्ञानी, रोग दूर हटानेवाला। (२) जीर-दानु= (मरुद्देवता मन्त्र १७२ देखिए।)

[४९८] (१) द्रप्स (द्रु गतौ=दौडना, आक्रमण करना)=दौडनेवाला, आक्रमणकर्ता, सोमबिंदु, सोमरस। (२) विषुण= विभिन्न, परिवर्तनशील, तरह तरह का (३) उपह्वर= एकान्त स्थान, ऊबडखाबड जगह।

मरुतोंके मंत्रोंके ऋषि

और उनकी मंत्रसंख्या।

	मंत्र-क्रमांक	कुल मंत्र
१ श्यावाश्व आत्रेयः	२१७-३१७-१०१	
	४२९- १	
	४२९-४५६- ८=	११०
२ अगस्त्यो मैत्रावरुणिः	१५८-१९७- ४०	
	४८०-४९७- १८=	५८
३ मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः	३४५-३९४-	५०
४ कण्वो घौरः	६- ४५-	४०
५ पुनर्वत्सः काण्वः	४६- ८१-	३६
६ गोतमो राहूगणः	१२३- ५६- ३४	
	४२८- १=	३५
७ सोभरिः काण्वः	८२-१०७- २६	
	४७४- १=	२७
८ गृत्समदः शौनकः	१९८ २१३-	१६
९ स्यूमर श्मिर्भार्गवः	४०७-४२२-	१६
१० नोधा गौतमः	१०८-१२२-	१५
११ मेधातिथिः काण्वः	५- १	
	४६५-४७३- ९	
	४७७-४७९- ३=	१३
१२ बिन्दुः पूतदक्षो वा आङ्गिरसः	३९५-४०६-	१२
१३ बार्हस्पत्यो भरद्वाजः	३३४-३४४-	११

	मंत्र-क्रमांक	कुल मंत्र
१४ अथर्वा	४३४-४३६- ३	
	४५७-४६४- ८=	११
१५ एवयामरुदात्रेयः	३१८-३२६-	९
१६ मृगारः	४४०-४४६-	७
१७ शंयुर्बार्हस्पत्यः	३२७-३३३-	७
१८ मधुच्छन्दा वैश्वमित्रः	१— ४- ४	
	४७१ ४७६- २=	६
१९ ब्रह्मा	४३०-४३३-	४
२० गाथिनो विश्वामित्रः	२१४ २१६- ३	
	४२४- १=	४
२१ सप्तर्षयः (ऋषयः)	४२५-४२७-	३
। (१) भरद्वाजः, (२) कश्यपः, (३) गोतमः, (४) अत्रिः, (५) विश्वामित्रः, (६) जमदग्निः, (७) वसिष्ठः ।		
२२ शन्तातिः	४३७ ४३९-	३
२३ परुच्छेपो दैवोदासिः	१५७-	१
२४ प्रजापतिः	४२३-	१
२५ अङ्गिराः	४४७-	१
२६ वसुश्रुत आत्रेयः	४४८-	१
२७ आङ्गिरसस्तिरश्री, द्युतानो वा मारुतः	४९८-	१
		४९८

मरुतोंका संदर्भ।

(ऋग्वेदादि वेद-संहिता, ब्राह्मण, आरण्यक और उपनिषदादि ग्रंथोंमें आये हुए, परंतु मरुद्देवताके मंत्रसंग्रहमें संगृहीत न किये गये मंत्रोंमें और वाक्योंमें मरुतोंका संदर्भ बतलानेवाला वाक्यांश इस तरह है—

ऋग्वेदसंहिता।

मंडल सू० मं०

१।२०। ५ **मरुत्वता** इन्द्रेण सं अग्मत । (ऋभवः)
२३।१० **मरुतः** सोमपीतये हवामहे । (विश्वे देवाः)
११ **मरुतां** एति धृष्णुया । ”
१२ **मरुतो** मृळयन्तु नः । ”
३१। १ **मरुतो** भ्राजत्-ऋष्टयः अजायन्त । (अग्निः)
४०। १ उप प्र यन्तु **मरुतः** । (ब्रह्मणस्पतिः)
२ **मरुतः** सुवीर्यं आ दधीत । ”
४४।१४ **मरुतः** स्तोमं शृण्वन्तु । (अग्निः)

मंडल सू० मं०

५२। ९ **मरुतः** अनु अमदन् । (इन्द्रः)
१५ **मरुतः** आजौ अर्चन् । ”
८०। ४ सृजा **मरुत्वतीरव** । ”
११ **मरुत्वाँ** वृत्रं अवधीत् । ”
८९। ७ **मरुतः** पृश्निमातरः । (विश्वे देवाः)
९०। ४ **मरुतः** चियन्तु । ”
९४।१२ **मरुतां** हेळो अद्भुतः । (अग्निः)
१००।१-१५ **मरुत्वान्** नो भवत्विन्द्र ऊती । (इन्द्रः)

१०।१-७ **मरुत्वन्तं** सख्याय हवामहे । (इन्द्रः)
८ **मरुत्वः** परमे सधस्थे । ”
९ **मरुद्भिः** मादयस्व । ”
११ **मरुत्**स्तोत्रस्य वृजनस्य गोपाः । ”
१०७। २ **मरुतो मरुद्भिः** शर्म यंसत् । (विश्वे देवाः)
१११। ४ **मरुतः** सोमपीतये हुवे । (ऋभवः)
११४। ६ **मरुतां** उच्यते वचः । (रुद्रः)
९ **मरुतां** सुम्नं रास्व । ”
११ **मरुत्वान्** रुद्रः नः हवं शृणोतु ”
१२२। १ रोदस्योः **मरुतो**ऽस्तोषि । (विश्वे देवाः)
१२८। ५ **मरुतां** न भोजा । (अग्निः)
१३४। ४ **मरुतः** वक्षणाभ्यः अजनयः । (वायुः)
१३६। ७ **मरुद्भिः** स्वयशसः मंसीमहि । (लिंगोक्ता)
१४२। ९ **मरुत्सु** भरती । (तिस्रो देव्यः)
१२ **मरुत्वते** इन्द्राय हव्यं कर्तन । (स्वाहाकृतयः)
१४३। ५ **मरुता**मिव स्वनः । (अग्निः)
१६१।१४ **मरुतः** दिवा यान्ति । (ऋभवः)
१६२। १ **मरुतः** परिख्यन् । (अश्वः)
१६५।१५ **मरुतः** एष वः स्तोमः । (मरुत्वान् इन्द्रः)
१६९। १ **मरुतां** चिकित्वान्""इन्द्रः । (इन्द्रः)
२ **मरुतां** पृत्सुतिर्हासमाना । ”
३ अभ्वं **मरुतो** जुनन्ति । ”
५ **मरुतो** नो मृळयन्तु । ,,
७ **मरुतां** आयतां उपब्दिः शृण्वे । ”
८ रदा **मरुद्भिः** शुरुधः । ”
१७०। २ **मरुतो** भ्रातरः तव । ”
५ इन्द्र ! त्वं **मरुद्भिः** संवदस्व । ”
१७३।१२ **मरुतः** ! गीः वन्दते । ,,
१८२। २ धिष्ण्या **मरुत्तमा** । (अश्विनौ)
१८६। ८ **मरुतो** वृद्धसेनाः । (विश्वे देवाः)
२। ३। ३ **मरुतां** शर्ध आ वह । (इळः)
३०। ८ **मरुत्वती** शत्रून् जेषि । (सरस्वती)
३३। १ **मरुतां** सुम्नं एतु । (रुद्रः)
६ **मरुत्वान्** रुद्रः मा उन्मा ममन्द ।”
१३ **मरुतः** ! या वः भेषजा । ”
४१।१५ **मरुद्गणा** ! मम हवं श्रुत । (विश्वे देवाः)
३। ४। ६ **मरुत्वाँ** इन्द्रः । (उषासनक्ता)
१३। ६ **मरुद्वृधः** अग्ने नः शं शोच । (अग्निः)
१४। ४ **मरुतः** सुम्नमर्चन् । ”
१६। २ **मरुतः** वृधं सश्चत । (अग्निः)

२९।१५ **मरुतामिव** प्रयाः । (अग्निः)
३२। ३ इन्द्र ! **मरुतः** ते ओजः अर्चन्ते । ”
४ शर्धो **मरुतः** य आसन् । ”
३५। ७ **मरुत्वते** तुभ्यं हवींषि रात । (इन्द्रः)
९ इन्द्र ! **मरुतः** आ भज । ”
४७। १ **मरुत्वान्** इन्द्रः । ”
२ इन्द्र ! **मरुद्भिः** सोमं पिब । ”
३ इन्द्र ! **मरुतः** आ भज । ”
४ इन्द्र ! **मरुद्भिः** सोमं पिब । ”
५ **मरुत्वन्तं** इन्द्रं हुवेम । ”
५०। १ **मरुत्वान्** इन्द्रः । ”
५१। ७ **मरुत्व** इह सोमं पाहि । ”
८ **मरुद्भिः** सोमं पाहि । ”
९ **मरुतः** अमन्दन् । ”
५२। ७ **मरुद्भिः** सोमं पिब । ”
५४।१३ **मरुतः** ऋष्टिमन्तः । (विश्वे देवाः)
२० **मरुतः** शर्म यच्छन्तु । ,,
६२। २ **मरुद्भिः** मे हवं शृणुतं । (इन्द्रावरुणौ)
३ अस्मे रयिः **मरुतः** । ”
४। १। ३ विश्वभानुषु **मरुत्सु** विदः । (अग्निवरुणौ)
२। ४ **मरुतः** अग्ने वह । (अग्निः)
३। ८ कथा **मरुतां** शर्धाय । ”
२१। ३ **मरुत्वान्** इन्द्रः आ यातु । (इन्द्रः)
२६। ४ **मरुतो** विरस्तु । (श्येनः)
३४। ७ **मरुद्भिः** पाहि । (ऋभवः)
११ **मरुद्भिः** सं मदथ । ,,
३९। ४ **मरुतां** भद्रं नाम अमन्महि । (दधिक्राः)
५५। ५ **मरुतां** अवांसि । (विश्वे देवाः)
५। ५।११ **मरुद्भ्यः** स्वाहा । (स्वाहाकृतयः)
२६। ९ **मरुतः** सीदन्तु (विश्वे देवाः)
२९। १ **मरुतः** त्वा अर्चन्ति । (इन्द्रः)
२ **मरुतः** इन्द्रं आर्चन् । ”
३ **मरुतो** मे सुषुतस्य पेयाः । ”
६ **मरुतः** इन्द्रं अर्चन्ति । ,,
३०। ६ **मरुतः** अर्कं अर्चन्ति ”
८ **मरुद्भ्यः** रोदसी चक्रिया इव ।”
३१।१० **मरुतः** ते तविषीं अवर्धन् । ,,
३६। ६ श्रुतरथाय **मरुता** दुवोयाः ।
४१। ५ **मरुतः** रायः दधीत । (विश्वे देवाः)
१६ **मरुतो** अच्छोक्तौ ” ”
४३।१० **मरुतो** वक्षि जातवेदः । ,, ,,

४५। ४ **मरुतो** यजन्ति। (विश्वे देवाः)
४६। ३ **मरुतः** हुवे। " "
६०। १ **मरुतां** स्तोमं ऋध्याम्। (मरुतः, अग्नामरुतौ वा)
२ **मरुतो** रथेषु तस्थुः। "
३ **मरुतः** यत् क्रीळथ। "
५ **मरुद्भ्यः** सुदुघा पृश्निः। "
६ **मरुतः** दिवि ष्ठ। "
७ **मरुतां** दिवो वहध्वे। "
८ अग्ने! **मरुद्भिः** सोमं पिब।"
६३। ५ **मरुतः** रथं युञ्जते। (मित्रावरुणौ)
६ **मरुतः** सुमायया वसत। "
८३। ६ **मरुतः**! वृष्टिं ररीध्वं। (पर्जन्यः)
६। ३। ८ शर्धो वा यो **मरुतां** ततक्ष। (अग्निः)
११। १ अग्ने! बाधो **मरुतां** न प्रयुक्ति। "
१७।११ **मरुतः** यं वर्धान्। (इन्द्रः)
२१। ९ **मरुतः** कृष्वावसे नो अद्य। (विश्वे देवाः)
४०। ५ **मरुद्भिः** पाहि। (इन्द्रः)
४७। ५ यामस्त्वाद् वृषभो **मरुत्वान्**। (सोमः)
४७।२८ **मरुतां** अनीकं। (रथः)
४९।११ **मरुतः** आ गन्त। (विश्वे देवाः)
५०। ४ **मरुतो** अह्वाम देवान्। " "
५ श्रुत्वा हवं **मरुतो** यद्ध याथ। " "
५२। २ **मरुतः**! यः नः अतिमन्यते।" "
११ **मरुद्गणः** स्तोत्रं जुषन्त। " "
७। ९। ५ **मरुतः** यक्षि। (अग्निः)
१८।२५ **मरुतः** इमं सश्चत। (इन्द्रः)
३१। ८ त्वा **मरुत्वती** परिभुवत्। "
३२।१० यस्य **मरुतः** अविता (रः)। "
३४।२४ अनु विश्वे **मरुतो** जिहीत। (विश्वे देवाः)
२५ शर्मन्त्स्याम **मरुतां** उपस्थे। " "
३५। ९ शं नो भवन्तु **मरुतः**। " "
३६। ७ **मरुतः** नो अवन्तु। " "
९ **मरुतः**! अयं वः श्लोकः। " "
३९। ५ **मरुता** मादयन्तां। " "
४०। ३ सेदुग्रा अस्तु **मरुतः**। " "
४२। ५ **मरुत्सु** यशसं कृधी नः। " "
५१। ३ **मरुतश्च** विश्वे नः पात। (आदित्याः)
८२। ५ **मरुद्भिरुग्रः** शुभमन्य ईयते। (इन्द्रावरुणौ)
९३। ८ **मरुतः** परि ख्यन। (इन्द्राग्नी)
९६। २ सा नो बोध्यवित्री **मरुत्सखा**। (सरस्वती)

८। ३।२१ यं मे दुरिन्द्रो **मरुतः**। (कौरयाणः पाकस्थामा)
१२।१६ **मरुत्सु** मन्दसे। (इन्द्रः)
१३।२८ **मरुत्वती**र्विशो अभि प्रयः।"
१८।२० बृहद्वरूथं **मरुतां**। (आदित्याः)
२१ **मरुतो** यन्त नः छर्दिः।"
२५।१० **मरुतः** उरुष्यन्तु। (विश्वे देवाः)
१४ **तन्मरुतः** (वृणीमहे)। (मित्रावरुणौ)
२७। १ ऋचा य मि **मरुतः**। (विश्वे देवाः) [काठ०१०।४६]
३ **मरुत्सु** विश्वभानुषु।" "
५ ऋचा गिरा **मरुतः**।" "
६ अभि प्रिया **मरुतः**।" "
८ आ प्र यात **मरुतः**।" "
३५। ३ **मरुद्भिः** सचा भुवा। (अश्विनौ)
१३ **मरुत्वन्ता** जरितुर्गच्छता हवं। "
३६।१-६ **मरुत्वाँ** इन्द्र सत्पते। (इन्द्रः)
४१। १ **मरुद्भ्यो** अर्च। (वरुणः)
४६। ४ यं **मरुतः** पान्ति। (इन्द्रः)
१७ **मरुतां** इयक्षसि। "
५४। ३ शृण्वन्तु **मरुतो** हवं। (विश्वे देवाः)
६३।१० स्याम **मरुतो** वृधे। (इन्द्रः)
७६। १ **मरुत्वन्तं** न वृञ्जसे। (इन्द्रः)
२-३ इन्द्रो **मरुत्सखा**। "
४ **मरुत्वता** इन्द्रेण जितं। "
५-६ **मरुत्वन्तं** इन्द्रं हवामहे।"
७ **मरुत्वाँ** इन्द्रः। "
८ **मरुत्वते** हूयन्ते। "
९ **मरुत्सखा** इन्द्र पिब। "
८३। ७ इता **मरुतो** अश्विना। (विश्वे देवाः)
८९। १ **मरुतः**! इन्द्राय गायत। (इन्द्रः)
२ **मरुद्गण**! देवास्ते सख्याय येमिरे।"
३ **मरुतो** ब्रह्मार्चत। "
९६। ७ **मरुद्भि**रिन्द्र सख्यं ते अस्तु।"
८ **मरुतो** वावृधानाः। "
९ तिग्मायुधं **मरुता**मनीकं। "
९। २५। १ **मरुद्भ्यो** वायवे मदः। (पवमानः सोमः)
३३। ३ **मरुद्भ्यः** सोमा अर्षन्ति। " "
३४। २ **मरुद्भ्यः** सोमो अर्षति। " "
५१। ३ **मरुतः** मधो र्व्यश्नते। " "
६१।१२ **मरुद्भ्यः** परि स्रव। " "
६४।२२ **मरुत्वते** इन्द्राय पवस्व। " "

२४ मरुतः पवमानस्य पिबन्ति । (पवमानः सोमः)
६५।१० मरुत्वते पवस्व । ,, ,,
२० मरुद्भ्यः सोमो अर्षति । ,, ,,
६६।२६ हरिश्चन्द्रो मरुद्गणः । ,, ,,
७०। ६ मरुतामिव स्वनः नानददेति । ,, ,,
८१। ४ मरुतः नः आ गच्छन्तु । ,, ,,
९६।१७ मरुतः बर्हिः शुम्भन्ति । ,, ,,
१०७।१७ मरुत्वते सोमः सुतः । ,, ,,
२५ मरुत्वन्तो मत्सराः । ,, ,,
१०८।१४ यस्य मरुतः पिबात् । ,, ,,
१०। ११। ५ मरुत्वते सप्त क्षरन्ति । (हविर्धाने)
३६। १ मरुतः हुवे । (विश्वे देवाः)
४ मरुतां शर्म अशीमहि । ,, ,,
३७। ६ मरुतो हवं शृण्वन्तु । (सूर्यः)
५२। २ मरुतो मा जुनन्ति । (विश्वे देवाः)
६३। ९ मरुतः स्वस्तये हवामहे । ,, ,,
१४ मरुतो यं अवथ । ,, ,,
१५ मरुतो राये दधातन । ,, ,,
६४।११ मरुतां भद्रा उपस्तुतिः । ,, ,,
१२ मरुतः मेधिरं अददात । ,, ,,
१३ मरुतो बुबोधथ । ,, ,,
६५। १ मरुतः महिमानमीरयन् । ,, ,,
६६। २ मरुद्गणे मन्म धीमहि । ,, ,,
४ मरुतः अवसे हवामहे । ,, ,,
७०।११ अग्ने ! अन्तरिक्षात् मरुतः आ वह । (स्वाहाकृतयः)
७३। १ मरुतः इन्द्रं अवर्धन् । (इन्द्रः)
७५। ५ असिक्न्या मरुद्वृधे । (नद्यः)
७६। १ मरुतो रोदसी अनक्तन । (ग्रावाणः)
८४। १ धृषिता मरुत्वः । (मन्युः)
८६। ९ मरुत्सखा इन्द्रः । (इन्द्रः)
९२। ६ मरुतो विश्वकृष्टयः । (विश्वे देवाः)
११ मरुतो विष्णुरर्हिरे । ,, ,,
९३। ४ मरुतः । (विश्वे देवाः)
१०३। ८ मरुतो यन्तु अग्रं । (इन्द्रः)
९ मरुतां शर्धः उदस्थात् । ,,
११३। ३ मरुतः इन्द्रियं अवर्धन् । ,,
१२२। ५ मरुतः त्वां मर्जयन् । (अग्निः)
१२६। ५ मरुद्भी रुद्रं हुवेम । (विश्वे देवाः)
१२८। २ मरुतः विहवे सन्तु । ,, ,,
१३७। ५ त्रायतां मरुतां गणः ,, ,,

१५७। ३ मरुद्भिः इन्द्रः अस्माकं अविता भूतु । (विश्वे देवाः)

(२) सामवेदसंहिता ।

४४५ अर्चन्त्यर्कं मरुतः स्वर्काः । (इन्द्रः)

(३) अथर्ववेदसंहिता ।

कां० सू० मन्त्र.
२। १२। ६ अतीव यो मरुतो मन्यते नो ब्रह्म । (मरुतः)
२९। ४ मरुद्भिरुग्रः प्रहितो न आगन् । (द्यावापृथिवी, विश्वे देवाः, मरुतः, आपः ।)
५ विश्वे देवा मरुत ऊर्जमापः [धत्त] ,,
३। ३। १ युञ्जन्तु त्वा मरुतो विश्ववेदसः (अग्निः)
४। ४ विश्वे देवा मरुतस्त्वा ह्वयन्तु । (अश्विनौ)
१२। ४ उक्षन्तूद्ना मरुतो घृतेन । (वास्तोष्पतिः)
१७। ९ विश्वैर्देवैरनुमता मरुद्भिः । (सीता)
१९। ६ देवा इन्द्रज्येष्ठा मरुतो यन्तु सेनया । (विश्वेदेवाः, चन्द्रमाः, इन्द्रः ।)
४। ११। ४ पर्जन्यो धारा मरुत ऊधो अस्य (अनड्वान्)
१५।१५ वर्षं वनुध्वं पितरो मरुतां मन इच्छत ।(पितरः)
५। ३। ३ इन्द्रवन्तो मरुतो मम विहवे सन्तु । (देवाः)
२४।१२ मरुतां पिता पशूनामधिपतिः । (मरुतां पिता)
६। ३। १ पातं न इन्द्रापूषणादितिः पान्तु मरुतः । (इन्द्रापूषणौ, अदितिः, मरुतः इत्यादयः ।)
४। २ अदितिः पान्तु मरुतः । (अदितिः, मरुतः इत्यादयः ।)
३०। १ कीनाशा आसन् मरुतः सुदानवः । (शमी)
४७। २ विश्वे देवा मरुत इन्द्रो अस्मान् न जहुः । (विश्वे देवाः)
७४। ३ मरुद्भिरुग्रा अहृणीयमानाः । (सांमनस्यम्)
९२। १ युञ्जन्तु त्वा मरुतो विश्ववेदसः । (इन्द्रः)
९३। ३ विश्वे देवा मरुतो विश्ववेदसः वधात् नो त्रायध्वम् । (विश्वे देवाः, मरुतः ।)
१०४। ३ इन्द्रो मरुत्वानादानममित्रेभ्यः कृणोतु नः । (इन्द्राग्नी, सोम इन्द्रश्च ।)
१२२। ५ इन्द्रो मरुत्वान् स ददातु तन्मे । (विश्वकर्मा)
१२५। ३ इन्द्रस्यौजो मरुतामनीकम् । (वनस्पतिः)
१३०। ४ उन्मादयत मरुत उदन्तरिक्ष मादय । (स्मरः)
७। २५। १ विश्वे देवा मरुतो यत् स्वर्काः [अखनन्] । (सविता)
३४। १ सं मा सिञ्चन्तु मरुतः [प्रजया धनेन] । (दीर्घायुः)
५१। ३ प्रदक्षिणं मरुतां स्तोममृध्याम् । (इन्द्रः)

५९। २ सप्त क्षरन्ति शिशवे **मरुत्वते** । (सरस्वती)
१०३। १ स मिन्द्रेण वसुना सं **मरुद्भिः** । (इन्द्रः,विश्वे देवाः)
८। १। २ उदेनं **मरुतो** देवा उदिन्द्राग्नी स्वस्तये । (आयुः)
९। १। ३ **मरुतामुग्रा** नप्तिः । (मधु, अश्विनौ)
१।१० ,, ,, ,, ,, ,,
४। ८ अश्विनोरंसौ **मरुतामियं** ककुत् । (ऋषभः)
१२। ३ [६। पर्यायः ६] विद्युज्जिह्वा **मरुतो** दन्ताः । (गौः)
१०। ९। ८ उत्तरन्**मरुतस्त्वा** गोप्स्यन्ति । (शतौदना)
१० आदित्य**न्मरुतो** दिशः आप्नोति । (,,)
११। १।२७ इन्द्रो **मरुत्वान्त्स** ददा दिदं मे । (ओदनः)
३३ अग्निर्मे गोप्ता **मरुतश्च** सर्वे । ,,
९(११)।२५ ईशां वो **मरुतो** देव आदित्यो ब्रह्मणस्पतिः ।
(अर्बुदिः)
१२। ३।२४ इन्द्रो रक्षतु दक्षिणतो **मरुत्वान्** । (स्वर्गः,ओदनः
अग्निः)
१३। ३।२३ किमभ्याऽर्चन्**मरुतः** पृश्निमातरः ।
(रोहितादित्यौ)
४। ८ तस्यैष **मारुतो** गणः स एति शिक्याकृतः ।
(रोहितादित्यौ)
१४। १।३३ अस्मै वः पूषा **मरुतश्च** सर्वे सविता सुवाति ।
(आत्मा)
५४ बृहस्पति**र्मरुतो** ब्रह्म सोम इमां वर्धयन्तु (,,)
१५।१४। १ **मारुतं** शर्धो भूत्वानुऽव्यचलत् । (व्रात्यः)
१८। २।२२ उत् त्वा वहन्तु **मरुत** उदवाहा उदप्रुतः ।
(यमः)
३।२५ इन्द्रो मा **मरुत्वान्** प्राच्या दिशः पातु (,,)
१९।१०। ९ शं नो भवन्तु **मरुतः** स्वर्काः । (बहुदेवताः)
१३। ९ देवसेनानामभिभञ्जतीनां जयन्तीनां **मरुतो** यन्तु
मध्ये । (इन्द्रः)
१० **मरुतां** शर्धमुग्रम् । (इन्द्रः) [काठ० १८।५३;
ऋ०१०।१०३।९]
१७। ८ इन्द्रो मा **मरुत्वानेतस्या** दिशः पातु । (इन्द्रः)
१८। ८ इन्द्रं ते **मरुत्वन्तमृच्छतु** । (इन्द्रः)
४५।१० **मरुतो** मा गणैरवन्तु । (आञ्जनं, मरुतः ।)
२०। २। १ **मरुतः** पोत्रात्सुष्टुभः स्वर्कादृतुना सोमं पिबतु ।
(मरुतः)
६३। २ इन्द्रः सगणो **मरुद्भिरस्माकं** भूत्ववीता । (इन्द्रः)
१०६। ३ त्वां शर्धो मदत्यनु **मारुतम्** । (इन्द्रः)
१११। १ यद्वा **मरुत्सु** मन्दसे समिन्दुभिः (,,)
१२६। ९ **मरुत्सखा** विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः । (,,)

(४) वा० यजुर्वेदसंहिता ।

अ०कं०
२।१६ **मरुतां** पृषतीः गच्छ । (प्रस्तरः)
[काठ. १।४५;३।१;३१।११]
२२ सम दित्यैर्वसुभिः सं **मरुद्भिः** । (इन्द्रादयः)
३।४६ हविष्मतो **मरुतो** वन्दते गीः । (इन्द्रामरुतौ)
[श. २।५।२ २८]
६।१६ ऊर्ध्वनभसं **मारुतं** गच्छतम् । (रक्षः)
७।३५ इन्द्र **मरुत्व** इह पाहि । (इन्द्रमरुतौ)
[काठ. ४।३६; श. ४।३।३।१३]
७।३६ **मरुत्वन्तं** वृषभं वावृधानं इन्द्रं हुवेम ।
(मरुत्वान्) [काठ. ४।४०]
३७ सजोषा इन्द्र सगणो **मरुद्भिः** सोमं पिब ।
(इन्द्रामरुतौ)
३८ **मरुत्वाँ** इन्द्र वृषभो रणाय पिबा सोमम् ।
(इन्द्रामरुतौ) [काठ. ४।३८]
८।५५ इन्द्रश्च **मरुतश्च** क्रयायोपोत्थितः । (इन्द्रादयः)
९। ८ युञ्जन्तु त्वा **मरुतो** विश्ववेदसः । (अश्वः)
३२ **मरुतः** सप्त क्षरेण सप्त ग्राम्यान् पशूनुदजयन् ।
(पूषादयः) [काठ. १४।२४]
३५ **मरुन्नेत्रेभ्यः** वा देवेभ्य उत्तरासद्भ्यः स्वाहा ।
(पृथिवी)
३६ **मरुन्नेत्रा** वोत्तरासदस्तेभ्यः स्वाहा । (देवाः)
१०।२१ **मरुतां** प्रसवेन जय । (रथादयः)
२३ **मरुतामोजसे** स्वाहा । (अग्न्यादयः)
१२।७० विश्वैर्देवैरनुमता **मरुद्भिः** । (सीता)
[काठ. १६।१४९; तै. आ. ४।४।१]
१४।२० **मरुतो** देवता । इन्द्राग्नी, विश्वकर्मादयः)
२५ **मरुतामाधिपत्यं** (असि) । (ऋषयः,इष्टकाः)
[काठ. २१।१]
१५।१२ **मरुत्वतीयं** उक्थं अव्यथायै स्तभ्नातु । (इष्टकाः)
१३ **मरुतस्ते** देवा अधिपतयः । (,,)
१७। १ तां न इषमूर्जं धत्त **मरुतः** । (मरुतः)
[काठ. १७।७१]
१८।१७ **मरुतश्च** मे यज्ञेन कल्पन्ताम् । (अग्निः)
२० **मरुत्वतीयाश्च** मे यज्ञेन कल्पन्ताम् । (,,)
३१ विश्वे अद्य **मरुतो** विश्व ऊती आगमन्तु ।
(विश्वे देवाः) [काठ. १८।६५; ऋ. १० ३५।१३]
४५ मारुतोऽसि **मरुतां** गणः । (वायुः)[काठ.१८।७५]

२०।३० बृहदिन्द्राय गायत **मरुतो** वृत्रहन्तमम् ।(इन्द्रः)
२१।१९ सरस्वती भारती **मरुतो** विशः वयः दधुः ।
(तिस्रो देव्यः)
२७ **मरुतः** स्तुनाः इन्द्रे वयः दधुः । (इन्द्रः, मरुतः)
२२।२८ **मरुद्भ्यः** स्वाहा । (मरुतः)
२३।४१ अहोरात्राणि **मरुतो** विलिष्टं सूदयन्तु ते ।
(अश्वः)
२४ ४ पृश्निः तिरश्चीनपृश्निः ऊर्ध्वपृश्निः ते **मारुताः** ।
(प्रजापत्यादयः)
१६ सान्तपनेभ्यः **मरुद्भ्यः**, गृहमेधिभ्यः **मरुद्भ्यः**, क्रीडिभ्यः **मरुद्भ्यः**, स्वतवद्भ्यः **मरुद्भ्यः** प्रथमजानालभते । (प्रजापत्यादयः)
२५ ४ **मरुतां** सप्तमी । (शादादयः)
६ **मरुतां** स्कन्धा विश्वेषां देवानां प्रथमा कीकसा ।
(शादादयः)
२४ इन्द्रः ऋभुक्षा **मरुतः** परिख्यन् । (अश्वः)
४६ आदित्यैरिन्द्रः सगणो **मरुद्भिरस्मभ्यं** भेषजा करत् । (विश्वे देवाः)
२६।१७ स नः इन्द्राय **मरुद्भ्यः** परि स्रव । (सोमः)
२९ ५४ इन्द्रस्य वज्रो **मरुतामनीकम्** । (रथः)
५८ **मारुतः** कल्माषः । (पशवः)
३०। ५ क्षत्राय राजन्यं **मरुद्भ्यो** वैश्यम् । (सविता)
३३।४५ आदित्यान्**मारुतं** गणम् (आह्वयामि) ।
(विश्वे देवाः)
४७ इता **मरुतो** अश्विना । ,,
४८ शर्धः प्रयन्त **मारुतोत** विष्णो । ,,
४९ **मरुत** ऊतये हुवे । ,,
६३ पिबेन्द्र सोमं सगणो **मरुद्भिः** । (इन्द्रः)
तै. आ. १।२७।१
६४ अवर्धन्निन्द्रं **मरुतश्चिदत्र** । (इन्द्रः)
[काठ. ४।३४]
९५ देवास्त इन्द्र सख्याय येमिरे बृहद्भानो **मरुद्गण** । (इन्द्रः)
९६ प्र व इन्द्राय बृहते **मरुतो** ब्रह्मार्चत । (इन्द्रः)
३४।१२ तव व्रते कवयो विद्मनापसोऽजायन्त **मरुतो** भ्राजदृष्टयः । (अग्निः)
५६ उप प्र यन्तु **मरुतः** सुदानवः । (ब्रह्मणस्पतिः)
[काठ. १०।४७]
३७।१३ स्वाहा **मरुद्भिः** परि श्रीयस्व । (घर्मः)

तै.आ. ४।५।५; ५।४।९
३९। ५ **मारुतः** क्रथन् । (प्रायश्चित्तदेवताः)
६ **मरुतः** सप्तमे अहन् । (सवित्रादयः)
९ बलेन **मरुतः** । (प्रजापतिः)

(५) काठक संहिता ।

शं नः शोचा **मरुद्भ्योऽग्ने** । काठ. २।१७
मरुतः स्तनयित्नुना हृदयमाच्छिन्दन् । काठ. ८।५
इन्द्रस्य त्वा **मरुत्वतो** व्रतेन दधे । काठ. ८।८
मारुत्यामिक्षा वारुण्यामिक्षा काय एककपालः । काठ. ९।८
मरुद्भ्यः क्रीडिभ्यः प्रातस्सप्तकपालः । काठ. ९।१६; श. २।५।३।२०
अग्निभिर्**मरुतः** । काठ. ९।३८
मरुतो यद्ध वो दिवो यूयमस्मानिन्द्रं वः । काठ ९।६८
सयोनित्वाय **मारुतं** प्रैयङ्गवं चरुं निर्वपेत् । काठ. १०।१८
पृश्न्या वै **मरुतो** जाताः वाचो वाश्या वा ,,
पृथिव्या **मारुतास्सजाता** एतन्**मरुताँ** स्वं पयः । ,,
क्षत्रं वा इन्द्रो विण्**मरुतः** क्षत्रायैव विशमनु नियुनक्ति१०।१९
मारुतस्य मारुतीमनूच्यैन्द्र्या यजेत् । ,,
विड्वै **मरुतो** भागधेयेनैवैनाञ्छमयति । ,,
अगस्त्यो वै **मरुद्भ्यश्शतमुक्ष्णः** पृश्नीन् प्रोक्षत् ।
तानिन्द्रायालभत तं **मरुतः** क्रुद्धा वज्रमुद्यत्याभ्यपतन् । ,,
इन्द्रो **मरुद्भिर्ऋतुधा** कृणोतु ।काठ. १०।३६
मारुतं चरुं निर्वपेत् । काठ. ११।१
इन्द्रो **मरुद्भिः** (उदक्रामत्) । काठ. ११।५; २४।२३
इन्द्राय **मरुत्वते** एकादशकपालम् । काठ. ,,
तस्य **मारुती** याज्यानुवाक्ये स्याताम् काठ. ११।६
उप प्रेत **मरुतः** स्वतवसः । काठ. ११।१२; २०।४७
मरुतां प्राणस्ते ते प्राणं ददतु । काठ. ११।१३
इन्द्रेण दत्तं प्रयतं **मरुद्भिः** । काठ. ११।१४
मारुतं चरुं सौर्यमेककपालम् । काठ. ११।३१
रमयता **मरुतश्येनमायिनम्** । काठ. ११।५७
वैराजं **मरुतां** शक्वरी । काठ. १२।१४
ऐन्द्रा**मारुतं** पृश्निसक्थमालभेत । काठ. १३।७
मरुतां पितरुत तद् गृणीमः । काठ. १३।२८
मरुतः सप्ताक्षरया शक्वरीमुदजयन् । काठ. १४।२४
,, ,, उष्णिहमुदजयन् । १४।२५

ये देवा **मरुन्नेत्राः**। काठ. १५।२

मरुद्भ्यः पश्चात्सद्भ्यो रक्षोहभ्यः स्वाहा। ,,

मरुतामोजस्य। काठ. १५।८

मरुतो देवता विट्। काठ. १५।६

मरुतो देवता। काठ. १७।१२; ३९।४५,

मरुत्वतीयमुक्थमव्यथाय स्तभ्नातु। काठ. १७।२१

मरुतस्ते देवा अधिपतयः। काठ. ,, श. ८।६।१।८

अग्निमारुते उक्थे अव्यथाय। काठ. ,, ,,

आदित्या अन्नं **मरुतो**ऽन्नम्। कठ. २१।२, श. ४।३।३।१२

यद्वैश्वानरं **मारुता** अनुहूयन्ते। काठ. २१।३३

उपांशु **मारुता**ञ्जुहोति। ,, ,,

गणश एव **मरुत**स्तर्पयति। ,, ,,

क्षत्रं वा एष **मरुतां** विट्। २१।३४

याचिनेति दीपयति **मरुन्नामैः** ,, ,,

शुचिं नु स्तोमं **मरुतो** यद्ध वो दिवः। काठ. २१।४४; ऋ. ८।७।११

सवितु**र्मरुतां** ते तेऽधिपतयः। काठ. २२।१६

यत् प्रायणीयं **मरुतां** देवविशा देवविशाम्। काठ. २३।२०

यन्**मरुत्व**याज्यायाः पदं भवति। ,,

स्वस्ति राये **मरुतो** दधातन। ,,

मरुत्सु विश्वभानुषु। काठ. २६।३७

इन्द्रो वृत्रमहन् **मरुद्भिर्**वीर्येण **मरुत्वतीयँ** स्तोत्रं भवति

मरुत्वतीयमुक्थं **मरुत्वतीया** ग्रहाः। काठ. २८।६

प्रतिहतिरेव प्रथमो **मरुत्वतीयो**ऽपयतिः। ,,

वज्रमेव प्रथमेन **मरुत्वतीयेने**च्छिद्यते ,,

तृतीयेन यं द्विष्यादम**रुत्वतीयँ**स्तस्य गृह्णीयात्। ,,

वीर्यं वै **मरुतो** वीर्येणैवैनं वर्धयन्ति। ,,

स **मरुत्वतीये**रेव वृत्रमहँस्तस्मान्**मरुत्वते**ऽनूक्ते न देयम्। काठ. २८।६

बलं वै **मरुतः**। काठ. २९।२४

मरुतः सृष्टां वृष्टिं नयन्ति। काठ. ११।३१

मरुतः द्वितीये सवने न जहयुः। काठ. ३०।२७

योनिर्वा एष प्रजानां तं **मरुतो**ऽभ्यकामयन्त। काठ. ३६।२

सप्त हि **मरुतो** निरवत्या एव **मारुतो**ऽयो

ग्राम्यमेवैतेनाद्यमवरुन्धे। काठ. ३६।२; ३७।४-६

तस्य **मरुतो** हव्यं व्यमथ्नत। कठ. ३६।९

मरुद्भिर्विशाभिनानीकेन स वृत्रमभीत्यातिष्ठत्। काठ. ३६।१५

तं **मरुत** ऐषीकैर्वातरथैरध्यैयन्त। काठ. ३६।१५

स एतं **मरुद्भ्यो** भागं निरवपत् तं **मरुतो** वीर्याय समतपन्। (काठ. ३६।१५)

ते **मरुद्भ्यो** गृहमेधिभ्योऽजुहवुः। काठ. ३६।६; श. २।५।३।४,९

तं **मरुतः** परिक्रीडन्त। काठ. ३६।१८

ते **मरुतः** क्रीडीन् क्रीडतोऽपश्यन्। ,, ,,

तं **मरुतो**ऽभ्यक्रीडन्। ३६।१९

मारुती पृश्निर्वशा। काठ. ३७।४

अथैष **मारुत** एकविंशतिकपालः। काठ. ३७।६,८

त्रिणवे **मरुत**स्स्तुतम्। काठ. ३८।१२६

अजुषन्त **मरुतो** यज्ञमेतम्। काठ. ४०।९८

(६) ब्राह्मण-ग्रन्थ।

मरुतो रश्मयः। ताण्ड्य. १४।१२।९

ये ते **मारुताः** (पुरोडाशाः) रश्मयस्ते। श० ९।३।१।२५

युञ्जन्तु त्वा **मरुतो** विश्ववेदस इति युञ्जन्तु त्वा देवा इत्येवैतदाह (**मरुतः**=देवाः— अमरकोषे ३।३।५८). श० ५।१।४।९

गणशो हि **मरुतः**। तां. १९।१४।२

मरुतो गणानां पतयः। तै. ३।११।४।२

सप्त हि **मारुतो** गणः। श० ५।४।३।१७

सप्त गणा वै **मरुतः**। तै. १।६।२।३; २।७।२।२

सप्तसप्त हि **मारुता** गणाः। श०९।३।१।२५[काठ०२१।१०]

मारुतः सप्तकपालः (पुरोडाशः)। तां. २१।१०।२३. [काठ. ९।४; २१।१०;३७।३]

मारुतस्तु सप्तकपालः (,,)। श० २।५।१।१२

मारुतं सप्तकपालं पुरोडाशं निर्वपति। श० ५।३।१।६

मरुतो वै देवानां भूयिष्ठाः। तां. १४।१२।९; २१।१४।३

मरुतो हि देवानां भूयिष्ठाः। तै० २।७।१०।१

मरुतो ह वै देवविशोऽन्तरिक्षभाजना ईश्वराः। कौ. ७।८

विशो वै **मरुतो** देवविशः। श० २।५।१।१२; ३।९।१।१७-१८;ऐ. १।१०

मरुतो वै देवानां विशः। ऐ. १।९; तां. ६।१०।१०; १८।१।१४। काठ. ८।८]

अहुतादो वै देवानां **मरुतो** विट्। श० ४।५।२।१६

विड् वै **मरुतः**, तै० १।८।३।३; २।७।२।२ [काठ० २९।९; ३७।३]

विशो **मरुतः**। श० २।५।२।६,२७; ४।३।३।६ [काठ० ३८।११८]

विशो वै **मरुतः** । श० ३.९।१।१७
मारुतो हि वैश्यः । तै० २।७।२।२ [काठ० ३७।४]
पशवा वै **मरुतः** । ऐ० ३।१९ [काठ० २१।३६; ३६।२,१६]
अन्नं वै **मरुतः** । तै० १।७।३।५; १।७।५।२; १।७।७।३
प्राणा वै **मारुताः** । श० ९।३।१।७
मारुता वै ग्रावाणः । तां ९।९।१४
मरुतो वै देवानामपराजितमायतनम् । तै० १।४।६।२
अप्सु वै **मरुतः** श्रिताः (श्रिताः) । कौ० ५।४
अप्सु वै **मरुतः** श्रितः (श्रिताः) । गो० उ० १।२२
आपो वै **मरुतः** । ऐ. ६ ३०; कौ० १२।८
मरुतोऽद्भिरग्निमतमयन् । तस्य तान्तस्य हृदयम च्छिन्दन् साऽशनिरभवत् । तै० १।१।३।१२
मरुतो वै वर्षस्येशते । श० ९।१।२।५ [काठ. ११।३२]
षड्भिः पार्जन्यैर्वा **मारुतै**र्वा वर्षासु । श० १३.५।४।२८
इन्द्रस्य वै **मरुतः** । कौ० ५।४.५
अथैनं (इन्द्रं) ऊर्ध्वायां दिशि **मरुत**श्चाङ्गिरसश्च देवा... ...अभ्यषिञ्चन्...पारमेष्ठ्याय माहाराज्यायाधिपत्याय स्वावश्यायाऽऽतिष्ठाय । ऐ० ८।१९
हेमन्तेनर्तुना देवा **मरुत**स्त्रिणवे (स्तोमे) स्तुतं बलेन शक्करीः सहः । हविरिन्द्रे वयो दधुः । तै० २।६।१९।२
मारुतो वत्सतर्यः । तां० २१।१४।१२
पङ्क्तिश्छन्दो **मरुतो** देवता ष्ठीवन्तौ । श० १०।३।२।१०
मरुत्स्तोमो वा एषः । तां० १७।१।३
मरुतो ह वै क्रीडिनो वृत्रꣳ हनिष्यन्तमिन्द्रमागतं तमभितः परि चिक्रीडुर्महयन्तः । श० २।५।३।२०
ते (**मरुतः**) एनं (इन्द्रं) अभ्यक्रीडन् । तै० १।६।७।५
इन्द्रस्य वै **मरुतः** क्रीडिनः । कौ० ५।५
इन्द्रो वै **मरुतः** क्रीडिनः । गो० उ० १।२३
मरुतो ह वै सान्तपना मध्यन्दिने वृत्रꣳसन्तेपुः स सन्तप्तोऽनन्नेव प्राणन् परिदीर्णः शिश्ये । श० २।५।३।३
इन्द्रो वै **मरुतः** सान्तपनः । गो० उ० १।२३
घोरा वै **मरुतः** स्वतवसः । कौ० ५।२; गो०उ० १।२०
प्राणा वै **मरुतः** स्वापयः । ऐ० ३।१६
सवनततिर्वै **मरुत्वती**यग्रहः । कौ० १५।१
पवमानोक्थं वा एतद्यन्**मरुत्वतीयम्** । ऐ० ८।१ः कौ० १५।२
तदेतद्वार्त्रघ्नमेवोक्थं यन्**मरुत्वती**यमेतेन हेन्द्रो वृत्रमहन् । कौ० १५।२

तदेतत्पृतनाजिदेव सूक्तं यन्**मरुत्वती**यमेतेन हेन्द्रः पृतना अजयत् । कौ० १५।३
अथैष **मरुत्**स्तोम एतेन वै **मरुतो**ऽपरिमितां पुष्टिमपुष्यन्नपरिमितां पुष्टिं पुष्यति य एवं वेद । तां.१९ १४।१
अन्तरिक्षलोको वै **मारुतो मरुतां** गणः । श० ९।४।२।६
तद्ध सर्वं **मरुत्वतीयं** भवति । ऐ. ३।१६
वृष्टिवनिपदं **मरुत** इति **मारुत**मन्यंनमिहे । ऐ. ३।१८
मरुत्वतीयं प्रगाथं शंसति, **मरुत्वतीयं** सूक्तं शंसति, **मरुत्वतीयां** निविदं दधाति, **मरुतां** सा भक्तिः **मरुत्वतीय**मुक्थं शस्त्वा **मरुत्वतीय**या यजति । ऐ० ३।२०

तन्**मरुतो** धून्वन् । ऐ०३।३४
तस्माद्वैश्वानरीयेणाग्नि**मारुतं** प्रतिपद्यते । ऐ. ३।३५
प्रसादन्नेति य आग्नि**मारुतं** शंसति
इन्द्रोऽगस्त्यो **मरुत**स्ते समजानत । ऐ० ५।१६;
मरुतो यस्य हि क्षय इति **मारुतं** क्षेतिवदन्तरूपम् । ऐ०५।२१
,, ,, ,, पोता यजति । ऐ० ६।१०
स उ **मारुत** आपो वै **मारुतः** । ऐ० ६।३०
,, ,, मैव शंसिष्टेति । ,,
पुरस्तान्**मारुत**स्याप्यस्याथा इति । ,,
सोऽग्नये **मरुत्वते** त्रयोदशकपालं पुरोळाशं निर्वपेत् । ऐ० ७।९
अग्नये **मरुत्वते** स्वाहा । ,,
मरुतश्च त्वाङ्गिरसश्च देवा अतिछन्दसा छन्दसा रोहन्तु । ऐ० ८।१२; १७
मरुतश्चाङ्गिरसश्च देवाः षड्भिश्चैव पञ्चविंशैरहोभिरभ्यसिञ्चन् ; ऐ० ८।१४; १९
मरुतः परिवेष्टारो मरुत्तस्यावसन् गृहे । ऐ० ८।२१; श०१३।५।४।६
मारुती दक्षिणाजामितायै न्वेव **मारुती** भवति । श० २।५।२।१०
तद्वासां **मरुतः** पाप्मानं विमेथिरे । श० २।५।२।२४
प्रजानां " " विमथ्नते । " "
स एतामैन्द्रीं **मरुत्वती**मजपत् । श० २.५ २।२७
मारुत्यां तं वारुण्यामवदधाति । श० २।५।२।३६

मरुद्भ्योऽनुगृह्णाति । श० २।५।२।३८
अस्यै मारुत्यै पयस्यायै द्विरवद्यति । ,,
मरुतो यजेति । ,,
तस्मात् मरुत्वतीयान् गृह्णाति । श० ४।३।३।६,९;४।४।१।२
इन्द्रायैव मरुत्वते गृह्णीयात् । श० ४।३।३।१०
नापि मरुद्भ्यः स यद्वापि मरुद्भ्यो गृह्णीयात् । ,,
इन्द्रमेवानु मरुत आभजति । ,,
मरुतो वाऽइत्थस्वत्थेऽपक्रम्य तस्थुः । श० ४।३।३।६
विशा मरुद्भिः स यथा विजयस्य कामाय। श० ४।३।३।१५
अथ मरुद्भ्यः उज्जेषेभ्यः । श. ५।१।३।३
येऽएव के च मारुत्यौ स्याताम् । ,, ,,
इन्द्रो मरुत उपामन्त्रयत । श० ५।३।५।१४
स यदेव मारुत ऽरथस्य तदेवैतेन प्रीणाति । श०५।४।३।१७
अथ पृशतीं विचित्रगर्भा मरुद्भ्य आलभते। श०५।५।२।९
आदित्याः पश्चान्मरुत उत्तरतः । श० ८।६।३।३
मरुतो देवताष्ठीवन्तौ । श० १०।३।२।१०
अन्वाध्या मरुतः । श० १३।४।२।१६
विश्वे देवा मरुत इति । श० १४।४।२।२४
अथ यन्मरुतः स्वतवसो यजति, घोरा वै मरुतः स्वतवसः । गो० उ० १।२०
अथ मरुद्भ्यः सान्तपनेभ्यः । श० २।५।३।३
तं मरुद्भ्यो देवविड्भ्यः । ऐ १।१०
मरुत्वां इन्द्र मीढ्व । ऐ. ५।६
मरुत्वतीयस्य प्रतिपदनुचरौ । ऐ० ४।२९,३१; ५।१
एतद्यन्मरुत्वतीयं पवमाने वा । ऐ० ८।१
एतद्वै मरुत्वतीयं समृद्धम् । ऐ. ८।२
मरुत्वतीयमेव गृहीत्वा । श. ४।३।३।३
निविदं दधातीति मरुत्वतीयम् । श. १३।५।१।९
मरुत्वतीयं ह होतुर्बभूव । गो. पू. ३।५
त्रिष्टुभा मरुत्वतीयं प्रत्यपद्यत । गो. उ. ३।१२
विश्वे देवा अब्रवन् मरुतो हैनं नाजहुः । ऐ० ३।२०
मध्यंदिने यन्मरुत्वतीयस्य । ऐ. ३।२८
मरुत्वतीयः प्रगाथः । ऐ. ४।२९
मरुत्वतीयस्य प्रतिपदीमहृ । ऐ. ५।४
मरुत्वतीयस्य प्रतिपान्नजन्यया । ऐ. ५।६
मरुत्वतीयस्य प्रतिपदन्तः । ऐ. ५।१२
मरुत्वतीये तृतीये सवने । गो. उ. ३।१३; ४।१८
यदूर्ध्वं मरुत्वतीयात् । ,,
मरुद्वृधोऽग्ने सहस्रसातमः । श. ११।४।३।१९

(७) आरण्यक ग्रन्थ ।

वातवन्तो मरुद्गणाः । तै. आ. १।४।२
इहैव वः स्वतपसः । मरुतः सूर्यत्वचः ।
शर्म सप्रथा आवृणे । तै. आ. १।४।३
वैश्वानराय धिषणामित्याग्निमारुतस्य । ऐ. आ. १।५।३
प्रयज्यवो मरुत इति मारुतं समानोदर्कम् । ,,
चतुर्विंशान्मरुत्वतीयस्याऽऽतानः । ऐ. आ. ५।१।१
जनिष्ठा उग्र इति मरुत्वतीयम् । ,,
संस्थिते मरुत्वतीये होता । ,,
मरुतः प्राणैरिन्द्रं बलेन । तै. आ. २।१८।१
प्रति हास्मै मरुतः प्राणान् दधति । ,,
अभिधून्वतामभिघ्नताम् । वातवतां मरुताम् । तै. आ. १।१५।१
मरुतां च विहायसाम् । तै. आ. १।२७।६
वातवतां मरुताम् । तै. आ. १।१५।१
युतान एव मारुतो मरुद्भिरुत्तरतो रोचय । तै. आ ५।५।२
वासुकेणैतन्मरुत्वतीयं प्रतिपद्यते । ऐ. आ. १।२।२

(८) उपनिषदादि ग्रन्थ ।

तन्मरुत उपजीवन्ति सोमेन मुखेन । छान्दोग्य. ३।९।१
मरुतामेवैको भूत्वा । ,,
मरुतामेव तावदाधिपत्यं स्वाराज्यं पर्येता । ,,
विश्वे देवा मरुत इति । बृहदा. १।४।१२
मरुद्भिः सोमं पिब वृत्रहन् । महानारा. २०।२
मरुन्नामेति विश्रुतोऽसि । मैत्रा. २।१
तस्मै नमस्कृत्वा...मरुदुत्तरायणं गतः । मैत्रा. ६।३०
मरुतः....पश्चादुद्यन्ति । मैत्रा. ७।३
संवर्तकोऽग्निर्मरुतो विराट् । नृ. पूर्व. २।१
मरीचिर्मरुतामस्मि । भ. गी. १०।२१
अश्विनौ मरुतस्तथा । भ. गी. ११।६
मरुतश्चोष्मपाश्च । भ. गी. ११।२२

मरुतोंके मंत्रोंमें विद्यमान सुभाषित।

वीरोंका धर्म तथा वीरोंके कर्तव्य।
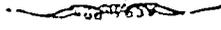
इसके पहले हम मरुतोंके मंत्रोंका सरल अर्थ दे चुके। यह अत्यन्त आवश्यक प्रतीत होता है कि, उन मंत्रोंमें जो प्रमुख कल्पना है, उसे हम जान लें। उस केन्द्रभूत कल्पनाकी जानकारी पानेके लिए यहाँपर हम उन मंत्रोंके सर्वसाधारण प्रतिपादनोंको मूल शब्दोंके साथ देकर सरल अर्थ बताना चाहते हैं। मरुतोंका वर्णन करते हुए वीरोंके संबंधमें जो साधारण धारणाएँ उस उस स्थानपर प्रमुखतया दीख पडती हैं, उन्हींका संग्रह यहाँपर किया है। मंत्रमें पाया जानेवाला वाक्यही यहाँ लिया है। विशेष वर्णनात्मक शब्दोंका ग्रहण नहीं किया है और जिस मौलिक कल्पनाको व्यक्त करनेके लिए मंत्रका सृजन हुआ, उसी मूलभूत कल्पना की स्पष्टता जितने कम शब्दोंसे हो सकती है, उतनेही शब्द यहां ले लिये हैं। बहुधा प्रारंभिक अन्वय ज्योंका त्यों रखा गया है, पर जिससे सर्वसाधारण बोध प्राप्त होगा, ऐसा वाक्य बनाने के लिए पर्याप्त शब्द चुन लिये हैं। यद्यपि यह वर्णन मरुतोंकाही है, तथापि इन सुभाषितोंमें वह केवल मरुतोंकाही नहीं रहा है। मरुतोंका विशेष वर्णन हटानेके कारण इसमें यह सर्वसामान्य उपदेश मिल जाता है। ऐसा कहा जा सकता है कि, समूचे मानवोंको इस भाँति नीतिका उपदेश दिया गया है। इसी ढंगसे वेदप्रतिपादित सर्वसाधारण धर्मका ज्ञान हो सकता है। इसके लिए ऐसे चुने हुए सुभाषितों का बडा अच्छा उपयोग हो सकता है। पाठकोंको अगर उचित जंचे, तो मंत्रोंके अन्य शब्दभी यथोचित जगहकी पूर्तिके लिए वे रखें। पाठकोंकी सुविधाके लिए मंत्रोंके क्रमांक प्रारंभमें दिये हैं और उन मंत्रोंके ऋग्वेदादि वेदोंमें पाये जानेवाले पते भी आगे दिये हैं।

इस भाँति स्वाध्याय करनेसेही वेदका सच्चा आशय समझ लेना सुगम होगा, ऐसी हमारी आशा है।

[विश्वामित्रपुत्र मधुच्छन्दा ऋषि।]

(१) यज्ञियं नाम दधानाः। (ऋ. १।६।४)
पूजनीय नाम धारण करें। [उच्च कोटिका यश पाना चाहिए।]

पुनः गर्भत्वं एरिरे। (ऋ. १।६।४)
(वीरोंको) बार बार गर्भवासमें रहना पडता है। [पुनर्जन्मकी कल्पना का आभास यहाँपर अवश्य होता है।]

स्व-धां अनु (ऋ. १।६।४)
अपनी धारक शक्ति बढाने के लिए या अन्न पानेके लिए [प्रयत्न करना चाहिए।]

(२) देवयन्तः श्रुतं चित्रद्वसुं अनूषत। (ऋ. १।६।६)
देवत्व पानेकी इच्छा करनेवाले लोगोंको उचित है कि, वे धनकी योग्यता जाननेवाले विख्यात वीरोंके काव्यका गायन करें।

(३) अनवद्यैः अभिद्युभिः गणैः सहस्वत् अर्चति। (ऋ. १।६।८)
निर्दोष एवं तेजस्वी वीरोंको साथ ले शत्रुदलका पराभव करनेहारे बलकी वह पूजा करता है। [ऐसे बलको वह अपनेमें बढाता है।]

[कण्वपुत्र मेधातिथि ऋषि।]

(५) पोत्रात् ऋतुना पिबत। (ऋ. १।१५।२)
पवित्र पात्रमेंसे ऋतुकी अनुकूलता देखकर पीनेयोग्य वस्तुओंका सेवन करो।

यज्ञं पुनीतन। (ऋ. १।१५।२)
यज्ञ के कर्म को अधिक पवित्र करो।

[घोरपुत्र कण्व ऋषि।]

(६) अनर्वाणं शर्धं अभि प्र गायत (ऋ. १।३७।१)
जो सामर्थ्य पारस्परिक मनोमालिन्य या वैरभावको न

बढने दे उसका वर्णन करो।

(७) स्वभानवः वाशीभिः ऋष्टिभिः साकं अजायन्त।
(ऋ. १।३७।२)

तेजस्वी वीर अपने हथियारों को साथ रखकर सुसज्ज बने रहते हैं। [सदैव कटिबद्ध रहना वीरोंका तो कर्तव्यही है।]

(८) यामन् चित्रं नि ऋञ्जते। (ऋ. १।३७।३)

युद्धभूमिमें हमला करते समय वीर सैनिक बडी विलक्षण शूरता दर्शाता है।

(९) देवत्तं ब्रह्म शर्धाय, वृष्णये, त्वेषद्युम्नाय प्र गायत।
(ऋ. १।३७।४)

देवताओंका स्तोत्र, बल बढानेके लिए, शत्रुका विनाश करनेके लिए और तेजस्वी बननेके हेतु गाते रहो। [ऐसे स्तोत्र पढनेसे या गानेसे उपर्युक्त गुणो की वृद्धि होगी।]

(१०) गोषु अघ्न्यं शर्धः प्रशंस; रसस्य जम्भे ववृधे।
(ऋ. १।३७।५)

गौओंमें जो श्रेष्ठ बल विद्यमान है, उसकी सराहना करो, गोरसके सेवनसे मानवोंमें वह बढ जाता है।

(११) धूतयः नरः। (ऋ. १।३७।६)

शत्रुसेनाको विचलित करनेवाले [जो वीर हों,] वे नेता होते हैं।

(१२) उग्राय यामाय पर्वतः जिहीत। (ऋ० १।३७।७)

शत्रुसेनापर जब भीषण धावा होता है, तब पहाडतक हिलने लगता है। [वीर सैनिक इसी भाँति दुश्मनोंपर चढाई करें।]

(१३) यामेषु अज्मेषु पृथिवी भिया रेजते।
(ऋ० १।३७।८)

शत्रुदलपर चढाई करते समय भूमि काँप उठती है। [वीर सिपाही इसी प्रकार शत्रुओंपर आक्रमण कर दें।]

(१४) शवः द्विता अनु। (ऋ० १।३७।९)

बलका उपयोग दो स्थानोंमें करना पडता है, [अर्थात् जो प्राप्त हुआ है, उसका संरक्षण तथा नये धनकी प्राप्तिके लिए शूर सैनिकोंका बल विभक्त होता है।]

(१५) अज्मेषु यातवे काष्ठाः उत् अत्नत।
(ऋ० १।३७।१०)

शत्रुपर हमले करनेके समय हलचल करनेमें कोई रुकावट या बाधा न हों, इसलिए सभी दिशाओंमें भली भाँति मार्ग बनवाने चाहिए। [यदि आनेजानेके लिए अच्छी सडकें हों, तो दुश्मनोंपर किए हुए आक्रमणोंमें सफलता मिलती है।]

(१६) यामभिः, दीर्घं पृथुं अमृध्रं नपातं, च्यावयन्ति।
(ऋ. १।३७।११)

वीर सैनिक अपने प्रभावी आक्रमणोंसे बडे, नष्ट न होनेवाले एवं बहुतकालतक टिकनेवाले शत्रुकोभी अत्यन्त विचलित तथा विकम्पित कर डालते हैं।

(१७) जनान् गिरीन् अचुच्यवीतन, (तत्) बलम्।
(ऋ. १।३७।१२)

जिसकी सहायतासे शत्रुके वीरोंको अथवा पहाडोंको भी अपदस्थ करना संभव है, वही बल है।

(१९) शीभं प्रयात। (ऋ १।३७।१४)

शीघ्रतासे चलो।

आशुभिः शीभं प्रयात। = वेगवान साधनोंकी सहायतासे बहुत जल्द गमन करो।

(२०) विश्वं आयुः जीवसे। (ऋ० १।३७।१५)

पूर्ण आयुतक जीवित रहनेके लिए प्रयत्न करना चाहिए।

(२१) पिता पुत्रं न हस्तयोः दधिध्वे। (ऋ. १।३८।१)

जैसे पिता अपने पुत्रको अपने हाथोंसे उठा लेता है, उसी प्रकार [वीर पुरुष जनताको] सान्त्वना या आधार दे दें।

(२२) वः गावः क्व न रण्यन्ति। (ऋ. १।३८।२)

तुम्हारी गौएँ किधर जानेपर दुःखी बन जाती हैं? [वह देखो; वह तुम्हारे दुश्मनोंका स्थान है, ऐसा निश्चित समझ लो।]

(२३) सुम्ना क्व? सुविता क? सौभगा क?
(ऋ. १।३८।३)

आपके सुख, वैभव, ऐश्वर्य भला कहाँ हैं [देखो क्य वे तुम्हारे समीप हैं या शत्रु उन्हें छीन ले गये हैं।]

(२४) पृश्निमातरः मर्तासः, स्तोता अमृतः।
(ऋ. १।३८।४)

भूमिको माता समझनेवाले वीर यद्यपि मर्त्य हैं, तोभी जो उनके संबंधमें काव्य बनाते हैं, वे अमर बनते हैं। [मातृभूमिके उपासकोंका इतना महत्त्व है, वे स्वयं तो अमर बनते ही हैं, पर उनका काव्य यदि कोई बना दें, तो वे कवि भी अमर हो जाते हैं।]

(२५) जरिता यमस्य पथा मा उप गात्। (ऋ. १।३८।५)

कवि कदापि मौतको पहुंचानेवाली राहसे नहीं चलेगा। [जो कवि वीरोंका वर्णन करनेके लिए वीररसपूर्ण काव्य का सृजन करेगा, वह अवश्य अमर बनेगा।]

(२६) दुर्हणा निर्ऋतिः नः मो सु वधीत्। (ऋ.१।३८।६)

विनाश करनेवाली दुर्दशाके कारण हमारा नाश न होने पाय। [इस विषयमें शासकों को अत्यन्त सतर्क रहना चाहिए।]

दुर्हणा निर्ऋतिः तृष्णया पदीष्ट। (ऋ० १।३८।६)

विनाशका दृश्य उपस्थित करनेवाली दुःस्थिति भोग-लालसासे बढती जाती है और उसी कारण उसका विनाश हुआ करता है। [भोगलालसासे सुखसाधनोंकी वृद्धि होती है और अन्तमें उसी की वजहसे वे विनष्ट होते हैं।]

(२७) त्वेषा अमवन्तः धन्वन् मिहं कृण्वन्ति।

(ऋ. १।३८।७)

तेजस्वी तथा बलवान वीर रेगिस्तानमें एवं मरुस्थलोंमें भी जलको उत्पन्न कर दिखाते हैं। [पौरुषसे सुखकी प्राप्ति हुआ करती है।]

(३०) मरुतां स्वनात् पार्थिवं सद्म मानुषाः प्र अरेजन्त।

(ऋ. १।३८।१०)

मरनेतक खडे रहकर लडनेवाले वीर सैनिकोंकी दहाड से पृथ्वीपर विद्यमान स्थान तथा सभी मानव काँपने लगते हैं। [वीरोंको चाहिए कि वे इसी भाँति शूरता दर्शायँ।]

(३१) वीळुपाणिभिः अखिद्रयामभिः रोधस्वतीः अनु यात। (ऋ. १।३८।११)

बाहुबल बढाकर, खिन्नता दूर करते हुए उत्साहपूर्वक प्रवाहमेंसे भी आगे बढो। [निरुत्साही बनकर चुपचाप हाथपर हाथ धरे न बैठो।]

(३२) वः रथाः नेमयः अश्वासः अभीशवः स्थिराः सुसंस्कृताः। (ऋ १।३८।१२)

तुम्हारे सभी साधन सुदृढ तथा अच्छे संस्कारों से संपन्न हों [तभी तुम्हें सफलता मिलेगी।]

(३३) गिरा ब्रह्मणः पतिं अच्छा वद। (ऋ.१।३८।१३)

अपनी वाणीसे ज्ञानी पुरुषोंकी सराहना करो।

(३४) आस्ये श्लोकं मिमीहि। (ऋ. १।३८।१४)

शीघ्र कवि बनो, थोडीही देरमें मन ही मन श्लोकरचना करो, [काव्यरचना इस भाँति सहज ही होने पाय।]

गाय-त्रं उक्थ्यं गाय।

जिससे गानेवालेकी रक्षा हो, ऐसे काव्योंका गायन करते रहो। [व्यर्थही मनमाने काव्योंका गायन करना उचित नहीं।]

(३५) त्वेषं पनस्युं आर्किणं वन्दस्व। (ऋ. १।३८।१५)

तेजस्वी, वर्णन करनेयोग्य तथा पूज्य वीरकोही प्रणाम करो। [चाहे जिस नीच व्यक्तिके सामने शीश झुकाया न जाय।]

अस्मे इह वृद्धाः असन्।

हमारे समीप वृद्ध रहें।

(३७) वः आयुधा पराणुदे स्थिरा वीळु सन्तु।

(ऋ. १।३९।२)

तुम्हारे हथियार शत्रुओंको मार भगानेके लिए स्थिर एवं पर्याप्त रूपसे सुदृढ रहें। [तुम सदैव इस विषयमें सतर्क रहो कि, तुम्हारे हथियार दुश्मनोंके आयुधोंसेभी अपेक्षाकृत अधिक कार्यक्षम एवं प्रभावी रहें।]

युष्माकं तविषी पनीयसी अस्तु, मायिनः मा।

तुम्हारी शक्ति सराहनीय रहे, पर तुम्हारे कपटी शत्रुकी वैसी न हो। [हमेशा तुम्हारी अपेक्षा दुश्मनों की शक्ति घटिया दर्जेकी रहे, इसलिये सावधानीसे रहा करो।]

(३८) स्थिरं परा हत, गुरु वर्तयथ। (ऋ. १।३९।३)

जो शत्रु स्थिर हुआ हो, उसे दूर हटाकर विनष्ट करो। तथा बडे भारी शत्रुको भी चक्कर खानेतक घुमा दो [उसे पदच्युत कर दो, शत्रुको कहीं भी स्थायी बननेका अवसर न दो।]

वनिनः वि याथन, पर्वतानां आशाः वि याथन।

जंगल तोडकर पहाडी भूविभागोंमेंसेभी विशेष ढंग की सडकें उन्मुक्त रखो। [यातायातके साधनोंमें वृद्धि करो।]

(३९) रिशादसः! भूम्यां शत्रुः वः न विविदे।

(ऋ. १।३९।४)

हे शत्रुदलके विध्वंसक वीरो! इस भूमंडलपर तुम्हारा कोई शत्रु न रहे, ऐसा करो।

आधृषे तविषी तना अस्तु।

वैर करनेवाले लोगोंका विनाश करनेका बल बढता रहे।

(४०) सर्वया विशा प्रो आरत। (ऋ. १।३९।५)

समूची प्रजाके साथ उन्नतिको प्राप्त करो। [संघकी प्रगतिमें व्यक्ति अपनी उन्नति मान ले।]

(४१) वः यामाय पृथिवी आ अश्रोत्, मानुष अबीभयन्त। (ऋ. १।३९।६)

तुम्हारे आक्रमणकी आवाज सारी पृथ्वी सुन लेती है, अर्थात् एक छोरसे दूसरे छोरतक आक्रमणका समाचार पहुँचता है, अतः मानवोंको अत्यन्त भय प्रतीत होता है। [वीरोंके हमलेसें इसी भाँति भीषणता पर्याप्त मात्रामें रहनी चाहिए।]

(४२) तनाय कं अवः आवृणीमहे। (ऋ. १।३९।७)

हम चाहते हैं कि, जिस संरक्षणसे बालबच्चोंका सुख बढे, वही हमें मिल जाए।

विभ्युषे अवसा गन्त।

जो भयभीत हुआ हो उसके समीप अपनी संरक्षक शक्तियोंके साथ चले जाओ। [जो भयभीत हुए हों, उन्हें तसल्ली देनी चाहिए।]

(४३) अभ्वः शवसा ओजसा ऊतिभिः वि युयोत।
(ऋ. १।३९।८)

शत्रुके अभूतपूर्व भीषण प्रहारोंको अपने बलसे, सामर्थ्यसे एवं संरक्षक शक्तिओंसे हटा दो, दूर कर दो।

(४४) असामि दद, असामिभिः ऊतिभिः नः आगन्तन। (ऋ० १।३९।९)

पूर्ण रूपसे दान दो; अपनी संपूर्ण, अविकल शक्तियोंके साथ हमारे समीप आओ। [संरक्षण करनेके लिए जाते समय पूर्ण सिद्धता रखनी चाहिए। कहींभी अधूरापन या त्रुटि न रहे।]

(४५) असामि ओजः शवः बिभृथ। (ऋ. १।३९।१०)

संपूर्ण ढंगसे अपना बल तथा सामर्थ्य बढाकर धारण करो।

द्विषे द्विषं सृजत।

शत्रुपर शत्रुको छोडो। [एक शत्रुसे दूसरे दुश्मनको लडाकर ऐसा प्रबंध करो कि, दोनों शत्रु हतबल एवं परास्त हों।

[काण्वपुत्र पुनर्वत्स ऋषि।]

(४६) पर्वतेषु विराजथ। (ऋ. ८।७।१)

पर्वतोंमें आनन्दपूर्वक रहो। [पहाडी मुल्कमेंभी जानेआनेका अभ्यास करना चाहिए। पार्वतीय भूविभागोंके बीहडपनसे तनिकभी न डरते हुए वहाँपर विराजमान होना चाहिए।]

(४७) तविषीयवः! यामं अचिध्वं, पर्वता नि अहासत। (ऋ. ८।७।२)

बलवान वीर जिस समय शत्रुसेनापर धावा करनेके लिए अपना रथ सुसज्ज करते हैं, तब पर्वतभी काँप उठते हैं। [ऐसी दशामें मानव तो अवश्यही मारे डरके थरथर काँपने लगेंगे, इसमें क्या आश्चर्य ?]

(४८) पृश्निमातरः उदीरयन्त, पिप्युषीं इषं धुक्षन्त।
(ऋ. ८।७।३)

मातृभूमिकी सेवा करनेहारे वीर जब हलचल मचाने लगते हैं, तब वे पुष्टिकारक अन्नकी यथेष्ट समृद्धि करते हैं।

(४९) यत् यामं यान्ति, पर्वतान् प्रवेपयन्ति।
(ऋ. ८।७।४)

जब वीर सैनिक दुश्मनोंपर आक्रमण करते हैं, तब वे मार्गपर पडे हुए पहाडोंतक को हिला देते हैं [वीरोंका आक्रमण इसी भाँति प्रबल हो।]

(५०) यामाय विधर्मणे महे शुष्माय गिरिः सिन्धवः नि येमिरे। (ऋ. ८।७।५)

वीरोंके आक्रमणों एवं प्रबल सामर्थ्योंके परिणामस्वरूप मारे भयके पहाड एवं नदियांभी नम्र बन जाती हैं। [शत्रु झुक जायँ इसमें क्या संशय ?]

(५२) वाश्राः यामेभिः स्नुना उदीरते।
(ऋ. ८।७।७)

गरजनेवाले वीर अपने रथोंसे पर्वतों के शिखरतक पार कर चले जाते हैं। [वीरोंके लिए कोई स्थान अगम्य नहीं है।]

(५३) यातवे ओजसा पन्थां सृजन्ति। (ऋ. ८।७।८)

वीर पुरुष जानेके लिए अपनेही बल एवं सामर्थ्यके सहारे मार्गोंका सृजन करते हैं।

ते भानुभिः वि तस्थिरे।

वे तेजोंसे युक्त होकर विशेष स्थिरता पाते हैं। [वे प्रथम तेजस्वी बनते हैं और तेजस्वी होनेसे स्थायी बन जाते हैं।]

(५७) इमे मदे प्रचेतसः स्थ। (ऋ. ८।७।१२)

तुम अपने स्थानमें आनंदित बननेके लिए विशेष बुद्धिसे

युक्त होकर रहो। [अपना चित्त संस्कारसंपन्न करनेसे तुम्हें आनन्द प्राप्त होगा।]

(५८) मदच्युतं पुरुक्षुं विश्वधायसं रयिं नः आ इयर्त। (ऋ. ८।७।१३)

शत्रुका गर्व हटानेवाले, सबके लिए पर्याप्त, सबकी धारणपुष्टि करनेकी क्षमता रखनेवाले धनकी आवश्यकता हमें है। [इसके विपरीत जिससे शत्रुको हर्ष हो, जो सबके लिए अपर्याप्त एवं अल्प जँचे, सबकी धारक शक्ति को जो घटा दे, ऐसा धन यदि हमें मुफ्त भी मिल जाय तोभी उसका स्वीकार नहीं करना चाहिए।]

(५९) गिरीणां अधि यामं अचिध्वं, इन्दुभिः मन्दध्वे। (ऋ. ८।७।१४)

जब पर्वतोंपर जाते हो, तब वहाँ उपलब्ध होनेवाले सोमरसोंसे तुम हृष्ट बनते हो। [पहाडी स्थानोंमें पाये जानेवाले सोम का रस पीकर आनन्दकी उपलब्धि होती है।]

(६०) अदाभ्यस्य मन्मभिः सुम्नं भिक्षेत। (ऋ. ८।७।१५)

जो वीर न दब जाते हों, उनके संबंधमें किये काव्योंसे सुख पानेकी चाह करनी चाहिए। [शत्रुसे भयभीत होनेवाले मानवका बखान जिसमें किया हो ऐसे काव्योंके पठनसे या सृजनसे सुखकी प्राप्ति होना सुतरां असंभव है।]

(६२) पृश्निमातरः स्वानेभिः स्तोमैः रथैः उदीरते। (ऋ. ८।७।१७)

मातृभूमि के भक्त भाषणोंसे, यज्ञोंसे तथा रथादि साधनोंसे ऊँचे स्थानको पाते हैं। [अपनी प्रगति कर लेते हैं।]

(६४) पिप्युषीः इषः वः वर्धान्। (ऋ. ८।७।१९)

पुष्टिकारक अन्न तुम्हारी वृद्धि करें। [तुम्हें पौष्टिक अन्न एवं भोज्य पदार्थ सदैव उपलब्ध हों।]

(६६) ऋतस्य शर्धान् जिन्वथ। (ऋ. ८।७।२१)

सत्यके बलों को प्रोत्साहित करो। [सत्य का बल प्राप्त करो।]

(६७) त्ये वज्रं पर्वशः सं दधुः। (ऋ. ८।७।२२)

वे वीर वज्रको हर गाँठमें भली भाँति जोडकर प्रबल तथा सुदृढ कर देते हैं। [वीर सैनिक अपने हथियारोंको प्रबल तथा कार्यक्षम बना रखें।]

(६८) वृष्णि पौंस्यं चक्राणाः अराजिनः वृत्रं पर्वतान् पर्वशः वि ययुः। (ऋ. ८।७।२३)

अपना बल बढानेवाले ये संघशासक [जिनमें कोई राजा नहीं रहता है, ऐसे ये वीर] शत्रुको तथा पहाडोंको तिलतिल तोड डालते हैं। पहाडी गढों को भी छिन्नभिन्न कर डालते हैं।

(६९) युध्यतः शुष्मं अनु आवन्। (ऋ. ८।७।२४)

युद्ध करनेवाले वीरके बलकी रक्षा तुमने की है।

(७०) विद्युद्धस्ताः अभिद्यवः शीर्षन् श्रिये हिरण्ययीः शिप्राः व्यञ्जत। (ऋ. ८।७।२५)

बिजलीके समान चमकनेवाले हथियार धारण करनेवाले वीर अपने मस्तकोंपर स्वर्णिलछवियुक्त शिरोवेष्टन शोभाके लिए धर देते हैं।

(७२) हिरण्यपाणिभिः अश्वैः उपागन्तन। (ऋ. ८।७।२७)

सुवर्णके आभूषणोंसे सजाये हुए घोडे साथ लेकर हमारे समीप आओ। [घोडोंपर स्वर्णके गहने लादनेतक असीम वैभव रहे।]

(७४) नरः निचक्रया ययुः। (ऋ.८।७।२९)

नेताके पदको सुशोभित करनेवाले ये वीर पहियोंसे रहित [वर्फमय भूविभागोंपर से चलनेवाली] गाडीमें बैठकर जाते हैं।

(७५) नाधमानं विप्रं मार्डीकेभिः गच्छाथ। (ऋ. ८।७।३०)

सहायताकी इच्छा करनेवाले ज्ञानी पुरुषके समीप सुखवर्धक साधन साथ ले चले जाओ। [सज्जनोंका सुख बढाओ। 'परित्राणाय साधूनां०।' गीता, ४।८]

(७७) वज्रहस्तैः हिरण्यवाशीभिः सहो अग्निं सु स्तुषे। (ऋ. ८।७।३२)

शस्त्रधारी एवं आभूषणों से अलंकृत वीरोंके साथ रहनेवाले अग्निकी सराहना करता हूँ।

(७८) वृष्णः प्रयज्यून् चित्रवाजान् सुविताय सु आ ववृत्याम्। (ऋ. ८।७।३३)

बलिष्ठ, पूजनीय एवं सामर्थ्यवान वीरोंको धनप्राप्ति के [कार्यमें सहायता के] लिए बुलाता हूँ। [हमारे समीप

आ जानेके लिए उनका मन आकर्षित करता हूँ]

(७९) मन्यमानाः पर्शानासः गिरयः नि जिहते।

(ऋ. ८।७।३४)

[इन वीरोंके सम्मुख] बडेबडे ऊँचे शिखरवाले पहाड भी अपनी जगह से हट जाते हैं। [वीरोंके सामने पर्वत-श्रेणीतक टिक नहीं सकती है।]

(८०) अन्तरिक्षेण पततः वयः धातारः आ वहन्ति। (ऋ. ८।७।३५)

आकाशमार्गसे जानेवाले वाहन अन्नसमृद्धि करनेहारे वीर सैनिकोंको इष्ट स्थानपर पहुँचाते हैं। [वीर सैनिक विमानोंमें बैठ यात्रा करते हैं।]

(८१) ते भानुभिः वि तस्थिरे। (ऋ. ८।७।३६)

वे वीर पुरुष तेजसे युक्त होकर स्थिर बन जाते हैं।

[कण्वपुत्र सोभरि ऋषि।]

(८२) स्थिरा चित् नमयिष्णवः मा अप स्थात।

(ऋ. ८।२०।१)

जो शत्रु अच्छे ढंगसे स्थायी हुए हों उन्हें भी झुकाने-वाले तुम वीर हमसे दूर न हो जाओ। [विजयी वीर हमारे समीप ही रहें।]

(८३) सुदीतिभिः वीळुपविभिः आ गत।

(ऋ.८।२०।२)

अत्यन्त तीक्ष्ण, प्रबल हथियार साथ ले इधर आओ।

(८४) शिमीवतां उग्रं शुष्म विद्म। (ऋ. ८।२०।३)

उद्योगशील वीरोंके प्रचण्ड बलकी महत्ताको हम भली भाँति जानते हैं।

(८५) यत् एजथ द्वीपानि वि पापतन्। (ऋ.८।२०।४)

जब ये वीरसैनिक चले जाते हैं, तब टापू [अर्थात् आश्रय-स्थानों]का पतन हो जाता है। [शत्रु अपने स्थानसे हट जाते हैं।]

(८६) अज्मन् अच्युता पर्वतासः नानदति, यामेषु भूमिः रेजते। (ऋ. ८।२०।५)

[वीरोंकी शत्रुदलपर की हुई] चढाइयोंके समय अडिग एवं अटल पर्वततक स्पन्दमान हो उठते हैं और पृथ्वीभी विकम्पित होती है। [वीरोंको उचित है कि, वे इसी भाँति प्रभावशाली एवं सद्यः फलदायी आक्रमणोंका ताँतासा लगा देवें।]

(८७) अमाय यातवे यत्र बाह्वोजसः नरः त्वक्षांसि तनूषु आ देदिशते, द्यौः उत्तरा जिहीते।

(ऋ. ८।२०।६)

जब सेना की हलचलके लिए अपने बाहुबलसे तुम्हारे वीर जिधर अपनी सारी शक्ति केन्द्रित तथा एकत्रित करके शत्रुपर धावा कर देते हैं उधर ऐसा जान पडता है कि, मानों आकाश स्वयं दूर होते जा रहा है [अर्थात् उन वीरोंकी प्रगति अबाध रूपसे करनेके लिए एक ओर सडक खुली हो जाती है।]

(८८) त्वेषाः अमवन्तः नरः महि श्रियं वहन्ति।

(ऋ. ८।२०।७)

तेजस्वी, बलयुक्त तथा नेता बने हुए वीर अत्यधिक रूपसे शोभायमान दीख पडते हैं।

(८९) गोबन्धवः सुजातासः महान्तः इषे भुजे स्परसे। (ऋ. ८।२०।८)

गौको बहनके समान माननेवाले कुलीन वीर अन्न, भोग एवं स्फूर्ति देते हैं।

(९०) वृषप्रयाले वृष्णे शर्धाय हव्या प्रति भरध्वम्।

(ऋ. ८।२०।९)

प्रबल आक्रमण करनेहारे बलिष्ठ वीरोंको पर्याप्त अन्न दे दो, ताकि उनका बल वृद्धिंगत हो। [बिना अन्नके सैन्यका बल तथा प्रतिकारक्षमता टिक नहीं सकेगी।]

(९१) वृषणश्वेन रथेन नः आ गत। (ऋ ८।२०।१०)

बलिष्ठ अश्व जिसको खींचते हों, ऐसे रथपर बैठकर हमारे समीप आओ।

(९२) एषां समानं अञ्जि, बाहुषु ऋष्टयः दवि-द्युतति। (ऋ ८।२०।११)

इन वीरोंकी वरदी (गणवेश) समान है, तथा इनकी भुजाओंपर शस्त्र जगमगा रहे हैं।

(९३) उग्रासः तनूषु नकिः येतिरे। (ऋ. ८।२०।१२)

वीर पुरुष अपने शरीरोंकी पर्वाह नहीं करते हैं, [अर्थात् बिना किसी झिझक या हिचकिचाहटके वे उत्साहसे युद्धों में वीरतापूर्ण कार्य कर दिखलाते हैं और अपने प्राणोंको खतरेमें डाल देते हैं।]

रथेषु स्थिरा धन्वानि, आयुधा, अनीकेषु अधि श्रियः।

वीरोंके रथोंपर सुदृढ, न हिलनेवाले एवं स्थायी धनुष्य

और हथियार रखे जाते हैं तथा येही वीर रणभूमिमें सफलता पाते हैं।

(९४) शश्वतां त्वेषं नाम सहः एकम्। (ऋ.८।२०।१३)
इन शाश्वत वीरोंके तेज, यश एवं सामर्थ्यमें अद्वितीयता पाई जाती है।

(९५) धुनीनां चरमः न। (ऋ. ८।२०।१४)
शत्रुको विकम्पित करनेवाले वीरोंमें कोई भी निम्न श्रेणीका या हीन नहीं है।

एषां दाना मह्ना। = इनके दान बडे भारी होते हैं, [वे अपने प्राणोंका बलिदान करनेके लिए उद्यत होते हैं, यही इनका बडा दान है। प्राणोंके अर्पणसे बढकर भला और क्या दान हो सकता है?]

(९६) ऊतिषु सुभगः आस। (ऋ. ८।२०।१५)
सुरक्षिततामें बडा भारी सौभाग्य छिपा रहता है।

(९९) वस्यसा हृदा उप आववृध्वम्। (८।२०।१८)
उदार अन्तःकरणपूर्वक हमारे समीप आकर समृद्धि बढाओ।

(१००) चर्कृषत् गाः सु अभि गाय। (ऋ. ८।२०।१९)
हल चलानेवाला किसान गौओं को रिझाने के लिए सुंदर गीत गाया करता है।

यूनः वृष्णः पावकान् नविष्ठया गिरा सु अभि गाय= नवयुवक, तथा बलवान और पवित्रता करनेहारे वीरोंका नया काव्य भली भाँति सुरीली आवाजमें गाते रहो।

(१०१) विश्वासु पृत्सु मुष्टिहा हव्यः (ऋ.८।२०।२०)
सभी सैनिकोंमें मुष्टियोद्धा सम्माननीय होता है।

सहाः सन्ति तान् वृष्णः गिरा वन्दस्व।
जो वीर सैनिक शत्रुदल का आक्रमण होनेपरभी अपनी जगह अटल एवं अडिग हो खडे रहते हैं, उन बलवान वीरोंकी सराहना अपनी वाणीसे करो तथा उनका अभिवादन करो।

(१०२) सजात्येन सबन्धवः मिथः रिहते। (ऋ.८।२०।२१)
सजातीय एवं बांधव परस्पर मिल जुलकर रहें।

(१०३) मर्तः वः भ्रातृत्वं उपायति, आपित्वं सदा निध्रुवि। (ऋ. ८।२०।२२)
साधारण कोटिका मनुष्य भी तुमसे भाईचारेका वर्ताव कर सकता है, क्योंकि तुम्हारी मित्रता सदैव अचल एवं स्थिर रहा करती है।

(१०४) मारुतस्य भेषजं आ वहत। (ऋ. ८।२०।२३)
वायुमें जो औषधीगुण विद्यमान है, वह हमें ला दो। [वायुमें रोग हटानेकी शक्ति विद्यमान है।]

(१०५) याभिः ऊतिभिः अवथ, शिवाभिः मयः भूत। (ऋ. ८।२०।२४)
जिन शक्तियोंसे तुम रक्षा करते हो, उन्हीं शुभ शक्तियोंसे हमारा सुख बढाओ।

(१०६) सिन्धौ असिक्न्यां समुद्रेषु पर्वतेषु भेषजम्। (ऋ. ८।२०।२५)
सिन्धु नदी, समुद्र एवं पर्वतोंमें औषधियाँ हैं। [उन औषधियोंकी जानकारी प्राप्त करके रोग हटाने चाहिए।]

(१०७) विश्वं पश्यन्तः, तनूषु आ बिभृथ, आतुरस्य रपः क्षमा, विह्रुतं इष्कर्त। (ऋ. ८।२०।२६)
विश्वका निरीक्षण करो, शरीरोंको हृष्टपुष्ट बनाओ, रोगसे पीडित व्यक्तियोंके दोष दूर करो और टूटे हुए भागको ठीक करो या जोड दो।

[गोतमपुत्र नोधा ऋषि।]

(१०८) वृष्णे, सुमखाय, वेधसे, शर्धाय सुवृक्तिं प्र भर। (ऋ. १।६४।१)
बल, सत्कर्म, ज्ञान एवं सामर्थ्यका वर्णन करनेके लिए काव्य करो।

(१०९) ऋष्वासः उक्षणः असु-राः अरेपसः पावकासः शुचयः सत्वानः दिवः जज्ञिरे। (ऋ. १।६४।२)
उच्च कोटिके, महान्, सत्कार्यके लिए अपने जीवनका बलिदान करनेहारे, पापरहित, पवित्र, शुद्ध एवं सत्ववान जो हों, वे स्वर्गसे पृथ्वीपर आये हैं, ऐसा समझना चाहिए।

(११०) अजराः अभोग्घनः अध्रिगावः दृळ्हा चित् मज्मना प्र च्यावयन्ति। (ऋ. १।६४।३)
क्षीण न होनेवाले, अनुदार शत्रुओंको हटानेवाले, शत्रुसेनापर चढाई करनेवाले वीर सैनिक स्थिर शत्रुओंको भी अपने बलसे हिला देते हैं।

(१११) अंसेषु ऋष्टयः निमिमृक्षुः नरः स्वधया जज्ञिरे। (ऋ. १।६४।४)
कंधेपर शस्त्र रखनेवाले और नेताके पदपर आधिष्ठित वीर पुरुष अपने बलसे विख्यात होते हैं।

(११२) ईशानकृतः धुनयः धूतयः रिशादसः परिज्रयः

दिव्यानि ऊधः दुहन्ति । (ऋ. १।६४।५)

राष्ट्रशासकोंका सृजन करनेवाले, शत्रुको हिला देने, स्थानभ्रष्ट करने तथा विनष्ट कर डालनेकी क्षमता रखनेवाले और उसे घेरनेवाले वीर दिव्य गौका दुग्धाशय दुहकर दूधका सेवन करते हैं। [भाँतिभाँतिके भोग पाते हैं।]

(११३) सुदानवः आभुवः विदथेषु घृतवत् पयः पिन्वन्ति । (ऋ. १।६४।६)

उत्तम दान देनेहारे प्रभावशाली वीर युद्धभूमिमें घृतमिश्रित दूधका सेवन करते हैं। [दूधमें घी की मिलावट करनेपर वह शक्तिवर्धक एवं बलदायक पेय होता है ।]

(११४) महिपासः मायिनः स्वतवसः रघुष्यदः तविषीः अयुग्ध्वम् । (ऋ. १।६४।७)

बडे कुशल, तेजस्वी तथा वेगसे जानेहारे वीर अपने बलोंका उपयोग करते हैं।

(११५) प्रचेतसः सुपिशः विश्ववेदसः क्षपः जिन्वन्तः शवसा अहिमन्यवः ऋष्टिभिः सवाधः सं इत् ।

(ऋ. १।६४।८)

ज्ञानी, सुन्दर, धनिक, शत्रुविनाशक, सबको सुखी बनानेकी इच्छा करनेहारे, बलवान एवं उत्साही वीर अपने हथियार साथ लेकर पीडित एवं दुःखी लोगोंको सुखसमाधान देनेके लिए इकट्ठे होकर चले जाते हैं।

(११६) गणश्रियः नृषाचः अहिमन्यवः शूराः बन्धुरेषु रथेषु आतस्थौ । (ऋ १।६४।९)

समुदायके कारण सुहानेवाले, जनताकी सेवा करनेहारे एवं उमंगसे भरे हुए वीर अच्छे रथोंमें बैठकर गमन करते हैं।

(११७) रयिभिः विश्ववेदसः समोकसः तविषीभिः संमिश्लाः विरोप्शिनः अस्तारः अनन्तशुष्माः वृषखादयः नरः गभस्त्योः इषुं दधिरे। (ऋ. १।६४।१०)

धनाढ्य, वैभवशाली, एक घरमें निवास करनेवाले, बलसंपन्न, सामर्थ्यपूर्ण, शक्तिमान, शत्रुपर शस्त्र फेंकनेवाले और अच्छे ढंगसे अलकृत वीर अपने कंधोंपर बाण एवं तूणीर धारण करते हैं।

(११८) अयासः स्वसृतः ध्रुवच्युतः दुध्रकृतः भ्राजत्-ऋष्टयः पर्वतान् पविभिः उज्जिघ्नते। (ऋ. १।६४।११)

प्रगतिशील, अपनी इच्छासे हलचल करनेवाले, सुदृढ दुश्मनोंको भी अपदस्थ करनेकी क्षमता रखनेवाले और जिन्हें कोई घेर नहीं सकता ऐसे तेजस्वी शस्त्र धारण करनेहारे वीर पहाडोंको भी अपने हथियारों से उडा देते हैं ।

(११९) घृषुं पावकं विचर्षणिं रजस्तुरं तवसं घृषणं गणं सश्चत । (ऋ. १।६४।१२)

युद्धमें प्रवीण, पवित्रता करनेहारे, ध्यानपूर्वक हलचलोंका सूत्रपात करनेवाले, अपनी वेगवान गतिके कारण धूलिको प्रेरित करनेवाले, बलिष्ठ एवं सामर्थ्ययुक्त वीरोंके संघको समीप बुलाओ ।

(१२०) वः ऊती यं प्रावत, सः शवसा जनान् अति ।

(ऋ. १।१६४।१३)

तुम अपने संरक्षणोंमे जिस पुरुषको सुरक्षित बना देते हो, वह सभी लोगोंसें श्रेष्ठ बनता है ।

अर्वद्भिः वाजं, नृभिः धना भरते, पुष्यति ।

वह घुडसवारोंकी सहायतासे अन्न प्राप्त करता है, वीरोंकी सहायतासे पौरुषपूर्ण कार्य करके धनवैभव पाता है और पुष्ट बनता है।

आपृच्छयं क्रतुं आ क्षेति ।

वर्णन करनेयोग्य पुरुषार्थ करके यशस्वी बनता है ।

(१२१) चर्कृत्यं, पृत्सु दुष्टरं, द्युमन्तं, शुष्मं धनस्पृतं, उक्थ्यं, विश्वचर्षणिं तोकं तनयं धत्तन ।

(ऋ. १।६४।१४)

पुरुषार्थी, युद्धोंमें विजयी बननेवाला तेजस्वी, समर्थ, धनवान, वर्णनीय, समूची जनताका हितकर्ता पुत्र होवे।

(१२२) अस्मासु स्थिरं वीरवन्तं, ऋतीषाहं शूशुवांसं रयिं धत्त । (ऋ १।६४।१५)

हमें स्थिर, वीरोंसे युक्त, शत्रुओंके पराभव करनेमें क्षमतापूर्ण धन प्रदान करो ।

[रहूगणपुत्र गोतमऋषि ।]

(१२३) सुदंससः स्वयः सूनवः यामन् शुम्भन्ते विदथेषु मदन्ति । (ऋ. १।८५।१)

सत्कर्म करनेहारे एवं प्रगतिशील वीर सुपुत्र शत्रुदलपर धावा करते समय सुशोभित दीख पडते हैं और युद्धस्थलमें बडे ही हर्षित हो उठते हैं।

(१२४) अर्कं अर्चन्तः पृश्निमातरः श्रियः अधि दधिरे, महिमानं आशत । (ऋ. १।८५।२)

एकही पूजनीय देवताकी उपासना करनेहारे मातृभूमिके

भक्त वीर अपना यश बढाते हैं और बडप्पनको पा लेते हैं।

(१२५) गोमातरः विश्वं अभिमातिनं अप बाधन्ते। (ऋ. १।८५।३)

गौको माता समझनेवाले वीर सभी शत्रुओंका पराभव करते हैं तथा उन्हें दूर हटा देते हैं।

(१२६) सुमखासः ऋष्टिभिः विभ्राजन्ते, मनोजुवः वृषव्रातासः रथेषु पृषतीः अयुग्ध्वं, अच्युता चित् ओजसा प्रच्यवयन्तः। (ऋ. १।८५।४)

अच्छे कर्म करनेहारे वीर पुरुष या सैनिक अपने हथियारोंसे सुहाते हैं। मनकी नाईं वेगवान, सांघिक बलसे युक्त ये वीर अपने रथोंमें घोडियों को जोत लेते हैं और अपनी शक्तिसे जो शत्रु अटल तथा अडिग प्रतीत होते हों, उन्हें अपदस्थ कर डालते हैं।

(१२७) वाजे अद्रिं रंहयन्तः (ऋ. १।८५।५)

अन्नके लिए ये वीर पहाडकोभी विचलित कर डालते हैं।

(१२८) रघुष्यदः सप्तयः वः आ वहन्तु। (ऋ.१।८५।६)

वेगपूर्वक दौडनेवाले घोडे तुम वीरोंको यहाँपर ले आयँ।

रघुपत्वानः बाहुभिः प्र जिगात।

शीघ्रतासे प्रयाण करनेवाले तुम लोग अपने बाहुबलसे प्रगति करो।

वः उरु सदः कृतं= बडा घर तुम्हारे लिए बना रखा है।

बर्हिः आ सीदत, मध्वः अन्धसः मादयध्वम्।

आसनोंपर बैठो और मिठासभरे अन्न का सेवन करके प्रसन्न बनो।

(१२९) ते स्वतवसः अवर्धन्त। (ऋ. १।८५।७)

वे वीर सैनिक अपने बलसे वृद्धिंगत होते रहते हैं।

महित्वना नाकं आ तस्थुः।

अपने बडप्पनसे वीर पुरुष स्वर्गमें जा बैठते हैं।

विष्णुः वृषण मदच्युतं आवत्।

देव वलिष्ठ तथा प्रसन्नचेता वीरोंकी रक्षा करता है। जिसका मन आनन्दसरितामें डूबता उतरता हो, उसकी रक्षा परमात्मा करता है।

(१३०) शूराः युयुधयः श्रवस्यवः पृतनासु येतिरे। (ऋ. १।८५।८)

शूर योद्धा यशस्विता पानेके लिए युद्धमें विजयार्थ प्रयत्न करते रहते हैं।

त्वेषसंदृशः नरः विश्वा भुवना भयन्ते।

तेजस्वी वीरोंसे सभी भयभीत हो उठते हैं।

(१३१) स्वपाः त्वष्टा सुकृतं वज्रं अवर्तयत्, नरि अपांसि कर्तवे धत्ते। (ऋ. १।८५।९)

अच्छे कुशल कारीगरने सुघड हथियार बना दिया और एक अत्यन्त वीर पुरुषने युद्धमें विशेष शूरता प्रदर्शित करनेके लिए उसे हाथमें उठा लिया।

(१३२) ते ओजसा ऊर्ध्वं अवतं नुनुद्रे, दद्दहाणं पर्वतं विभिदुः। (ऋ. १।८५।१०)

उन वीरोंने पहाडोंपर विद्यमान जलको नीचे प्रवाहित कर दिया और उसके लिए बीचमें रुकावट खडी करनेवाले पर्वतको भी तोड डाला।

(१३३) तया दिशा अवतं जिह्मं नुनुद्रे। (ऋ. १।८५।११)

उस दिशामें टेढीमेढी राहसे वे पानी को ले गये।

(१३४) नः सुवीरं रयिं धत्त। (ऋ. १।८५।१२)

हमें अच्छे वीरोंसे युक्त धन दे दो। [जिस धनमें वीरभाव न हो, वह हमें नहीं चाहिए।]

(१३५) यस्य क्षये पाथ, स सुगोपातमो जनः। (ऋ. १।८६।१)

जिसके घरमें देवतागण रक्षाका भार उठा लेते हैं, वह गौओंका परिपालन अच्छे ढंगसे करनेवाला बन जाता है। [अर्थात् वह सबका भली भाँति संरक्षण करता है।]

(१३६) विप्रस्य मतीनां शृणुत। (ऋ. १।८६।२)

ज्ञानी की सुबुद्धि को सुन लो।

(१३७) यस्य वाजिनः विप्रं अनु अतक्षत, सः गोमति व्रजे गन्ता। (ऋ. १।८६।३)

जिसके बल ज्ञानीके अनुकूल होते हैं वह ऐसे गोठेमें चला जाता है कि, जहाँ पर गौओंकी भरमार हो। [वह गोधनसे युक्त बनता है, यथेष्ट धन पाता है।]

(१३८) वीरस्य उक्थं शस्यते। (ऋ. १।८६।४)

वीरकी सराहना की जाती है।

(१३९) यः अभिभुवः अस्य विश्वाः चर्षणीः आश्रोषन्तु। (ऋ. १।८६।५)

जो वीर शत्रुका पराभव करनेकी क्षमता रखता है, उस का काव्य सभी लोग सुन लें।

(१४०) चर्षणीनां अवोभिः वयं ददाशिम।
(ऋ. १।८६।६)

किसानोंकी संरक्षणआयोजनाओं से पालित बनकर हम दान दिया करते हैं। [यदि कृषक सुरक्षित रहें, तो सभी प्रगतिशील हो सकते हैं, दरिद्रताको दूर भगा सकते हैं।]

(१४१) यस्य प्रयांसि पर्षथ, सः मर्त्यः सुभगः अस्तु। (ऋ. १।८६।७)

जिसके प्रयत्नोंसे तुम भोग भोगते हो, वह मनुष्य सौभाग्यवान एवं धन्य है।

(१४२) शशमानस्य स्वेदस्य वेनतः कामस्य विद्।
(ऋ. १।८६।८)

शीघ्रतापूर्वक और पसीनेसे तर हो जानेतक जो कार्य करता हो, उसकी आकांक्षाओंको तुम जान लो। [उसकी उपेक्षा न करो।]

(१४३) यूयं तत् आविष्कर्त, विद्युता महित्वना रक्षः विध्यत। (ऋ. १।८६।९)

तुम अपने उस बलको प्रकट करो और विद्युत् जैसी बडी शक्तिसे दुष्टोंका विनाश करो।

(१४४) गूहं तमः गूहत, विश्वं अत्रिणं वि यात, ज्योतिः कर्त। (ऋ. १।८६।१०)

अँधेरेको दूर हटा दो, सभी पेटुओंको बाहर भगा दो और सबको प्रकाश दिखाओ।

(१४५) प्रत्वक्षसः प्रतवसः विरप्शिनः अनानताः अविथुराः ऋजीषिणः जुष्टतमासः नृतमासः वि आनज्रे। (ऋ. १।८७।१)

शत्रुओंका विनाश करनेहारे, बलसंपन्न, वाग्मी, शीश न झुकानेवाले, निडर, सरल, जिनकी सेवा अत्यधिक मात्रामें लोग करते हैं तथा जो अति उच्च कोटिके नेता बननेकी क्षमता रखते हैं, ऐसे वीर तेजसे जगमगाया करते हैं।

(१४६) केन चित्पथा यायि अचिध्वम्।
(ऋ. १।८७।२)

किसीभी राहसे शत्रुदलपर की जानेवाली चढाईके पथपर आकर इकट्ठे बनो।

(१४७) यत् शुभे युञ्जते, अज्मेषु यामेषु भूमिः प्र रेजते। (ऋ. १।८७।३)

तुम जब शुभ कार्य करनेके लिए तैयार होते हो, तब शत्रुसेनापर चढाई करते समय भूमि थरथर काँप उठती है।

ते धुनयः धूतयः भ्राजदृष्टयः महित्वं पनयन्त।

वे शत्रुको हिला देनेवाले तथा शस्त्रधारी वीर अपना महत्व प्रकट करते हैं।

(१४८) सः हि गणः स्वसृत् तविषीभिः आवृतः अया ईशानः सत्यः ऋणयावा अनेद्यः वृषा अविता।
(ऋ. १।८७।४)

वह वीरोंका समुदाय अपनी निजी प्रेरणा से कर्म करनेहारा, सामर्थ्ययुक्त, अधिकारी बननेयोग्य, सत्यनिष्ठ, ऋण चुकानेवाला, अनिन्दनीय एवं बलवान है, अतः सबकी रक्षा करता है।

(१५०) ते अभीरवः प्रियस्य धाम्नः विद्रे। (ऋ. १।८७।६)

वे निडर वीर आदरका स्थान प्राप्त करते हैं।

(१५१) ऋष्टिमद्भिः रथेभिः आ यात, सुमायाः इषा नः आ पप्तत। (ऋ. १।८८।१)

शस्त्रोंसे सुसज्ज रथोंमें बैठकर वीर सैनिक इधर पधारें और अच्छी कारीगरी बढाकर विपुल अन्न के साथ हमारे समीप आ जावें।

(१५२) रथतूर्भिः अश्वैः शुभे आ यान्ति, स्वधितिवान् भूम जङ्घनन्त। (ऋ. १।८८।२)

रथ खींचनेवाले घोडोंके साथ वीर सैनिक शुभ कार्य करनेके लिए आ जाते हैं और शस्त्रधारी बनकर पृथ्वीपर विद्यमान शत्रुओंका नाश करते हैं।

(१५३) श्रिये कं वः तनूषु वाशीः, मेधा ऊर्ध्वा कृणवन्ते। (ऋ. १।८८।३)

जो वीर सपत्ति तथा सुख पानेके लिएही शस्त्र धारण करते हैं, वे वीर अपनी बुद्धिको उच्च कोटिकी बना देते हैं।

(१५४) अर्कैः ब्रह्म कृण्वन्तः। (ऋ. १।८८।४)

स्तोत्रों से ज्ञानकी वृद्धि करो।

(१५५) अयोदंष्ट्रान् विधावतः वराहून् पश्यन्, योजनं, न अचेति। (ऋ. १।८८।५)

तीक्ष्ण हथियार लेकर शत्रुदलपर चढाई करनेवाले एवं प्रमुख शत्रुओंका वध करनेवाले वीरोंको देखकर जो आयोजना की जाती है, वह सचमुचही अपूर्व होती है।

(१५६) गभस्त्योः स्वधां अनु प्रति स्तोभति।

(ऋ. १।८८।६)

वीरोंके बाहुओंमें सामर्थ्य जिस अनुपातमें हो, उसी अनुपातमें उनकी प्रशंसा होती है।

[दिवोदासपुत्र परुच्छेप ऋषि।]

(१५७) तानि सना पौंस्या अस्मत् मो सु अधि भूवन्।

(ऋ. १।१३९।८)

वे वीरोंकी शाश्वत शक्तियाँ हमसे दूर न हों।

अस्मत् पुरा मा जारिषुः।

हमारे नगर ऊजड न हों।

[मित्रावरुणपुत्र अगस्त्य ऋषि।]

(१५८) रभसाय जन्मने तविषाणि कर्तन।

(ऋ. १।१६६।१)

पराक्रमयुक्त जीवन मिले, इसलिए बलोंका सम्पादन करो।

(१५९) वृष्वयः विदथेषु उपक्रीळन्ति।

(ऋ. १।१६६।२)

शत्रुओंसे संघर्ष करनेवाले वीर युद्धक्षेत्रमें क्रीडा करते हैं।। क्रीडामें जिस भाँति लोग आसक्त होते हैं, उसी प्रकार ये वीर योद्धा रणांगणमें मानों खेल समझकर निरत होते हैं।]

नमस्विनं अवसा नक्षन्ति, स्वतवसः हविष्कृतं न मर्धन्ति।

अपने बलसे, नम्र होनेवालोंकी रक्षा करनेवाले ये वीर अपनी सामर्थ्यके सहारे अन्नदान करनेवाले का नाश नहीं करते।

(१६०) ऊमासः ददाशुषे रायः पोषं अरासत।

(ऋ. १।१६६।३)

रक्षक वीर दाताओंको अन्न एवं पुष्टि प्रदान करते हैं।

(१६१) एवासः तविषीभिः अव्यत, स्वयतासः ध्राजन्, प्रयतासु ऋष्टिषु विश्वा भयन्ते, वः यामः चित्रः।

(ऋ. १।१६६।४)

वेगपूर्वक आक्रमण करनेहारे वीर अपनी शक्तियोंसे सबका प्रतिपालन करते हैं अपने आपको सुरक्षित रखकर शत्रुदलपर धावा करते हैं। जिस समय वे अपने हथियारोंको सुसज्ज करते हैं, तब सभी सहम जाते हैं क्योंकि इनका आक्रमण बडाही भीषण होता है।

(१६२) त्वेषयामाः नर्याः यत् पर्वतान् नदयन्त, दिवः पृष्ठं अचुच्यवुः, वः अज्मन् विश्वः वनस्पतिः भयते।

(ऋ. १।१६६।५)

वेगसे हमले करनेवाले तुम लोग, जोकि जनताके हितके लिए आक्रमण कर बैठते हो, जिस समय पर्वतोंपर से गरजते हुए गमन करते हो, तब स्वर्ग का पृष्ठभाग स्पन्दित हो उठता है और तुम्हारी इस चढाईके मौकेपर समूचे वनस्पति भी भयभीत हो जाते हैं।

(१६३) यत्र वः क्रिविर्दती दिद्युत् रदति, (तत्र) यूयं सुचेतुना अरिष्टग्रामाः नः सुमतिं पिपर्तन।

(ऋ. १।१६६।६)

जब तुम्हारा तीक्ष्ण एवं दन्दानेदार हथियार शत्रुके टुकडे टुकडे कर देता है, उस भीषण संग्राममें तुम अपना चित्त शांत रखकर और अपने नगर सुरक्षित रखकर हमारी बुद्धि की शक्तिको बढाते हो।

(१६४) अनवभ्रराधसः अलातृणासः अर्कं प्र अर्चन्ति, (तानि) वीरस्य प्रथमानि पौंस्या विदुः।

(ऋ. १।१६६।७)

जिनके धनको कोई छीन नहीं सकता, जो दुश्मनों को पूरी तरह से विनष्ट कर डालते हैं, ऐसे वीर उपासनीय देवताकी पूजा करते हैं और इन वीरोंके प्रमुख बल एवं पौरुष उसी समय प्रकट होते हैं।

(१६५) यं अभिहुतेः अघात् आवत, तं शतभुजिभिः पूर्भिः रक्षत। (ऋ. १।१६६।८)

जिसे नाश या पापसे तुम बचाते हो, उनकी रक्षा सैकडों उपभोगसाधनोंसे युक्त गढ या दुर्गोंसे तुम करते हो। [उसे पूर्णतया निर्भय बना देते हो।]

(१६६) वः रथेषु विश्वानि भद्रा, वः अंसेषु तविषाणि आहिता, प्रपथेषु खादयः, वः अक्षः चक्रा समया विवबृते। (ऋ. १।१६६।९)

तुम्हारे रथोंमें कल्याणकारक साधन रखे हैं; तुम्हारे कंधोंपर आयुध हैं; प्रवास करते समय तुम अपने समीप

खानेकी चीजें रखते हो; तुम्हारे रथोंके पहिये उचित अवसरपर उचित ढंगसे घूमते हैं। [तुम शत्रुओंपर ठीक मौकेपर ठीक तरह हमले करते हो।]

(१६७) नरेषु बाहुषु भूरीणि भद्रा, वक्षःसु रुक्माः, अंसेषु रभसासः अञ्जयः, पविषु अधि क्षुराः, अनु श्रियः वि धिरे। (ऋ १।१६६।१०)

मानवोंके हितकर्ता वीरोंक बाहुओंमें बहुतसी शक्तियाँ हैं, जो कि कल्याणकारक हैं; वक्षस्थलपर सुहर्णके हार हैं, कंधोंपर वीरभूषण हैं उनके वज्रों की धारा अत्यन्त तीक्ष्ण है। ये सभी बातें वीरोंकी सुन्दरता बढाते हैं।

(१६८) विभ्वः विभूतयः दूरेदृशः मन्द्राः सुजिह्वाः आसभिः स्वरितारः परिस्तुभः। (ऋ. १।१६६।११)

ये वीर सामर्थ्यसंपन्न, ऐश्वर्यशाली, दूरदर्शी, हर्षित, सुन्दर वक्ता हैं, अतः अत्यन्त सराहनीय हैं।

(१६९) दात्रं दीर्घं व्रतं, सुकृते जनाय त्यजसा अराध्वम्। (ऋ. १।१६६।१२)

दान देना वीरोंका बडा व्रत है, पुण्यकर्मकर्ता को ये वीर दान देते हैं।

(१७०) जामित्वं शंसं, साकं नरः मनवे दंसनैः श्रुष्टिं आव्य, आ चिकित्रिरे (ऋ. १।१६६।१३)

वीरोंका बंधुप्रेम अत्यन्त सराहनीय है। ये वीर एकत्रित रहकर अपने प्रयत्नों से सबका संरक्षण करते हैं और दोष दूर हटाते हैं।

(१७१) जनासः वृजने आ ततनन्। (ऋ. १।१६६।१४)

वीर युद्धक्षेत्रमें अपना सैन्य फैलाते हैं।

(१७२) इषा तन्वे वयां आ यासिष्ट (ऋ. १।१६६।१५)

गतसे शरीरमें सामर्थ्य बढा दो।

इषं वृजनं जीरदानुं विद्याम।

अन्न, बल एवं शीघ्र विजय मिल जाए।

(१७३) सुमायाः अवोभिः आ यान्तु। (ऋ. १।१६७।२)

कुशल वीर अपने संरक्षणके साधनोंसे युक्त हो पधारें।

एषां नियुतः समुद्रस्य पारे धनयन्त।

इनके घोडे (घुडसवार) समुन्द्रके पार चले जाकर धन प्राप्त करें।

(१७४) सुयिता ऋष्टिः सं मिम्यक्ष (ऋ. १।१६७।३)

अच्छी तलवार इन वीरोंके समीप रहती है।

मनुषः योषा न गुहा चरन्ती विदथ्या सभावती।

मानवोंकी महिलाओंकी नाईं वह परदेमें रहा करती है। (मियानमें छिपी पडी रहती है, पर उचित अवसरपर (सभावती) वह सभामें प्रकट होती है, वैसेही यह तलवार युद्धके समय बाहर आ जाती है।

(१७८) एषां सत्यः महिमा अस्ति, वृषमनाः अहंयुः सुभागाः जनीः वहते। (ऋ. १।१६७।७)

इन वीरोंकी महिमा बहुत बडी है। उनपर जिसका चित्त केन्द्रित हुआ हो, ऐसी अहमहमिकापूर्वक आगे बढनेवाली और सौभाग्यसे युक्त स्त्री वीरप्रजाका सृजन करती है।

(१७९) अच्युता ध्रुवाणि च्यवन्ते, अप्रशस्तान् चयते, दातिवारः ववृधे। (ऋ. १।१६७।८)

ये वीर स्थिरीभूत शत्रुओंको हिला देते हैं, अप्रशस्तोंको एक ओर हटा देते हैं और दानीपन बढा देते हैं।

(१८०) शवसः अन्तं अन्ति आरात्तात् नहि आपुः। (ऋ. १।१६७।९)

वीरोंके बलकी थाह समीप या दूरसे नहीं मिलती है।

धृष्णुना शवसा शूशुवांसः धृषता द्वेषः परि स्थुः।

शत्रुविध्वंसक, उत्साहपूर्ण बलसे वृद्धिंगत होनेवाले वीर अपनी प्रचण्ड सामर्थ्य से शत्रुओंको घेर लेते हैं।

(१८१) अद्य वयं इन्द्रस्य प्रेष्ठाः, वयं श्वः। (ऋ. १।१६७।१०)

आज हम परमपिता परमात्माके प्यारे हैं, उसी प्रकार कल भी हम प्यारे बनकर रहें।

पुरा वयं महि अनु द्यून् समर्ये वोचेमहि।

पहले से हमें बडप्पन मिले, इसलिए हरदिनके संग्राममें घोषणा करते आये हैं।

ऋभुक्षाः नरां नः अनु स्यात्।

वह प्रभु हमारी मानवजातिसें हमारे अनुकूल बने।

(१८३) यज्ञायज्ञा समना तुतुर्वणिः। (ऋ. १।१६८।१)

हर कर्ममें मनकी संतुलित दशा (सिद्धिके निकट) त्वरापूर्वक पहुँचानेवाली है।

धियंधियं देवया दधिध्वे।

हर विचारमें देवताविषयक प्रेम धारण करो।

सुविताय अवसे सुवृक्तिभिः आ ववृत्याम्।

सबकी सुस्थितिके लिए तथा सुरक्षाके लिए अच्छे मार्गोंसे वीरोंको बारबार बुलाता हूँ।

(१८४) ये स्वजाः स्वतवसः धूतयः, इषं स्वः अभिजायन्त। (ऋ. १।१६८।२)

जो स्वयंस्फूर्ति से कार्य करते हैं, अपने बलसे युक्त होते हैं और शत्रुको विचलित करा देनेकी क्षमता रखते हैं, वे धनधान्य एवं तेजस्विता पानेके लिएही उत्पन्न होते हैं।

(१८५) अंसेषु रारभे, हस्तेषु खादिः संदधे।
(ऋ. १।१६८।३)

(वीरोंके) कंधोंपर हथियार तथा हाथोंमें तलवार रहती है।

(१८६) स्वयुक्ताः दिवः अव आ ययुः।
(ऋ. १।१६८।४)

स्वयं ही सत्कर्ममें जुट जानेवाले वीर स्वर्ग से भूमंडलपर उतर पडते हैं।

अरेणवः तुविजाताः भ्राजदृष्टयः दृळ्हानि अचुच्यवुः। (ऋ. १।१६८।४)

निष्कलंक, बलिष्ठ, तेजस्वी आयुध धारण करनेवाले वीर सुदृढ शत्रुओंको भी पदभ्रष्ट कर डालते हैं।

(१८७) ऋष्टिविद्युतः इषां पुरुप्रैषाः। (ऋ. १।१६८।५)

शस्त्रों से सुशोभित दीख पडनेवाले वीर अन्नप्राप्तिके लिए बहुतही प्रेरणा करनेवाले होते हैं।

(१८९) वः सातिः रातिः अमवती स्वर्वती त्वेषा विपाका पिपिष्वती भद्रा पृथुज्रयी जज्ञती।
(ऋ. १।१६८।७)

तुम्हारी सेवा एवं देन बलवान, सुखदायक, तेजस्वी, परिपक्व, शत्रुदलका विध्वंस करनेवाली, कल्याणकारक, जयिष्णु तथा दुश्मनों से जूझनेवाली है।

(१९१) पृश्निः महते रणाय अयासां त्वेषं अनीकं असूत। (ऋ. १।१६८।८)

मातृभूमिने बडे भारी युद्धके लिए शूरोंके तेजस्वी सैन्यका सृजन किया।

सप्सरासः अभ्वं अजनयन्त।

संघ बनाकर हमले चढानेवाले वीरोंने बडी भारी एवं अनोखी शक्ति प्रकट की।

(१९३) तुराणां सुमतिं भिक्षे। (ऋ. १।१७१।१)

शीघ्रही विजयी बननेवाले वीरोंकी सद्बुद्धि की इच्छा या चाह मैं करता हूँ।

हेळः नि धत्त =

द्वेष एक ओर करो। वैरको ताकमें रख दो।

(१९५) यामः चित्रः, ऊती चित्रा। (ऋ. १।१७२।१)

वीरोंका शत्रुदलपर जो आक्रमण होता है, वह अनूठा है और उनका संरक्षण भी बडा अनोखा है।

सुदानवः अहिभानवः।

ये वीर बडे ही उत्कृष्ट दानी हैं तथा इनका तेज भी कभी नहीं घटता।

(१९७) तृणस्कन्दस्य विशः परि वृङ्क्त। (ऋ. १।१७२।३)

तिनके की नाईं अपनेआप विनष्ट होनेवाली प्रजाका विनाश न होने पाय, ऐसी आयोजना करो।

जीवसे ऊर्ध्वान् कर्त।

दीर्घकालतक जीवित रहनेके लिए उन्हें उच्चपदपर अधिष्ठित करो।

[शुनकपुत्र गृत्समद ऋषि।]

(१९८) दैव्यं शर्धः उप ब्रुवे। (ऋ. २।३०।११)

दिव्य बलकी मैं प्रशंसा करता हूँ।

सर्ववीरं अपत्यसाचं श्रुत्यं रयिं दिवे दिवे नशामहै।

सभी वीर तथा अपत्योंसे युक्त और कीर्ति प्रदान करनेवाला धन हमें प्रति दिन मिलता रहे।

(१९९) धृष्णु-ओजसः तविषीभिः अर्चिनः शुशुचानाः गाः अप अवृण्वत। (ऋ. २।३४।१)

शत्रुका पराभव करनेहारे, सामर्थ्यके कारण पूज्य बने हुए तेजस्वी वीर गौओंको (शत्रुके कारागृह से) छुडा देते हैं।

(२०१) अश्वान् उक्षन्ते, आशुभिः आजिषु तुरयन्ते।
(ऋ. २।३४।३)

वीर सैनिक घोडोंको बलिष्ठ बनाते हैं और घोडोंपर बैठकर वे युद्धोंमें त्वरापूर्वक चले जाते हैं।

हिरण्यशिप्राः समन्यवः दविध्वतः पृक्षं याथ।

स्वर्णिल शिरोवेष्टन पहननेवाले, उत्साही तथा शत्रुको विकम्पित करनेवाले वीर अन्नको प्राप्त करते हैं।

(२०२) जीरदानवः अनवभ्रराधसः वयुनेषु धूर्षदः विश्वा भुवना आ ववक्षिरे। (ऋ. २।३४।४)

शीघ्र विजयी बननेहारे, ऐसा धन समीप रखनेहारे कि जिसको कोईभी छीन नहीं सकता ऐसे वीर पुरुष सभी कर्मोंमें प्रमुख जगह बैठकर सबको आश्रय देते हैं।

(२०३) इन्धन्वभिः धेनुभिः रप्शदूधभिः आ गन्तन। (ऋ. २।३४।५)

द्योतमान और बडे बडे थनवाली गौओंके झुंडको साथ लिये हुए इधर आओ।

(२०४) धेनुं ऊधनि पिन्वत, वाजपेशसं धियं कर्त। (ऋ. २।३४।६)

गौके दूधकी मात्रा बढाओ और ऐसा कर्म करो कि अन्नसे पुष्टि पाकर सुरूपता बढे।

(२०५) इषं दात, वृजनेषु कारवे सनिं मेधां अरिष्टं दुष्टरं सहः (दात)। (ऋ. २।३४।७)

अन्नका दान करो। युद्धमें कुशलतापूर्वक कर्तव्य करनेहारेको देन, बुद्धि और विनष्ट न होनेवाली अजेय शक्तिका प्रदान करो।

(२०६) सुदानवः रुक्मवक्षसः भगे अश्वान् रथेषु आ युञ्जते, जनाय महीं इषं पिन्वते। (ऋ. २।३४।८)

उत्तम दान देनेहारे, छातीपर स्वर्णहार धारण करनेवाले वीर सैनिक ऐश्वर्यके लिये जब अपने रथोंको अश्व जोतते हैं [युद्धके लिए तैयार बनते हैं] तब जनताको विपुल अन्नका दान देते हैं।

(२०७) रिपः रक्षत, तं तपुषा चक्रिया अभि वर्तयत, अशसः वधः आ हन्तन। (ऋ. २।३४।९)

शत्रुओंसे हमारी रक्षा करो, उन शत्रुओंको तपाये हुए चक्र नामक शस्त्रसे विद्ध करो और पेटू दुश्मनका वध कर डालो।

(२०८) तत् चित्रं याम चेकिते। (ऋ. २।३४।१०)

वह अनूठा आक्रमण स्पष्ट रूपसे दीख पडता है।

आपयः पृश्न्याः ऊधः दुहुः।

मित्र गौके थनका दोहन करते हैं [और उस दूधका पान करते हैं।]

(२११) क्षोणीभिः अरुणेभिः अञ्जिभिः ऋतस्य सदनेषु ववृधुः, अत्यन पाजसा सुचन्द्रं सुपेशसं वर्णं दधिरे। (ऋ. २।३४।१३)

केसरिया वरदी पहने हुए वीर यज्ञमंडपमें सम्मानपूर्वक बैठते हैं और अपने विशेष बलसे सुन्दर छवि धारण कर लेते हैं [अर्थात् सुहाने लगते हैं।]

(२१२) अवरान् चक्रिया अवसे अभिष्टये आ ववर्तत्। (ऋ. २।३४।१४)

श्रेष्ठ वीरोंको क्रमसे रक्षणार्थ और अभीष्ट कर्मकी पूर्तिके लिए समीप लाता हूँ।

ऊतये महि वरूथं इयानः।

अपने रक्षणके लिए वीर बडे स्थान या गृहको प्राप्त होता है।

(२१३) अंहः अति पारयथ, निदः मुञ्चथ, ऊतिः अर्वाची सुमतिः ओ सु जिगातु। (ऋ.२।३४।१५)

पापसे बचाओ, निन्दासे छुडाओ। संरक्षण तथा सुबुद्धि हमारे निकट आ पहुँचे।

[गाथिपुत्र विश्वामित्र ऋषि।]

(२१४) वाजाः तविषीभिः प्र यन्तु, शुभे संमिश्लाः पृषतीः अयुक्षत, अदाभ्याः विश्ववेदसः बृहदुक्षः पर्वतान् प्र वेपयन्ति। (ऋ. ३।२६।४)

बलिष्ठ वीर अपने बलोंके साथ शत्रुदलपर चढाई करें; लोककल्याणके लिए इकट्ठे होकर वे अपने घोडोंको रथमें जोत दें (वे तैयार हों।) न दबनेवाले वे वीर सब धनों एवं बलोंसे युक्त हो पर्वततुल्य स्थिर शत्रुओंकोभी कँपा देते हैं।

(२१५) वयं उग्रं त्वेषं अवः आ ईमहे। (ऋ.३।२६।५)

हम उग्र, तेजस्वी संरक्षक सामर्थ्यकी इच्छा करते हैं।

ते वर्षनिर्णिजः स्वानिनः सुदानवः।

वे वीर स्वदेशी वरदी पहननेवाले हैं और बडे भारी वक्ता तथा विख्यात दानी हैं।

(२१६) गणं-गणं व्रातं-व्रातं भामं ओजः ईमहे। (ऋ. ३।२६।६)

हर वीरसमुदायमें सात्विक बल तथा ओज पनपने लगे यही हमारी चाह है।

अनवभ्रराधसः धीराः विदथेषु गन्तारः।

जिनका धन कोईभी छीन नहीं सकता, ऐसे ये वीर रणभूमिमें जानेवाले ही हैं।

[अत्रिपुत्र श्यावाश्व ऋषि।]

(२१७) यज्ञियाः धृष्णुया अनुष्वधं अद्रोघं श्रवः मदन्ति (ऋ. ५।५२।१)

पूजनीय वीर, शत्रुदलका पराभव करनेहारी शक्तिसे युक्त होकर, वैरभावरहित वश पाकर प्रसन्नचेता हो जाते हैं।

(२१८) ते धृष्णुया स्थिरस्य शवसः सखायः सन्ति। (ऋ. ५।५२।२)

वे वीर शत्रुदलकी धज्जियाँ उडानेवाले तथा स्थायी बलके सहायक हैं।

ते यामन् शश्वतः धृषद्विनः त्मना आ पान्ति।

वे शत्रुपर आक्रमण करते समय शाश्वत विजयी सामर्थ्य से स्वयं ही चारों ओर रक्षाका प्रबंध करते हैं।

(२१९) ते स्पन्द्रासः उक्षणः शर्वरीः अति स्कन्दन्ति। (ऋ. ५।५२।३)

वे शत्रुदलको मारे डरके स्पन्दित करनेवाले तथा बलिष्ठ हैं और वीरताके कारण रात्रीके समय भी दुश्मनोंपर धावा कर देते हैं।

महः मन्महे।

हम वीरोंके तेजका मनन करते हैं।

(२२०) विश्वे मानुषा युगा मर्त्यं रिषः पान्ति, धृष्णुया स्तोमं दधीमहि। (ऋ. ५।५२।४)

सभी वीर मानवी स्पर्धाओंमें शत्रुओं से मानवोंको सुरक्षित रखते हैं, इसीलिए हम उन वीरोंके शौर्यपूर्ण काव्य स्मरणमें रखते हैं।

(२२१) अर्हन्तः सुदानवः असामिशवसः दिवः नरः। (ऋ. ५।५२।५)

पूजनीय, दानशूर तथा संपूर्णतया बलिष्ठ वीर तो सच-मुच स्वर्गके नेता वीर हैं।

(२२२) रुक्मैः युधा ऋष्वाः नरः ऋष्टीः एनान् असृक्षत, भानुः त्मना अर्त। (ऋ. ५।५२।६)

हारों तथा शुद्ध शक्तिओंसे विभूषित बडे भारी नेता वीर अपने शस्त्र इन शत्रुओंपर छोडते हैं, तब उनका तेज स्वयं ही उनके निकट चला जाता है। [वे तेजस्वी दीख पडते हैं।]

(२२४) सत्यशवसं ऋभ्वसं शर्धः उच्छंस, स्पन्द्राः नरः शुभे त्मना प्रयुञ्जत। (ऋ. ५।५२।८)

सत्य बल से युक्त, आक्रामक सामर्थ्यकी सराहना करो। शत्रुको विकम्पित करनेवाले ये वीर अच्छे कर्मोंमें स्वयंही जुट जाते हैं।

(२२५) रथानां पव्या ओजसा अद्रिं भिन्दन्ति। (ऋ. ५।५२।९)

अपने रथके पहियों से तीव्रतापूर्वक पर्वतकोभी छिन्न-विच्छिन्न कर डालते हैं।

(२२६) आपथयः विपथयः अन्तःपथाः अनुपथाः विस्तारः यज्ञं ओहते। (ऋ. ५।५२।१०)

समीपवर्ती, विरोधी, गुप्त तथा अनुकूल इत्यादि विभिन्न मार्गोंसे प्रयाण करनेवाले वीर अपना दल विस्तृत करके शुभ कर्मके लिए अन्नका वहन करते हैं।

(२२७) नरः नियुतः परावतः ओहते, चित्रा रूपाणि दर्श्या। (ऋ. ५।५२।११)

नेता वीर समीप या दूर रहकर यज्ञके लिए अन्न ढोकर लाते हैं, उस समय उनके अनेक रूप बडेही दर्शनीय दीख पडते हैं।

(२२८) कुभन्यवः उत्सं आनृतुः, ऊमाः दशि त्विषे आसन्। (ऋ. ५।५२।१२)

मातृभूमिकी पूजा करनेहारे वीर जलाशयोंका सृजन करते हैं; वे संरक्षक वीर आँखोंको चौंधियाते हैं।

(२२९) ये ऋष्वाः ऋष्टिविद्युतः कवयः वेधसः सन्ति, नमस्य, गिरा रमय। (ऋ. ५।५२।१३)

जो वीर बडे तेजस्वी आयुध धारण करनेहारे, ज्ञानी तथा कवि हैं, उनका अभिवादन या नमन करना और अपनी वाणी से उन्हें हर्षित रखना चाहिए।

(२३०) ओजसा धृष्णवः धीभिः स्तुताः। (ऋ. ५।५२।१४)

अपनी सामर्थ्यसे शत्रुका विनाश करनेहारे वीर बुद्धि-पूर्वक प्रशंसित होनेयोग्य हैं।

(२३१) एना देवान् अच्छ सूरिभिः यामश्रुतेभिः अञ्जिभिः दाना सचेत। (ऋ. ५।५२।१५)

इन दैवी वीरोंके समीप ज्ञानी तथा आक्रमणकी वेलामें विख्यात और गणवेश से विभूषित वीर दान लेकर पहुँ-चते हैं।

(२३२) गां पृश्निं मातरं प्रवोचन्त। (ऋ. ५।५२।१६)

वे वीर कह चुके हैं कि, गौ तथा भूमि हमारी माता है।

(२३३) श्रुतं गव्यं राधः, अश्व्यं राधः निमृजे। (ऋ. ५।५२।१७)

विख्यात गोधन तथा अश्वधनको भली भाँति धोकर सुस्वच्छ रखता हूँ।

(२३६) मर्याः अरेपसः नरः पश्यन् स्तुहि।

(ऋ ५।५२।११)

इन मानवी निर्दोष वीरोंको देखकर प्रशंसा करो।

(२३७) स्वभानवः अञ्जिषु वाजिषु स्रक्षु रुक्मेषु खादिषु रथेषु धन्वसु आयाः (ऋ. ५।५३।४)

तेजस्वी वीर गणवेश पहनकर चोगे, माला, हार, अलंकार, रथ एवं धनुष्यका आश्रय करते हैं।

(२३८) नरिदानवः मुदे रथान् अनुदधे।

(ऋ. ५।५३।५)

त्वरित विजयी दानवेहारे वीर आनन्दके लिए रथोंपर बैठते हैं।

(२३९) सुदानवः नरः दाशुषे यं कोशं आ अचुच्यवुः, धन्वना अनुयन्ति। (ऋ. ५।५३।६)

दानी एवं नेता वीर उदार पुरुष के लिए जो धनभाण्डार भरकर लाते हैं, इसलिए दान के अनुसारी बनकर प्रयाण करते हैं।

(२४४) शर्धं शर्धं व्रातं-व्रातं गणं-गणं सुशस्तिभिः धीतिभिः अनुक्रामेम (ऋ. ५।५३।११)

प्रत्येक सेनाके विभागके साथ उनके अनुक्रमानुसार मले विचारों से युक्त होकर हम क्रमशः चलते हैं।

(२४६) तोकाय तनयाय अक्षितं धान्यं बीजं वहध्वे, विश्वायु सौभगं अस्मभ्यं धत्तन। (ऋ. ५।५३।१३)

बालबच्चोंके लिए नष्ट न होनेवाला धान्य तुम लाओ और दीर्घ जीवन तथा सौभाग्य हमें प्रदान करो।

(२४७) स्वस्तिभिः अवद्यं हित्वा, अरातीः तिरः निदः अतीयाम, योः शं उस्रि भेषजं सह स्याम।

(ऋ. ५।५३।१४)

कल्याणकारक साधनोंसे दोष दूर करके शत्रुओं तथा गुप्त निन्दकों को दूर हटा दें और दुष्टतासे दावे जानेवाला शांतियुक्त एवं तेजस्विता बढानेवाला औषध हम प्राप्त करें।

(२४८) यं त्रायध्वे, सः मर्त्यः सुदेवः समह, सुवीरः असति। (ऋ. ५।५३।१५)

वे वीर जिसका संरक्षण करते हैं, वह अत्यन्त तेजस्वी, महत्त्वयुक्त वीर बन जाता है।

ते स्याम= हम प्रभुके प्यारे हों

(२४९) पूर्वान् कामिनः सखीन् ह्वय। (ऋ. ५।५३।१६)

पहलेसे परिचित प्रिय मित्रोंको हम अपने समीप बुलाते हैं।

(२५०) स्वभानवे शर्धाय वाचं प्र अनज।

सुम्नभवसे महि नृम्णं आर्चत (ऋ. ५।५४।१)

तेजस्वी बलका वर्णन करो और तेजस्वी यश पानेवाले वीरोंको बड़ी भारी देन देकर उनका सत्कार करो।

(२५१) त्विषाः वयोवृधः अश्वयुजः परिज्रयः।

(ऋ ५।५४।२)

बलिष्ठ, बलोयुक्त एवं घोडोंको रथोंमें जोतनेवाले वीर चारों ओर संचार करते हैं।

(२५२) नरः अश्मदिद्यवः पर्वतच्युतः ह्रादुनिवृतः स्तनयदमाः रभसा उदोजसः मुहुः चित्।

(ऋ. ५।५४।३)

हथियारोंसे चमकनेवाले वीर नेता पर्वतोंकोभी हिलानेवाले तथा वज्रोंसे युक्त और वर्णनीय सामर्थ्यसे पूर्ण एवं वेगवान हैं इसलिए विशेष बलिष्ठ होकर बारबार हमले करते हैं।

(२५३) धूतयः शिकसः यत् अक्तून् अहानि अन्तरिक्षं रजांसि अज्रान् दुर्गाणि वि, न रिष्यथ।

(ऋ. ५।५४।४)

शत्रुओंको हिलानेवाले वीर बलवान हो जब रातदिन अन्तरिक्ष, धूलिमय भूविभाग एवं बीहड स्थलोंमें से चले जाते हैं, तब वे थकावटकी अनुभूति न लें। [इतनी शक्ति उनमें बढ जाए।]

(२५४) तत् योजनं वीर्यं दीर्घं महित्वनं ततान, यत् यामे अगृभीतशोचिषः अनश्वदां गिरिं नि अयातन।

(ऋ. ५।५४।५)

तुम्हारी आयोजना, पराक्रम, बडा भारी पौरुष बहुतही फैल चुका है, जब तुम शत्रुपर चढाई करते हो, उस वक्त तुम्हारा तेज घटता नहीं, किन्तु बिना घोडेपर बैठकर जाना भी दूभर प्रतीत हो उधर भी, विकट पहाडपरभी तुम आक्रमण करही डालते हो।

(२५५) शर्धः अभ्राजि, अरमतिं अनु नेषथ।

(ऋ. ५।५४।६)

तुम्हारा बल विशोभित हो उठा है, आराम न करते हुए

तुम अनुकूल मार्गसे अपने अनुयायियोंको ले चलो।

(२५६) यं सुषूदथ स न जीयते, न हन्यते, न स्रेधति, न व्यथते, न रिष्यति। (ऋ. ५।५४।७)

वीर जिनको सहायता पहुँचाते हैं, वह न पराजित होता है, न किसी से मारा ही जाता है, न विनष्ट होता है, न दुःखी बनता है और न क्षीणभी होता है।

(२५७) ग्रामजितः नरः इनासः अस्वरन्।

(ऋ. ५।५४।८)

शत्रुके दुर्गोंको जीतकर अपने अधीन करनेवाले वीर जब वेगसे दुश्मनोंपर चढाई कर डालते हैं, तब वे बडी भारी गर्जना करते हैं।

(२५८) इयं पृथिवी अन्तरिक्ष्याः पथ्याः प्रवत्वतीः।

(ऋ. ५।५४।९)

वीरोंके लिए इस पृथ्वीपरके तथा अन्तरिक्षके मार्ग सरल होते जाते हैं।

(२५९) सभरसः स्वर्नरः सूर्ये उदिते मदथ. सिषतः अश्वाः न श्रथयन्त, सद्यः अध्वनः पारं अश्नुथ।

(ऋ. ५।५४।१०)

बलिष्ठ वीर सूर्योदय होनेपर प्रसन्न होते हैं। इनके दौडनेवाले घोडे जबतक थक नहीं जाते, तभीतक वे अपने स्थानपर पहुँच जायँ।

(२६०) अंसेषु ऋष्टयः; पत्सु खादयः, वक्षःसु रुक्मा, गभस्त्योः विद्युतः शीर्षसु शिप्राः। (ऋ. ५।५४।११)

वीर सैनिकोंके कंधोंपर भाले, पैरोंमें तोड वक्षस्थलपर सुवर्णहार, हाथोंमें तलवार और मस्तकपर शिरोवेष्टन विद्यमान हैं।

(२६१) अगृभीतशोचिषं रुशत् पिप्पलं विधूनुथ, वृजना समच्यन्त, अतित्विषन्त (ऋ. ५।५४।१२)

अत्यन्त तेजस्वी, परिपक्व फलको वृक्ष हिलाकर प्राप्त करो, (प्रयत्नपूर्वक फल पा जाओ) बलोंका संग्रह करो और तेजस्वी बनो।

(२६२) रथ्यः वयस्वन्तः रायः स्याम, न युच्छति सहस्रिणं ररन्त। (ऋ. ५।५४।१३)

हमारे मार्ग अन्न तथा धनोंसे युक्त हों; न नष्ट होनेवाला हजारोंगुना धन दे दो।

(२६३) यूयं स्पार्हवीरं रयिं, सामविप्रं ऋषिं अवथ; भरताय अर्वन्तं वाजं, राजानं श्रुष्टिमन्तं धत्थ।

(ऋ. ५।५४।१४)

सामगायन करनेवाले तत्वज्ञानीकी रक्षा करो, लोगोंके पोषणकर्ताको घोडे देकर पर्याप्त अन्नभी दे दो और इसी प्रकार नरेशको वैभवशाली बना दो।

(२६४) तद् द्रविणं यामि, येन नॄन् अभि ततनाम।

(ऋ. ५।५४।१५)

वह धन चाहिए, जो सभी लोगोंमें विभक्त किया जा सके।

(२६५) भ्राजदृष्टयः रुक्मवक्षसः बृहत् वयः दधिरे, सुयमेभिः आशुभिः अश्वैः यान्ते। (ऋ. ५।५५।१)

चमकीले हथियार धारण करनेहारे और वक्षस्थलपर स्वर्णमुद्रा रखनेवाले वीर बहुतसा अन्न समीप रखते हैं और भली भाँति सिखाये हुए घोडोंपर बैठकर जाते हैं।

रथाः शुभं यातां अनु अवृत्सत।

तुम्हारे रथ शुभ कार्य के लिए जानेवालोंके मार्गोंका अनुसरण करें।

(२६६) यथा विद. स्वयं तविषीं दधिध्वे. महान्तः उर्विया बृहत् विराजथ। (ऋ. ५।५५।२)

चूँकि तुम ज्ञान पाकर स्वयंही बलका धारण करते हो, अतः तुम सचमुच बडे हो और अपनी मातृभूमिकी सेवा के लिए जागृत रहकर बहुत ही सुहाते हो।

(२६७) शुभ्राः साकं जाताः साकं उक्षिताः नरः श्रिये प्रतरं वावृधुः। (ऋ. ५।५५।३)

उज्ज्वल कुलीन, संघमें रहकर सामुदायिक ढंगसे अपना बल प्रकट करनेहारे वीर सबकी प्रगतिके लिएही अपनी शक्ति बढाते हैं।

(२६८) वः महित्वनं आभूषेण्यं, तस्मात् अमृतत्वे दधातन। (ऋ. ५।५५।४)

तुम्हारा बडप्पन तुम्हारे लिए भूषणावह है, हमें सुखमें रखो।

(२७०) यत् अश्वान् धूर्षु अयुग्ध्वं हिरण्ययान् अत्कान् प्रत्यमुग्ध्वं विश्वाः स्पृधः वि अस्यथ। (ऋ. ५।५५।६)

जब तुम घोडोंको रथके अग्रभागोंमें जोतते हो और अपने सुवर्ण कवचोंको पहनते हो, तब तुम समूचे शत्रुओंको दूर भगा देते हो।

(२७१) वः पर्वताः नद्यः च न वरन्त, यत्र अचिध्वं तत् गच्छथ. द्यावापृथिवी परि याथन।

(ऋ. ५।५५।७)

*

तुम वीरोंके मार्गमें पहाड या नदियाँ रुकावट नहीं डाल सकती हैं। जिधर तुम्हें चढाई करनी हो, उधर मजेमें चले जाओ। आकाशसे ले भूमितक सब चाहे उधर तुम घूमते चलो।

(२७२) पूर्वं, नूतनं, यत् उद्यते, शस्यते, तस्य नवेदसः भवथ। (ऋ. ५।५५।८)

जो कुछभी बढिया और सराहनीय है, चाहे वह पुराना या नया हो, तुम उससे ठीक ठीक परिचित रहो।

(२७३) असस्र्यं बहुलं शर्म वियन्तन. नः मृळत।
(ऋ. ५।५५।९)

हमें बहुत सुख दे दो और हमें आनन्दित करो।

(२७४) यूयं अस्मान् अंहतिभ्यः वस्यः अच्छ निः नयत। वयं रयीणां पतयः स्याम (ऋ. ५।५५।१०)

हमें दुर्दशासे छुडानेके लिए तुम, उपनिवेश बसाने योग्य स्थल की ओर हमें ले चलो और ऐसा प्रबंध करो कि, हम धनके अधिपति हों।

(२७५) शर्धन्तं रुक्मेभिः अञ्जिभिः पिष्टं गणं अद्य विशः अव ह्वय। (ऋ. ५।५६।१)

शत्रुध्वंसक और आभूषणोंसे अलंकृत वीरोंके दलको प्रजाके हितके लिए इधर बुलाओ।

(२७६) आशसः भीमसंदृशः हृदा वर्ध।
(ऋ. ५।५६।२)

प्रशंसाके योग्य और भीषण शरीरवाले इन वीरोंको अंतःकरणपूर्वक वृद्धिंगत करो, [ऐसे भीमकाय तथा सराहनीय वीर जिस प्रकार बढने लगें, ऐसी लगन से व्यवस्था करो।]

(२७७) मीळ्हुष्मती पराहता मदन्ती अस्मत् आ एति। (ऋ. ५।५६।३)

स्नेहयुक्त और जिसे शत्रु पराभूत नहीं कर सके, ऐसी वह सेना सहर्ष हमारी ओरही बढती चली आ रही है।

वः अमः शिमीवान् दुध्रः भीमयुः।

तुम्हारा बल भीषण है, क्योंकि कार्यकुशल शत्रु भी तुम्हें घेर नहीं सकते।

(२७८) ये ओजसा यामभिः अश्मानं गिरिं स्वर्यं पर्वतं प्र च्यावयन्ति। (ऋ. ५।५६।४)

जो वीर अपने सामर्थ्य से आक्रमण करके पथरीले और अस्मानको छूनेवाले पहाडोंको तोड देते हैं।

(२७९) समुक्षितानां एषां पुरुतमं अपूर्व्यं ह्वये।
(ऋ. ५।५६।५)

इकट्ठे बढे हुए इन वीरोंके इस बडे अपूर्व दलकी मैं सराहना करता हूँ।

(२८०) रथे अरुषीः, रथेषु रोहितः आजिरा वहिष्ठा हरी वोळ्हवे धुरि युञ्ज्ध्वम्। (ऋ. ५।५६।६)

तुम रथमें लाल रंगवाली हिरनियाँ, रथोंमें कृष्णसार और वेगवान, खींचनेकी क्षमता रखनेवाले घोडे रथ ढोनेके लिए रथमें जोतते हो।

(२८१) अरुषः तुविस्वनिः दर्शतः वाजी इह धायि स्म वः यामेषु चिरं मा करत्, तं रथेषु प्रचोदत।
(ऋ. ५।५६।७)

रक्तवर्णका, हिनहिनानेवाला सुन्दर घोडा यहाँपर जोत रखा है। अब आक्रमण करनेमें देरी न करो, रथमें बैठकर उसे हाँकना शुरु करो।

(२८२) यस्मिन् सुरणानि, श्रवस्युं रथं वयं आ हुवामहे। (ऋ. ५।५६।८)

जिसमें रमणीय वस्तुएँ रखी हैं ऐसे यशस्वी रथकी सराहना हम कर रहे हैं।

(२८३) यस्मिन् सुजाता सुभगा मीळ्हुषी महीयते, तं वः रथेशुभं त्वेषं पनस्युं शर्धं आहुवे।
(ऋ. ५।५६।९)

जिसमें अच्छे भाग्ययुक्त तथा प्रशंसनीय शक्तिका महत्त्व प्रकट होता है, उस तुम्हारे रथमें शोभायमान, तेजस्वी, स्तुत्य बलकी मैं सराहना करता हूँ।

(२८४) सजोषसः हिरण्यरथाः सुविताय आगन्तन
(ऋ. ५।५७।१)

तुम एकही ख्यालसे प्रभावित होकर और सुवर्णके रथमें बैठकर हमारा हित करनेके लिए इधर पधारो।

(२८५) पृश्निमातरः वाशीमन्तः ऋष्टिमन्तः मनीषिणः सुधन्वानः इषुमन्तः निषङ्गिणः स्वश्वाः सुरथाः सु-आयुधाः शुभं वियाथन। (ऋ. ५।५७।२)

भूमिको माताकी नाईं आदरपूर्वक देखनेहारे वीर कुठार तथा भाले लेकर, मननशील बनकर, बढिया धनुष्यबाण एवं तूणीर साथमें लेकर उत्कृष्ट घोडे, रथ और हथियार धारण कर जनताका हित करनेके लिए चले जाते हैं।

(२८६) वसु दाशुषे पर्वतान् धूनुथ। वः यामनः भिया वना निजिहीते। यत् शुभे उग्राः पृषतीः अयुग्ध्वं, पृथिवीं कोपयथ। (ऋ. ५।५७।३)

उदार मानवोंको धन देनेके लिए तुम पहाडोंतक को हिला देते हो, तुम्हारी चढाईके भय से वन काँपने लगते हैं, जब कल्याण करनेके लिए तुम जैसे शूर वीर अपने रथको धब्बेवाली हिरनियाँ जोड देते हो, तब समूची पृथ्वी बौखला उठती है।

(२८७) वाततिवषः सुसदृशः सुपेशसः पिशङ्गाश्वाः अरुणाश्वाः अरेपसः प्रत्वक्षसः महिना उरवः। (ऋ. ५।५७।४)

तेजस्वी, समान रूपवाले, आकर्षक रूपवाले, भूरे और कालिमामय घोडे रखनेवाले, दोषरहित तथा शत्रुको विनष्ट करनेवाले वीर अपने महात्म्यसे बहुत बढे हैं।

(२८८) अञ्जिमन्तः सुदानवः त्वेष-संदृशः अनवभ्रराधसः जनुषा सुजातासः रुक्मवक्षसः अर्काः अमृतं नाम भेजिरे। (ऋ. ५।५७।५)

गणवेश पहनकर उदार, तेजस्वी, धन सुरक्षित रखनेवाले, कुलीन परिवारमें पैदा हुए, गलेमें स्वर्णमुद्रानिर्मित हार डाले हुए, सूर्यतुल्य तेजस्वी प्रतीत होनेवाले वीर अमर यश पाते हैं।

(२८९) वः अंसयोः ऋष्टयः, बाह्वोः सहः ओजः बलं अधिहितं, शीर्षसु नृम्णा, रथेषु विश्वा आयुधा, तनूषु श्रीः अधि पिपिशे। (ऋ. ५।५७।६)

तुम्हारे कधोंपर भाले, बाँहोंमें बल, सरपर साफे, रथोंमें सभी आयुध और शरीरपर शोभा है।

(२९०) गोमत् अश्ववत् रथवत् सुवीरं चन्द्रवत् राधः नः दद, नः प्रशस्तिं कृणुत, वः अवसः भक्षीय। (ऋ. ५।५७।७)

गौओं, घोडों, रथों, वीरपुरुषों से युक्त और विपुल सुवर्ण से पूर्ण अन्न हमें दो, हमारे वैभवको बढाओ और तुम्हारा संरक्षण हमें मिलता रहे।

(२९१) तुविमघासः ऋतज्ञाः सत्यश्रुतः कवयः युवानः बृहद्गिरयः बृहदुक्षमाणाः। (ऋ. ५।५७।८)

बहुत ऐश्वर्यवाले, सत्य जाननेहारे, ज्ञानी, युवक तथा बढ़मान बनो।

(२९२) स्वराजः आशुअश्वाः अमवत् वहन्ते, उत अमृतस्य ईशिरे, एषां नव्यसीनां तविषीमन्तं गणं स्तुषे। (ऋ. ५।५८।१)

स्वयंशासक होते हुए ये वीर जल्द जानेवाले घोडोंपर चढकर या ऐसे घोडे जोतकर वेगपूर्वक प्रयाण करते हैं, अमरपन पाते हैं। इनके स्तुत्य और बलवान संघकी स्तुति करता हूँ।

(२९३) ये मयोभुवः, महित्वा अमिताः तुविराधसः नूनं तवसं खादिहस्तं धुनिव्रतं मायिनं दातिवारं त्वेषं गणं वंदस्व। (ऋ. ५।५८।२)

सुख देनेहारे, जिनका बडप्पन असीम हो ऐसे, सिद्धि पानेवाले वीर हैं उनके बलिष्ट, आभूषणयुक्त, शत्रुको हिला देनेवाले, कुशल, उदार, तेजस्वी संघको प्रणाम करो।

(२९५) यूयं जनाय इर्यं विभ्वतष्टं राजानं जनयथ युष्मत् मुष्टिहा बाहुजूतः एति। युष्मत् सदश्वः सुवीरः एति। (ऋ. ५।५८।४)

तुम जनताके लिए ऐसे नरेशका सृजन करते हो, जो बडे बडे प्रगतिशील कार्य करनेका आदी बने। तुम जैसे वीरोंमें से ही विशेष बाहुबलसे युक्त मुष्टियोद्धा (Boxer) शूर, विख्यात हो उठता है और तुममें से ही अच्छे घोडोंको समीप रखनेवाला श्रेष्ठ वीर जनताके सम्मुख आ उपस्थित होता है।

(२९६) अचरमाः अकवाः उपमासः रभिष्ठाः पृश्नेः पुत्राः स्वया मत्या सं मिमिक्षुः। (ऋ. ५।५८।५)

समान दशामें रहनेवाले अवर्णनीय, समान कदवाले, वेगशाली और मातृभूमिके सुपुत्र होते हुए ये वीर अपने विचारोंसेही परस्पर मेलसे बर्ताव रखते हैं।

(२९७) यत् पृषतीभिः अश्वैः वीळुपविभिः रथेभिः प्रायासिष्ट, आपः क्षोदन्ते, वनानि रिणते, द्यौः अवक्रन्दतु। (ऋ. ५।५८।६)

जब धब्बेवाले घोडे जोतकर सुदृढ पहियोंसे युक्त रथोंमें आरूढ हो तुम आक्रमण शुरू करते हो, उस समय पानीमें भारी खलबली हो जाती है, वन विनष्ट होते हैं और आकाशभी दहाडने लगता है।

(२९८) एषां यामन् पृथिवी प्रथिष्ट, स्वं शवः धुः, अश्वान् धुरि आयुयुज्रे। (ऋ. ५।५८।७)

इनके आक्रमणोंके फलस्वरूप मातृभूमिकी ख्याति तथा प्रसिद्धि हो चुकी या भूमि समतल हो गयी। उनका बल प्रकट हुआ और इनके चढानेके समय उन्होंने अपने घोडे रथोंमें जोते थे।

(३००) सुवितीय दावने प्र अक्रन्, पृथिव्यै ऋतं प्रभरे, अश्वान् उक्षन्ते, रजः आ तरुपन्ते, स्वं भानुं अर्णवैः अनुश्रथयन्ते। (ऋ. ५।५९।१)

सबका हित तथा सबकी मदद करने के लिए इस कार्यका प्रारंभ हो चुका है। मातृभूमिका स्तोत्र पढो, घोडे जोत रखो, अन्तरिक्षमेंसे दूर चले जाओ और अपना तेज समुद्र यात्राओंसे चारों ओर फैलाओ।

(३०१) एषां अमात् भियसा भूमिः एजति। दूरेदृशः ये एमभिः चितयन्ते ते नरः विदथे अन्तः महे येतिरे (ऋ. ५।५९।२)

इन वीरोंके बलसे उत्पन्न भयाकुल भावसे भूमण्डल थर्रा उठता है। जो दूरदर्शी वीर अपने वेगोंसे पहचाने जाते हैं, वे युद्धोंमें महत्त्व पानेके लिए प्रयत्न करते रहते हैं।

(३०२) रजसः विसर्जने सुभ्वः श्रियसे चेतथ। (ऋ. ५।५९।३)

अँधेरा दूर करनेके लिए अच्छे वीर बनकर ये ऐश्वर्य तथा वैभव बढानेके लिए प्रयत्नशील बनते हैं।

(३०३) सुवितीय दावने प्रभरध्वे, यूयं भूमिं रेजथ। (ऋ. ५।५९।४)

अच्छे ऐश्वर्यका दान करनेके लिए तुम उसे बटोरते हो। इसलिए तुम पृथ्वीकोभी विचलित कर डालते हो।

(३०४) सबन्धवः प्रबुधः प्रयुयुधुः। नरः सुवृधः वधृधुः। (ऋ. ५।५९।५)

परस्पर भ्रातृभावसे रहकर बडे अच्छे योद्धा लडाईमें निरत होते हैं और ये नेता हमेशा बढते रहते हैं।

(३०५) ते अज्येष्ठाः अकनिष्ठासः अमध्यमासः उद्भिदः महसा विवावृधुः। जनुषा सुजातासः पृश्निमातरः दिवः मर्याः नः अच्छ आजिगातन। (ऋ. ५।५९।६)

इन वीरोंमें कोईभी श्रेष्ठ नहीं है, कोई निचले दर्जेका नहीं और न कोई मँझली श्रेणीका है। उन्नतिके लिए संकटोंके जालको तोडनेवाले ये वीर अपने अन्दर विद्यमान महत्त्वसे बढते हैं; कुलीन परिवारमें उत्पन्न और मातृभूमिकी उपासना करनेवाले दिव्य मानव हमारे समीप आकर निवास करें।

(३०६) ये श्रेणीः ओजसा अन्तान् बृहतः सानुनः परिपप्नुः। एषां अश्वासः पर्वतस्य नभनून् प्रासुच्यवुः। (ऋ. ५।५९।७)

ये वीर कतारमें रहकर वेगपूर्वक पृथ्वीके दूसरे छोरतक या बडे बडे पहाडोंपरभी चले जाते हैं। इनके घोडे पहाडकेभी टुकडे कर डालते हैं।

(३०७) एते दिव्यं कोशं आचुच्यवुः। (ऋ. ५।५९।८)

ये वीर दिव्य भाण्डारको चारों ओर उण्डेल देते हैं, माने सारे धनका विभजन चतुर्दिक् कर देते हैं, ताकि कहींभी विषमता न रहे।

(३०८) ये एकएकः परमस्याः परावतः आयय। (ऋ. ५।६१।१)

ये वीर अकेलेही अत्यन्त सुदूरवर्ती प्रदेशोंसे चले आते हैं।

(३१०) एषां जघने चोदः, नरः सक्थानि वियमुः। (ऋ. ५।६१।३)

जब इन घोडोंकी जंघापर चाबुक लगता है (तब वे अपनी जाँघें तानने लगते हैं) परन्तु ऊपर बैठनेवाले वीर उनका विशेष नियमन करते हैं, (उन घोडोंको अपनी जांघोंसे पकड रखते हैं)।

(३१२) ये आशुभिः वहन्ते, अत्र श्रवांसि दधिरे। (ऋ. ५।६१।११)

जो वीर घोडोंपर चढकर शीघ्र शत्रुओंपर हमला कर देते हैं, वे बहुत संपत्ति धारण करते हैं।

(३१३) श्रिया रथेषु आ विभ्राजन्ते। (ऋ. ५।६१।१२)

ये वीर अपनी सुषमासे रथोंमें चारों ओर चमकते रहते हैं।

(३१४) सः गणः युवा त्वेषरथः, अनेद्यः, शुभंयावा, अप्रतिष्कुतः। (ऋ. ५।६१।१३)

यह वीरोंका संघ नवयौवनसे पूर्ण, तेजस्वी और आभामय रथमें बैठनेवाला, अनिंदनीय, अच्छे कार्यके लिए हलचल करनेवाला तथा सदैव विजयी है।

(३१५) धूतयः ऋतजाताः अरेपसः यत्र मदन्ति कः वेद ? (ऋ. ५।६१।१४)

शत्रुको हिला देनेवाले, सत्यके लिए सचेष्ट निष्पाप वीर किस जगह सहर्ष रहते हैं, भला कोई कह सकता हैं ? या कोई जान लेता है ?

(३१६) यूयं इत्था मर्तं प्रणेतारः यामहूतिषु धिया, श्रोतारः। (ऋ. ५।६१।१५)

तुम इस भाँति मानवोंको ठीक राहसे ले चलनेवाले हो। अतः हमला करते समय अगर तुम्हें पुकारा जाय, तो तुम जानबूझकर उधर ध्यान दो।

(३१७) रिशादसः काम्या वसूनि नः आववृत्तन।

(ऋ. ५।६१।१६)

शत्रुविनाशकर्ता तुम वीर हमें अभीष्ट धन लौटा दो।

[अत्रिपुत्र एवयामरुत् ऋषि।]

(३१८) वः मतयः महे विष्णवे प्रयन्तु।

(ऋ. ५।८७।१)

तुम्हारी बुद्धियाँ बडे भारी व्यापक देवकी ओर प्रवृत्त हों।

तवसे धुनिव्रताय शवसे शर्धाय प्रयन्तु।

जिसने व्रत किया हो कि, मैं बलिष्ठ शत्रुओंको हिलाकर खदेड दूँगा ऐसे वीरके वेगपूर्ण सामर्थ्यका वर्णन करनेके लिए तुम्हारी वाणियाँ प्रवृत्त हों।

(३१९) ये महिना प्रजाताः, ये च स्वयं विद्मना प्र जाताः, (तेषां) तत् शवः क्रत्वा न आधृषे, महा अधृष्टासः। (ऋ. ५।८७।२)

जो वीर महत्त्वके कारण प्रसिद्ध हुए हैं, अपने ज्ञानसे विख्यात हुए हैं। उनके बडे पराक्रमके कारण उनके बलको कोई परास्त नहीं कर सकता है और अपने अन्दर विद्यमान महत्त्वके कारण शत्रु उनपर हमले करनेका साहस नहीं कर सकते।

(३२०) सुशुक्वानः सुभ्वः, येषां सधस्थे ईरी न आ ईषे, अग्नयः न स्वविद्युतः धुनीनां प्र स्पन्द्रासः।

(ऋ. ५।८७।३)

जो वीर अत्यन्त तेजस्वी एवं बडे हैं, उनके घरमें (अपने क्षेत्रमें) उनपर अधिकार प्रस्थापित करनेवाला कोई नहीं। जो अग्नितुल्य तेजस्वी हैं और अपने तेजसे मारक शत्रुओंको भी हिलाकर गिरा देते हैं।

(३२१) सः समानस्मात् सदसः निःचक्रमे, विमहसः शेवृधः विस्पर्धसः जिगाति। (ऋ. ५।८७।४)

वह वीरोंका संघ अपने समान निवासस्थलसे एकही समय बाहर निकल आया, सुख बढानेकी भारी शक्तिसे युक्त ये वीर पारस्परिक होड या स्पर्धा छोडकर पराक्रम करनेके लिये आगे बढने लगे।

(३२२) वः अमवान् वृषा त्वेषः ययिः तविषः स्वनः न रेजयत्, सहन्तः स्वरोचिषः स्थारश्मानः हिरण्ययाः सु-आयुधासः इष्मिणः ऋञ्जत। (ऋ. ५।८७।५)

तुम वीरोंका बलयुक्त, समर्थ, तेजस्वी, वेगवान, प्रभाववाली शब्द तुम्हारे अनुयायियोंको भयभीत न करे। तुम शत्रुका पराभव करनेहारे, तेजस्वी सुवर्णालंकारोंसे विभूषित, बढिया हथियार रखनेवाले तथा अन्नभाण्डार साथ रखनेवाले वीर प्रगतिके लिए प्रगतिशील बनते हो।

(३२३) वः महिमा अपारः, त्वेषं शवः अवतु, प्रसितौ संदृशि स्थातारः स्थन, शुशुक्वांसः नः निदः उरुष्यत। (ऋ. ५।८७।६)

तुम्हारी महिमा अपार है, तुम्हारा तेजस्वी बल हमारी रक्षा करे, शत्रुका हमला हो जाय, तो तुम ऐसी जगह रहो कि, हम तुम्हें देख सकें; तुम तेजस्वी वीर हो, इसलिए निंदकोंसे हमें बचाओ।

(३२४) सुमखाः तुविद्युम्नाः अवन्तु। दीर्घं पृथु पार्थिवं सद्म पप्रथे। अद्भुत-एनसां अज्मेषु महः शर्धांसि आ। (ऋ. ५।८७।७)

अच्छे कर्म करनेहारे, महातेजस्वी वीर हमारी रक्षा करें। भूमंडलपर विद्यमान हमारा घर इन्हीं वीरोंके कारण विख्यात हो चुका है। इन पापसे कोसों दूर रहनेवाले वीरोंके आक्रमणके समय बडे बल दिखाई देने लगते हैं।

(३२५) समन्यवः विष्णोः महः युयोतन, दंसना सनुतः द्वेषांसि अप। (ऋ. ५।८७।८)

उत्साही वीर व्यापक परमात्माकी असीम शक्तियोंसे अपना संबंध जोड दें, अपने पराक्रमसे गुप्त शत्रुओंको दूर हटा दें।

(३२६) वि-ओमनि ज्येष्ठासः प्रचेतसः निदः दुर्धर्तवः स्यात। (ऋ. ५।८७।९)

विशेष रक्षाके अवसरपर श्रेष्ठ ठहरनेवाले ज्ञानी वीर निंदक शत्रुओंके लिए अजेय हों।

[बृहस्पतिपुत्र शंयुऋषि।]

(३२७) सबर्दुघां धेनुं उप आ अजध्वं अनपस्फुरां सृजध्वम्। (ऋ. ६।४८।११)

उत्तम दूध देनेहारी गौको प्राप्त करो और दुहते समय हलचल न करनेवाली गौको उन्मुक्त छोड दो।

(३२८) या स्वभानवे शर्धाय अमृत्यु श्रवः धुक्षत, तुराणां मृळीके सुम्नैः एवयावरी। (ऋ. ६।४८।१२)

जो गौ, तेजस्वी वीरोंके संघको अमर शक्ति देनेवाला दूध देती है, वह शीघ्रतया कार्य करनेवाले वीरोंके सुखके लिए अनेक प्रकारोंसे संरक्षण करनेवाली बनती है।

(३२९) भरद्वाजाय विश्वदोहसं धेनुं विश्वभोजसं इषं च अवधुक्षत। (ऋ. ६।४८।१३)

जो अन्नका दान पूर्णतया करता है, उसे बढिया दुधारु गौ और पुष्टिकारक अन्न यथेष्ट दे दो।

(३३०) सुक्रतुं मायिनं मन्द्रं सुप्रभोजसं आदिशे स्तुषे। (ऋ. ६।४८।१४)

अच्छे कर्म करनेहारे, कुशल, आनन्दवर्धक, अन्न देनेवाले वीरकी मैं स्तुति करता हूँ, ताकि वह हमारा अच्छा पथप्रदर्शक बने।

(३३१) त्वेषं अनर्वाणं शर्धः वसु सुवेदाः, यथा चर्षणिभ्यः सहस्रा आकारिषत्, गूळ्हा वसु आविः करत्। (ऋ. ६।४८।१५)

तेजस्वी शत्रुरहित बल तथा धन मिल जाय, उसी प्रकार सारे मानवोंको हजारों प्रकारके धन मिलें और छिपा पडा धन प्रकट हो।

(३३२) वामस्य प्रनीतिः सूनृता वामी। (ऋ. ६।४८।२०)

धन प्राप्त करनेकी प्रणाली सत्य एवं प्रशस्त रहे, सोही ठीक।

(३३३) त्वेषं शवः वृत्रहं ज्येष्ठं। (ऋ. ६।६६।१)

तेजस्वी बल शत्रुका मारक ठहरे, तोही वह श्रेष्ठ है।

[बृहस्पतिपुत्र भरद्वाज ऋषि।]

(३३५) अरेणवः नृम्णैः पौंस्येभिः साकं भूवन्। (ऋ. ६।६६।२)

निष्पाप वीर बुद्धि तथा सामर्थ्योंसे पूर्ण बने रहते हैं।

(३३७) अन्तः सन्तः अवद्यानि पुनानाः अयाः जनुषः न ईषन्ते, श्रिया तन्वं अनु उक्षमाणाः शुचयः जोषं अनु नि दुह्रे। (ऋ. ६।६६।४)

समाजमें रहकर दोषोंको हटाते हुए पवित्रताका पूजन करते हुए वीर अपनी हलचलोंसे जनतासे दूर नहीं जाते हैं। वे धनसे अपने शरीरोंको बलिष्ट बनाते हुए, खुद पवित्र होते हुए सबका आनन्द बढाते रहते हैं।

(३३८) येषु धृष्णु, मक्षु अयाः, ते उग्रान् अवयासत्। (ऋ. ६।६६।५)

जिनमें शत्रुविनाशक बल है और जो तुरन्तही हमला करते हैं, ऐसे वीर सैनिक शत्रुओंको पददलित कर देते हैं। भले ही वे भीषण हों।

(३३९) ते शवसा उग्राः धृष्णुसेनाः युजन्त इत्। एषु अमवत्सु स्वशोचिः रोकः न आ तस्थौ। (ऋ. ६।६६।६)

वे अपने बलसे बडे शूर तथा साहसी सैनिक साथ लेकर हमला चढानेवाले वीर हमेशा तैयार रहते हैं। इन बलिष्ट वीरोंकी राहमें रुकावट डाल सके, ऐसा तेजस्वी प्रतिस्पर्धी कोईभी नहीं मिलता।

(३४०) वः यामः अनेनः अनश्वः अरथीः अजति। अनवसः अनभीशुः रजस्तूः पथ्याः वियाति। (ऋ. ६।६६।७)

तुम्हारा रथ निर्दोष है और घोडों तथा सारथिके न रहनेपरभी वेगपूर्वक जाता है। रक्षणके साधन या लगामके न रहनेपरभी वह रथ गर्द उडाता हुआ राहपरसे चला जाता है।

(३४१) वाजसातौ यं अवथ, अस्य वर्ता न, तरुता नास्ति। सः पार्ये दर्ता। (ऋ. ६।६६।८)

लडाईमें जिसे तुम बचाते हो, उसे घेरनेवाला कोई नहीं, विनष्ट करनेवालाभी कोई नहीं और वह युद्धमें शत्रुओंके गढोंको फोड देता है।

(३४२) ये सहसा सहांसि सहन्ते, मखेभ्यः पृथिवी रेजते, स्वतवसे तुराय चित्रं अर्क प्रभरध्वम्। (ऋ. ६।६६।९)

जो अपने बलोंसे शत्रुदलके आक्रमणोंको रोकते हैं, उन पूज्य वीरोंके सामने यह पृथिवी थरथर काँपने लगती है। उन बलिष्ट तथा त्वरापूर्वक कार्य करनेवाले वीरोंकीही सराहना करो।

(३४३) त्विषीमन्तः तपुच्यवसः दिद्युत् अर्चत्रयः शुनयः भ्राजत्-जन्मानः अधृष्टाः। (ऋ. ६।६६।१०)

तेजस्वी, वेगपूर्वक जानेवाले, प्रकाशमान, पूज्य, शत्रुको हिलानेवाले वीर हैं, जिनका पराभव करना शत्रुके लिए दूभर है।

(३४४) वृधन्तं भ्राजदृष्टिं आविवासे। शर्धाय उग्राः शुचयः मनीषाः अस्पृध्रन्। (ऋ. ६।६६।११)

बढनेवाले तथा तेजःपूर्ण हथियार धारण करनेवाले वीर स्वागतके लिए सर्वथा योग्य हैं। बल बढानेका हेतु सामने रख ये वीर पवित्र बुद्धिसे युक्त हो, पारस्परिक होड या स्पर्धामें लगे रहते हैं।

[मित्रावरुणपुत्र वसिष्ठऋषि।]

(३४७) स्वपूभिः मिथः अभिवपन्त। वातस्वनसः अस्पृध्रन्। (ऋ. ७।५६।३)

अपने पवित्र विचारोंके साथ ये वीर इकट्ठे होते हैं और भीषण गर्जना करते हुए एक दूसरेसे स्पर्धा करते हैं।

(३४८) धीरः निण्या चिकेत, मही पृश्निः ऊधः जभार (ऋ. ७।५६।४)

बुद्धिमान वीर गुप्त बातोंको ताड सकता है। बडी गौ अपने लेवेके दूधसे इन वीरोंका पोषण करती हैं।

(३४९) सा विद् सुवीरा सनात् सहन्ती नृम्णं पुष्यन्ती अस्तु। (ऋ. ७।५६।५)

वह प्रजा अच्छे वीरोंसे युक्त होकर हमेशा शत्रुका पराभव करनेवाली तथा बल बढानेवाली हो जाय।

(३५०) यामं येष्ठाः, शुभा शोभिष्ठाः, श्रिया संमिश्लाः, ओजोभिः उग्राः। (ऋ. ७।५६।६)

ये वीर हमला करनेके लिए जानेवाले, अलंकारोंसे विभूषित, कांतियुक्त तथा सामर्थ्य से भीषण हैं।

(३५१) वः ओजः उग्रं, शवांसि स्थिरा, गणः तुविष्मान्। (ऋ. ७।५६।७)

तुम वीरोंका बल भीषण है, तुम्हारी शक्तियाँ स्थायी हैं और संघ सामर्थ्यवान है।

(३५२) वः शुष्मः शुभ्रः, मनांसि क्रुध्मी, धृष्णोः शर्धस्य धुनिः। (ऋ. ७।५६।८)

तुम्हारा बल दोषरहित तुम्हारे मन क्रोधयुक्त और तुम्हारी शत्रुनाश करनेकी शक्ति वेगयुक्त है।

(३५५) सु-आयुधासः इष्मिणः सुनिष्काः स्वयं तन्वः शुम्भमानाः। (ऋ. ७।५६।११)

बढिया हथियार धारण करनेवाले, वेगपूर्वक जानेहारे और अपने शरीरोंको बनावसिंगारद्वारा सुशोभित करनेवाले ऐसे ये वीर मरुत् हैं।

(३५६) ऋतसापः शुचिजन्मानः शुचयः पावकाः ऋतेन सत्यं आयन्। (ऋ. ७।५६।१२)

सत्यसे चिपकनेवाले, पवित्र जीवन धारण करनेवाले पवित्र, शुद्ध वीर सरल राहसे सचाई प्राप्त करते हैं।

(३५७) अंसेषु खादयः, वक्षःसु रुक्माः उपशिश्रियाणाः, रुचानाः आयुधैः स्वधां अनुयच्छमानाः। (ऋ. ७।५६।१३)

कंधोंपर आभूषण, छातीपर हार लटकानेवाले, ये तेजस्वी वीर हथियार लेकर अपना बल बढाते हैं।

(३५८) वः बुध्न्या महांसि प्रेरते, नामानि प्र तिरध्वं, एतं सहस्रियं दम्यं गृहमेधीयं भागं जुषध्वम्। (ऋ. ७।५६।१४)

तुम वीरोंके मौलिक बल प्रकट होते हैं, अपने यशोंको बढाओ, इन सहस्रों गुणोंसे युक्त घरेलू याज्ञिक प्रसादका सेवन करो।

(३५९) वाजिनः विप्रस्य सुवीर्यस्य रायः मक्षु दात। अन्यः अरावा यं आदभत्। (ऋ. ७।५६।१५)

बलवान ज्ञानीको बढिया वीर्ययुक्त धन तुरन्त दे दो, नहीं तो दूसरा कोई शत्रु शायद उसे छीन ले जाय।

(३६०) सु-अञ्चः शुभ्राः, प्रक्रीळिनः शुभयन्त। (ऋ. ७।५६।१६)

वे वीर गतिमान, शोभायमान, साफसुथरे और खिलाडी बने हुए हैं।

(३६१) दशस्यन्तः सुमेके वरिवस्यन्तः मृळयन्तु। (ऋ. ७।५६।१७)

शत्रुविनाशक, स्थायी सहारा देनेवाले वीर जनताको सुख दे दें।

(३६२) ईवतः गोपा अस्ति, सः अद्वयावी। (ऋ. ७।५६।१८)

जो प्रगतिशील लोगोंका संरक्षण करनेवाला हो, वह मनमें एक बात और बाहर कुछ और ऐसा बर्ताव नहीं करता है।

(३६३) तुरं रमयन्ति, इमे सहः सहसः आनमन्ति, इमे शंसं वनुष्यतः नि पान्ति, अररुषे गुरु द्वेषं दधन्ति। (ऋ. ७।५६।१९)

ये त्वरापूर्वक कार्य करनेवालोंको आनन्द देते हैं, अपने सामर्थ्य से बलिष्ठोंको झुकाते हैं, वीरगाथाओंके गायनकर्ताको बचाते हैं और दर्शाते हैं कि, वे शत्रुपर भारी क्रोध करते हैं।

(३६४) इमे रध्रं जुनन्ति, भूमिं जुपन्त, तमांसि अपबाधध्वम् । (ऋ. ७।५६।२०)

ये वीर धनिकोंके निकट जैसे जाते हैं, उसी प्रकार भीख-मँगेके समीप भी चले जाते हैं। वे अँधेरा दूर करते हैं।

(३६५) वः सुजातं यत् ईं अस्ति, स्पार्हे वसव्ये नः आभजतन । (ऋ. ७।५६।२१)

तुम्हारे समीप जो उच्च कोटिका धन है, उस स्पृहणीय संपत्तिमें हमें सहभागी करो।

(३६६) यत् शूराः जनासः यह्वीपु ओषधीपु विक्षु मन्युभिः सं हनन्त, अध पृतनासु नः त्रातारः भूत। (ऋ. ७।५६।२२)

जब वीर सैनिक नदियोंमें, वनोंमें तथा जनताके मध्य बडे उत्साहसे शत्रुदलपर टूट पडते हैं, तब इन युद्धोंमें तुम हमारे रक्षक बनो।

(३६७) उग्रः पृतनासु साळ्हा, अर्वा वाजं सनिता। (ऋ. ७।५६।२३)

जो उग्र स्वरूपवाला वीर है, वह लडाईमें शत्रुओंको जीतता है और घोडाभी युद्धमें अपना बल दर्शाता है।

(३६८) यः वीरः असु-रः जनानां विधर्ता शुष्मी अस्तु। येन सुक्षितये अपः तरेम, अध स्वं ओकः अभि स्याम। (ऋ. ७।५६।२४)

जो वीर अपना जीवन अर्पित करके जनताका संरक्षण करता है, वह बलवान बन जाता है। उसकी सहायतासे प्रजाका अच्छा निवास हो, इसलिए समुद्रकोभी तैरकर चले जायँ और अपने घरपर सुखपूर्वक रहें।

(३६९) यूयं स्वस्तिभिः सदा नः पात।

(ऋ. ७।५६।२५)

तुम हमारी रक्षा हमेशा कल्याणकारक मार्गोंसे करते रहो।

(३७०) यत् उग्राः अयासुः, ते उर्वी रेजयन्ति।

(ऋ. ७।५७।१)

जो उग्र दुश्मनोंपर धावा करते हैं, वे भूमिको हिला देते हैं।

(३७२) रुक्मैः आयुधैः तनूभिः यथा भ्राजन्ते न एतावत् अन्ये। विश्वपिशः पिशानाः शुभे समानं अञ्जि कं आ अञ्जते। (ऋ. ७।५७।३)

मालाओं, हथियारों तथा शरीरोंसे ये वीर सैनिक जिस तरह सुहाने लगते हैं, वैसे दूसरे कोईभी नहीं जग-मगाते हैं। भली भाँति साजसिंगार करनेवाले ये वीर अपनी शोभाके लिए समान वीरभूषा सुखपूर्वक कर लेते हैं।

(३७४) अनवद्यासः शुचयः पावकाः रणन्त, नः सुमतिभिः प्रावत, न वाजेभिः पुष्यसे प्र तिरत। (ऋ. ७।५७।५)

प्रशंसनीय, शुद्ध, पवित्र बनकर वीर रममाण होते हैं। अपने अच्छे विचारोंसे हमारी रक्षा कीजिए और अन्नोंसे पुष्टि मिल जाए, इस हेतु सारे संकटोंसे पार ले चलो।

(३७५) नः प्रजायै अमृतस्य प्रदात, सूनृता रायः मघानि जिगृत। (ऋ. ७।५७।६)

हमारी संतानके लिए अमृतरूपी अन्न दे दो, आनन्द-दायक धन तथा सुखवैभवका भी दान करो।

(३७६) विश्वे सर्वताता सूरीन् अच्छ ऊती आजिगात। ये त्मना शतिनः वर्धयन्ति। (ऋ. ७।५७।७)

ये सारे वीर इस यज्ञमें ज्ञानियोंके समीप सीधे अपनी संरक्षक शक्तियोंसहित आ जायँ, क्योंकि ये स्वयंही सैंकडों मानवोंका संवर्धन करते हैं।

(३७७) यः दैव्यस्य धाम्नः तुविष्मान्, सार्क-उक्षे गणाय प्रार्चत, ते अवंशात् निर्ऋतेः क्षोदन्ति। (ऋ. ७।५८।१)

जो दिव्य स्थान जानता है, उस सामुदायिक बलसे युक्त वीरोंके दलकी पूजा करो। ये वीर वंशनाशरूपी भीषण आपत्तिसे हमें बचाते हैं।

(३७९) गतः अध्वा जन्तुं न तिराति। नः स्पार्हाभिः ऊतिभिः प्र तिरेत। (ऋ. ७।५८।३)

जिस मार्गपर वीर चल चुके हों, वहाँ किसीकोभी कष्ट नहीं पहुँचता है, (सभी उधर प्रसन्न हो उठते हैं)। स्पृह-णीय रक्षणों से हमारा संवर्धन करो।

(३८०) युष्मा-ऊतः विप्रः शतस्वी सहस्री, युष्मा-ऊतः अर्वा सह्रुरिः, युष्मा-ऊतः सम्राट् वृत्रं हन्ति, तत् देष्णं प्र अस्तु। (ऋ. ७।५८।४)

वीरोंके संरक्षणमें रहकर ज्ञानी पुरुष सैंकडों तथा सह-स्रावधि धनोंको प्राप्त करता है, वीरोंका संरक्षण मिलनेपर घोडा विजयी बनता है और वीरोंकी रक्षा पानेपर नरेशभी शत्रुका पराभव करता है। वीर पुरुष हमें यह दान दें।

(३८२) द्वेपः आरात् चित् युयोत (ऋ. ७।५८।६)

जबतक शत्रु दूर है, तभीतक उसका विनाश करो।

(३८४) यः द्विषः तरति, सः क्षयं प्रतिरते।
(ऋ. ७।५९।२)

जो शत्रुका पराभव करता है, वह अपने विनाशके परे चले जाता है, याने सुरक्षित बन जाता है।

(३८६) यस्मै अराध्वं, वः ऊतिः पृतनासु नहि मर्धति।
(ऋ. ७।५९।४)

जिसे तुम अपना संरक्षण देते हो, उसका विनाश युद्धोंमें तुम्हारे संरक्षणोंसे नहीं होता है।

(३८९) तन्वः शुम्भमानाः हंसासः मदन्तः आ अपप्तन्, विश्वं शर्धः मा अभितः निसेद। (ऋ. ७।५९।७)

अपने शरीरोंका सुहानेवाले ये वीर हंसपंछियोंकी नाईं कतारमें रहकर प्रसन्नतापूर्वक संचार करते आ पहूँचे हैं। उनका यह सारा बल मेरे चारों ओर संरक्षणार्थ रहे।

(३९०) यः दुर्हणायुः न चित्तानि अभि जिघांसति सः द्रुहः पाशान् प्रतिमुचीष्ट, तं हन्मना हन्तन।
(ऋ. ५।५९।८)

जो दुष्ट शत्रु हमारे अन्तःकरणोंको चोट पहुँचाता है, तथा पारस्परिक द्रोहके भाव हममें फैलायेगा, उसे तुम मार डालो।

(३९२) युष्माक ऊती आगत, मा अपभूतन।
(ऋ. ५।५९।१०)

तुम अपनी संरक्षक शक्तियोंके साथ हमारे समीप आओ और हमसे दूर न हो जाओ।

(३९४) विक्षु चितिष्ठध्वं, ये वयः भूत्वी नक्तभिः पतयन्ति, ये रिपः दधिरे, रक्षसः इच्छत, गृभायत, संपिनष्टन। (ऋ. ७।१०४।१८)

प्रजाओंके मध्य निवास करो, जो वेगवान बनकर रात्रीके समय हमले चढाते हैं, तथा जो हत्याकांड मचा देते हैं, उन राक्षसों को ढूँढकर पकड लो और उनका विनाश करो।

[निन्दु या आंगिरसपुत्र पूतदक्ष ऋषि।]

(३९५) माता गौः धयति, युक्ता रथानां वह्निः।
(ऋ. ८।९४।१)

गोमाता दूध पिलाती है, उस दुग्धसे संयुक्त हो वीर रथोंके संचालक बनते हैं।

(३९७) नः विश्वे अर्यः कारवः सदा तत् सु आ गृणन्ति। (ऋ. ८।९४।३)

हमारे सभी श्रेष्ठ कारीगर सदैव उस उत्तम बलकी भली भाँति सराहना करते हैं।

(४००) प्रातः गोमतः अस्य सुतस्य जोषं मत्सति।
(ऋ. ८।९४।३)

सुबह गौका दूध मिलाकर तयार किये हुए इस सोमरसका पान करनेपर आनन्दयुक्त उत्साह बढता है।

(४०१) पूतदक्षसः सूरयः स्त्रिधः अर्यन्ति।
(ऋ. ८।९४।७)

बलवान, ज्ञानवान तथा शत्रुविनाशक वीर हमारी ओर आते हैं।

(४०२) दस्मवर्चसां महानां अवः अद्य वृणे।
(ऋ. ८।९४।८)

सुन्दर एवं बडे वीरोंकी रक्षाकी मैं आज याचना करता हूँ।

(४०३) ये विश्वा पार्थिवानि आ पप्रथन्, सोमपीतये।
(ऋ. ८।९४।९)

जिन्होंने सारे पार्थिव क्षेत्रोंका विस्तार किया है, उन वीरोंको सोमपानके लिए मैं बुलाता हूँ।

(४०४) पूतदक्षसः सोमस्य पीतये हुवे।
(ऋ. ८।९४।१०)

बलिष्ठ वीरोंको सोमपानके लिए बुलाता हूँ।

[भृगुपुत्र स्यूमरश्मि ऋषि।]

(४०७) अर्हसे अस्तोषि, न शोभसे। (ऋ. १०।७७।१)

जो योग्य हैं, उनकीही स्तुति करता हूँ, सिर्फ बाहरी टीमटाम या सजधजके कारण कभी सराहना न करूँगा।

(४०८) मर्यासः श्रिये अञ्जीन् अकृण्वत, पूर्वीः क्षपः न अति। (ऋ. १०।७७।२)

ये वीर शोभाके लिए गणवेश पहनते हैं। पहलेसेही घातक या हत्यारे शत्रु इन्हें परास्त नहीं कर सकते।

(४०९) ये त्मना वर्हणा प्र रिरिच्रे, पाजस्वन्तः पनस्यवः रिशादसः अभिद्यवः। (ऋ. १०।७७।३)

जो अपनी शक्तिसे बडे बन जाते हैं, वे वीर बलवान, प्रशंसनीय शत्रुविनाशक एवं तेजस्वी होते हैं।

(४१०) युष्माकं बुध्ने मही न विथुर्यति, प्रथयति, प्रयस्वन्तः सध्राचः आगत। (ऋ. १०।७७।४)

तुम वीरोंके पैरोंके नीचेकी भूमि सिर्फ काँपतीही नहीं, किन्तु स्पन्दमान हो उठती है। उदारचेता वीरोंके तुल्य तुम सभी इकट्ठे हो इधर पधारो।

*

(४११) यूयं स्वयशसः रिशादसः परिप्रुषः प्रसितासः । (ऋ. १०।७७।५)

तुम यशस्वी, शत्रुनाशक, पोषक तथा हमेशा तैयार रहनेवाले वीर हो।

(४१२) यूयं यत् पराकात् प्रवहध्वे, महः संवरणस्य राध्यस्य वस्वः विदानासः, सनुतः द्वेषः आरात् चित् युयोत । (ऋ. १०।७७।६)

तुम जब दूरसे वेगपूर्वक आते हो, तो बडे स्वीकारनेयोग्य बढिया धनका दान करो और दूर रहनेवाले द्वेष्टाओंको दूरसेही खदेड डालो।

(४१३) यः मानुषः ददाशत्, सः रेवत् सुवीरं वयः दधते, देवानां अपि गोपीथे अस्तु। (ऋ. १०।७७।७)

जो मानव दान देता है, वह धन एवं वीरोंसे पूर्ण अन्नको पाता है और वह देवोंके गोरसपानके मौकेपर उपस्थित रहनेयोग्य बनता है।

(४१४) ते ऊमाः यज्ञियासः शंभविष्ठाः, रथतूः महः चकानाः नः मनीषां अवन्तु । (ऋ. १०।७७।८)

वे रक्षा करनेहारे वीर पूजनीय तथा सुख देनेवाले हैं। रथमेंसे त्वरापूर्वक जानेहारे वे वीर महत्व पाते हैं। वे हमारी आकांक्षाओंकी रक्षा करें।

(४१५) विप्रासः सु-आध्यः सुअप्सः सुसंदृशः अरेपसः । (ऋ. १०।७८।१)

वे वीर ज्ञानी, अच्छे विचारवाले बढिया कर्म करनेहारे, प्रेक्षणीय और निष्पाप हैं।

(४१६) ये रुक्मवक्षसः स्वयुजः सद्यऊतयः, ज्येष्ठाः सुशर्माणः ऋतं यते सुनीतयः। (ऋ. १०।७८।२)

जो वक्षःस्थलपर माला धारण करनेवाले, अपनी अन्तःस्फूर्तिसे काममें जुटनेवाले, तुरन्त रक्षाका भार उठानेवाले तथा श्रेष्ठ सुख देनेवाले वीर होते हैं, वे सीधी राहपरसे चलनेवालेको उच्च कोटिका मार्ग दिखाते हैं।

(४१७) ये धुनयः, जिगत्नवः, विरोकिणः, वर्मण्वन्तः, शिमीवन्तः, सुरातयः। (ऋ० १०।७८।३)

ये वीर शत्रुदलको विकंपित करनेहारे, वेगसे आगे बढनेवाले, तेजस्वी, कवचधारी, शिरोवेष्टनसे युक्त हैं तथा बडे अच्छे दानी भी हैं।

(४१८) ये सनाभयः, जिगीवांसः शूराः, अभिद्यवः, वरेयवः सुस्तुभः। (ऋ०१०।७८।४)

ये वीर एकही केन्द्रमें कार्य करनेहारे, विजयेच्छु शूर, तेजस्वी, अभीष्ट प्राप्त करनेहारे हैं, इसलिए स्तुतिके सर्वथैव योग्य हैं।

(४१९) ये ज्येष्ठासः, आशवः, दिधिषवः सुदानवः, जिगत्नवः विश्वरूपाः। (ऋ० १०।७८।५)

ये वीर श्रेष्ठ, त्वरापूर्वक कार्य करनेहारे, तेजस्वी, उदार, बडे वेगसे जानेवाले हैं तथा अनेक रूप धारण करनेवाले भी हैं।

(४२०) सूरयः, आदर्दिरासः, विश्वहा, सुमातरः, क्रीळयः यामन् त्विषा।
(ऋ० १०।७८।६)

ये वीर विद्वान, शत्रुको फाडनेवाले, सभी दुश्मनोंका वध करनेवाले, अच्छी माताके पुत्र खिलाडी तथा चढाई करतेसमय सुहाते हैं।

(४२१) अञ्जिभिः वि अश्वितन्, ययियः, भ्राजदृष्टयः, योजनानि ममिरे (ऋ. १०।७८।७)

वीरभूषणों से सुहानेवाले, वेगपूर्वक जानेहारे, तेजस्वी हथियार धारण करनेहारे ये वीर कई योजन दौडते चले जाते हैं।

(४२२) अस्मान् सुभगान् सुरत्नान् कृणुत।
(ऋ० १०।७८।८)

हमें उत्कृष्ट भाग्यसे युक्त तथा अच्छे रत्नोंसे पूर्ण करो। (वीर भली भाँति रक्षा करके जनताको धनधान्य से युक्त करें।)

(४२३) रिशादसः हवामहे। (वा. य. ३।४४)

शत्रुके विनाशकर्ता वीरोंकी सराहना करते हैं।

(४२४) पृश्निमातरः, शुभं-यावानः, विदथेषु जग्मयः मनवः, सूरचक्षसः, अवसा नः इह आगमन्।
(वा. य. २५।२०)

मातृभूमिके उपासक, अच्छे कार्यके लिए जानेवाले, युद्धोंमें आगे बढनेवाले, विचारशील, सूर्यतुल्य तेजस्वी, अपनी शक्तिके साथ हमारे निकट इधर आ जायँ।

(४२९) यदि आशवः रथेषु भ्राजमानाः आवहन्ति, तत्र श्रवांसि कृण्वते।
(साम० ३५६)

जहाँपर त्वराशील रथी वीर चले जाते हैं, वहीं वे भाँति-भाँतिके धन प्राप्त करते हैं।

(४३१) नः तनूभ्यः तोकेभ्यः मयः कृधि।
(अथर्व० १।२६।४)

हमारे शरीरोंको और पुत्रपौत्रोंको सुखी करो।

(४३३) पृश्निमातरः उग्राः यूयं शत्रून् प्रमृणीत।
(अथर्व १३।१।३)

मातृभूमिके उपासक वीरो! तुम शत्रुओंका विनाश करो।

(४३४) उग्राः यूयं ईदृशे स्थ, अभि प्र इत, मृणत, सहध्वं, इमे नाथिताः अमीमृणन्। एषां विद्वान् दूतः प्रत्येतु।
(अथर्व०३।१।२)

तुम शूर हो और ऐसे बडे युद्धमें कार्य करते रहते हो, शत्रुपर आक्रमण करो, दुश्मनका वध करो, उसे परास्त करो, सेनापति से युक्त ये वीर दुश्मनोंका वध कर डालें। इनका जो दूत विद्वान हो, वही शत्रुसेना के समीप चला जाए।

(४३४.१) सेनां मोहयतु, ओजसा घ्नन्तु, चक्षूंषि आदत्तां, पराजिता एतु।
(अथर्व० ३।१।६)

शत्रुसेनाको मोहित करो, वेगपूर्वक हमले करो, शत्रुसेनाकी दृष्टिको घेर लो, वह परास्त होकर दौडती चली जाए।

(४३५) असौ परेषां या सेना ओजसा स्पर्धमाना अस्मान् अभ्येति, तां अपव्रतेन तमसा विध्यत, यथा एषां अन्यः अन्यं न जानात्। (अथर्व० ३।२।६)

यह जो शत्रुसेना वेगपूर्वक चढाऊपरी करती हुई हम-पर टूट पडती है, उसे तमस्-अस्त्रसे बिंध डालो, जिससे वे किंकर्तव्यमूढ होकर एक दूसरेको पहचान न सकें। (इस भाँति शत्रुसेनापर हमले करने चाहिए।)

(४३६) पर्वतानां अधिपतयः अस्मिन् कर्मणि मा अवन्तु। (अथर्व० ५।२४।६)

पहाडोंके रक्षणकर्ता वीर इस कर्मके अवसरपर मेरी रक्षा करें।

(४३७) यथा अयं अरपा असत्, त्रायन्ताम्। (अथर्व० ४।१३।४)

जिस प्रकारसे यह मानव निर्दोषी होगा, उसी ढंगसे इसका संरक्षण करो।

(४३८) यत् एजथ, तत्र ऊर्जं सुमतिं पिन्वथ। (अथर्व० ६।२२।२)

जिधरभी तुम चले जाओ, उधर बल तथा सुमतिकी वृद्धि करो।

(४४०) ते नः अंहसः मुञ्चन्तु, इमं वाजं अवन्तु। (अथर्व० ४।२७।१)

वे वीर सैनिक हमें पापसे बचाएँ और हमारे इस बल-का संरक्षण करें, (बलको बढायें।)

(४४१) पृश्निमातॄन् पुरो दधे। (अथर्व० ४।२७।२)

मातृभूमिकी उपासना करनेहारे वीरोंको मैं अग्रपूजाका सम्मान देता हूँ।

(४४२) ये कवयः धेनूनां पयः ओषधीनां रसं अर्वतां जवं इन्वथ ते नः शग्माः स्योनाः भवन्तु। (अथर्व० ४।२७।३)

जो ज्ञानी वीर गोदुग्ध और औषधियोंका रस पी लेते हैं तथा घोडोंका वेग पाते हैं, वे वीर हमें सामर्थ्य देकर सुख देनेवाले हों।

(४४३) ते ईशानाः चरन्ति। (अथर्व० ४।२७।४)

वे वीरसैनिक अधिपति या स्वामी बनकर संसारमें सञ्चार करते हैं।

(४४४) ते कीलालेन घृतेन च तर्पयन्ति। (अ० ४।२७।५)

वे अन्नरस और घृतसे सबको तृप्त करते हैं।

(४४६) तिग्मं अनीकं सहस्वत् विदितं, पृतनासु उग्रं स्तौमि। (अथर्व० ४।२७।७)

शूरोंकी सेना विरोधियोंका पराभव करनेमें विख्यात है; युद्धके समय वह पराक्रम कर दिखलाती है, इसलिए मैं इनकी सराहना करता हूँ।

(४४७) ते सगणाः, उरुक्षयाः, मानुषासः सान्तपनाः मादयिष्णवः। (अथर्व० ७।८२।३)

वे वीरसैनिक संघ बनाकर रहते हैं, बडे घरमें निवास करते हैं, मानवोंका हित करते हैं, शत्रुओंको परिताप देते हैं और अपने लोगोंको प्रसन्नता प्रदान करते हैं।

(४५०) ये सुखेषु रथेषु आतस्थुः, वः भिया पृथिवी रेजते। (ऋ० ५।६०।२)

ये वीर सुखदायी रथोंमें बैठकर यात्रा करते हैं और इन के भयसे पृथ्वीतक काँप उठती है।

(४५१) ऋष्टिमन्तः यत् सध्र्यञ्चः क्रीळथ, धवध्वे। पर्वतः विभाय। (ऋ० ५।६०।३)

तलवार जैसे हथियार लेकर जब तुम इकट्ठे हो खेलना शुरू करते हो, तब तुम दौडते हो, ऐसी दशामें पहाडतक भयभीत हो जाता है।

(४५२) रैवतासः वरा इव हिरण्यैः तन्वः अभिपिपिश्रे, श्रेयांसः तवसः श्रिये रथेषु, सत्रा तनूषु महांसि चक्रिरे। (ऋ० ५।६०।४)

धनयुक्त दूल्होंकी नाईं ये वीर अपने शरीर सुवर्णा-लंकारों से विभूषित करते हैं, तब श्रेय, बल और यश रथमें बैठनेपर इनके शरीरोंपर दीख पडते हैं।

(४५३) अज्येष्ठासः अकनिष्ठासः एते भ्रातरः
सौभगाय सं वावृधुः। (ऋ० ५।६०।५)

ये वीर परस्पर भ्रातृभाव से बर्ताव रखते हुए अपना ऐश्वर्य बढानेके लिए मिलजुलकर प्रयत्न करते हैं और यह इसीलिए संभव है चूँकि इनमें कोईभी श्रेष्ठ नहीं या कनिष्ठ भी नहीं, अर्थात् सभी समान हैं।

(४५४) यत् उत्तमे मध्यमे अवमे स्थ, अतः नः।
(ऋ० ५।६०।६)

उत्तम, मँझले या निम्न स्थानमें जहाँ कहींभी तुम हों, वहाँसे तुम हमारे निकट चले आओ।

(४५५) ते मन्दसानाः धुनयः रिशादसः वामं धत्त।
(ऋ० ५।६०।७)

वे हर्षित रहनेवाले वीर, शत्रुको पदभ्रष्ट करते हैं और उनका वध करते हैं। वे हमें श्रेष्ठ धन दे दें।

(४५६) शुभयद्भिः गणश्रिभिः पावकेभिः विश्वमिन्वेभिः आयुभिः मन्दसानः। (ऋ० ५।६०।८)

शोभायमान संघके कारण सुशोभित होनेवाले और सबको पवित्र करनेहारे, उत्साहपूर्ण एवं दीर्घ जीवनसे युक्त होकर सबको आनन्दित करो।

(४५७) अदारसृत् भवतु। (अथर्व० १।२०।१)
शत्रु अपनी पत्नीके निकटभी न चला जाए, (शीघ्रही विनष्ट हो।)

नः मृडत= हमें सुख दो।

अभिभाः नः मा विदत्। शत्रु हमें न मिले।

अशस्तिः द्वेष्या वृजिना नः मा विदन्।
अकीर्ति और निन्दनीय पाप हमारे समीप न आयें।

(४६७-४७२) अद्रुहः, उग्राः, ओजसा अनाधृष्टासः,
शुभ्राः, घोरवर्पसः, सुक्षत्रासः, रिशादसः।
(ऋ. १।१९।३-८)

ये वीर किसीसे विद्रोह नहीं करते, शूर हैं, बहुत बलवान होनेके कारण कोई इन्हें परास्त नहीं कर सकता है, गौर वर्णवाले तथा बृहदाकार शरीरवाले हैं, अच्छे क्षात्रबलसे युक्त होनेके कारण ये शत्रुका पूर्ण विनाश कर देते हैं।

(४७९) दुःशंसः नः मा ईशत। (ऋ. १।२३।९)
दुरात्माका शासन हमपर कभी प्रस्थापित न हो।

(४८०) सवयसः सनीळाः समान्या वृषणः शुभा
शुम्भ अर्चन्ति। (ऋ. १।१६५।१)

समान अवस्थाके, एक घरमें रहनेवाले, समान ढंगसे सम्माननीय होते हुए ये बलवान वीर शुभ इच्छासे बलकी पूजा करते हैं।

(४८४) वयं अन्तमेभिः स्वक्षत्रेभिः युजानाः,
तन्वं शुम्भमानाः महोभिः उपयुज्महे।
(ऋ. १।१६५।५)

हम वीर अपनेमें विद्यमान निजी शूरतासे युक्त होकर अपने शरीरोंको शोभायमान करते हैं तथा सामर्थ्यका उपयोग करते हैं।

(४८५) अहं हि उग्रः, तविषः तुविष्मान्
विश्वस्य शत्रोः वधस्नैः अनमम्।
(ऋ. १।१६५।६)

मैं शूर तथा बलिष्ठ हूँ, इसलिए मैंने सारे शत्रुओं को झुका दिया है। इस कार्यको हथियारोंसे पूर्ण कर डाला है।

(४८६) युज्येभिः पौंस्येभिः भूरि चकर्थ।
(ऋ. १।१६५।७)

उचित सामर्थ्योंके सहारे तुमने बहुत सारे पराक्रम कर दिखाये हैं।

क्रत्वा भूरीणि कृणवाम हि= पुरुषार्थ एवं प्रयत्नों की सहायतासे हम बहुत कार्य करके दिखायेंगे।

(४८७) स्वेन भामेन इन्द्रियेण तविषः बभूवान्।
(ऋ. १।१६५।८)

अपने तेजसे और इन्द्रियोंकी शक्तिसे मैं बलवान हो चुका हूँ।

(४८८) ते अनुत्तं नकिः नु आ; त्वावान् विदानः न अस्ति; यानि करिष्या कृणुहि न जायमानः न जातः नशते। (ऋ. १।१६५।९)

तेरी प्रेरणाके विना कुछभी नहीं अस्तित्वमें आता तेरे समान दूसरा कोई ज्ञानी नहीं है; जिन कर्तव्योंको तू करता है, उन्हें पूर्ण करना किसी भी जन्मे हुए तथा जन्म लेनेवाले मानवके लिए असंभव है।

(४८९) मे एकस्य ओजः विभु, या मनीषा दधृष्वान्, कृणवै नु। अहं हि उग्रः विदानः। यानि च्यवं, एषां ईशे। (ऋ. १।१६५।१०)

मेरे अकेलेका सामर्थ्य बहुत बडा है। जो इच्छा मनमें उठ खडी होती है, उसीके अनुसार कार्य करके दर्शाता हूँ। मैं शूर और ज्ञानी भी हूँ तथा जिनके समीप पहुँचता हूँ उनपर प्रभुत्व प्रस्थापित करता हूं।

(४९४) विश्वा अहानि नः कोम्या वनानि सन्तु। जिगीषा ऊर्ध्वा। (ऋ. १।१७१।३)

हमेशा हमारे लिए ये वन कमनीय हों तथा हमारी विजयेच्छा ऊंची हो जाए।

(४९६) उग्रेभिः स्थविरः सहोदाः नः श्रवः धाः। (ऋ. १।१७१।५)

शूर वीर सैनिकोंसे युक्त होकर और हमें बल देकर हमारी कीर्ति बढा दे।

(४९७) त्वं सहीयसः नॄन् पाहि। (ऋ. १।१७१।६)

तू बलवान वीरोंका संरक्षण कर।

अवयातहेळाः सुप्रकेतेभिः ससहिः दधानः इषं वृजनं जीरदानुं विद्याम।

क्रोध न करते हुए उत्तम ज्ञानी वीरोंसे सामर्थ्यवान बनकर हम अन्न, बल तथा दीर्घ आयुष्य प्राप्त करें।

(४९८) आजौ युध्यत। (ऋ. ८।९६।१४)

युद्धमें लडते रहो (पीछे न दौडो)।

यहाँतक हम देख चुके हैं कि, मरुतोंका वर्णन करते हुए मरुद्देवताके मंत्रोंमें सर्वसाधारण क्षात्रधर्मका चित्रण किस भाँति हुआ है। पाठक इस विवरणसे जान सकेंगे कि, मरुतोंके मंत्र पढनेसे क्षात्रधर्मकी जानकारी कैसे प्राप्त हो सकती है। इसी वर्णनको ध्यानमें रखते हुए इस मरुतोंके काव्यमें वीरोंका जो स्वरूप बतलाया गया है, उसका उल्लेख प्रस्तावनामें किया है, उसको वहाँ पाठक देख सकते हैं।

मरुत्-देवताके मंत्रोंमें नारी-विषयक उल्लेख।

(२८) वत्सं न माता सिषक्ति। (ऋ. १।३८।८)

माता जिस प्रकार बालक को अपने समीप रखती है, उसी प्रकार (बिजली मेघवृन्दके समीप रहती है)।

(१२३) प्र ये शुम्भन्ते जनयो न सप्तयः (ऋ.१।८५।१)

प्रगतिशील एवं आगे बढनेकी पूर्ण क्षमता रखनेवाले वीर मरुत् (बाहर यात्राके लिए जाते समय) नारियोंके तुल्य अपने आपको सुशोभित तथा अलंकृत करते हैं।

(१४७) प्र एषामज्मेषु (भूमिः) विथुरेव रेजते।

(ऋ. १।८७।३)

इन वीरोंके अतिवेगवान हमलोंमें भूमितक अनाथ एवं असहाय महिलाके समान थरथर काँप उठती है।

(१६२) रथीयन्तीव प्र जिहीते ओषधिः।

(ऋ. १।१३९।५)

सारी ओषधियाँभी रथमें बैठी नारीके समान विकँपित हो उठती हैं।

(१७४) गुहा चरन्ती मनुषो न योषा। (ऋ. १।१६७।३)

अन्तःपुरमें संचार करती हुई मानवी महिलाकी नाईं (वीरोंकी तलवार कभी कभी अदृश्यभी रहती है।)

(१७५) साधारण्या इव मरुतः सं मिमिक्षुः।

(ऋ. १।१६७।४)

साधारण कोटिकी नारीके साथ मानव जिस तरह बर्ताव रखते हैं, उसी प्रकार (शत्रुओं की जमीनपर) मरुतोंने वर्षा कर डाली।

(१७६) विसितस्तुका सूर्या इव रथं आ गात्।

(ऋ. १।१६७।५)

केश सँवारकर भली भाँति जूडा बाँधी हुई सूर्यासावित्रीके समान (रोदसी=भूमि या विद्युत्) [वीरोंकी पत्नी] रथके निकट आ पहुँची।

(१७७) आ अस्थापयन्त युवतिं युवानः शुभे निमिश्लां विदथेषु पज्रां। (ऋ. १।१६७।६)

तुम नवयुवक वीर सदैव सहवासमें रहनेवाली, बलिष्ट युवतीको- निज पत्नीको- शुभ मार्गसे- यज्ञमें स्थापन करते हो- ले आते हो।

(१७८) यत् ईं वृषमनाः अहंयुः स्थिरा चित् जनीः वहते सुभागाः। (ऋ. १।१६७।७)

यह पृथ्वीतक इनके पीछे चलनेवाली, बलिष्टोंपर मन केन्द्रित करनेवाली पर वीरपत्नी होनेकी तीव्र लालसा करनेवाली सौभाग्ययुक्त प्रजा धारण करती है- उत्पन्न करती है।

(२३०) मित्रं न योषणा (मारुतं गणं अच्छ)।

(ऋ. ५।५२।१४)

युवती जिस प्रकार प्रिय मित्रके समीप चली जाती है, ठीक उसी प्रकार (वीर सैनिकों के संघके समीप चले जाओ।

(२९८) भर्ता इव गर्भं स्वं इत् शवः धुः।

(ऋ. ५।५८।७)

पति जिस भाँति स्त्रीमें गर्भकी स्थापना करता है, वैसेही इन वीरोंने अपना निजी बल (राष्ट्रमें) प्रस्थापित किया है।

(३१०) वि सक्थानि नरो यमुः, पुत्रकृथे न जनयः।

(ऋ ५।६१।३)

पुत्रको जन्म देते समय नारियोंकी जँघाएँ जिस प्रकार तानी जाती हैं, वैसेही तानी हुई अश्वजंघाओंका नियमन वे वीर करते हैं।

(४२०) शिशूलाः न क्रीळाः सुमातरः।

(ऋ. १०।७८।६)

उत्कृष्ट माताओंके निरोगी बालकोंकी नाईं वे वीर सैनिक खिलाडी भावसे पूर्ण हैं।

(४३२) माता इव पुत्रं छन्दांसि पिपृत।

(अथर्व० ५।२६।५)

माता जिस प्रकार अपने बालकोंका संगोपन करती है, उसी प्रकार हमारे मंत्रोंका- इच्छाओंका संगोपन करो।

(४३९) तुन्दाना ग्लहा, तुन्ना कन्या इव, एरुं पत्या इव जाया एजाति। (अथर्व० ६।२२।३)

कडकनेवाली बिजली, नवयुवती युवकको प्राप्त करती है उसी प्रकार तुम और पतिसे आलिंगित नारीके समान विकंपित होती है।

(४५७) अदारसृत् भवतु देव सोम। (अथर्व० १।२०।१)

हे तेजस्वी सोम! हमारा शत्रु अपनी स्त्रीसेभी न मिले, ऐसा प्रबंध कर दो।

मरुद्देवता-पुनरुक्त-मन्त्राः ।

मरुन्मन्त्रक्रमाङ्कः

मधुच्छन्दा वैश्वामित्रः । मरुतः । गायत्री (ऋ.१।६।९)

[४] अतः परिज्मन्नाऽऽ गहि दिवो वा रोचनादधि ।
समस्मिन्नृञ्जते गिरः ॥ ९ ॥

प्रस्कण्वः काण्वः । उषा । अनुष्टुप् । (ऋ.१।४९।१)

उषो भद्रेभिराऽऽ गहि दिवश्चिद् रोचनादधि ।
वहन्त्वरुणप्सव उप त्वा सोमिनो गृहम् ॥ १ ॥

श्यावाश्व आत्रेयः । मरुतः । बृहती । (ऋ.५।५६।१)

[२७५] अग्ने शर्धन्तमा गणं पिष्टं रुक्मेभिरञ्जिभिः ।
विशो अद्य मरुतामव ह्वये दिवश्चिद् रोचनादधि ॥१॥

सध्वंसः काण्वः । अश्विनौ । अनुष्टुप् । (ऋ.८।८।७)

दिवश्चिद् रोचनादधि आ नो गन्तं स्वर्विदा ।
धीभिर्वत्स प्रचेतसा स्तोमेभिर्हवनश्रुता ॥ ७ ॥

मेधातिथिः काण्वः । मरुतः । गायत्री (ऋ.१।१५।२)

[५] मरुतः पिबत ऋतुना पोत्राद् यज्ञं पुनीतन ।
यूयं हि ष्ठा सुदानवः ॥ २ ॥

पुनर्वत्सः काण्वः । मरुतः । गायत्री (ऋ.८।७।१२)

[५७] यूयं हि ष्ठा सुदानवो रुद्रा ऋभुक्षणो दमे ।
उत प्रचेतसो मदे ॥ १२ ॥

ऋजिश्वा भरद्वाजः । विश्वेदेवाः । उष्णिक् (ऋ.६।५१।१५)

यूयं हि ष्ठा सुदानव इन्द्रज्येष्ठा अभिद्यवः ।
कर्ता नो अध्वन्ना सुगं गोपा अमा ॥ १५ ॥

कुसीदी काण्वः । विश्वेदेवाः । गायत्री (ऋ.८।८३।९)

यूयं हि ष्ठा सुदानव इन्द्रज्येष्ठा अभिद्यवः ।
अधा चिद्व उत ब्रुवे ॥ ९ ॥

कण्वो घौरः । मरुतः । गायत्री (ऋ.१।३७।४)

[९] प्र वः शर्धाय घृष्वये त्वेषद्युम्नाय शुष्मिणे ।
देवत्तं ब्रह्म गायत ॥ ४ ॥

मेधातिथिः काण्वः । इन्द्रः । गायत्री (ऋ.८।३२।२७)

प्र व उग्राय निष्टुरेऽषाळ्हाय प्रसक्षिणे ।
देवत्तं ब्रह्म गायत ॥ २७ ॥ (इन्द्रः२०६)

कण्वो घौरः । मरुतः । गायत्री । (ऋ.१।३७।१-५)

[६] क्रीळं वः शर्धो मारुतं अनर्वाणं रथेशुभम् ।
कण्वा अभि प्र गायत ॥ १ ॥

[१०] प्र शंसा गोष्वघ्न्यं क्रीळं यच्छर्धो मारुतम् ।
जम्भे रसस्य वावृधे ॥ ५ ॥

कण्वो घौरः । मरुतः । गायत्री (ऋ.१।३७।८)

[१३] येषामज्मेषु पृथिवी जुजुर्वाँ इव विश्पतिः ।
भिया यामेषु रेजते ॥ ८ ॥

सोभरिः काण्वः । मरुतः । ककुप् (ऋ ८।२०।५)

[८६] अच्युता चिद् वो अज्मन्ना नानदति पर्वतासो वनस्पतिः ।
भूमिर्यामेषु रेजते ॥ ५ ॥

कण्वो घौरः । मरुतः । गायत्री (ऋ.१।३७।११)

[१६] त्यं चिद् घा दीर्घं पृथुं मिहो नपातममृधम् ।
प्र च्यावयन्ति यामभिः ॥ ११ ॥

श्यावाश्व आत्रेयः । मरुतः । बृहती (ऋ.५।५६।४)

[२७८] नि ये रिणन्त्योजसा वृथा गावो न दुर्धुरः ।
अश्मानं चित्स्वर्यं पर्वतं गिरिं प्र च्यावयन्ति यामभिः॥४॥

कण्वो घौरः । मरुतः । गायत्री (ऋ.१।३७।१२)

[१७] मरुतो यद्ध वो बलं जनाँ अचुच्यवीतन ।
गिरीँरचुच्यवीतन ॥ १२ ॥

पुनर्वत्सः काण्वः । मरुतः । गायत्री (ऋ.८।७।११)

[५६] मरुतो यद्ध वो दिवः सुम्नायन्तो हवामहे ।
आ तू न उप गन्तन ॥११॥

कण्वो घौरः । मरुतः । गायत्री (ऋ.१।३८।१)

[२१] कद्ध नूनं कधप्रियः पिता पुत्रं न हस्तयोः ।
दधिध्वे वृक्तबर्हिषः ॥ १ ॥

पुनर्वत्सः काण्वः । मरुतः । गायत्री (ऋ.८।७।३१)

[७६] कद्ध नूनं कधप्रियो यदिन्द्रमजहातन ।
को वः सखित्व ओहते ॥३१॥

कण्वो घौरः । मरुतः । बृहती (ऋ.१।३९।५)

[४०] प्र वेपयन्ति पर्वतान् वि विञ्चन्ति वनस्पतीन् ।
प्रो आरत **मरुतो** दुर्मदा इव **देवासः सर्वया विशा** ॥५॥

वसूयव आत्रेयाः । विश्वेदेवाः । गायत्री (ऋ.५।२६।९)

एवं मरुतो अश्विना मित्रः सीदन्तु वरुणः ।
देवासः सर्वया विशा ॥ ९ ॥

पुनर्वत्सः काण्वः । मरुतः । गायत्री (ऋ.८।७।४)

[४९] वपन्ति **मरुतो** मिहं **प्र वेपयन्ति पर्वतान्** ।
यद् यामं यान्ति वायुभिः ॥ ४ ॥

कण्वो घौरः । मरुतः । सतोबृहती (ऋ.१।३९।६)

[४१] **उपो रथेषु पृषतीरयुग्ध्वं प्रष्टिर्वहति रोहितः** ।
आ वो यामाय पृथिवी चिदश्रोद् अबीभयन्त मानुषाः ॥६॥

गोतमो राहूगणः । मरुतः । त्रिष्टुप् (ऋ.१।८५।५)

[१२७] प्र यद् **रथेषु पृषतीरयुग्ध्वं** वाजे अद्रिं मरुतो रंहयन्तः ।
उतारुषस्य वि ष्यन्ति धाराः चर्मेवोदभिर्व्युन्दन्ति भूम ॥५॥

पुनर्वत्सः काण्वः । मरुतः । गायत्री (ऋ.८।७।२८)

[७३] यदेषां **पृषती रथे प्रष्टिर्वहति रोहितः** ।
यान्ति शुभ्रा रिणन्नपः ॥२८॥

कण्वो घौरः । मरुतः । सतोबृहती (ऋ.१।३९।७)

[४२] आ वो मक्षू तनाय कं रुद्रा **अवो वृणीमहे** ।
गन्ता नूनं नोऽवसा यथा पुरेत्था कण्वाय बिभ्युषे ॥७॥

कण्वो घौरः । पूषा । गायत्री (ऋ.१।४२।५)

आ तत् ते दस्र मन्तुमः **पूषन्नवो वृणीमहे** ।
येन पितॄनचोदयः ॥५॥

नोधा गौतमः । मरुतः । जगती (ऋ.१।६४।४)

[१११] चित्रैरञ्जिभिर्वपुषे व्यञ्जते **वक्षःसु रुक्माँ** अधि येतिरे **शुभे** । अंसेष्वेषां नि मिमृक्षुर्ऋष्टयः साकं जज्ञिरे स्वधया दिवो नरः ॥४॥

श्यावाश्व आत्रेयः । मरुतः । जगती (ऋ.५।५४।११)

[२६०] अंसेषु व ऋष्टयः पत्सु खादयो **वक्षःसु रुक्मा** मरुतो **शुभः** । अग्निभ्राजसो विद्युतो गभस्त्योः शिप्राः शीर्षसु रथे वितता हिरण्ययीः ॥११॥

नोधा गौतमः । मरुतः । जगती (ऋ.१।६४।६)

[११३] पिन्वन्त्यपो मरुतः सुदानवः पयो घृतवद् विदथेष्वाभुवः ।
अत्यं न मिहे विनयन्ति वाजिनमुत्सं **दुहन्ति स्तनयन्तमक्षितम्** ॥६॥

हरिमन्त आङ्गिरसः । पवमानः सोमः । जगती (ऋ. ९।७२।६)

अंशुं **दुहन्ति स्तनयन्तमक्षितं** कविं कवयोऽपसो मनीषिणः । समी गावो मतयो यन्ति संयत ऋतस्य योना सदने पुनर्भुवः ॥६॥

नोधा गौतमः । मरुतः । जगती (ऋ.१।६४।१२)

[११९] घृषुं पावकं वनिनं विचर्षणिं **रुद्रस्य सूनुं हवसा** गृणीमसि । रजस्तुरं तवसं **मारुतं** गणमृजीषिणं वृषणं सश्चत श्रिये ॥१२॥

बार्हस्पत्यो भारद्वाजः । मरुतः । त्रिष्टुप् (ऋ.६।६६।११)

[३४४] तं वृधन्तं **मारुतं** भ्राजदृष्टिं **रुद्रस्य सूनुं हवसा** विवासे । दिवाय शर्धाय शुचयो मनीषा गिरयो नाप उग्रा अस्पृध्रन् ॥११॥

नोधा गौतमः । मरुतः । जगती (ऋ.१।६४।१३)

[१२०] प्र नू स मर्तः शवसा जनाँ अति तस्थौ व ऊती **मरुतो यमावत** अर्वद्भिर्वाजं **भरते धना नृभि**रापृच्छ्यं क्रतुमा क्षेति पुष्यति ॥१३॥

अगस्त्यो मैत्रावरुणिः । मरुतः । जगती (ऋ.१।१६६।८)

[१६५] शतभुजिभिस्तमभिह्रुतेरघात पूर्भी रक्षता **मरुतो यमावत** । जनं यमुग्रास्तवसो विरप्शिनः पाथना शंसात् तनयस्य पुष्टिषु ॥८॥

गृत्समदः शौनकः । ब्रह्मणस्पतिः । जगती (ऋ. २।२६।३)

स इज्जनेन स विशा स जन्मना स **पुत्रैर्वाजं भरते धना नृभिः** । देवानां यः पितरमा विवासति श्रद्धामना हविषा ब्रह्मणस्पतिम् ॥३॥

सुवेदाः शैरीषिः । इन्द्रः । जगती (ऋ.१०।१४७।४)

स इन्नु रायः सुभृतस्य चाकनन्मदं यो अस्य रंह्यं चिकेतति ।
त्वावृधो मघवन् दाश्वध्वरो मक्षू स **वाजं भरते धना नृभिः** ॥४॥

गोतमो राहूगणः । मरुतः । जगती (१।८५।२)

[१२४] त उक्षितासो **महिमानमाशत** दिवि रुद्रासो अधि चक्रिरे सदः । अर्चन्तो अर्कं जनयन्त इन्द्रियमधि श्रियो दधिरे पृश्निमातरः ॥२॥

सुपर्णः काण्वः । इन्द्रावरुणौ । जगती (ऋ. ८।५९ [वाल. ११] । २)

निष्षिध्वरीरोपधीराप आस्तामिन्द्रावरुणा **महिमानमाशत** ।

या सिन्नत् रजसः पारे अध्वनो ययोः शत्रुर्नकिरादेव ओहते ॥२॥

गोतमो राहूगणः । मरुतः । त्रिष्टुप् (ऋ.१।८५।५)

[१२७] प्र यद् **रथेषु पृषतीरयुग्ध्वं** वाजे अद्रिं मरुतो रंहयन्तः ।
उतारुषस्य वि ष्यन्ति धाराश्चर्मेवोदभिर्व्युन्दन्ति भूम ॥५॥

कण्वो घौरः । मरुतः । सतोबृहती (ऋ.१।३९।६)

[४१] उपो **रथेषु पृषतीरयुग्ध्वं प्रष्टिर्वहति रोहितः ।**
आ वो यामाय पृथिवी चिदश्रोद् अबीभयन्त मानुषाः ॥६॥

पुनर्वत्सः काण्वः । मरुतः । गायत्री (ऋ.८।७।२८)

[७३] यदेषां **पृषती रथे प्रष्टिर्वहति रोहितः ।**
यान्ति शुभ्रा रिणन्नपः ॥२८॥

गोतमो राहूगणः । मरुतः । जगती (ऋ. १।८५।८)

[१३०] शूरा इवेद् युयुधयो न जग्मयः श्रवस्यवो न पृतनासु येतिरे । **भयन्ते विश्वा भुवना** मरुद्भ्यो राजान इव त्वेषसंदृशो नरः ॥८॥

अगस्त्यो मैत्रावरुणिः । मरुतः । जगती (ऋ.१।१६६।४)

[१६१] आ ये रजांसि तविषीभिरव्यत प्र व एवासः स्वयतासो अध्रजन् । **भयन्ते विश्वा भुवनानि** हर्म्या चित्रो वो यामः प्रयतास्वृष्टिषु ॥४॥

गोतमो राहूगणः । मरुतः । जगती (ऋ.१।८५।९)

[१३१] त्वष्टा यद् वज्रं सुकृतं हिरण्ययं सहस्रभृष्टिं स्वपा अवर्तयत् ।
धत्त इन्द्रो नर्यपांसि कर्तवेऽ**हन् वृत्रं निरपामौब्जद्-र्णवम्** ॥५॥

सव्य आङ्गिरसः । इन्द्रः । जगती (ऋ.१।५६।५)

वि यत् तिरो धरुणमच्युतं रजोऽतिष्ठिपो दिव आतासु बर्हणा ।
स्वर्मीळ्हे यन्मद इन्द्र हर्ष्या**हन् वृत्रं निरपामौब्जो अर्णवम्** ॥९॥

गोतमो राहूगणः । मरुतः । गायत्री (ऋ.१।८६।३)

[१३७] उत वा यस्य वाजिनोऽनु विप्रमतक्षत ।
स गन्ता **गोमति व्रजे** ॥३॥

वसिष्ठो मैत्रावरुणिः । इन्द्रः । सतोबृहती

नकिः सुदासो रथं पर्यास न रीरमत् । (ऋ. ७।३२।१०)
इन्द्रो यस्याविता यस्य मरुतो गमत् स **गोमति व्रजे**॥१०॥

वशोऽश्व्यः । इन्द्रः । सतोबृहती (ऋ.८।४६।९)

यो दुष्टरो विश्ववार श्रवाय्यो वाजेष्वस्ति तरुता ।
स नः शविष्ठ सवना वसो गहि गमेम **गोमति व्रजे** ॥९॥

श्रुष्टिगुः काण्वः । इन्द्रः । बृहती (ऋ.८।५१ [वाल.३] । ५)

यो नो दाता वसूनामिन्द्रं तं हूमये वयम् ।
विद्मा ह्यस्य सुमतिं नवीयसीं गमेम **गोमति व्रजे** ॥५॥

गोतमो राहूगणः । मरुतः । गायत्री (ऋ.१।८६।४)

[१३८] अस्य वीरस्य बर्हिषि **सुतः सोमो दिविष्टिषु ।**
उक्थं मदश्च शस्यते ॥ ४ ॥

कुरुसुतिः काण्वः । इन्द्रः । गायत्री (ऋ.८।७६।९)

पिबेन्द्र मरुत्सखा **सुतं सोमं दिविष्टिषु ।**
वज्रं शिशान ओजसा ॥ ९ ॥

वामदेवो गौतमः । इन्द्राबृहस्पतिः । गायत्री (ऋ.४।४९।१)

इदं वामास्ये हविः प्रियमिन्द्राबृहस्पती ।
उक्थं मदश्च शस्यते ॥१॥

गोतमो राहूगणः । मरुतः । गायत्री [ऋ.१।८६।५)

[१३९] अस्य श्रोषन्त्वाभुवो **विश्वा यश्चर्षणीरभि ।**
सूरं चित् सस्रुषीरिषः ॥ ५ ॥

वामदेवो गौतमः । अग्निः । अनुष्टुप् (ऋ.४।७।४)

आशुं दूतं विवस्वतो **विश्वा यश्चर्षणीरभि ।**
आ जभ्रुः केतुमायवो भृगवाणं विशेविशे ॥ ४ ॥

द्युम्नो विश्वचर्षणिरात्रेयः । अग्निः । अनुष्टुप् (ऋ. ५।२३।१)

अग्ने सहन्तमा भर द्युम्नस्य प्रासहा रयिम् ।
विश्वा यश्चर्षणीरभ्यासा वाजेषु सासहत् ॥१॥

गोतमो राहूगणः । मरुतः । जगती (ऋ.१।८७।४)

[१४८] स हि स्वसृत् पृषदश्वो युवा गणोऽया ईशानस्तविषीभिरावृतः । **असि सत्य ऋणयावा**नेद्योऽस्या धियः प्राविताथा वृषा गणः ॥४॥

गृत्समदः शौनकः । ब्रह्मणस्पतिः । जगती (ऋ. २।२३।११)

अनानुदो वृषभो जग्मिराहवं निष्टप्ता शत्रुं पृतनासु सासहिः ।
असि सत्य ऋणया ब्रह्मणस्पत उग्रस्य चिद्दमिता वीळु-हर्षिणः ॥ ११ ॥

अगस्त्यो मैत्रावरुणिः । मरुतः । त्रिष्टुप् (ऋ.१।१६८।९)

[१९१] असूत पृश्निर्महते रणाय त्वेषमयासां मरुतामनीकम् ।

ते अप्स्वरासो अग्रयन्त काव्यमादित् स्वधामिषिरां पर्यपश्यन् ॥ ९ ॥

भुवन आप्त्यः, साधनो वा भौवनः । विश्वेदेवाः ।
द्विपदा त्रिष्टुप् (ऋ. १०।१५७।५)

प्रत्यौहतामश्विना मृत्युमस्माद्देवानामग्ने भिषजा शचीभिः ॥ ५ ॥ ...

अगस्त्यो मैत्रावरुणिः । मरुतः । त्रिष्टुप् (ऋ. १।१६८।१०)

[१९२] एष वः स्तोमो मरुत इयं गीर्मान्दार्यस्य मान्यस्य कारोः ।
एषा यासीष्ट तन्वे वयां विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ॥१०॥

[१७२] एष वः ... जीरदानुम् । (ऋ. १।१६६।१५)
[१८१] एष वः ... जीरदानुम् । (ऋ. १।१६७।११)

अगस्त्यो मैत्रावरुणिः । मरुत्वानिन्द्रः । त्रिष्टुप्
एष वः ... जीरदानुम् ॥१५॥ (ऋ. १।१६५।१५)

गृत्समदः (आङ्गिरसः शौनहोत्रः पश्चाद् भार्गवः)
शौनकः । मरुतः । जगती (ऋ. २।२०।११)

[१९८] तं वः शर्धं मारुतं सुम्नयुर्गिरोप ब्रुवे नमसा दैव्यं जनम् ।
यथा रयिं सर्ववीरं नशामहा अपत्यसाचं श्रुत्यं दिवेदिवे ॥११॥

श्यावाश्व आत्रेयः । मरुतः । ककुप् (ऋ. ५।५३।१०)
तं वः शर्धं रथानां त्वेषं गणं मारुतं नव्यसीनाम् ।
अनु प्र यन्ति वृष्टयः ॥१०॥

गृत्समदः (आङ्गिरसः शौनहोत्रः पश्चाद् भार्गवः)
शौनकः । मरुतः । जगती (ऋ. २।३४।४)

[२०२] पृक्षे ता विश्वा भुवना ववक्षिरे मित्राय वा सदमा जीरदानवः । पृषदश्वासो अनवभ्रराधस ऋजिप्यासो न वयुनेषु धूर्षदः ॥४॥

गाथिनो विश्वामित्रः । मरुतः । जगती (ऋ. ३।२६।६)

[२१६] व्रातंव्रातं गणंगणं सुशस्तिभिरग्नेर्भामं मरुतामोज ईमहे ।
पृषदश्वासो अनवभ्रराधसो गन्तारो यज्ञं विदथेषु वीराः ॥६॥

गाथिनो विश्वामित्रः । मरुतः । जगती (ऋ. ३।२६।६)
[२१६] व्रातंव्रातं गणंगणं सुशस्तिभिरग्नेर्भामं मरुतामोज ईमहे । पृषदश्वासो अनवभ्रराधसो गन्तारो यज्ञं विदथेषु वीराः ॥६॥

गृत्समदः (आङ्गिरसः शौनहोत्रः पश्चाद् भार्गवः)
शौनकः । मरुतः । जगती (ऋ. २।३४।४)
[२०२] पृक्षे ता विश्वा भुवना ववक्षिरे मित्राय वा सदमा जीरदानवः । पृषदश्वासो अनवभ्रराधस ऋजिप्यासो न वयुनेषु धूर्षदः ॥ ४ ॥

श्यावाश्व आत्रेयः । मरुतः । अनुष्टुप् (ऋ.५।५२।४)

[२२०] मरुत्सु वो दधीमहि स्तोमं यज्ञं च धृष्णुया ।
विश्वे ये मानुषा युगा पान्ति मर्त्यं रिषः ॥४॥

भरद्वाजो बार्हस्पत्यः । अग्निः । गायत्री (ऋ. ६।१६।२२)
प्र वः सखायो अग्नये स्तोमं यज्ञं च धृष्णुया ।
अर्च गाय च वेधसे ॥२२॥

श्यावाश्व आत्रेयः । मरुतः । ककुप् (ऋ.५।५३।१०)

[२४३] तं वः शर्धं रथानां त्वेषं गणं मारुतं नव्यसीनाम् ।
अनु प्र यन्ति वृष्टयः ॥१०॥ (ऋ. ५।५८।१)

[२९२] तमु नूनं तविषीमन्तमेषां स्तुषे गणं मारुतं नव्यसीनाम् ।
य आश्वश्वा अमवद् वहन्त उतेशिरे अमृतस्य स्वराजः ॥१॥

श्यावाश्व आत्रेयः । मरुतः । सतोबृहती (ऋ.५।५३।१३)

[२४९] स्तुहि भोजान्त्स्तुवतो अस्य यामनि रणन् गावो न यवसे ।
यतः पूर्वाँ इव सखीँरनु ह्वय गिरा गृणीहि कामिनः ॥१६॥

विमद ऐन्द्रः प्राजापत्यो वा, वसुकृद्वा वासुक्रः ।
सोमः । आस्तारपङ्क्तिः (ऋ.१०।२५।१)

भद्रं नो अपि वातय मनो दक्षमुत क्रतुम् ।
अधा ते सख्ये अन्धसो वि वो मदे
रणन् गावो न यवसे विवक्षसे ॥१॥

श्यावाश्व आत्रेयः । मरुतः । जगती (ऋ. ५।५४।११)

[२६०] अंसेषु व ऋष्टयः पत्सु खादयो वक्षःसु रुक्मा मरुतो रथे शुभः अग्निभ्राजसो विद्युतो गभस्त्योः
शिप्राः शीर्षसु वितता हिरण्ययीः ॥११॥

पुनर्वत्सः काण्वः । मरुतः । गायत्री (ऋ.८।७।२५)
विद्युद्धस्ता अभिद्यवः शिप्राः शीर्षन् हिरण्ययीः ।
शुभ्रा व्यञ्जत श्रिये ॥२५॥

श्यावाश्व आत्रेयः । मरुतः । जगती (ऋ.५।५५।१)
[२६५] प्रयज्यवो मरुतो भ्राजदृष्टयो बृहद्वयो दधिरे रुक्मवक्षसः ।
ईयन्ते अश्वैः सुयमेभिराशुभिः शुभं यातामनु रथा अवृत्सत ॥१॥

[२६६] स्वयं दधिध्वे...
......शुभं यातामनु रथा अवृत्सत ॥२॥

[२६७] साकं जाताः...
......शुभं यातामनु रथा अवृत्सत ॥३॥

[२६८] आभूषेण्यं वो...
......शुभं यातामनु रथा अवृत्सत ॥४॥

[२६९] उदीरयथा मरुतः...
......शुभं यातामनु रथा अवृत्सत ॥५॥

[२७०] यदश्वान् धूर्षु...
......शुभं यातामनु रथा अवृत्सत ॥६॥

[२७१] न पर्वता न नद्यो ...
......शुभं यातामनु रथा अवृत्सत ॥७॥

[२७२] यत् पूर्व्यं...
......शुभं यातामनु रथा अवृत्सत ॥८॥

[२७३] मृळत नो...
......शुभं यातामनु रथा अवृत्सत ॥९॥

श्यावाश्व आत्रेयः । मरुतः । जगती (ऋ. ५।५५।३)
[२६७] साकं जाताः सुभ्वः साकमुक्षिताः श्रिये चिदा प्रतरं वावृधुर्नरः ।
विरोकिणः सूर्यस्येव रश्मयः शुभं यातामनु रथा अवृत्सत ।

अरुणो वैतहव्यः । अग्निः । जगती (ऋ. १०।९१।४)
प्रजानन्नग्ने तव योनिमृत्वियमिळायास्पदे घृतवन्तमासदः ।
आ ते चिकित्र उषसामिवेतयोऽरेपसः सूर्यस्येव रश्मयः ॥४॥

श्यावाश्व आत्रेयः । मरुतः । जगती (ऋ. ५।५५।९)
[२७३] मृळत नो मरुतो मा वधिष्टनाऽस्मभ्यं शर्म बहुलं वि यन्तन ।
अधि स्तोत्रस्य सख्यस्य गातन शुभं यातामनु रथा अवृत्सत ॥९॥

ऋजिश्वा भारद्वाजः । विश्वे देवाः । त्रिष्टुप् (ऋ.६।५१।५)
द्यौष्पितः पृथिवि मातरध्रुगग्ने भ्रातर्वसवो मृळता नः ।
विश्वे आदित्या अदिते सजोषा अस्मभ्यं शर्म बहुलं वि यन्तन ॥५॥

स्यूमरश्मिर्भार्गवः । मरुतः । त्रिष्टुप् (ऋ.१०।७८।८)
[४२२] सुभागान्नो देवाः कृणुता सुरत्नानस्मान्स्तोतॄन् मरुतो वावृधानाः ।
अधि स्तोत्रस्य सख्यस्य गात सनाद्धि वो रत्नधेयानि सन्ति ॥८॥

श्यावाश्व आत्रेयः । मरुतः । त्रिष्टुप् (ऋ.५।५५।१०)
[२७४] यूयमस्मान् नयत वस्यो अच्छा निरंहतिभ्यो मरुतो गृणानाः ।
जुषध्वं नो हव्यदातिं यजत्रा वयं स्याम पतयो रयीणाम् ॥१०॥

वामदेवो गौतमः । बृहस्पतिः । त्रिष्टुप् (ऋ.४।५०।६)
एवा पित्रे विश्वदेवाय वृष्णे यज्ञैर्विधेम नमसा हविर्भिः ।
बृहस्पते सुप्रजा वीरवन्तो वयं स्याम पतयो रयीणाम् ॥६॥

श्यावाश्व आत्रेयः । मरुतः । बृहती (ऋ.५।५६।१)
[२७५] अग्ने शर्धन्तमा गणं पिष्टं रुक्मेभिरञ्जिभिः ।
विशो अद्य मरुतामव ह्वये दिवश्चिद्रोचनादधि ॥१॥

प्रस्कण्वः काण्वः । उषा । अनुष्टुप् (ऋ.१।४९।१)
उषो भद्रेभिरा गहि दिवश्चिद्रोचनादधि ।
वहन्त्वरुणप्सव उप त्वा सोमिनो गृहम् ॥१॥

श्यावाश्व आत्रेयः । मरुतः । बृहती (ऋ.५।५६।४)
[२७८] नि ये रिणन्त्योजसा वृथा गावो न दुर्धुरः ।
अश्मानं चित् स्वर्यं पर्वतं गिरिं प्र च्यावयन्ति यामभिः ॥ ४ ॥

कण्वो घौरः । मरुतः । गायत्री (ऋ.१।३७।११)
[१६] त्यं चिद् घा दीर्घं पृथुं मिहो नपातममृध्रम् ।
प्र च्यावयन्ति यामभिः ॥११॥

श्यावाश्व आत्रेयः । मरुतः । बृहती । (ऋ. ५।५६।६)
[२८०] युङ्ग्ध्वं ह्यरुषी रथे युङ्ग्ध्वं रथेषु रोहितः ।
युङ्ग्ध्वं हरी अजिरा धुरि वोळ्हवे वहिष्ठा धुरि वोळ्हवे ॥६॥

मेधातिथिः काण्वः । विश्वे देवा (विश्वैर्देवैः सहितोऽग्निः)।
गायत्री (ऋ. १।१४।१२)
युक्ष्वा ह्यरुषी रथे हरितो देव रोहितः ।
ताभिर्देवाँ इहा वह ॥१२॥

परुच्छेपो दैवोदासिः । वायुः । अत्यष्टिः (ऋ. १।१३४।३)
वायुर्युङ्क्ते रोहिता वायुररुणा वायू रथे अजिरा धुरि
वोळ्हवे वहिष्ठा धुरि वोळ्हवे ।
प्र बोधया पुरंधिं जार आ ससतीमिव ।
प्र चक्षय रोदसी वासयोषसः ॥३॥

श्यावाश्व आत्रेयः । मरुतः । त्रिष्टुप् (ऋ. ५।५७।७)
[२९०] गोमदश्वावद् रथवत् सुवीरं चन्द्रवत् राधो मरुतो ददा
नः ।
प्रशस्तिं नः कृणुत रुद्रियासो भक्षीय वोऽवसो
दैव्यस्य ॥७॥

वामदेवो गौतमः । इन्द्रः । त्रिष्टुप् (ऋ. ४।२१।१०)
एवा वस्व इन्द्रः सत्यः सम्राड्ढन्ता वृत्रं वरिवः पूरवे कः ।
पुरुष्टुत क्रत्वा नः शग्धि रायो भक्षीय तेऽवसो
दैव्यस्य ॥१०॥

श्यावाश्व आत्रेयः । मरुतः । त्रिष्टुप् (ऋ.५।५७।८)
[२९१] हये नरो मरुतो मृळता नस्तुवीमघासो
अमृता ऋतज्ञाः ।
सत्यश्रुतः कवयो युवानो बृहद्गिरयो बृहदु-
क्षमाणाः ॥८॥

[२९२] हये नरो मरुतो ...
.. बृहदुक्षमाणाः ॥८॥

श्यावाश्व आत्रेयः । मरुतः । त्रिष्टुप् (ऋ. ५।५८।१)
[२९२] तमु नूनं तविषीमन्तमेषां स्तुषे गणं मारुतं नव्यसी-
नाम् ।
य आश्वश्वा अमवद् वहन्त उतेशिरे अमृतस्य स्वराजः॥१

ककुप् (ऋ.५।५३।१०)
[२४३] तं वः शर्धं रथानां त्वेषं गणं मारुतं नव्यसीनाम्।
अनु प्र यन्ति वृष्टयः ॥१०॥

एवयामरुदात्रेयः । मरुतः । अतिजगती (ऋ. ५।८७।२)
[३१९] प्र ये जाता महिना ये च नु स्वयं प्र विद्मना ब्रुवत
एवयामरुत् ।
क्रत्वा तद् वो मरुतो नाधृषे शवो दाना मह्ना तदेषा-
मधृष्टासो नाद्रयः ॥२॥

सोभरिः काण्वः । मरुतः । सतो विराट् (ऋ ८।२०।१४)
[९५] तान् वन्दस्व मरुतस्ताँ उपस्तुहि तेषां हि धुनीनाम् ।
अराणां न चरमस्तदेषां दाना मह्ना तदेषाम् ॥१४॥

एवयामरुत् आत्रेयः । मरुतः । अतिजगती (ऋ. ५।८७।५)
[३२२] स्वनो न वोऽमवान् रेजयद् वृषा त्वेषो ययिस्तविष
एवयामरुत् ।
येना सहन्त ऋञ्जत स्वरोचिषः स्थारश्मानो हिरण्ययाः
स्वायुधास इष्मिणः ॥५॥

मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । मरुतः । द्विपदा विराट् (ऋ.७।५६।११)
[३५५] स्वायुधास इष्मिणः सुनिष्का उत स्वयं तन्वः
शुम्भमानाः ॥११॥

बार्हस्पत्यो भरद्वाजः । मरुतः । त्रिष्टुप् (ऋ. ६।६६।१)
[३३४] वपुर्नु तच्चिकितुषे चिदस्तु समानं नाम धेनु पत्यमानम्।
मर्तेष्वन्यद् दोहसे पीपाय सकृच्छुक्रं दुदुहे पृश्निरूधः॥१

वामदेवो गौतमः । अग्निः । त्रिष्टुप् (ऋ.४।३।१०)
ऋतेन हि ष्मा वृषभश्चिदक्तः पुमाँ अग्निः पयसा पृष्ठ्येन ।
अस्पन्दमानो अचरद् वयोधा वृषा शुक्रं दुदुहे पृश्निरूधः
॥१०॥

बार्हस्पत्यो भरद्वाजः । मरुतः । त्रिष्टुप् (ऋ. ६।६६।८)
[३४१] नास्य वर्ता न तरुता न्वस्ति मरुतो यमवथ
वाजसातौ ।
तोके वा गोषु तनये यमप्सु स व्रजं दर्ता पार्ये अध
द्योः ॥८॥

कण्वो घौरः । ब्रह्मणस्पतिः । सतो बृहती (ऋ १।४०।८)
उप क्षत्रं पृञ्चीत हन्ति राजभिर्भये चित् सुक्षितिं दधे ।
नास्य वर्ता न तरुता महाधने नार्भे अस्ति वज्रिणः॥८॥

लुशो धानाकः । विश्वे देवाः । त्रिष्टुप् (ऋ.१०।३५।१४)
यं देवासोऽवथ वाजसातौ यं त्रायध्वे यं पिपृथात्यंहः ।
यो वो गोपीथे न भयस्य वेद ते स्याम देववीतये तुरासः
॥ १४ ॥

गयः प्लातः । विश्वे देवाः । जगती (ऋ. १०।६३।१४)
यं देवासोऽवथ वाजसातौ यं शूरसाता मरुतो हिते धने ।
प्रातर्यावाणं रथमिन्द्र सानसिमरिष्यन्तमा रुहेमा स्वस्तये ॥१४॥

भरद्वाजो बार्हस्पत्यः । इन्द्रः । त्रिष्टुप् (ऋ. ६।२५।४)
शूरो वा शूरं वनते शरीरैस्तनूरुचा तरुषि यत् कृण्वैते ।
तोके वा गोषु तनये यदप्सु वि क्रन्दसी उर्वरासु
ब्रवैते ॥ ४ ॥

बार्हस्पत्यो भरद्वाजः । मरुतः । त्रिष्टुप् (ऋ. ६।६६।११)

[३४४] तं वृधन्तं मारुतं भ्राजदृष्टिं **रुद्रस्य सूनुं हवसा** विवासे ।

दिवः शर्धाय शुचयो मनीषा गिरयो नाप उग्रा अस्पृध्रन् ॥ ११ ॥

नोधा गौतमः । मरुतः । जगती (ऋ.१।६४।१२)

[११९] घृषुं पावकं वनिनं विचर्षणिं **रुद्रस्य सूनुं हवसा** गृणीमसि ।

रजस्तुरं तवसं मारुतं गणमृजीषिणं वृषणं सश्चत श्रिये ॥१२॥

मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । मरुतः । द्विपदा विराट् (ऋ.७।५६।११)

[३५५] **स्वायुधास इष्मिणः** सुनिष्का उत स्वयं तन्वः शुम्भमानाः ॥११॥

एवयामरुदात्रेयः । मरुतः । अति जगती (ऋ.५।८७।५)

[३२१] स्वनो न वोऽमवान् रेजयद् वृषा त्वेषो ययिस्तविष एवयामरुत् ।

येना सहन्त ऋञ्जत स्वरोचिषः स्थारश्मानो हिरण्ययाः **स्वायुधास इष्मिणः** ॥५॥

मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । मरुतः । त्रिष्टुप् (ऋ.७।५६।२३)

[३६७] भूरि चक्र मरुतः पित्र्याण्युक्थानि या वः शस्यन्ते पुरा चित् ।

मरुद्भिरुग्रः पृतनासु साळ्हा मरुद्भिरित् **सनिता वाजमर्वा** ॥२३॥

शुनहोत्रो भारद्वाजः । इन्द्रः । त्रिष्टुप् (ऋ. ६।३३।२)

त्वां हीन्द्रावसे विवाचो हवन्ते चर्षणयः शूरसातौ ।

त्वं विप्रेभिर्वि पणीँरशायस्त्वोत इत् **सनिता वाजमर्वा** ॥२॥

मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । मरुतः । त्रिष्टुप् (ऋ. ७।५६।२५)

[३६९] **तन्न इन्द्रो वरुणो मित्रोऽग्निराप ओषधीर्वनिनो जुषन्त ।**

शर्मन्त्स्याम मरुतामुपस्थे यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥२५॥

मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । विश्वे देवाः । त्रिष्टुप् (ऋ.७।३४।२५)

तन्न इन्द्रो ..

...सदा नः ॥२५॥

वसुकर्णो वासुक्रः । विश्वे देवाः । जगती (ऋ.१०।६६।९)

द्यावापृथिवी जनयन्नभि **व्रताप ओषधीर्वनिनानि** यज्ञिया ।

अन्तरिक्षं स्वरा पप्रुरूतये वशं देवासस्तन्वी नि मामृजुः ॥९॥

मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । मरुतः । त्रिष्टुप् (ऋ.७।५७।४)

[३७२] ऋधक् सा वो मरुतो दिद्युदस्तु **यद् व आगः पुरुषता कराम** ।

मा वस्तस्यामपि भूमा यजत्रा **अस्मे वो अस्तु सुमतिश्चनिष्ठा** ॥४॥

शङ्खो यामायनः । पितरः । त्रिष्टुप् (ऋ.१०।१५।६)

आच्या जानु दक्षिणतो निषद्येमं यज्ञमभि गृणीत विश्वे ।

मा हिंसिष्ट पितरः केन चिन्नो **यद् व आगः पुरुषता कराम** ॥६॥

मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । अश्विनौ । त्रिष्टुप् (ऋ.७।७०।५)

शुश्रुवांसा चिदश्विना पुरूण्यभि ब्रह्माणि चक्षाथे ऋषीणाम् ।

प्रति प्र यातं वरमा जनायास्मे **वामस्तु सुमतिश्चनिष्ठा** ॥५॥

मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । मरुतः । त्रिष्टुप् (ऋ. ७।५७।७)

[३७६] आ स्तुतासो **मरुतो विश्व ऊती** अच्छा सूरीन्त्सर्वताता जिगात ।

ये नस्त्मना शतिनो वर्धयन्ति यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥७॥

अत्रिर्भौमः । विश्वे देवाः । त्रिष्टुप् (ऋ. ५।४३।१०)

आ नामभिर्मरुतो वक्षि विश्वाना रूपेभिर्जातवेदो हुवानः ।

यज्ञं गिरो जरितुः सुष्टुतिं च विश्वे गन्त **मरुतो विश्व ऊती** ॥१०॥

मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । मरुतः । त्रिष्टुप् (ऋ. ७।५८।३)

[३७९] बृहद् वयो मघवद्भ्यो दधात जुजोषन्निन्मरुतः सुष्टुतिं नः ।

गतो नाध्वा वि तिराति जन्तुं **प्र णः स्पार्हाभिरूतिभिस्तिरेत** ॥३॥

मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । इन्द्रावरुणौ । त्रिष्टुप् (ऋ.७।८४।३)

कृतं नो यज्ञं विदथेषु चारुं कृतं ब्रह्माणि सूरिषु प्रशस्ता ।

उपो रयिर्देवजूतो न एतु **प्र णः स्पार्हाभिरूतिभिस्तिरेतम्** ॥ ३ ॥

मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । मरुतः । त्रिष्टुप् (ऋ. ५।५८।६)

[३८२] प्र सा वाचि सुष्टुतिर्मघोनामिदं सूक्तं मरुतो जुषन्त ।
आराच्चिद् द्वेषो वृषणो **युयोत** यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥६॥

गर्गो भारद्वाजः । इन्द्रः । त्रिष्टुप् (ऋ. ६।४७।१३)
तस्य वयं सुमतौ यज्ञियस्यापि भद्रे सौमनसे स्याम ।
स सुत्रामा स्ववाँ इन्द्रो अस्मे **आराच्चिद् द्वेषः** सनुतर्युयोतु ॥१३॥

मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । मरुतः । सतोबृहती (ऋ.७।५९।२)

[२८४] **युष्माकं देवा अवसाहनि प्रिय** ईजानस्तरति द्विषः ।
प्र स क्षयं तिरते वि महीरिषो यो वो वराय दाशति ॥ २ ॥

कुत्स आङ्गिरसः । ऋभवः । जगती (ऋ. १।११०।७)
ऋभुर्न इन्द्रः शवसा नवीयानृभुर्वाजेभिर्वसुभिर्वसुर्ददिः ।
युष्माकं देवा अवसाहनि प्रियेभि तिष्ठेम पृत्सुतीरसुन्वताम् ॥७॥

मनुर्वैवस्वतः । विश्वे देवाः । सतो बृहती (ऋ. ८।२७।१६)
प्र स क्षयं तिरते वि महीरिषो यो वो वराय दाशति ।
प्र प्रजाभिर्जायते धर्मणस्पर्यरिष्टः सर्व एधते ॥१६॥

पुनर्वत्सः काण्वः । मरुतः । गायत्री (ऋ. ८।७।१)

[४६] **प्र यद् वस्त्रिष्टुभं** मरुतो विप्रो अक्षरत् ।
वि पर्वतेषु राजथ ॥१॥

प्रियमेध आङ्गिरसः । इन्द्रः । अनुष्टुप् (ऋ. ८।६९।१)
प्रप्र वस्त्रिष्टुभमिषं मन्दद्वीरायेन्दवे ।
धिया वो मेधसातये पुरंध्या विवासति ॥१॥

पुनर्वत्सः काण्वः । मरुतः । गायत्री (ऋ. ८।७।२)

[४७] **यदङ्ग तविषीयवो यामं शुभ्रा अचिध्वम् ।**
नि पर्वता अहासत ॥२॥

वत्सः काण्वः । इन्द्रः । गायत्री (ऋ. ८।६।२६)
यदङ्ग तविषीयस इन्द्र प्रराजसि क्षितीः ।
महाँ अपार ओजसा ॥२६॥

पुनर्वत्सः काण्वः । मरुतः । गायत्री (ऋ. ८।७।१४)

[५९] अधीव यद् गिरीणां **यामं शुभ्रा अचिध्वम्** ।
सुवानैर्मन्दध्व इन्दुभिः ॥१४॥

पुनर्वत्सः काण्वः । मरुतः । गायत्री (ऋ. ८।७।३)

[४८] उदीरयन्त वायुभिर्वाश्रासः पृश्निमातरः ।
धुक्षन्त पिप्युषीमिषम् ॥३॥

नारदः काण्वः । इन्द्रः । उष्णिक् (ऋ. ८।१३।२५)
वर्धस्वा सु पुरुष्टुत ऋषिष्टुताभिरूतिभिः ।
धुक्षस्व पिप्युषीमिषमवा च नः ॥२५॥

मातरिश्वा काण्वः । इन्द्रः । बृहती (ऋ.८।५४[वाल०६]।७)
सन्ति ह्यर्य आशिष इन्द्र आयुर्जनानाम् ।
अस्मान्नक्षस्व मघवन्नुपावसे **धुक्षस्व पिप्युषीमिषम्**॥७॥

अमहीयुराङ्गिरसः । पवमानः सोमः । गायत्री (ऋ. ९।६१।१५)
अर्षाणः सोम शं गवे **धुक्षस्व पिप्युषीमिषम्** ।
वर्धा समुद्रमुक्थ्यम् ॥१५॥

पुनर्वत्सः काण्वः । मरुतः गायत्री (ऋ. ८।७।४)

[४९] वपन्ति मरुतो मिहं **प्र वेपयन्ति पर्वतान्** ।
यद् यामं यान्ति वायुभिः ॥४॥

कण्वो घौरः । मरुतः । बृहती (ऋ. १।३९।५)

[४०] **प्र वेपयन्ति पर्वतान्** वि विञ्चन्ति वनस्पतीन् ।
प्रो आरत मरुतो दुर्मदा इव देवासः सर्वया विशा ॥५॥

पुनर्वत्सः काण्वः । मरुतः । गायत्री (ऋ. ८।७।८)

[५३] सृजन्ति रश्मिमोजसा पन्थां सूर्याय यातवे ।
ते भानुभिर्वि तस्थिरे ॥८॥

पुनर्वत्सः काण्वः । मरुतः । गायत्री (ऋ. ८।७।३६)

[८१] अग्निर्हि जानि पूर्व्यश्छन्दो न सूरो अर्चिषा ।
ते भानुभिर्वि तस्थिरे ॥३६॥

पुनर्वत्सः काण्वः । मरुतः । गायत्री (ऋ.८।७।१०)

[५५] त्रीणि सरांसि पृश्नयो **दुदुह्रे वज्रिणे मधु** ।
उत्सं कवन्धमुद्रिणम् ॥१०॥

प्रियमेध आङ्गिरसः । इन्द्रः । गायत्री (ऋ. ८।६९।६)
इन्द्राय गाव आशिरं **दुदुह्रे वज्रिणे मधु** ।
यत् सीमुपह्वरे विदत् ॥६॥

पुनर्वत्सः काण्वः । मरुतः । गायत्री (ऋ.८।७।११)

[५६] **मरुतो यद्ध वो** दिवः सुम्नायन्तो हवामहे ।
आ तू न उप गन्तन ॥११॥

कण्वो घौरः । मरुतः । गायत्री (ऋ. १।३७।१२)

[१७] **मरुतो यद्ध वो** बलं जनाँ अचुच्यवीतन ।
गिरीँरचुच्यवीतन ॥१२॥

पुनर्वत्सः काण्वः । मरुतः । गायत्री (ऋ. ८।७।१२)

[५७] **यूयं हि ष्ठा सुदानवो** रुद्रा ऋभुक्षणो दमे ।
उत प्रचेतसो मदे ॥१२॥

मेधातिथिः काण्वः । मरुतः । गायत्री (ऋ. १।१५।२)

[५] मरुतः पिबत ऋतुना पोत्राद् यज्ञं पुनीतन ।
यूयं हि ष्ठा सुदानवः ॥२॥

पुनर्वत्सः काण्वः । मरुतः । गायत्री (ऋ.८।७।१३

[५८] आ नो **रयिं** मदच्युतं **पुरुक्षुं विश्वधायसम्** ।
इयर्ता मरुतो दिवः ॥१३॥

ब्रह्मातिथिः काण्वः । अश्विनौ । गायत्री (ऋ. ८।५।१५)

अस्मे आ वहतं **रयिं** शतवन्तं सहस्रिणम् ।
पुरुक्षुं विश्वधायसम् ॥१५॥

पुनर्वत्सः काण्वः । मरुतः । गायत्री (ऋ.८।७।१५)

[६०] एतावतश्चिदेषां **सुम्नं भिक्षेत मर्त्यः** ।
अदाभ्यस्य मन्मभिः ॥१५॥

इरिम्बिठिः काण्वः । आदित्याः । उष्णिक् (ऋ.८।१८।१)

इदं ह नूनमेषां **सुम्नं भिक्षेत मर्त्यः** ।
आदित्यानामपूर्व्यं सवीमनि ॥१॥

पुनर्वत्सः काण्वः । मरुतः । गायत्री (ऋ. ८।७।२०)

[६५] क्व नूनं सुदानवो मदथा वृक्तबर्हिषः ।
ब्रह्मा को वा सपर्यति ॥२०॥

प्रगाथः काण्वः । इन्द्रः । गायत्री (ऋ. ८।६४।७)

क्व स्य वृषभो युवा तुविग्रीवो अनानतः ।
ब्रह्मा कस्तं सपर्यति ॥७॥

पुनर्वत्सः काण्वः । मरुतः । गायत्री (ऋ. ८।७।२२)

[६७] समु त्ये महतीरपः **सं क्षोणी समु सूर्यम्** ।
सं वज्रं पर्वशो दधुः ॥२२॥

आयुः काण्वः । इन्द्रः । सतोबृहती ।
(ऋ. ८।५२ [वाल. ४] । १०)

समिन्द्रो रायो बृहतीरधूनुत **सं क्षोणी समु सूर्यम्** ।
सं शुक्रासः शुचयः **सं** गवाशिरः सोमा इन्द्रममन्दिषुः ॥१०॥

पुनर्वत्सः काण्वः । मरुतः । गायत्री (ऋ. ८।७।२३)

[६८] **वि वृत्रं पर्वशो** ययुर्वि पर्वताँ अराजिनः ।
चक्राणा वृष्णि पौंस्यम् ॥२३॥

वत्सः काण्वः । इन्द्रः । गायत्री (ऋ. ८।६।१३)

यदस्य मन्युरध्वनीद्वि **वृत्रं पर्वशो** रुजन् ।
अपः समुद्रमैरयत् ॥१३॥

पुनर्वत्सः काण्वः । मरुतः । गायत्री (ऋ. ८।७।२५)

[७०] विद्युद्धस्ता अभिद्यवः **शिप्राः शीर्षन् हिरण्ययीः** ।)
शुभ्रा व्यञ्जत श्रिये ॥२५॥

श्यावाश्व आत्रेयः । मरुतः । जगती (ऋ. ५।५४।११)

[२६०] अंसेषु व ऋष्टयः पत्सु खादयो वक्षःसु रुक्मा मरुतो रथे शुभः ।
अग्निभ्राजसो विद्युतो गभस्त्योः **शिप्राः शीर्षसु** वितता **हिरण्ययीः** ॥११॥

पुनर्वत्सः काण्वः । मरुतः । गायत्री (ऋ. ८।७।२६)

[७१] **उशना यत् परावत** उक्ष्णो रन्ध्रमयातन ।
द्यौर्न चक्रदद्भिया ॥२६॥

परुच्छेपो दैवोदासिः । इन्द्रः । अत्यष्टिः (ऋ. १।१३०।९)

सूरश्चक्रं प्र वृहज्जात ओजसा प्रपित्वे वाचमरुणो मुषायतीशान आ मुषायति ।
उशना यत् परावतोऽजगन्नूतये कवे ।
सुम्नानि विश्वा मनुषेव तुर्वणिरहा विश्वेव तुर्वणिः ॥९॥

पुनर्वत्सः काण्वः । मरुतः । गायत्री (ऋ. ८।७।२८)

[७३] यदेषां **पृषती रथे प्रष्टिर्वहति रोहितः** ।
यान्ति शुभ्रा रिणन्नपः ॥२८॥

कण्वो घौरः । मरुतः । बृहती (ऋ. १।३९।६)

[४१] उपो **रथेषु पृषतीर**युग्ध्वं **प्रष्टिर्वहति रोहितः** ।
आ वो यामाय पृथिवी चिदश्रोदबीभयन्त मानुषाः ॥६॥

पुनर्वत्सः काण्वः । मरुतः । गायत्री (ऋ. ८।७।३१)

[७६] कद्ध नूनं कधप्रियो यदिन्द्रमजहातन ।
को वः सखित्व ओहते ॥३१॥

कण्वो घौरः । मरुतः । गायत्री (ऋ. १।३८।१)

[२१] कद्ध नूनं कधप्रियः पिता पुत्रं न हस्तयोः ।
दधिध्वे वृक्तबर्हिषः ॥१॥

पुनर्वत्सः काण्वः । मरुतः । गायत्री (ऋ. ८।७।३५)

[८०] आश्वयावानो वहन्त्यन्तरिक्षेण पततः ।
धातारः स्तुवते वयः ॥३५॥

आजीगर्तिः शुनःशेपः स कृत्रिमो वैश्वामित्रो देवरातः ।
वरुणः । गायत्री (ऋ.१।२५।७)

वेदा यो वीनां पदमन्तरिक्षेण पतताम् ।
वेद नावः समुद्रियः ॥७॥

सोभरिः काण्वः । मरुतः । ककुप् (ऋ. ८।२०।५)

[८६] अच्युता चिद् वो अज्मन्ना नानदति पर्वतासो वनस्पतिः ।
भूमिर्यामेषु रेजते ॥५॥

कण्वो घौरः । मरुतः । गायत्री (ऋ. १।३७।८)

[१३] येषामज्मेषु पृथिवी जुजुर्वाँ इव विश्पतिः ।
भिया यामेषु रेजते ॥८॥

सोभरिः काण्वः । मरुतः । सतोबृहती (ऋ.८।२०।८)

[८९] गोभिर्वाणो अज्यते सोभरीणां रथे कोशे हिरण्यये ।
गोबन्धवः सुजातास इषे भुजे महान्तो नः स्परसे नु ॥८

सोभरिः काण्वः । अश्विनौ । ककुप् (ऋ. ८।२२।९)

आ हि रुहतमश्विना रथे कोशे हिरण्यये वृषण्वसू ।
युञ्जाथां पीवरीरिषः ॥९॥

सोभरिः काण्वः । मरुतः । सतोबृहती
(ऋ. ८।२०।१४)

[९५] तान् वन्दस्व मरुतस्ताँ उप स्तुहि तेषां हि धुनीनाम् ।
अराणां न चरमस्तदेषां दाना मह्ना तदेषाम् ॥१४॥

एवयामरुदात्रेयः । मरुतः । अतिजगती (ऋ. ५।८७।२)

[३१९] प्र ये जाता महिना ये च नु स्वयं प्र विद्मना ब्रुवत एवयामरुत् ।
क्रत्वा तद् वो मरुतो नाधृषे शवो दाना मह्ना तदेषामधृष्टासो नाद्रयः ॥२॥

सोभरिः काण्वः । मरुतः । सतोबृहती (ऋ.८।२०।२६)

[१०७] विश्वं पश्यन्तो बिभृथा तनूष्वा तेना नो अधि वोचत ।
क्षमा रपो मरुत आतुरस्य न इष्कर्ता विह्रुतं पुनः ॥२६॥

मत्स्यः साम्मदः, मान्यो मैत्रावरुणिः, बहवो वा मत्स्या जालनद्धाः ।

आदित्याः । गायत्री (ऋ. ८।६७।६)

यद्वः श्रान्ताय सुन्वते वरूथमस्ति यच्छर्दिः ।
तेना नो अधि वोचत ॥६॥

मेधातिथि–मेध्यातिथी काण्वौ । इन्द्रः । बृहती
(ऋ. ८।१।१२)

य ऋते चिदभिश्रिषः पुरा जत्रुभ्य आतृदः ।
संधाता सन्धिं मघवा पुरूवसुरिष्कर्ता विह्रुतं पुनः ॥१२॥

बिन्दुः पूतदक्षो वा आङ्गिरसः । मरुतः । गायत्री
(ऋ. ८।९४।३)

[३९७] तत् सु नो विश्वे अर्य आ सदा गृणन्ति कारवः ।
मरुतः सोमपीतये ॥३॥

शंयुर्बार्हस्पत्यः । मरुतः । अनुष्टुप् (ऋ. ६।४५।३३)

तत् सु नो विश्वे अर्य आ सदा गृणन्ति कारवः ।
बृबुं सहस्रदातमं सूरिं सहस्रसातमम् ॥३३॥

मेधातिथिः काण्वः । विश्वे देवाः । गायत्री (ऋ. १।२३।१०)

विश्वान् देवान् हवामहे मरुतः सोमपीतये ।
उग्रा हि पृश्निमातरः ॥१०॥

बिन्दुः पूतदक्षो आङ्गिरसः । मरुतः । गायत्री
(ऋ. ८।९४।९)

[४०३] आ ये विश्वा पार्थिवानि पप्रथन् रोचना दिवः ।
मरुतः सोमपीतये ॥९॥

बिन्दुः पूतदक्षो वा आङ्गिरसः । मरुतः ।
गायत्री (ऋ. ८।९४।४)

[३९८] अस्ति सोमो अयं सुतः पिबन्त्यस्य मरुतः ।
उत स्वराजो अश्विना ॥४॥

अत्रिर्भौमः । इन्द्रः । उष्णिक् (ऋ. ५।४०।२)
वृषा ग्रावा वृषा मदो वृषा **सोमो अयं सुतः** ।
वृषन्निन्द्र वृषभिर्वृत्रहन्तम ॥२॥

बिन्दुः पूतदक्षो वा आङ्गिरसः । मरुतः ।
गायत्री (ऋ. ८।९४।८)

[४०३] कद्वो अद्य महानां देवानाम**वो वृणे** ।
त्मना च दस्मवर्चसाम् ॥८॥
श्यावाश्व आत्रेयः । इन्द्राग्नी । गायत्री (ऋ. ८।३८।१०)
आहं सरस्वतीवतोरिन्द्राग्न्यो**रवो वृणे** ।
याभ्यां गायत्रमृच्यते ॥१०॥

बिन्दुः पूतदक्षो वा आङ्गिरसः । मरुतः ।
गायत्री (ऋ. ८।९४।१०-१२)

[४०४] **त्यान् नु** पूतदक्षसो दिवो वो **मरुतो हुवे**।
अस्य सोमस्य पीतये ॥१०॥
[४०५] **त्यान् नु** ये वि रोदसी तस्तभु**र्मरुतो हुवे**
अस्य सोमस्य पीतये ॥११॥
[४०६] त्यं नु मारुतं गणं गिरिष्ठां वृषणं हुवे ।
अस्य सोमस्य पीतये ॥१२॥
मेधातिथिः काण्वः । मरुतः । गायत्री (ऋ. १।२२।१)
प्रातर्युजा वि बोधयाश्विनावेह गच्छताम् ।
अस्य सोमस्य पीतये ॥१॥
मेधातिथिः काण्वः । इन्द्रवायू । गायत्री (ऋ. १।२३।२)
उभा देवा दिविस्पृशेन्द्रवायू हवामहे ।
अस्य सोमस्य पीतये ॥२॥
वामदेवो गौतमः । इन्द्राबृहस्पती ।
गायत्री (ऋ. ४।४९।५)
इन्द्राबृहस्पती वयं सुते गीर्भिर्हवामहे ।
अस्य सोमस्य पीतये ॥५॥
भरद्वाजो बार्हस्पत्यः । इन्द्राग्नी । अनुष्टुप् (ऋ.६।५९।१०)
इन्द्राग्नी उक्थवाहसा स्तोमेभिर्हवनश्रुता ।
विश्वाभिर्गीर्भिरा गत**मस्य सोमस्य पीतये** ॥१०॥
कुरुसुतिः काण्वः । इन्द्रः । गायत्री (ऋ. ८।७६।६)
इन्द्रं प्रत्नेन मन्मना मरुत्वन्तं हवामहे ।
अस्य सोमस्य पीतये ॥६॥
बाहुवृक्त आत्रेयः । मित्रावरुणौ । गायत्री (ऋ. ५।७१।३)
उप नः सुतमा गतं वरुण मित्र दाशुषः ।
अस्य सोमस्य पीतये ॥३॥

स्यूमरश्मिर्भार्गवः । मरुतः । त्रिष्टुप् (ऋ. १०।७७।६)
[४१२] प्र यद् वहध्वे मरुतः पराकाद् यूयं महः संवरणस्य वस्वः ।
विदानासो वसवो राध्यस्या**ऽऽराच्चिद् द्वेषः सनुत-र्युयोत** ॥६॥
गर्गो भारद्वाजः । इन्द्रः । त्रिष्टुप् (ऋ. ६।४७।१३)
तस्य वयं सुमतौ यज्ञियस्यापि भद्रे सौमनसे स्याम ।
स सुत्रामा स्ववाँ इन्द्रो अस्मे **आराच्चिद् द्वेषः सनुत-र्युयोत** ॥१३॥

स्यूमरश्मिर्भार्गवः । मरुतः । त्रिष्टुप् (ऋ.१०।७७।८)
[४१४] **ते हि यज्ञेषु यज्ञियास ऊमा** आदित्येन नाम्ना शंभविष्ठाः ।
ते नोऽवन्तु रथतूर्मनीषां महश्च यामन्नध्वरे चकानाः ॥८॥
वसिष्ठो मैत्रावरुणिः । विश्वे देवाः । त्रिष्टुप् (ऋ.७।३९।४)
ते हि यज्ञेषु यज्ञियास ऊमाः सधस्थं विश्वे अभि सन्ति देवाः
ताँ अध्वर उशतो यक्ष्यग्ने श्रुष्टी भगं नासत्या पुरंधिम् ॥४॥

स्यूमरश्मिर्भार्गवः । मरुतः । त्रिष्टुप् (ऋ. १०।७८।८)
[४२२] सुभागान्नो देवाः कृणुता सुरत्नानस्मान्त्स्तोतॄन् मरुतो वावृधानाः ।
अधि स्तोत्रस्य सख्यस्य गात सनाद्धि वो रत्न-धेयानि सन्ति ॥८॥
श्यावाश्व आत्रेयः । मरुतः । जगती (ऋ. ५।५५।९)
[२७३] मृळत नो मरुतो मा वधिष्टनाऽस्मभ्यं बहुलं शर्म वि यन्तन ।
अधि स्तोत्रस्य सख्यस्य गातन शुभं यातामनु रथा अवृत्सत ॥९॥